इकाई 1 लोक वित्त/राजस्व की प्रकृति व क्षेत्र (Nature and Scope of Public Finance)

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 लोक वित्तः परिचय
 1.2.1 लोक वित्त विज्ञान है अथवा कला
 1.2.2 परम्परागत वित्त कार्यात्मक वित्त तथा कार्यशील वित्त
 1.2.3 राजस्व का विकास
1.3 लोक वित्त के विभाग एवं क्षेत्र
1.4 लोक वित्त का अन्य विज्ञानो से सम्बन्ध
1.5 लोक वित्त एवं निजी वित्त में अन्तर
1.6 लोक वस्तु तथा निजी वस्तु
1.7 अधिकतम सामाजिक कल्याण का सिद्धान्त
1.8 सारांश
1.9 शब्दावली
1.10 बोध प्रश्न
1.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.12 स्वपरख प्रश्न
1.13 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- राजस्व की प्रकृति व क्षेत्र क्या है, को समझ सकें।
- सार्वजनिक वित्त और निजी वित्त में क्या अन्तर है, को स्पष्ट कर सकें ।
- लोक वस्तु व निजी वस्तु क्या है, का वर्णन कर सकें ।
- अधिकतम लाभ का नियम क्या है, का वर्णन कर सकें ।

1.1 प्रस्तावना

लोक वित्त में हम सरकार द्वारा व्यय करने तथा इसके लिए धन जुटाने से सम्बन्धित उद्देश्यों, सिद्धान्तों, समस्याओं तथा परिणामों का अध्ययन करते हैं। आज विभिन्न देशों में लोकतान्त्रिक व्यवस्था है जिसमें राजा का स्थान जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों ने ले लिया है। लोकतन्त्र में जनता से लिया गया कर जनता के हित में प्रयोग किया जाता है तब 'राजस्व' का अर्थ 'राजा का धन न रहकर' 'जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों का धन' हो जाता है। अतः 'राजस्व' के लिए 'लोक वित्त' शब्द का प्रयोग अधिक उपयुक्त होगा। सत्य तो यह है कि आज की लोकतान्त्रिक व्यवस्था में 'राजस्व' विकसित होकर 'लोक वित्त' बन गया है।

1.2 लोक वित्तः परिचय

लोक वित्त के लिए 'राजस्व' शब्द का प्रयोग किया जाता रहा है। 'राजस्व' शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है : राजन् + स्वः, जिसका अर्थ होता है 'राजा का धन'। राजतन्त्र में राजा समाज का प्रमुख होता था, अतः 'राजस्व' वास्तव में राजा का धन होता था। राजा जो कर वसूल करता था वह उसकी सम्पत्ति मानी जाती

थी और वह उसको मनमाने ढंग से व्यय कर सकता था। न तो उसे बजट बनाने की आवश्यकता थी, नहीं किसी के अनुमति की।

अंग्रेजी शब्द 'Public Finance' भी दो शब्दों से मिलकर बना है : Public तथा Finance। यहाँ 'Public' शब्द से तात्पर्य है : Public Authorities (सार्वजनिक सत्तायें अथवा सरकारें) तथा 'Finance' शब्द का अर्थ है : आय प्राप्त करना तथा व्यय करना।

परिभाषा – डाल्टन, ''लोक वित्त सार्वजनिक अधिकारियों के आय तथा व्यय एवं इनके पारस्परिक समन्वय का अध्ययन है।''

"Public Finance deals with the income and expenditure of public authorities and with their mutual adjustment."

Dalton: Public Finance, P-IX

भारत के प्रमुख प्रोफेसर, फिन्डले सिराज के अनुसार, लोक वित्त का सम्बन्ध सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा आय प्राप्त करने व व्यय करने के तरीके से है।''

"............. Public Finance .... may be said to be concerned with the manner in which public authorities obtain their income and spend it."

G. Findlay Shirras, The Science of Public Finance, P-3.

स्पष्टीकरण 1. सार्वजनिक अधिकारियों से अभिप्राय विभिन्न प्रकार की सरकारों से होता है, उदाहरणार्थ भारतवर्ष में सार्वजनिक अधिकारियों के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारें तथा स्थानीय सरकारें जैसे नगर निगम, नगर पालिकायें, जिला परिषद (District Board) ग्राम पंचायतें आदि सम्मिलित हैं।

आधुनिक काल में सरकारों की आय–व्यय लगभग पूर्णतया धन के रूप में ही होती है अमौद्रिक आय–व्यय की मात्रा नगण्य होती है।

उपर्युक्त स्पष्टीकरण को ध्यान में रखते हुए लोक वित्त की निम्न परिभाषा दी जा सकती है :

''लोक वित्त को कुछ अन्य नामों से भी पुकारा गया है जैसे सार्वजनिक वित्त, राजकीय वित्त, राजस्व।

1.2.1 लोक वित्त विज्ञान है अथवा कला– राजस्व की प्रकृति क्या है, अर्थात् राजस्व विज्ञान है अथवा कला या दोनों, इस प्रश्न को भलीभाँति स्पष्ट कर देना उपयुक्त होगा। इस सम्बन्ध में हमें यह देखना होगा, कि विज्ञान क्या है ? और कला क्या है ?

राजस्व विज्ञान है – विज्ञान वह शास्त्र है, जिसमें हमे ज्ञान, क्रम–बद्ध या व्यवस्थित रूप से प्राप्त होता है (Systematized knowledge of any subject is called science) जब नियम बना दिये जाते हैं तो ज्ञान की एक शाखा विज्ञान हो जाती है। इस प्रकार ज्ञान के क्रम बद्ध संग्रह को जिसका उद्देश्य किसी तथ्य के बीच कारण व परिणाम का सम्बन्ध स्थापित करना होता है, विज्ञान कहते हैं।

प्लेहन (Plehn) ने राजस्व को एक 'विज्ञान' माना है और इस सम्बन्ध में यह तर्क दिया है कि इस विज्ञान में अर्थात् 'राजस्व' में तथ्यों तथा सिद्धान्तों का नियमपूर्वक संग्रह किया जाता है तथा राजस्व के अध्ययन तथा अन्वेषण में वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाता है। यहाँ यह बात भी ध्यान योग्य है कि राजस्व एक आश्रित विज्ञान है, जिसका दो बड़े विज्ञानों–अर्थशास्त्र और राजनीति–शास्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा यह उन दोनों पर आश्रित है।

विज्ञान दो प्रकार के हो सकते हैं : वास्तविक विज्ञान (Positive Science), तथा आदर्शवादी विज्ञान (Normative Science)। वास्तविक विज्ञान किसी घटना के कारण तथा परिणाम का अध्ययन करता है और बताता है कि 'वस्तु की स्थिति' क्या है, यहाँ केवल इस प्रश्न का उत्तर दिया जाता है कि ''यह या वह क्या है ?'' इस प्रकार वास्तविक विज्ञान उस दीप–स्तम्भ (Light house) की तरह है जो जहाज को प्रकाश दिखाता है और बताता है कि यहाँ चट्टान है, परन्तु यह नहीं कहता कि जहाज को उत्तर की ओर जाना चाहिए या दक्षिण की ओर। इसके विपरीत, आदर्शवादी विज्ञान में हम अपना आदर्श निर्धारित करते हैं, अर्थात् आदर्श विज्ञान बताता है कि ''क्या होना चाहिए''। कीन्स के अनुसार वास्तविक विज्ञान को क्रमबद्ध ज्ञान का एक समूह कह सकते हैं और आदर्श विज्ञान को ज्ञान का वह पुन्ज कहते हैं जिसका सम्बन्ध आदर्शों को स्थापित करने से होता है। उदाहरण के लिये, वास्तविक विज्ञान हमें बतलाता है कि शराब पीने से मनुष्य अपना मानसिक संतुलन खो देता है; वास्तविक विज्ञान का काम यह बताना नहीं है कि शराब पीना अच्छा है अथवा बुरा। लेकिन आदर्शवादी विज्ञान हमें यह बतलायेगा कि चूँकि शराब पीना बुरी आदत है, इसलिये हमें शराब नहीं पीनी चाहिये।

राजस्व एक वास्तविक विज्ञान है इस बारे में निम्न उदाहरण पेश किये जा सकते हैं :–

1. मान्य सिद्धांतों के आधार पर ही सार्वजनिक आय, व्यय एवं ऋण का निर्धारण होता है।
2. राजस्व के नियम कार्य–कारण का सम्बन्ध भी बताते हैं; जैसे, धनीवर्ग से अधिक कर तथा निर्धन वर्ग से कम कर लेने के फलस्वरूप समाज में धन की विषमता कम होती है।

राजस्व एक आदर्शवादी विज्ञान है, इस सम्बन्ध में कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैः–

1. राजस्व हमे बताता है कि समाज में आर्थिक विषमतायें कम करने के लिये धनी वर्ग पर अधिक और गरीब वर्ग पर कम कर लगाना चाहिए।
2. चूँकि अनुत्पादक कार्यों से देश की आर्थिक प्रगति नहीं होती, अतः अनुत्पादक कार्यों के लिए ऋण नहीं लेना चाहिए।

इस प्रकार के अनेक आदर्श राजस्व में पाये जाते हैं।

राजस्व कला भी है – कला का अर्थ किसी विज्ञान के प्रयोगात्मक रूप से है। जहाँ 'विज्ञान' ज्ञान है वहाँ 'कला' क्रिया है। दूसरे शब्दों में किसी कार्य को करने के लिये व्यावहारिक नियमों का बताना ही कला है। राजस्व एक कला का रूप उस समय धारण कर लेता है जब सार्वजनिक आय और व्यय के सिद्धांतों एवं नीतियों को देश की वित्तीय समस्याओं को हल करने में प्रयोग किया जाता है। राजस्व एक कला है, इस सम्बन्ध में निम्न उदाहरण दिये जा सकते हैं :–

1. कर का साधारणतया विरोध होता है; अतः किस वर्ग पर कितना कर लगाया जाय और किस समय लगाया जाय, यह राजस्व का कला पक्ष बताता है।
2. सरकार के द्वारा प्राप्त आय को किन–किन मदों पर व्यय किया जाय, ताकि अधिकतम सामाजिक लाभ प्राप्त हो, यह भी राजस्व का कला पक्ष बताता है।

अन्त में, निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि राजस्व कला तथा विज्ञान दोनों ही है।

1.2.2 परम्परागत वित्त, कार्यात्मक वित्त तथा कार्यशील वित्त (Traditional Finance, Functional Finance and Activating Finance)– सन् 1870 से 1930 तक राजस्व के अन्तर्गत जिन विचारों का अध्ययन होता था उन्हें परम्परागत वित्त (Traditional finance) की संज्ञा दी गई है। इसे रूढ़िवादी वित्त (Orthodox finance) अथवा दृढ़ वित्त (Sound finance) तथा अकार्यात्मक वित्त (Non-functional finance) भी कहा गया है। सन् 1936 में कीन्स की जनरल थ्योरी के प्रकाशन के बाद राजस्व की नीतियों में भी काफी परिवर्तन हुआ। इस नई विचारधारा को कार्यात्मक वित्त (functional finance) के नाम से पुकारा गया है।

परम्परागत राजस्व (Traditional finance) – परम्परागत राजस्व का प्रमुख सिद्धान्त यह था कि सरकार को अपना बजट संतुलित रखना चाहिये। संतुलित बजट का अर्थ यह है कि अपना व्यय करने के लिये सरकार को समस्त धन कर के द्वारा प्राप्त करना चाहिये या फिर सरकार को अपना व्यय कर से प्राप्त धनराशि के भीतर ही करना चाहिए। सार्वजनिक ऋण एक बुराई है तथा यदि ऋण लिया ही जाय तो आपत्तिकालीन परिस्थितियों के लिये या फिर उत्पादक कार्यो के लिये जिनसे प्राप्त आय से ऋण और उस पर ब्याज चुकाया जा सके।

"The traditional theory maintains that it is a sound principal of public finance to keep the budget balanced. Normally, a balanced budget is one in which the expenditure of the state is equal to its revenue from sources other than loans. In other words, a balanced budget is one in which there is no public debt. However, the traditional theory allows the financing of certain types of expenditure by loans."

Professor J.K. Mehta, chapter on 'functional finance vs. orthodox finance' in Studies is Economic Theory and Economic Philosophy, P-166.

इस प्रकार परम्परागत राजस्व के अन्तर्गत राजस्व नीति को आय तथा व्यय का एक सीधा–सादा लेखा–जोखा माना जाता था। प्राचीन राजस्वशास्त्रियों के अनुसार राजस्व में उन सिद्धान्तों का विवेचन किया जाता है जिनके अनुसार सरकार सार्वजनिक कार्यों को पूरा करने के लिये आय प्राप्त करती है तथा उसका व्यय करती है। यह सार्वजनिक कार्य उन्नीसवीं शताब्दी में बहुत सीमित थे, जैसे विदेशी आक्रमण में सुरक्षा, देश में आंतरिक शांति, आदि। धीरे–धीरे राज्य के कर्तव्यों में प्रसार हुआ और कल्याणकारी कार्य भी शामिल किये गये। फिर भी राजस्व का क्षेत्र उन्हीं सिद्धान्तों के अध्ययन तक सीमित रहा जिनके अनुसार सार्वजनिक कार्यों की पूर्ति के लिये धन की प्राप्ति तथा उसका व्यय होता है। विभिन्न सार्वजनिक कार्यों की पूर्ति हेतु सुचारू रूप में जनता से धन प्राप्त करना तथा उसे निपुणतापूर्वक व्यय करना, यही परम्परागत राजस्व की विषय सामग्री रही है। उदाहरण के लिये, कर प्रणाली न्यायोचित, सुविधाजनक हो तथा समानता के सिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिए।

परम्परावादी वित्त इस मान्यता पर आधारित है, कि निजी विनियोग स्वयं पूर्ण रोजगार की स्थिति स्थापित करते हैं। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का मत था, कि पूर्ति स्वयं अपनी माँग उत्पन्न कर लेती है, और निजी विनियोग सभी उपलब्ध साधनों का उपयोग कर लेता है, यदि मजदूरी, ब्याज व अन्य मूल्यों में पर्याप्त

लोच हो। उनका विश्वास था, कि सरकार राजकीय विनियोग या सरकारी व्यय से किसी भी प्रकार सक्रिय माँग में वृद्धि नहीं कर पाती, क्योंकि जो धन सरकार प्रयोग करेगी, वह निजी उद्योगपतियों को वंचित करके ही कर सकती है।

कार्यात्मक वित्त (Functional Finance) – कीन्स ने अपनी 'जनरल थ्योरी' में इस बात पर बल दिया, कि राजस्व–नीतियों द्वारा अर्थ–व्यवस्था की प्रवृत्तियों को प्रभावित किया जा सकता है। लर्नर ने इस विचारधारा को और आगे बढ़ाया और बताया, कि करारोपण का उद्देश्य केवल धन एकत्रित करना ही नहीं है, बल्कि मुद्रा–स्फीति को रोकना है तथा सरकारी व्यय का उद्देश्य पूर्ण राजगार की दशाओं को उत्पन्न करना है। इसी विचार को कार्यात्मक वित्त कहते हैं। दूसरे शब्दों में करारोपण मुद्रा–स्फीति को दूर करने तथा सार्वजनिक व्यय, बेकारी दूर करने में सहायक होता है।

कार्यात्मक वित्त के बारे में दो बातें ध्यान योग्य है –

1. सरकार का यह कर्तव्य है, कि जिन वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन सम्भव है, उन पर व्यय की सम्पूर्ण दर को उस स्तर तक रखें जिस पर वे सभी वस्तुयें वर्तमान मूल्यों पर खरीदी जा सकें; तथा
2. सरकार ऐसा करने की स्थिति में तभी हो सकती है जब वह राजस्व सम्बन्धी क्रियाओं (functions) का प्रयोग करें।

एक उल्लेखनीय बात यह है कि कार्यात्मक वित्त के अन्तर्गत सरकार का उद्देश्य केवल मुद्रा–स्फीति व मुद्रा–संकुचन को रोकना नहीं होता। सर्वप्रथम, सरकार को अन्य कारणों व उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए करों व व्यय का निर्धारण करना चाहिए। इसके पश्चात् इस प्रकार निर्धारित कुल करारोपण एवं सार्वजनिक व्यय के प्रभावों को ध्यान में रखते हुए मुद्रा–स्फीति अथवा मुद्रा संकुचन जैसी स्थिति हो, उसे रोकने के लिये बजट में घाटे या बचत की व्यवस्था करनी चाहिये।

"The government has of course many other objectives besides the prevention of inflation and deflation. Functional Finance is merely the balancing them. After all the other uses of the instruments (taxation and public expenditure) have been decided upon. Functional Finance prevents the total effect from resulting in inflation or deflation (Lerner, op. cit., P.-137).

कार्यशील वित्त (Activating Finance)–डा0 बलजीत सिंह ने अविकसित देशों के लिए कार्यशील वित्त को क्रियात्मक वित्त से बेहतर बताया है।

कार्यशील वित्त के अनुसार हम यह ज्ञात करते हैं कि विभिन्न रीतियाँ किस प्रकार अर्थ–व्यवस्था में स्फूर्ति उत्पन्न करती हैं। कार्यशील वित्त यह अपेक्षा करता है कि राज्य ऐसे राजकोषीय समायोजन करे ताकि विनियोग का प्रवाह बना रहे एवं साधनों का आदर्श उपयोग होकर राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो सके।

प्रो0 बलजीत सिंह ने यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया कि कीन्स और लर्नर के विचार केवल विकसित देशों के लिये ही उपयुक्त हैं जहॉ कि व्यय का अधिक महत्व है। इन अर्थ–व्यवस्थाओं में व्यय (Spending) के द्वारा चाहे वह सार्वजनिक हो अथवा वैयक्तिक बेकारी तथा मुद्रा–प्रसार का निवारण किया जा सकता है। उदाहरण के लिये, व्यापक आर्थिक मन्दी में वैयक्तिक अथवा सार्वजनिक व्यय द्वारा प्रभावोत्पादक माँग में वृद्धि करके उत्पादन क्रिया को बनाये रखकर बेकारी दूर की जा सकती है। इसके विपरीत, विकासशील देशों में

राजकोषीय नीतियों का नियमन व संचालन इस प्रकार से होना चाहिए कि सभी सम्भाव्य साधनों को रोजगार में लगाकर उत्पादन एवं आय में वृद्धि के प्रयास होने चाहिए। इस के लिए विकासशील देशों को बचत एवं विनियोजन पर अधिक ध्यान देना चाहिए।

1.2.3 राजस्व का विकास–

1. **प्राचीन काल में राजस्व** – राजस्व की विचार–धारा को लगभग उतना ही प्राचीन कहा जा सकता है जितना प्राचीन 'स्वयं' 'राज्य' का अस्तित्व है। भारत, मिश्र, यूनान आदि प्राचीन देशों में राजस्व के नियमों व नीतियों का प्रादुर्भाव हो गया था। प्राचीन सभ्यताओं की राजस्व प्रणालियाँ प्रमुखतः पराजित देशों से वसूल किये गये करों पर निर्भर करती थी। इसके अलावा, अप्रत्यक्ष कर जैसे भूमि हस्तांतरणों तथा व्यापारिक सौदों पर कर भी लगाये जाते थे। रोम साम्राज्य में उत्तराधिकार कर तथा सामान्य बिक्री कर भी लगाया जाता था।

भारत में 'मनुस्मृति' तथा चाणक्य के अर्थशास्त्र में हमे करारोपण तथा राजकीय व्यय की व्यवस्था के बारे में सिद्धान्तों का विवरण मिलता है। ग्रीक युग की एक छोटी पुस्तक 'Athenian Revenues' जिसके लेखक Xenophon थे उल्लेखनीय है। प्लेटो तथा एरिस्टाटिल के लेखों में भी राजकोषीय विषयों पर टिप्पणियाँ प्राप्त होती हैं। रोम के इतिहासकारों के लेखों में भी रोमन राजकोषीय प्रणालियों का विश्लेषण तथा समालोचना मिलती है।

ग्यारहवीं शताब्दी और उसके बाद इटली तथा उत्तर योरोप के नगर–राज्यों में राजकीय क्रियाएँ काफी विस्तृत हो चुकी थी और उनकी पूर्ति के लिये आय की आवश्यकता भी स्वाभाविक थी। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में, इन नगर–राज्यों में राजस्व पर कई पुस्तकें लिखी गई। सन् 1576 में जीन वोडिन (Jean Bodin), एक फ्रेंचलेखक की पुस्तक Six livers sur lare' publ'que प्रकाशित हुई; इसमें बोडिन ने सार्वजनिक आय के श्रोतों का अध्ययन किया।

सत्रहवीं शताब्दी में इग्लैंड में व्यापारवादियों ने करारोपण के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किए; इस सम्बन्ध में सर बिलियम पेठ्ठी (Shri William Petty) की कृति A Treastise of Taxes and Contributions (1662) उल्लेखनीय है।

अठ्ठारहवीं शताब्दी के दौरान राजस्व के क्षेत्र में फ्रांस, आस्ट्रिया तथा इग्लैंड में महत्वपूर्ण योगदान किये गये। फ्रांस में वाबन (Vauban) की पुस्तक Project de dime royale जो सन् 1707 में प्रकाशित हुई, फ्रांस की अप्रत्यक्ष कर प्रणाली की समालोचना है। मान्टेस्क्यू (Montesquieu) ने अपनी पुस्तक L'esprit des Iois (1748) में फ्रांस की कर प्रणाली का अध्ययन किया। फिजियोक्रैटस जैसे क्वेसने (Quesnay), टरगाट (Turgot) ने इस शताब्दी के दूसरे भाग में सब तत्कालीन अप्रत्यक्ष करों के स्थान पर एक 'भूमि पर कर' लगाने का सुझाव दिया था। 18वीं शताब्दी के जर्मन विचारकों जिन्हें सामूहिक रूप में 'कैमरालिस्ट' पुकारा गया है, ने भी राजस्व–नीतियों पर अपने विचार प्रगट किये थे। इनमें Von Jutsi का नाम उल्लेखनीय है; इनकी पुस्तक का नाम Staatswirtschaft (1775) है।

18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एडम स्मिथ ने राजस्व के सिद्धान्तों को एक और व्यवस्थित रूप प्रदान किया। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'वैल्थ आफ नेशन्स' (1776) में राजस्व सम्बन्धी विषयों पर अपने विचार प्रगट किए। एडम स्मिथ ने सार्वजनिक व्यय का विस्तृत विश्लेषण किया तथा सार्वजनिक ऋण पर सर्वप्रथम

अपने विचार प्रस्तुत किए। एडम स्मिथ द्वारा बताये गये चार करारोपण के सिद्धान्तों–समानता, निश्चितता, सुविधा तथा मितव्ययता के सिद्धान्त–का आज भी आधारभूत महत्व है। इन सिद्धान्तों के द्वारा स्मिथ ने सिद्ध किया था, कि कर–प्रणाली का उद्देश्य केवल राज्य के लिये वित्तीय साधन जुटाना ही नहीं है बल्कि कर संग्रह में करदाता की सुविधा तथा करदान क्षमता का भी ध्यान रखना चाहिए। सार्वजनिक व्यय की दृष्टि में स्मिथ ने राजकीय कर्तव्यों में देश की सुरक्षा, न्याय एवं आंतरिक शांति तथा सार्वजनिक कार्यो जैसे सड़कों, पुल, नहरों तथा शिक्षा को स्थान दिया।

एडम स्मिथ के उपरान्त 19वीं शताब्दी में कुछ प्रमुख लेखकों ने राजस्व की विचारधारा के विकास में अपना योगदान किया। इस सम्बन्ध में रिकार्डो, मैकुलाह, तथा जे0एस0 मिल विशेष है। जर्मन विद्वान वैगनर (Finanz wissen schaft, 1080) तथा इटालियन राजस्वशास्त्री विटी डिमार्को (First Principles of Public Finance) ने भी महत्वपूर्ण योगदान किये। 19वीं शताब्दी के अमरीकन लेखकों और उनकी रचनाओं में हम निम्न का उल्लेख कर सकते हैं;

Henry C. Adams............ The Science of Public Finance (1898)
Seligman................ The Shifting and Incidence of Taxation (1892)
Progressive Taxation (1894)

बीसवीं शताब्दी में, विशेषकर, तीसा (1930's) के महामन्दी काल के बाद आर्थिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों व पहलुओं में राज्य का हस्तक्षेप स्वीकार किया गया तथा फलस्वरूप राजस्व के अध्ययन को विशेष महत्व प्राप्त हो गया। जनतन्त्रात्मक गणराज्यों के उद्भव, समाजवादी विचाराधारा की प्रधानता तथा विश्व के विभिन्न भागों में होने वाली राजनैतिक व आर्थिक क्रान्तियों ने एक अधिक प्रगतिशील आय–नीति तथा अधिक उदार राजकीय व्यय–नीति को जन्म दिया।

राजस्व का उद्देश्य अब सरकार के लिए धन एकत्र करना मात्र नहीं रहा, बल्कि आर्थिक स्थायित्व प्राप्त करने, आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देने, सामाजिक न्याय प्राप्त करने और पूर्ण रोजगार की स्थिति लाने का उसे एक शक्तिशाली साधन माने जाने लगा। इस सम्बन्ध में कीन्स, हैन्सन एवं लर्नर के विचार उल्लेखनीय है। कीन्स एवं हैन्सन ने राजकोषीय नीति (Fiscal Policy) के महत्व को बताया। तद्नुसार, यह आवश्यक माना गया कि उपभोग में स्थायित्व लाया जाय और उसका उपयुक्त ढंग से नियमन हेतु क्षतिपूरक कार्यवाही की जाय।

लर्नर जिन्होंने 'क्रियाशील वित्त के सिद्धान्त' का प्रतिपादन किया बताया, कि करारोपण का उद्देश्य सार्वजनिक वित्त के लिए केवल वित्त एकत्रित करना मात्र नहीं है बल्कि इसका मूल उद्देश्य मुद्रा–स्फीति को रोकना है। इसी प्रकार सार्वजनिक व्यय का उद्‍देश्य कुछ वांछनीय दिशाओं में सरकारी धन को खर्च करना न होकर देश में पूर्ण रोजगार की अवस्था को प्राप्त करना है। यहाँ यह भी बताना उपयुक्त होगा कि क्रियात्मक वित्त का उद्देश्य विकसित, तथा अल्प विकसित देशों में भिन्न होगा; विकसित देशों में इसका प्रयोग अर्थ–व्यवस्था के स्थायित्व के लिये किया जाता है, जबकि अल्प विकसित देशों में आर्थिक विकास की गति में वृद्धि करने के लिए।

1.3 लोकवित्त के विभाग एवं क्षेत्र

1. सार्वजनिक व्यय (Public Expenditure)
2. सार्वजनिक आय (Public Revenue)
3. सार्वजनिक ऋण (Public Debt)
4. वित्तीय प्रशासन (Financial Administration)
5. राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)

1. **सार्वजनिक व्यय** –

अपने कार्यो को पूरा करने के लिए सरकार जो धन–राशि व्यय करती है उसे सार्वजनिक व्यय कहते हैं। आधुनिक युग में सरकारें बहुत अधिक मात्रा में तथा अनेकों विषयों पर व्यय करती हैं, अतः सार्वजनिक व्यय राजस्व का एक प्रमुख विभाग हैं।

इस विभाग के अन्तर्गत जिन बातों का अध्ययन किया जाता है उनमें से प्रमुख निम्न हैं :–

1. किन–किन मदों पर सरकारी व्यय होना चाहिए और किन पर नहीं अर्थात् सार्वजनिक व्यय का क्षेत्र ।
2. सार्वजनिक व्यय कितने प्रकार के होते हैं अर्थात् सार्वजनिक व्यय का वर्गीकरण।
3. सार्वजनिक व्यय करने में किन–किन बातों का ध्यान रखना चाहिए अर्थात् सार्वजनिक व्यय के सिद्धान्त।
4. सार्वजनिक व्यय का देश के उत्पादन तथा आर्थिक वितरण पर क्या प्रभाव पड़ता है अर्थात् सार्वजनिक व्यय के प्रभाव।

2. **सार्वजनिक आय** –

सार्वजनिक व्यय करने के लिए आवश्यक धनराशि जुटाना नितांत आवश्यक है। अतः सार्वजनिक आय भी राजस्व का प्रमुख अंग है। सार्वजनिक आय से अभिप्राय सरकार द्वारा प्राप्त किये गये उस धन में से है जिसकी कि वापसी नहीं की जाती।

वे प्रमुख बातें जिनका अध्ययन इस विभाग के अन्तर्गत किया जाता है निम्न हैं –

क. सार्वजनिक आय के कौन–कौन से साधन हैं अर्थात् सार्वजनिक आय का वर्गीकरण।

ख. कर, जो कि सार्वजनिक आय का एक प्रमुख साधन है, कितने प्रकार के होते हैं, अर्थात् कर का वर्गीकरण।

ग. कर लगाने में किन–किन बातों पर ध्यान देना चाहिए अर्थात् करारोपण के सिद्धान्त।

घ. जनता की कर देने की शक्ति से क्या तात्पर्य हैं और यह किन–किन बातों पर निर्भर करती है अर्थात् करदेय क्षमता का अर्थ तथा उसके निर्धारक तत्व।

ङ. किन कारणों से एक करदाता कर का भार किसी अन्य व्यक्ति पर डालने में सफल होता है अर्थात् कर विवर्तन के तत्व।

च. सार्वजनिक आय का देश के उत्पादन तथा आर्थिक वितरण पर क्या प्रभाव पड़ता है अर्थात् सार्वजनिक आय के प्रभाव।

3. **सार्वजनिक ऋण** –

सार्वजनिक ऋण भी राजस्व का एक महत्वपूर्ण विभाग है क्योंकि सार्वजनिक व्यय की पूर्ति के लिए आवश्यक धनराशि जुटाने में सरकार को बहुधा देश–विदेश से ऋण भी लेना पड़ता है। सार्वजनिक ऋण की एक प्रमुख विशेषता यह है कि सरकार को ऋण के रूप में प्राप्त धनराशि की वापसी भी करनी पड़ती है और साधारणतया वापसी की तिथि तक के लिए ब्याज भी चुकाना पड़ता है।

सार्वजनिक ऋण से सम्बन्धित जिन बातों का अध्ययन इस विभाग में किया जाता है, उसमें से निम्न उल्लेखनीय है :–

1. किन–किन परिस्थितियों में सरकार के लिए ऋण लेना वांछनीय होगा अर्थात् सार्वजनिक ऋण का क्षेत्र।
2. सार्वजनिक ऋण कितने प्रकार के होते हैं, अर्थात् सार्वजनिक ऋण का वर्गीकरण।
3. किन दशाओं में ऋण लेना अधिक उपयुक्त होगा और किन दशाओं में कर लगाना अर्थात् ऋण और कर की तुलना।
4. किन दशाओं में देश के भीतर से ऋण लेना अधिक उपयुक्त होगा और किन में विदेशों से अर्थात् आन्तरिक तथा वाह्य ऋण की तुलना।
5. घाटे का वित्त प्रबन्ध क्या होता है, किस सीमा तक घाटे का वित्त प्रबन्ध किया जा सकता है और उसके क्या प्रभाव होते हैं अर्थात् घाटे के वित्त प्रबन्ध का अर्थ, सीमा तथा प्रभाव।
6. ऋण की वापसी के कौन से तरीके हैं और उनमें से हर एक के क्या गुण व दोष है अर्थात् सार्वजनिक ऋण के शोधन के सिद्धान्त।
7. ऋण के क्या प्रभाव होते हैं ?

4. <u>वित्तीय प्रशासन</u> –

वित्तीय प्रशासन से अभिप्राय उस शासन–व्यवस्था एवं संगठन से है जिसकी स्थापना सरकार अपनी विभिन्न क्रियाएँ करने के लिए करती हैं।

वित्तीय प्रशासन के अन्तर्गत निम्न प्रमुख प्रश्नों के बारे में अध्ययन किया जाता है –

1. बजट किस प्रकार तैयार, पास तथा कार्यान्वित किया जाता है ?
2. विभिन्न करों का एकत्रण किन–किन अधिकारियों तथा संस्थाओं द्वारा होता है ?
3. व्यय विभागों का संचालन क्यों कर होता है ?
4. सार्वजनिक लेखों के लिखने तथा उनके आडिट के लिए कौन–कौन से विभाग तथा अधिकारी होते हैं तथा उनके क्या–क्या अधिकार तथा उत्तरदायित्व हैं ?

वेस्टेबल ने राजस्व के इस विभाग की आवश्यकता तथा महत्व पर विशेष बल दिया है। उनके अनुसार कोई भी वित्त की पुस्तक पूर्ण नहीं कही जा सकती, जब तक कि वह वित्तीय प्रशासन और बजट की समस्याओं का अध्ययन नहीं करती।

5. <u>राजकोषीय नीति</u> –

राजकोषीय नीति का अर्थ है कि कुछ आर्थिक उद्देश्यों जैसे आर्थिक स्थायित्व (economic stibilization) व आर्थिक विकास (economic development) की पूर्ति के लिए करारोपण, सार्वजनिक व्यय तथा सार्वजनिक

ऋण का उपभोग करना। अतः राजस्व के इस विभाग के अन्तर्गत इस बात का अध्ययन किया जाता है कि देश में आर्थिक स्थिरता लाने के लिए अथवा आर्थिक विकास के लिए राजकोषीय नीति का उपयोग किस प्रकार किया जाता है। राजकोषीय नीति के अध्ययन की महत्ता सन् 1930 की महामन्दी के पश्चात् आरम्भ हुई। आधुनिक युग में राजकोषीय नीति का महत्व राजस्व के पश्चात् आरम्भ हुई। आधुनिक अर्थशास्त्रियों द्वारा स्वीकार किया जाने लगा है। यह बात अब समान रूप से स्वीकार की जाती है कि विकसित अर्थव्यवस्थाओं की मुख्य समस्या व्यावसायिक दशाओं (business conditions) में स्थिरता लाने (stability) की होती है जबकि अविकसित व अल्पविकसित अर्थव्यवस्था की मुख्य आर्थिक समस्या तीव्र आर्थिक विकास है। इन दोनों ही समस्याओं के हल में राजकोषीय नीति का सकरात्मक व महत्वपूर्ण योगदान होता है।

1.4 लोक वित्त / राजस्व का अन्य विज्ञानों से सम्बन्ध (Relation of Public Finance with other Sciences)

1. राजस्व एवं अर्थशास्त्र (Public Finance and Economics) डाल्टन राजस्व अर्थशास्त्र की सीमा पर स्थित है। इस कथन से स्पष्ट है कि राजस्व व अर्थशास्त्र दोनों ही एक–दूसरे से सम्बन्धित है। अर्थशास्त्र एक वृहत शब्द है तथा राजस्व उसका ही एक भाग है। राजस्व का विकास अर्थशास्त्र के विकास के साथ–साथ ही हुआ है। राजस्व के सिद्धान्त जानने हेतु अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों को भी जानना आवश्यक होगा जैसे कि (1) नवीन कर लगाने से पूर्व वित्तमन्त्री को माँग की लोच एवं मार्ग का नियम समझना आवश्यक हो जाता है। (2) जमा के भुगतान के ढंगों का अध्ययन करने हेतु मुद्रा साख तथा बैंकिग का ठोस ज्ञान आवश्यक है। (3) सार्वजनिक आय को विभिन्न मदों पर किस प्रकार व्यय किया जाय, इसके लिए सम सीमान्त उपयोगिता नियम का सहारा लेना पड़ता है। बैस्टेबल का मत है कि ''राजस्व के विद्यार्थी को अर्थशास्त्र'' का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक होता है। एडम्स का मत है कि ''राजस्व की सुदृढ़ नीति राजनीतिक अर्थ व्यवस्था की पूर्ण जानकारी पर निर्भर करती है।''
2. राजस्व एवं राजनीतिक शास्त्र (Public Finance & Political Science) डाल्टन का मत है कि राजस्व अर्थशास्त्र एवं राजनीति शास्त्र की मध्यवर्ती सीमा पर स्थित है। राजनीतिशास्त्र ऐसे आधार प्रस्तुत करती है जिन पर राजस्व के नियम लागू होते है। राजनीतिशास्त्र राजस्व के अध्ययन करने में सहायता प्रदान करता है। उदाहरणार्थ करारोपण के प्रभाव का पूर्ण रूप से उस समय तक अध्ययन नही किया जा सकता जब तक कि देश के राजनीतिक ढ़ाचें का भली प्रकार से अध्ययन न कर लिया जाय। राजनीतिशास्त्र एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ से राजस्व के नियमों की खोज की जाती है। (राज्य की वित्तीय नीतियाँ इस बात पर आधारित होती है कि उस देश का राजनीतिक ढाचा कैसा है, उस देश की राजनीतिक अभिलाषाये क्या है तथा वही राजनीतिक जागृति कितनी है) एक परतन्त्र देश की आर्थिक नीति एक स्वतंत्र देश से मिला होता है)
3. राजस्व एवं सांख्यिकी (Public Finance & Statistics) राजस्व की उपयुक्त नीतियों के निर्धारण के लिए सहीं एवं वैज्ञानिक आकड़ों का पर्याप्त ज्ञान

नितान्त आवश्यक है। करो से सरकार को कितनी आय होती है, राष्ट्रीय आय का कितना प्रतिशत करों से मिलता है नागरिकों पर कर का भार कैसा पड़ रहा है। कर दाता की कर देय क्षमता क्या है करों और सार्वजनिक व्यय का पूँजी–निर्माण उत्पादन व वितरण पर क्या और कितना प्रभाव पड़ रहा है। सार्वजनिक ऋण का भार कितना है, इन सब बातों का सहीं ज्ञान आकड़ों द्वारा ही जाना जा सकता है। इसके अतिरिक्त सांख्यिकी के विभिन्न सूत्रों एवं विधियों के ज्ञान द्वारा ही सरकारी आय, व्यय तथा ऋण सम्बन्धी आकड़ों को एकत्रित करके तथा उनका वैज्ञानिक विश्लेषण करके ही लाभकारी व उपयोगी तथ्यों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। बजए तैयार करने में आकड़ों ली जाती है। अतः राजस्व और सांख्यिकी का अविच्छेद सम्बन्ध है।

4. राजस्व व कानून (Public Finance & Law) किसी देश की राजस्व प्रणाली व नीतियाँ वैज्ञानिक आधार पर ही स्थित होती है। राजस्व के अध्ययन में निम्न तीन कानूनी विषयों का ज्ञान बहुत ही उपयोगी होता है, (1) संविधान में वित्तीय व्यवस्था (2) विभिन्न कर अधिनियम (3) कर अधिनियमों से सम्बन्धित न्यायालयों द्वारा विचार एवं निर्णय
अतः स्पष्ट है कि राजस्व कानून से भी विशेष लगता है।

5. **राजस्व व अन्य शास्त्र**

A. राजस्व व इतिहास– विभिन्न राष्ट्रों के इतिहास के अध्ययन के आधार पर ही वहाँ के राजस्व के विभिन्न सिद्धान्तों की सफलता एवं असफलता का ज्ञान सरलता से किया जा सकता है तथा उसी अनुरूप राजस्व नीति में आवश्यक परिवर्तन लाये जा सकते है।

B. राजस्व व समाजशास्त्र– उपयोगी सम्बन्ध होता है। आधुनिक युग में समाज सुधार के कार्य में सरकारें महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। सरकार अपनी राजस्वनीतियों द्वारा समाज के पिछड़े वर्ग को अलग कर सकती है निरक्षरता तथा विभिन्न सामाजिक कुरीतियों को दूर करने हेतु विशेष अभियान चलाकर भारी मात्रा में धन व्यय कर सकती है।

1.5 लोक वित्त एवं निजी वित्त में अन्तर (Difference Between Public Finance And Private Finance)

डॉ डाल्टर का मत है कि ''निजी तथा सार्वजनिक राजस्व में आय तथा व्यय दोनों ही दृष्टियों से अन्तर है'' राजस्व एवं निजी वित्त में अन्तर के आधार निम्नवत है :

1. **आय और व्यय के समायोजन में अन्तर (Difference in the Adjustoment of Income 8 Expenditure)** :– राज्य अपने व्यय को देखकर आय प्राप्त करता है जबकि व्यक्ति अपनी आय के अनुसार व्यय करता है। 'ते ते पॉव पसारिये जेती लॉबी सौर' (Cut your Coat according to the cloth) वाला सिद्धान्त सदैव व्यक्ति पर लागू होता है। राजस्व का सिद्धान्त ठीक इसके विपरीत है। राज्य सर्वप्रथम यह निश्चित करता है कि उसे विभिन्न मदों पर किस प्रकार धन व्यय करना है फिर इस व्यय के आधार पर आय के श्रोतों पर विचार किया जाता है अर्थात राजस्व में 'कोट के आकार के आधार पर कपड़े की व्यवस्था की जाती है' (Arrange for the cloth according to the size of the Coat)। बैस्टबल के अनुसार ''व्यक्ति कहता हे

कि मैं इतना व्यय कर सकता हूँ, वित्त मन्त्री का कथन है कि मुझे इतनी राशि की व्यवस्था करनी है।'' ("The individual says, I can spend so much; The Finance Minister says, I have to raise so much." - Bastable)

(अनेक अवसरों पर व्यक्ति विशेष को अपनी आय से अधिक व्यय करना पड़ता है जैसे कि शादी जन्म व मृत्यु के अवसरों पर। कुछ सीमा तक व्यक्ति अपनी आय को व्यय के अनुरूप नियमित करता है। Overtime इत्यादि के माध्यम से। इस स्थिति में उसे व्यय के साथ आय का समायोजन करना पड़ता है और आय के नवीन श्रोत ढूढ़ने पड़ते है। इसी प्रकार कभी–कभी जब सरकार के बजट में आय, व्यय से अधिक हो जाती है तो सरकार को आय के अनुरूप व्यय का समायोजन करना हेता है जो राजस्व के सिद्धान्त के विरूद्ध है दूसरी ओर यह भी आवश्यक नहीं है कि राज्य सदैव ही अपने व्यय के अनुरूप आय प्राप्त करने में सफल हो जाये। अनेक बार सरकार को अपने व्यय कम करने होते है अतः स्पष्ट है कि राज्य व व्यक्ति की वित्त व्यवस्था में भेद केवल मात्रा में है, प्रकृति में नहीं'')

2. **शक्तिशाली अधिकारों का अन्तर (Difference of Powerful Rights)** – राज्य का व्यक्ति की अपेक्षा अधिक प्रभुत्व रहता है। राज्य अधिक शक्तिशाली होने के कारण व्यक्तियों की सम्पत्ति पर अपना अधिकार जमा सकता है, उसे हड़प भी सकता है परन्तु एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की सम्पत्ति नही हड़प सकता। (उदाहरण– भारत सरकार द्वारा बैकिंग का राष्ट्रीयकरण)

(यह अन्तर औपचारिक मात्र – व्यक्ति की सम्पत्ति – राज्य की सम्पत्ति क्योंकि व्यक्ति राजा का एक अंग होता है। राज्य द्वारा एक मद से दूसरे मद में व्यय ताकि अधिकतम सामाजिक कल्याण प्राप्त हो जाए।)

3. **उद्देश्यों में अन्तर (Difference in Aims)** – व्यक्ति की अपेक्षा राज्य वर्तमान को कम और भविष्य को अधिक महत्व देता है। व्यक्ति के दृष्टिकोण में इस कथन का प्रभाव रहता है कि 'दीर्घकाल में हम सब मरणशील हैं' (In the long run, we are all dead)। जबकि राज्य का जीवन अमर होता है। अतः व्यक्ति दूर भविष्य के लिए साधारणतया योजनाऍ कम बनाता है। सरकारें भविष्य के लिए काफी बड़ी व दीर्घकालीन योजनाऍ बनाती है। एक सरकार पुल, बॉध, नहर, सड़क आदि अनेकों दीर्घकालीन योजनाओं पर काफी ध्यान देती हैं।

यह अन्तर मौलिक नही है, केवल मात्रा का है। क्योंकि सरकार व्यक्ति की भॉति वर्तमान पर भी ध्यान देती है और अल्पकालीन विषयों पर भी ध्यान देती हैं। इसी प्रकार व्यक्ति भी कभी–2 सरकार की भॉति दीर्घकालीन योजनाओं पर ध्यान देता है।

4. **व्यय एवं कल्याण में अन्तर (Difference in Expenditure and Welfare)** – प्रत्येक व्यक्ति अपने सीमित साधनों को विभिन्न वस्तुओं पर इस प्रकार व्यय करता है कि समस्त वस्तुओं से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता समान रहे। राजस्व में व्यय करते समय अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धान्त को ध्यान में रखा जाता है। अतः निजी वित्त में केवल निजी कल्याण की ओर ही ध्यान देते है जबकि राजस्व में व्यय करते समय सम्पूर्ण समाज के कल्याण की ओर ध्यान देते हैं तथा एक व्यक्ति के कल्याण का कोई ध्यान नही दिया जाता। इस सम्बन्ध में डी मार्को का कथन है कि व्यक्तिगत वित्त व्यवस्था में व्यक्तियों की उनकी

इच्छओं को पूर्ण करने सम्बन्धी क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है, परन्तु राजस्व में राज्य की उत्पादक क्रियाओं का, जो सामूहिक इच्छाओं की पूर्ति हेतु है का अध्ययन किया जाता है।

5. **गोपनीयता का अन्तर (Difference of Secrecy)**– निजी वित्त में गोपनीयता रहती है। एक व्यक्ति अपने आय–व्यय का अपनी बचत का तथा ऋण आदि का ठीक–ठीक परिचय अन्य व्यक्तियों को नही देना चाहता। वह सोचता है कि ''बँधी मुट्‌ठी लाख की, खुल गयी तो खाक की।''

इसके विपरीत राजस्व में गोपनीयता के स्थान पर प्रचार को अधिक महत्व दिया जाता है। सरकारी बजट प्रकाशित किये जाते है, विभिन्न मंचों पर व्याख्यान होते हैं, उन पर भिन्न–2 वर्गो द्वारा टिप्पणियॉ की जाती है तथा समाचार–पत्र में भी समालोचना की जाती है।

6. **साधनों की प्रकृति में अन्तर (Difference in the Nature of Source)** – सरकार की आय के साधन लोचदार होते है जबकि व्यक्ति की आय के साधन लोचदार नहीं होते। सरकार अपनी कर की आय से सुरक्षित रहती है आवश्यकता पड़ने पर हीनार्थ प्रबन्धन का उपयोग भी किया जा सकता है। आवश्यकता पड़ने पर विदेशी ऋण तथा देशी (आन्तरिक) ऋण प्राप्त कर सकती है। निजी वित्त में व्यक्ति केवल आन्तरिक ऋण का ही प्रबन्ध कर सकता है।

7. **घाटे व बचत सम्बन्धी अन्तर (Difference of Saving & Deficit)** – निजी वित्त में बचत करना अच्छा एवं बुद्धिमत्तापूर्ण माना जाता है। जबकि राजस्व में ऐसा नही है। यदि सरकार बचत का बजट बनाती है तो यह माना जाता है कि जनता पर अनावश्यक करारोपण करके अतिरिक्त आय प्राप्त की गयी है तथा सरकार के पास विनियोजन हेतु विकास योजना का अभाव पाया जाता है। विकासशील सरकारें प्रायः घाटे के बजट बनाकर विकास कार्यक्रमों की पूर्ति करती हैं।

8. **अन्य अन्तर** – **(a)** सरकार अपनी आय का एक महत्वूपर्ण भाग सुरक्षा, कानून व शान्ति व्यवस्था पर व्यय करती है। व्यक्ति को इस प्रकार का व्यय नही करना पड़ता।

(b) सार्वजनिक वित्त एक निश्चित आर्थिक नीति पर आधारित होता है परन्तु व्यक्ति के आय कमाने तथा उसके व्यय के पीछे कोई आर्थिक नीति कार्य नही करती।

(c) सार्वजनिक वित्त संचालन हेतु एक शक्तिशाली संगठन की आवश्यकता होती है निजी वित्त संचालन हेतु इस प्रकार के संगठन की आवश्यकता नही होती।

(d) व्यक्ति ऐसे कार्यो पर व्यय नही करता, जिनसे उसे अप्रत्यक्ष लाभ प्राप्त हो, परन्तु सार्वजनिक वित्त का अधिकांश भाग अप्रत्यक्ष लाभ देने वाली मदों पर जैसे देश की सुरक्षा, शान्ति व व्यवस्था, न्याय, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा विभिन्न सामाजिक सुरक्षाओं पर व्यय होता है।

निष्कर्ष : अतः ''व्यक्तिगत अर्थ प्रबन्धन एवं राजस्व में आय–व्यय दोनों मदों पर मौलिक अन्तर है और दोनों को समान्तर धुरों पर चलाना भारी भूल माना जाता है।''

1.6 लोक वस्तु तथा निजी वस्तु (Meaning of Public and Private Goods)

लोक वस्तु से तात्पर्य, उस वस्तु से है जिसका लाभ अविभाज्य (indivisible) होता है तथा सम्पूर्ण समाज को प्राप्त होता है चाहे कोई खास व्यक्ति इस वस्तु का उपभोग करना चाहे या न चाहे। एक उदाहरण लें। वह जन स्वास्थ्य सेवा, जिससे चेचक का उन्मूलन होता है सभी के स्वास्थ्य की रक्षा करती है, केवल उन्हीं की नहीं जिन्होंने चेचक का टीका लगाने के लिए भुगतान किया है। इसके विपरीत रोटी एक निजी वस्तु है जिसका उपभोग यदि एक व्यक्ति करता है जिसने इसकी कीमत अदा की है, तो कोई दूसरा इसका उपभोग नही कर सकता।

इस प्रकार लोक वस्तुएं वे हैं जिनके उत्पादन से बाह्य लाभ (External benefits) का सृजन होता है और ऐसे लाभ का उपभोग वे करते हैं जो इनके लिए भुगतान करते हैं और वे भी जो भुगतान नहीं करते हैं अर्थात लाभ का बिखराव हो जाता है इसे बिखराव प्रभाव (Spill-over Effect) कहा जाता है और इन वस्तुओं का उत्पादनकर्ता बाह्य लाभ प्रदान करने के लिए कोई चार्ज नहीं ले सकता है (Case of uncharged services)। इसका एक कारण यह है कि ऐसे बाह्य लाभ पर सम्पत्ति का अधिकार (Property right) स्थापित नहीं किया जा सकता है। दूसरा कारण है लोक वस्तुओं का विभाज्य (divisible) न होना। अतः इनके लिए कीमत नहीं ली जा सकती है। परिणाम यह होता है कि उन व्यक्तियों को भी इन वस्तुओं के उपभोग से वंचित नहीं किया जा सकता है जो कीमत का भुगतान नहीं करते हैं।

जिन वस्तुओं के उत्पादन से बाह्य लाभ के स्थान पर बाह्य हानि (External costs) होती है, उन्हें लोक या सार्वजनिक खराब (public bads) की संज्ञा दी जाती है। लोक हानि उन क्रियाओं को कहा जाएगा, जिनके उत्पादन या उपभोग से उन सभी बाह्य लागतों का सृजन होता है जो जनसंख्या के एक बड़े भाग को प्रभावित करती हैं। उदाहरणार्थ कारखाने की चिमनी से निकलने वाले धुएं को ले सकते हैं जिससे आस–पास के लोगों को कपड़ों की धुलाई पर अधिक खर्च करना पड़ता है। मिल मालिक खर्च में इस वृद्धि के लिए कोई क्षतिपूर्ति नहीं करते हैं (case of uncompensated disservices)।

मसग्रेव ने निजी तथा लोक वस्तुओं के मध्य अन्तर को स्पष्ट करने के लिए दो आधारों को चुना है, यथा (1) आवश्यकता के निर्धारण का आधार (Basis of want determination) तथा आवश्यकता की प्रकृति (Nature of wants) एवं (2) उपभोग में वर्जन (Exclusion in consumption) तथा प्रतिद्वन्द्विता की उपस्थिति या अनुपस्थिति (Presence or absence of rival)।

(1) आवश्यकता की किस्में (Types of Wants)

आवश्यकता की किस्मों के आधार पर निजी वस्तु तथा लोक वस्तु के अन्तर को तालिका 1.1 में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका 1.1

आवश्यकता के भेद

आवश्यकता के निर्धारण का आधार	लाभ की प्रकृति	
	आन्तरिक (Internal)	बाह्य (External)
व्यक्तिगत (Individual)	निजी (Private)	लोक (Public)
आरोपित (Imposed)	मेरिट (Merit)	मेरिट (Merit)

तालिका 1.1 में निजी वस्तु तथा दो तरह की लोक वस्तुओं को प्रस्तुत किया गया है। निजी एवं लोक वस्तुओं में अन्तर केवल इस बात को लेकर है कि लाभ आन्तरिक (Internal) है या बाह्य (External)। दोनों में समता इस बात को लेकर है कि दोनों ही स्थितियों में वस्तु के उत्पादन एवं उपभोग का निर्धारण व्यक्तिगत (Individual) आवश्यकता के आाधार पर किया जाता है। मेरिट वस्तुएं (Merit goods) वे हैं जिनसे प्राप्त लाभ आन्तरिक हो सकते हैं या बाह्य, किन्तु इनका उत्पादन कितनी मात्रा में किया जायगा, इसका निर्धारण व्यक्ति नहीं करता, बल्कि सरकार द्वारा थोपा जाता है। अतः जहां सामाजिक वस्तुओं का उत्पादन व्यक्तियों के अधिमान के अनुसार होता है वहां मेरिट वस्तुओं का उत्पादन शासक वर्ग के अधिमान के अनुसार होता है और यह अधिमान व्यक्तियों पर उनकी इच्छा के विपरीत भी लाद दिया जा सकता है।

(2) **वर्जन का सिद्धान्त एवं उपभोग में प्रतिद्वन्द्विता** (Exclusion Principle and Rival in Consumption) – निजी वस्तुओं का उत्पादन बाजार सिद्धान्त तथा आर्थिक निपुणता (Economic efficiency) के अनुसार होता है। बाजार अर्थव्यवस्था दो सिद्धान्तों पर आधारित है, यथा, (क) वर्जन का सिद्धान्त तथा (ख) प्रकट अधिमान (Revealed Preference)।

वर्जन के सिद्धान्त के अनुसार केवल वे ही किसी वस्तु का उपभोग कर सकते हैं जो इसके लिए बाजार कीमत का भुगतान करते हैं। इस प्रकार A किसी वस्तु X का उपभोग करता है क्योंकि उसने इसे प्राप्त करने के लिए कीमत चुकायी है और B उसके उपभोग से वंचित रह जाता है क्योंकि उसने (B ने) कीमत का भुगतान नहीं किया। वर्जन के लिए आवश्यक है कि लोगों को सम्पत्ति पर कानूनी अधिकार (Legal right to property) प्राप्त हो।

वर्जन के सिद्धान्त के अन्तर्गत बाजार नीलामी व्यवस्था की तरह कार्य करता है। उपभोक्ता वस्तु के लिए बोली लगाता है और इस प्रक्रिया में अपने अधिमान को प्रकट करता है। इससे उत्पादनकर्ता को संकेत मिलता है और वह उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करता है जिन्हें उपभोक्ता चाहते हैं। स्पष्ट है कि उपभोक्ता द्वारा दी गयी जानकारी के आाधार पर ही बाजार यन्त्र क्रिया करता है।

इन दो सिद्धान्त के आधार पर क्रिया करते हुए बाजार द्वारा निजी वस्तुओं का निपुण प्रावधान होता है क्योंकि इन वस्तुओं के लाभ उन्हीं उपभोक्ताओं को प्राप्त होते हैं जो इनके लिए कीमत का भुगतान करते हैं। दूसरे शब्दों में, लाभ आन्तरिक होते हैं तथा उपभोग में प्रतिद्वन्द्विता रहती है। अधिकांश वस्तुओं की व्यवस्था बाजार यन्त्र के द्वारा ही सम्भव है।

लेकिन कुछ ऐसी वस्तुएं है जिनका प्रावधान बाजार व्यवस्था द्वारा सम्भव नहीं है क्योंकि वर्जन का सिद्धान्त लागू नहीं होने के कारण उपभोक्ता उनके लिए अपने अधिमान को प्रकट नहीं करते। इनके उपभोग में प्रतिद्वन्द्विता भी नहीं रहती है। ऐसी वस्तुओं को लोक वस्तुओं की संज्ञा दी जाती है।

(3) **लोक वस्तु का वर्गीकरण : सामाजिक वस्तु तथा मेरिट वस्तु** (Classification of public Goods : Social Goods and Merit Goods)

लोक वस्तुओं को अक्सर सामाजिक वस्तुओं तथा मेरिट वस्तुओं में विभाजित किया जाता है। इसे तालिका 1.2 में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका 1.2
वस्तुओं का विभाजन

उपभोग	वर्जन	
	सम्भव (Feasible)	सम्भव नहीं (Not Feasible)
प्रतिद्वन्द्वी (Rival)	1	2
प्रतिद्वन्द्वी नहीं (Non-rival)	3	4

इस तालिका में वस्तुओं को प्रतिद्वन्द्विता तथा वर्जन के आधार पर चार वर्गों में बांटा गया है। स्थिति 1 में स्पष्ट रूप से निजी वस्तुएं आती हैं क्योंकि यहां उपभोग में प्रतिद्वन्द्विता होने के साथ–साथ वर्जन भी लागू होता है। बाजार यन्त्र द्वारा इन वस्तुओं का प्रावधान केवल सम्भव ही नहीं बल्कि कुशल भी है। बाकी तीनों परिस्थितियों में बाजार यन्त्र का सही उपयोग सम्भव नहीं है। स्थिति 2 में बाजार यन्त्र के टूटने का कारण वर्जन का सम्भव नहीं होना है, जबकि स्थिति 3 में ऐसा प्रतिद्वन्द्विता की अनुपस्थिति के कारण होता है। स्थिति 4 में ये दोनों ही बातें मौजूद हैं। स्थिति 3 तथा 4 में सामाजिक वस्तुएं मिलती हैं जबकि 2 में मेरिट वस्तुएं। इस तरह के विभाजन के पीछे मसग्रेव की यह मान्यता रही है, कि सामाजिक वस्तुओं की आपूर्ति उपभोक्ता के अधिमान के अनुसार होती है। किन्तु आलोचक ऐसा कह सकते हैं, कि विशिष्ट वर्ग द्वारा उपभोक्ता पर कुछ अंश में अधिमान लादने की जरूरत है, क्योंकि यह वर्ग अधिक शिक्षित हो सकता है, या अधि बुद्धिमान हो सकता है या इसका सम्बन्ध किसी विशेष दल के साथ हो सकता है। यह भी कहा जा सकता है, कि सरकारी बजट के द्वारा निम्न लागत के मकान या बच्चों को दूध की आपूर्ति जैसी वस्तुओं को भी प्रदान किया जाता है यद्यपि इनके उपभोग में प्रतिद्वन्द्विता है तथा इसलिए इन पर वर्जन के सिद्धान्त को लागू किया जा सकता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि समाज उपभोक्ता के स्वतन्त्र अधिमान पर अपना अधिमान थोपता है। अतः राजकोषीय सिद्धान्त में थोपे गये चयन (Impose choice) के सिद्धान्त को भी शामिल किया जाना चाहिए। मसग्रेव का कहना है उसे मेरिट वस्तु के अन्तर्गत शामिल करना चाहिए।

इस प्रकार मेरिट वस्तु वह वस्तु है जिसका प्रावधान उस समय भी किया जाना चाहिए, जब लोग उसकी मांग नहीं भी करते हैं (Merit good is a commodity that ought to be provided even if people do not demand it.) इस वस्तु की अवधारणा का विकास मसग्रेव द्वारा ही हुआ है। ललित कला (Fine arts) के विकास के लिए सरकारी सहायता का आधार यही अवधारणा है। इसका प्रावधान सरकार द्वारा किया जाना चाहिए, यदि लोग इसकी लागत को वहन करने के लिए तैयार नहीं भी होते हैं, लेकिन बामोल तथा बामोल का कहना है कि मेरिट वस्तु शब्द सामाजिक मूल्यांकन (social valuation) को औपचारिक जामा पहनाता है कि ललित कला समाज के लिए उचित है और इसलिए इसे आर्थिक सहायता मिलनी चाहिए। मेरिट वस्तु सरकारी सहायता के लिए कोई वास्तविक औचित्य प्रस्तुत नहीं करती है।

सामाजिक वस्तुएं : उदाहरण द्वारा व्याख्या

मान लें कुछ व्यक्ति एक कमरे में बन्द हैं। यह भी मान लें कि इन व्यक्तियों द्वारा लिये गये निर्णय के प्रभाव केवल इन्हीं लोगों पर पड़ते हैं, किसी भी अन्य व्यक्ति पर नहीं। इस कमरे के निवासियों को प्रतिदिन एक निश्चित मात्रा में रोटी, भोजन के लिए तथा जलावन कमरे को गरम करने के लिए प्राप्त होते हैं। रोटी को निजी वस्तु माना जा सकता है क्योंकि इन्हें टुकड़ों में विभाजित कर उपभोक्ताओं के मध्य बांटा जा सकता है। सभी व्यक्तियों द्वारा उपभोग की गयी रोटियों का योग, उपभोग की गयी रोटियों की कुल मात्रा के बराबर होगा। अतः यदि किसी दिन एक व्यक्ति को अधिक रोटी दी गयी तो दूसरे के लिए कम ही उपलब्ध होगी। यह भी सम्भव है कि इस कमरे के निवासी अपने अधिमान के अनुसार रोटी का विभाजन करें।

लेकिन कमरे को जिस परिणाम में गरम किया जाता है उसका विभाजन व्यक्तियों के मध्य सम्भव नहीं। इस कमरे के सभी व्यक्ति एक ही परिमाण में गरमी का उपभोग करते हैं। इनके लिए अलग–अलग परिणाम में गरमी का उपभोग करना सम्भव नहीं है। इसी आधार पर सैम्युएलसन ने सामाजिक वस्तु की निम्न परिभाषा की है :

सामाजिक वस्तु वह है जिसका सन्तुलन की स्थिति में जितना उत्पादन होता है उतनी ही मात्रा में सभी उपभोक्ता मिलकर तथा अलग–अलग उपभोग करते हैं।

सामान्यतः सामाजिक वस्तु को लोक या सार्वजनिक वस्तु भी कहा जाता है। लोक वस्तु, जिसे कभी–कभी सामूहिक उपभोग वस्तु भी कहा जाता है, वह है जिसकी कुल लागत में उपभोक्ताओं की संख्या में वृद्धि होने पर भी वृद्धि नहीं होती है। शुद्ध लोक वस्तु की दो विशेषताएं हैं : प्रतिद्वन्द्विता की अनुपस्थिति तथा वर्जन का अभाव।

निजी एवं लोक वस्तुओं की प्रमुख विशेषताओं को निम्नांकित चार्ट में प्रस्तुत किया गया है :

निजी वस्तुएं	लोक वस्तुएं
1. निजी लागत एवं लाभ	1. बाह्य लागत एवं लाभ
2. उपभोग में प्रतिद्वन्द्विता	2. उपभोग में प्रतिद्वन्द्विता की अनुपस्थिति
3. ज्ञान (Knowledge) • भुगतान एवं लाभ साथ–साथ • लाभ स्पष्ट • भुगतान करने वाला तथा लाभ वाला अभिन्न	3. अज्ञान (Ignorance) • भुगतान एवं लाभ साथ–साथ नहीं • लाभ अस्पष्ट • भुगतान करने वाला तथा लाभ वाला अभिन्न नहीं

1.7 अधिकतम सामाजिक कल्याण का सिद्धान्त

अधिकतम सामाजिक कल्याण का सिद्धान्त (Principle of Maximum Social Advantage)

अधिकतम सामाजिक कल्याण का सिद्धान्त राजस्व का एक मूल सिद्धान्त रहा है। यह सिद्धान्त राजस्व के कल्याण दृष्टिकोण की ओर संकेत करता है। इस

सिद्धान्त के प्रमुख प्रतिपादक पीगू (A.C. Pigou) तथा डाल्टन रहे हैं। पीगू ने इस सिद्धान्त को ''अधिकतम सामूहिक कल्याण का सिद्धान्त (Principle of Maximum Aggregate welfare) कहा है जबकि डाल्टन ने इसे 'अधिकतम सामाजिक कल्याण का सिद्धान्त' कहा है। इस सिद्धान्त के अनुसार सरकार की वित्तीय क्रियाओं का उद्देश्य सामाजिक लाभ को अधिकतम करना होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, सरकार को अपनी आय–व्यय सम्बन्धी नीतियों इस प्रकार बनाना चाहिए, कि समाज के अधिक से अधिक नागरिकों को अधिक से अधिक लाभ हो।

सामाजिक लाभ एवं सामाजिक हानि (Social Advantage & Social Disadvantage) –

सरकार जनता से कर लगाकर आय प्राप्त करती है, और फिर इस धनराशि को सार्वजनिक व्यय के रूप में पुनः जनता को वापस दे देती हैं। इन सरकारी आय एवं व्यय की क्रियाओं के फलस्वरूप समाज को क्रमशः हानि और लाभ होते हैं। इस सामाजिक हानि से हमारा तात्पर्य समाज के नागरिकों को होने वाली कल्याण या उपयोगिता की हानि अथवा अनुपयोगिता से है। इसी प्रकार सामाजिक लाभ का तात्पर्य नागरिकों को मिलने वाले आर्थिक कल्याण व संतुष्टि अथवा उपयोगिता से होता है।

सीमान्त हानि एवं सीमान्त लाभ– (Marginal loss and Marginal Profit)–

साधारणतया सार्वजनिक आय से सामाजिक हानि तथा सार्वजनिक व्यय से सामाजिक लाभ होता है। यहॉ पर दो बातें उल्लेखनीय है :–

1. सार्वजनिक आय के हर अगली इकाई से होने वाली हानि अर्थात् सीमान्त हानि तथा अनुपयोगिता बढ़ती जाती है। कारण यह है, कि करारोपण में हर वृद्धि की वजह से व्यक्तियों के धन व क्रय शक्ति में कमी होती जाती है, जिससे कि बचे हुए धन की प्रत्येक इकाई की सीमान्त उपयोगिता उनके लिए बढ़ती जाती है।
2. सार्वजनिक व्यय की हर अगली इकाई के कारण लोगों को द्राव्यिक आय में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से वृद्धि होती जाती है, और इस लिए आय की सीमान्त उपयोगिता उनके लिए घटती जाती है।

सिद्धान्त की व्याख्या – (Expenditure should be pushed in all directions upto the point to which satisfaction obtained from the last shilling expended is equal to the satisfaction lost in respect of the last shilling called up on Government service)- -- Pigou

अधिकतम सामाजिक कल्याण के सिद्धान्त की व्याख्या निम्न शब्दों में किया जा सकता है – ''अधिकतम सामाजिक कल्याण के सिद्धान्त के अनुसार सरकार को आय'–व्यय उस सीमा तक करनी चाहिए, कि जहॉ पर सार्वजनिक आय से होने वाली सीमान्त अनुपयोगिता, सार्वजनिक व्यय से होने वाली सीमान्त उपयोगिता के समान हो जाय।''– पीगू

उपरोक्त सिद्धान्त को एक उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है–

तालिका (Table)

इकाई	कर की प्रत्येक इकाई से उत्पन्न त्याग	सार्वजनिक व्यय की प्रत्येक इकाई से उत्पन्न उपयोगिता
1	60	160
2	70	120

3	80	110
4	100	100
5	110	80
6	120	60

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि जैसे–जैसे कर की इकाई बढ़ायी जाती है, वैसे कर की हरेक अतिरिक्त इकाई का समाज पर अधिक भार पड़ता है अर्थात् सीमान्त लाभ क्रमशः बढ़ता जाता है। दूसरी ओर सार्जनिक व्यय की हर अगली इकाई से मिलने वाली उपयोगिता पहले की अपेक्षा कम होती जाती है ऐसी स्थिति में चौथी इकाई पर सीमान्त सामाजिक त्याग और सीमान्त सामाजिक उपयोगिता समानता के बिन्दु पर आ जाते हैं, यही अधिकतम सामाजिक कल्याण का बिन्दु है।

चित्र द्वारा स्पष्टीकरण– अधिकतम सामाजिक कल्याण के सिद्धान्त को चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

चित्र में Ox अक्ष पर सार्वजनिक आय और सार्वजनिक व्यय की इकाईयॉ दिखायी गयी है तथा Oy अक्ष पर उपयोगिता तथा अनुपयोगिता की इकाईयॉ।

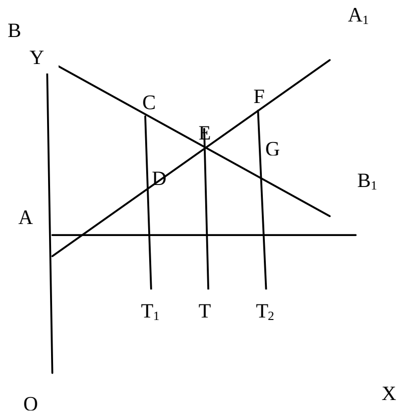

AA_1 रेखा सरकारी आय की विभिन्न इकाईयों के फलस्वरूप होने वाली सीमान्त अनुपयोगिता प्रदर्शित करती है तथा BB_1 रेखा सार्वजनिक व्यय की विभिन्न इकाईयों से होने वाली सीमान्त उपयोगिता प्रदर्शित करती है। सार्वजनिक आय बढ़ने के साथ–साथ सीमान्त अनुपयोगिता बढ़ती जाती है। अतः AA_1 रेखा बायें से दायें ऊपर की ओर बढ़ रही है। सार्वजनिक व्यय के बढ़ने के साथ–साथ सीमान्त उपयोगिता घटती जाती है अतः रेखा BB_1 बायें से दायें नीचे की ओर गिर रही है। दोनों रेखायें एक–दूसरे को E बिन्दु पर काटती हैं। इस बिन्दु पर सीमान्त उपयोगिता और सीमान्त अनुपयोगिता बराबर है। अतः इस बिन्दु पर मिलने वाला लाभ अधिकतम होगा। इससे कम या इससे अधिक किया गया आय व्यय से सामाजिक कल्याण अधिकतम नहीं होगा।

OT बिन्दु पर शुद्ध लाभ BETO - AETO=BEA (अधिकतम लाभ दर्शाता है)

OT_1 बिन्दु पर शुद्ध लाभ $BCT_1O – ADT_1O=BCDA$ (यह BEA से कम है)

OT_2 बिन्दु पर शुद्ध लाभ $BGT_2O – AFT_2O$ =BEA- EFG

इस प्रकार OT बिन्दु पर ही अधिकतम सामाजिक कल्याण मिलता है।

अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धान्त की सीमाऍ अथवा व्यावहारिक कठिनाईयों (Limitations and Difficulties of Principle of Maximum Social Advantage)

सैद्धान्तिक दृष्टि से अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धान्त जितना समझा जाता है वह व्यवहार में उतना सरल नहीं है, डाल्टन के शब्दों में–

"........ its practical application is often very difficult." अर्थात् इसका व्यावहारिक उपयोग बहुत कठिन है। इस सिद्धान्त को व्यवहार में लागू करने में निम्न कठिनाई आती है –

1. **उपयोगिता व अनुपयोगिता का माप असम्भव**– अभी तक ऐसे मापक यन्त्र का निर्माण नहीं हुआ है जो व्यक्तियों को होने वाली उपयोगिता व अनुपयोगिता माप सके।
2. **अल्पकालीन व दीर्घकालीन दृष्टिकोण में अन्तर** – सार्वजनिक आय का प्रयोग अल्पकालीन परियोजनाओं के लिए ही नहीं होता है बल्कि दीर्घकालीन समस्याओं के समाधान हेतु भी होता है करों का भार वर्तमान समय के नागरिक वहन करते हैं जबकि भविष्य के नागरिक इससे लाभान्वित होंगे। इस प्रकार वर्तमान के त्याग व भविष्य के लाभ के आधार पर सामाजिक लाभ की कल्पना करना व्यावहारिक नहीं है।
3. युद्ध के समय ''सार्वजनिक व्यय का निर्धारण इस बात पर निर्भर करता है कि शत्रु देश कितना व्यय कर रहा है।
4. व्यवहार में बहुधा कर लगाने एवं व्यय करने में आर्थिक कारणों, आधारों व परिणामों के स्थान पर राजनैतिक कारणों, आधारों एवं परिणामों को अधिक महत्व दिया जाता है।

<u>सामाजिक कल्याण की कसौटियॉ (Test of Social Advantage)</u>

अधिकतम सामाजिक कल्याण की व्यावहारिक कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए डाल्टन ने सामाजिक कल्याण की कुछ कसौटियॉ बनाई हैं।

1. **<u>सुरक्षा व शान्ति –</u>** समाज को आन्तरिक उपद्रवों तथा बाहरी आक्रमणों से सुरक्षित रखने के लिए जो वित्तीय नीतियॉ बनाई जाती है, उनसे सामाजिक लाभ बढ़ता है।

2. **<u>उत्पादन सुधार</u>** –समाज के उत्पादन में सुधार करने वाली वित्तीय नीतियों समाज का कल्याण बढ़ाती है। उत्पादन में सुधार निम्न प्रकार से किया जा सकता है –

क. देश की उत्पादन शक्ति बढ़ाकर।

ख. उत्पादन की मात्रा में वृद्धि कर के।

ग. देश के आर्थिक साधनों का दुरूपयोग रोक कर जैसे बेकारी दूर करके या साधनों का पूर्ण उपयोग कर के।

घ. उत्पादन के आकार या स्वरूप (Composition) में समाज की आवश्यकतानुसार परिवर्तन करके।

3. **<u>आर्थिक वितरण में सुधार –</u>** आर्थिक असमानता को दूर करने वाली नीतियों भी सामाजिक कल्याण बढ़ाने वाली होती है। आर्थिक वितरण में निम्न प्रकार से सुधार किया जा सकता है –

क. धनी वर्ग पर अपेक्षाकृत अधिक कर लगाकर अथवा कम व्यय करके अर्थात् प्रगतिशील कर एवं व्यय की नीतियॉ अपना कर।

ख. व्यापार चक्रों को दूर करके एवं व्यय की नीतियॉ अपनाकर।

<u>महत्व</u> –

यद्यपि अधिकतम सामाजिक कल्याण के सिद्धान्त को व्यवहार में लागू करने में कठिनायॉ आती है फिर भी राजस्व में इसका बहुत महत्व हैः–

1. यह सिद्धान्त इतना तो स्पष्ट ही कर देता है कि सरकारी क्रियाओं का एकमात्र उद्देश्य अधिकतम सामाजिक कल्याण ही होना चाहिए। (उपयोगिता व अनुपयोगिता का मापन यद्यपि असम्भव है)
2. इस सिद्धान्त को सहायता से राजस्व में प्रचलित कुछ विचारों को असत्य सिद्ध किया जा सकता है उदाहरण के लिए एक विचार के अनुसार ''सब का बुरा होता है'' "All Taxation is bad" जे0बी0से0 के अनुसार ''कम से कम व्यय करना तथा कम से कम कर लगाना सर्वोत्तम होता है'' ग्लैडस्टोन (Gladstone) के अनुसार ''द्रव्य को व्यक्तियों के जेबों में फलने–फूलने के लिए छोड़ देना चाहिए।'' इसी प्रकार एक और विचार के अनुसार ''सारा सार्वजनिक व्यय अच्छा होता है।'' (All public expediture is good)

   परन्तु अधिकतम सामाजिक कल्याण के सिद्धान्त के अनुसार न तो सभी कर अच्छे होते हैं और न ही खराब। वास्तव में एक सीमा तक सरकार द्वारा कर लगाने व व्यय करने से सामाजिक कल्याण बढ़ता है।
3. इसी प्रकार सार्वजनिक व्यय करते समय, कुछ अन्य आपत्तिजनक तरीका का उपयोग किया जाता है। जैसे पहले बजट का विचार (Budget first approach) या आवश्यकता का विचार (requirement approach) यह सिद्धान्त इन दोनों ही विचारों का खण्डन करता है क्योंकि हमें यह देखना चाहिए कि किसी कार्य को करने में क्या सीमान्त लागत और लाभ होगा। जहॉ पर सीमान्त लाभ सीमान्त लागत के समान हो जाय, वहॉ तक व्यय करना चाहिए।
4. कुछ दशाओं मे, जहॉ सार्वजनिक व्यय से होने वाली लागत और हानि दृष्टिगोचर तथा मुद्रा रूप में मापने योग्य होते हैं, जैसे बाढ़–नियंत्रण, विद्युत शक्ति उत्पादन, सिंचाई, जल यातायात आदि योजनाएँ। इन योजनाओ से क्या सामाजिक लाभ होगा तथा क्या सामाजिक हानि होगी, को मौद्रिक रूप में ज्ञात करना सम्भव होता है। तद्नुसार जहॉ सीमान्त सामाजिक लाभ एवं हानि समान हो, वहॉ तक ही व्यय करना चाहिए।

<u>निष्कर्ष</u> –

डाल्टन ''हम बार बार अधिकतम सामाजिक लाभ के सरल किन्तु व्यापक सिद्धान्त पर लौट आते हैं। किसी भी विचाराधीन वित्तीय प्रस्ताव के सब सम्भव परिणामों का, जिनका अनुमान किया जा सके, पूरा लेखा–जोखा करें तथा समाज को होने वाले सम्भावित लाभों और हानियों से तुलना करें। इस सन्तुलन की तुलना दूसरे वैकल्पिक प्रस्तावों के सन्तुलनों से करें और इन तुलनाओं के परिणाम पर अमल करें। जो लोग इन लेखे–जोखों से परेशान हो उठे हों, उन्हें प्राचीन यूनानियों की इस कहावत से सांत्वना प्राप्त करनी चाहिए कि सरल चीजें नहीं कठिन चीजें सुन्दर हुआ करती है और इनका कोई सस्ता ढंग है, भी नहीं।''

1.8 सारांश

राजस्व में हम सरकार द्वारा व्यय करने तथा इसके लिए धन जुटाने से सम्बन्धित उद्देश्यों, सिद्धान्तों, समस्याओं तथा परिणामों का अध्ययन करते हैं। राजस्व को पॉच भागों में बॉटकर इसका अध्ययन करते हैं प्रथम सार्वजनिक व्यय, द्वितीय सार्वजनिक आय, तृतीय सार्वजनिक ऋण, चतुर्थ वित्तीय प्रशासन और

पंचम राजकोषीय नीति। अपने कार्यो को पूरा करने के लिए सरकार जो धनराशि व्यय करती है उसे सार्वजनिक व्यय कहते हैं। सार्वजनिक व्यय की पूर्ति के लिए सरकार के द्वारा आय का संग्रह किया जाता है जिसे सार्वजनिक आय कहते हैं, सार्वजनिक व्यय की पूर्ति के लिए सरकार के द्वारा आय का संग्रह किया जाता है जिसे सार्वजनिक आय कहते हैं, सार्वजनिक आय का प्रमुख श्रोत कर हैं। जब सार्वजनिक आय की तुलना में सार्वजनिक व्यय अधिक होता है, तब इस सार्वजनिक व्यय की पूर्ति सार्वजनिक ऋण लेकर की जाती है, जिसे सार्वजनिक ऋण कहते हैं। राजस्व के अन्तर्गत आय प्राप्त करने व व्यय करने के प्रबन्ध को वित्तीय प्रशासन कहा जाता है। राजकोषीय नीति का अर्थ है, कि कुछ आर्थिक उद्देश्यों जैसे आर्थिक स्थायित्व व आर्थिक विकास की पूर्ति के लिए करारोपण, सार्वजनिक व्यय और सार्वजनिक ऋण का उपयोग करना। इस नीति के द्वारा अर्थव्यवस्था में आने वाले उतार–चढ़ावों को रोका जा सकता है। आर्थिक स्तर में समानता लाने, न्यायोचित वितरण–व्यवस्था बनाने, उत्पादन स्तर को बढ़ाने, एकाधिकारी व केन्द्रित अर्थ व्यवस्था में सुधार लाने के लिए राजकोषीय नीति का सहारा लिया जाता है। राजस्व के पॉचों विभागों का परस्पर सह–सम्बन्ध है। इसका अलग से कोई अस्तित्व नहीं है, ये विभाग एक–दूसरे के पूरक हैं। इन विभागों के सामंजस्य से अधिकतम सामाजिक लाभ प्राप्त हो सकता है।

1.9 शब्दावली

सार्वजनिक व्यय – अपने कार्यों को पूरा करने के लिए सरकार जो धनराशि व्यय करती है, उसे सार्वजनिक व्यय कहते हैं।

सार्वजनिक आय – सार्वजनिक व्यय की पूर्ति के लिए सरकार के द्वारा आय का संग्रह किया जाता है जिसे सार्वजनिक आय कहते हैं, सार्वजनिक आय का प्रमुख श्रोत कर है।

सार्वजनिक ऋण – जब सार्वजनिक आय की तुलना में सार्वजनिक व्यय अधिक होता है तथा इस सार्वजनिक व्यय की पूर्ति सार्वजनिक ऋण लेकर की जाती है, जिसे सार्वजनिक ऋण कहते हैं।

वित्तीय प्रशासन – राजस्व के अन्तर्गत आय प्राप्त करने व व्यय करने के प्रबन्ध को वित्तीय प्रशासन कहा जाता है।

राजकोषीय नीति – राजकोषीय नीति के द्वारा अर्थ–व्यवस्था में आने वाले उतार–चढ़ावों को रोका जा सकता है।

कर – कर व्यक्तियों द्वारा दिया जाने वाला वह अनिवार्य भुगतान है जो सरकार बिना किसी फायदे के सार्वजनिक हित में व्यय करती है।

कराघात, कर विवर्तन व करापात – प्रत्येक कर का एक भार होता है। सरकार जब कर लगाती है तो उसका वास्तविक भार जिस व्यक्ति पर पड़ता है उसे कराघात कहते हैं। कर के भार के कारण प्रत्येक करदाता जिस पर कर लगाया जाता है, वह चाहता है कि यह दूसरे व्यक्ति पर टाल दिया जाए, यह टालने की प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक कि इसे ओर टालना सम्भव नहीं होता, उस दशा में जिस व्यक्ति पर इसका अधिक भार पड़ता है उस पर कर का करापात हुआ माना जाता है।

कर देय क्षमता – कर देय क्षमता से तात्पर्य लोगों की आर्थिक समृद्धि या उनके जीवन–स्तर से लगाया जाता है। जिस व्यक्ति की आर्थिक समृद्धि अधिक होगी,

उसकी कर देने की योग्यता अधिक होगी। यदि आर्थिक समृद्धि कम हुई तो कर देय क्षमता भी कम होगी।

1.10 बोध प्रश्न

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए –

1. अपने कार्यों को पूरा करने के लिए सरकार जो धनराशि व्यय करती है उसे .... कहते हैं।
2. सार्वजनिक आय का प्रमुख श्रोत .... है।
3. जब सार्वजनिक आय की तुलना में सार्वजनिक व्यय अधिक होता है तब इस सार्वजनिक व्यय की पूर्ति .... लेकर की जाती है।
4. राजस्व के अन्तर्गत आय प्राप्त करने व व्यय करने के प्रबन्ध को .... कहा जाता है।
5. .... के द्वारा अर्थ व्यवस्था में आने वाले उतार–चढ़ावों को रोका जा सकता है।
6. राजस्व को .... भी कहते हैं।
7. अधिकतम, सामाजिक कल्याण के सिद्धान्त के प्रमुख प्रतिपादक .... रहे हैं।
8. सार्वजनिक आय की हर अगली इकाई से होने वाली सीमान्त हानि .... जाती है।
9. सार्वजनिक व्यय की हर अगली इकाई के कारण लोगों की द्राव्यिक आय में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से .... होती जाती है।
10. सीमान्त सामाजिक त्याग और सीमान्त सामाजिक उपयोगिता जहाॅ समानता के बिन्दु पर आ जाते हैं यही .... है।

1.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. सार्वजनिक व्यय
2. कर
3. सार्वजनिक ऋण
4. वित्तीय प्रशासन
5. राजकोषीय नीति
6. लोक वित्त
7. पीगू व डाल्टन
8. बढ़ती
9. वृद्धि
10. अधिकतम सामाजिक कल्याण का बिन्दु

1.12 स्वपरख प्रश्न

1. राजस्व की परिभाषा दीजिए तथा उसके क्षेत्र का वर्णन कीजिए।
   Define Public Finance and describe its scope.
2. राजस्व से क्या तात्पर्य है? क्या यह विज्ञान है अथवा कला या दोनों?
   What is Public Finance? Is it Science or Art or both?
3. कार्यात्मक वित क्या है? परम्परागत वित से यह किस प्रकार भिन्न है?

What is Functional Finance? How does it differ from Traditional Finance.

4. कार्यात्मक वित्त तथा कार्यशील वित्त में अंतर स्पष्ट कीजिये। आर्थिक विकास के संदर्भ में कार्यशील वित्त की उपयोगिता बताइये।

Distinguish between Functional Finance and Activating Finance. Examine the utility of activating finance in the context of economic development.

5. राजस्व के विकास पर एक टिप्पणी लिखिये।

Write a note on 'Development of Public Finance'

6. ''राजकीय वित्त तथा व्यक्तिगत वित्त के बीच आय तथा व्यय दोनों ही तरफ भेद है।' इस कथन की विवेचना कीजिये।

Government finance and individual finance have differences on both income and expenditure sides." Discuss this statement.

7. व्यक्तिगत व सार्वजनिक वित्त में अन्तर बताइये।

Distinguish between Private and Public Finance.

8. ''जबकि एक व्यक्ति अपने व्यय का अपनी आय के साथ समायोजन करता है एक सार्वजनकि संस्था अपनी आय का व्यय के साथ समायोजन करती है।'' इस कथन की व्याख्या कीजिये,

While an individual adjusts expenditure to income, a public authority adjusts income to expenditure." Discuss this statement.

9. राजस्व के निम्नलिखित विज्ञानों के साथ सम्बन्ध की व्याख्या कीजिये। (अ) अर्थशास्त्र, (ब) राजनीति विज्ञान, (स) समाज शास्त्र एवं (द) इतिहास।

Discuss the relationship of Public Finance with the following science:- (a) Economics, (b) Political Science, (c) Sociology (d) History.

10. महत्तम सामाजिक कल्याण के सिद्धान्त की विवेचना कीजिये तथा उसकी व्यवहारिक कठिनाइयां बताइये। इस सिद्धान्त को लागू करने के लिए सामाजिक लाभ की कौन सी कसौटियां बताई गई हैं?

Discuss the principle of Maximum social Advantage and point out its practical difficulties. What test of social advantage have been suggested to apply this principle?

11. 'अधिकतम सामाजिक लाभ' के सिद्धान्त को समझाइये तथा इसका महत्व बताइये।

Explain the principle of maximum social advantage and point out its importance.

12. ''राजस्व की सर्वोत्तम पद्धति वही है जिसकी क्रियाओं से अधिकतम सामाजिक कल्याण की प्राप्ति होती है।'' विवेचना कीजिये।

"The best system of public finance is that which secures the maximum social advantage from the operations which it conducts." Discuss.

1.13 सन्दर्भ पुस्तकें

1.	राजस्व	:	डॉ0 जे0सी0 वार्ष्णेय
2.	लोकवित्त	:	डॉ0 एस0 के0 सिंह
3.	राजस्व	:	डॉ0 आर0एस0 कौशिक
4.	राजस्व सिद्धान्त		

	एवं व्यवहार	:	के0 एल0 माहेश्वरी
5.	Delton, H	:	Principles of Public Finance
6.	Public Finance Theory and Practice	:	Mehta and Agrawal
7.	Shirras, Findley	:	The Science of Public Finance
8.	Hicks, Ursula :		Public Finance
9.	A.C. Pigou	:	A Study of Public Finance
10.	Taylor P.E.	:	Economics of Public Finance
11.	Raja J Chhelliah	:	Fiscal Policy in under developed Countries.

इकाई 2 सार्वजनिक व्यय (अर्थ, महत्व, सिद्धान्त व प्रभाव) Public Expenditure (Meaning, Importance, Canons/Theories and Effects)

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 सार्वजनिक व्यय
2.2.1 आशय
2.2.2 निजी व्यय तथा सार्वजनिक व्यय में अन्तर
2.2.3 बैगनर का नियम
2.2.4 सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के कारण
2.2.5 सार्वजनिक व्यय का महत्व
2.3 सार्वजनिक व्यय के वर्गीकरण
2.4 सार्वजनिक व्यय के सिद्धान्त
2.5 सार्वजनिक व्यय के प्रभाव
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 बोध प्रश्न
2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.10 स्वपरख प्रश्न
2.11 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- सार्वजनिक व्यय का अर्थ बता सके ।
- सार्वजनिक व्यय के महत्व को बता सके ।
- सार्वजनिक व्यय के सिद्धान्त समझ सके ।
- सार्वजनिक व्यय के प्रभाव की व्याख्या कर सके।

2.1 प्रस्तावना

सार्वजनिक व्यय से तात्पर्य सरकार द्वारा किया गया व्यय है। सार्वजनिक व्यय केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारों व स्थानीय सरकारों द्वारा किया जाता है। आधुनिक युग में राज्य का स्वरूप कल्याणकारी होता है। अतः सरकारें विशाल कार्यो एवं विस्तृत उत्तरदायित्वों पर भारी मात्रा में व्यय करती है।

2.2 सार्वजनिक व्यय

2.2.1 सार्वजनिक व्ययः आशय

अपने कार्यो को पूरा करने के लिये सरकार जो धन–राशि व्यय करती है उसे सार्वजनिक व्यय कहते है। आधुनिक युग में सरकारें बहुत अधिक मात्रा में तथा अनेकों विषयों पर व्यय करती है। अतः सार्वजनिक व्यय राजस्व का एक प्रमुख विभाग है।

इस विभाग के अन्तर्गत जिन बातों का अध्ययन किया जाता है उनमें से प्रमुख निम्न है :–

1. किन किन मदों पर सरकारी व्यय होना चाहिए और किन पर नहीं अर्थात् सार्वजनिक व्यय का क्षेत्र ;
2. सार्वजनिक व्यय कितने प्रकार के होते है अर्थात् सार्वजनिक व्यय का वर्गीकरण ;
3. सार्वजनिक व्यय करने में किन–किन बातों का ध्यान रखना चाहिये अर्थात् सावजनिक व्यय के सिद्धान्त;
4. सार्वजनिक व्यय का देश के उत्पादन तथा आर्थिक वितरण पर क्या प्रभाव पड़ता है अर्थात् सार्वजनिक व्यय के प्रभाव।

2.2.2 निजी व्यय तथा सार्वजनिक व्यय में अन्तर

यद्यपि निजी व्यय एवं सार्वजनिक व्यय, दोनों में ही आय तथा व्यय के बीच सामजस्य स्थापित किया जाता है, तथापि इन दोनो में कुछ उल्लेखनीय अन्तर हैः–

1. **आय–व्यय का समायोजन**

   निजी व्यय आय के अनुसार किया जाता है। इस प्रकार हरेक व्यक्ति पहले अपनी आय का अनुमान करता है तथा उसके आधार पर व्यय की योजना बनाता है। परन्तु सार्वजनिक व्यय में पहले व्यय का अनुमान लगाया जाता है और तत्पश्चात उस व्यय की पूर्ति के लिये साधनों की खोज की जाती है

2. **उद्देश्य**

   निजी व्यय का उद्देश्य प्रायः निजी लाभ व व्यक्तिगत कल्याण होता है। हरेक व्यक्ति सर्वदा ऐसे मदों पर व्यय करता है, जिससे उसे स्वयं अथवा उसके परिवार के सदस्यों को लाभ प्राप्त हो। परन्तु सार्वजनिक व्यय समाज के हित की दृष्टि से किया जाता है, निजी उद्देश्यो से प्रेरित होकर नहीं। इस प्रकार सार्वजनिक व्यय का उद्देश्य सामाजिक कल्याण होता है।

3. **व्यय का क्षेत्र**

   निजी व्यय का क्षेत्र सीमित होता है, क्योकि व्यक्ति की कियायें सीमित होती है। दूसरी ओर, सार्वजनिक व्यय का क्षेत्र विस्तृत होता है क्योकि सरकार का कार्यक्षेत्र काफी विस्तृत है।

4. **नियंत्रण**

   निजी व्यय पर प्रायः व्यक्ति का अपना ही नियन्त्रण रहता है। परन्तु सार्वजनिक व्यय पर संसद तथा महा लेखा परीक्षक एवं नियन्त्रक का पूर्ण होता है।

5. **प्रभाव**

   निजी व्यय यदि सावधानी के साथ नहीं किया गया, तो उसका प्रभाव व्यक्ति विशेष पर पड़ता है, लेकिन सार्वजनिक व्यय का प्रभाव सारे समाज तथा देश के आर्थिक जीवन पर पड़ता है, क्योकि शासन को हानि की पूर्ति के लिये नये कर लगाने पड़तें है जिनका भार जनता पर पड़ता है।

2.2.3 बैगनर का नियम

जर्मन अर्थशास्त्री बैगनर ने तो इस सम्बन्ध मे एक नियम का प्रतिपादन किया है जिसे राज्य कियाओ में वृद्दि का नियम करते है इस नियम के अनुसार राज्य की कियाओ में स्वतः उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली जाती है। उन्नतिशील समाज में राज्यों के कार्यो में नियमित रूप से वृद्धि होती है। यह वृद्धि विस्तृत तथा गहरी दोनो प्रकार की होती है– एक तो सरकार निरन्तर नये कार्य करने लगती है और दूसरे वह पुराने तथा नये कार्यो को अधिक कुशलता पूर्वक और पूरी तौर पर करती है।

बैगनर का नियम लागू होने के तीन प्रमुख कारण है आधुनिक प्रगतियों के कारण सार्वजनिक सत्ताओं की कार्यकुशलता निजी संस्थाओं की अपेक्षा अधिक हो गई है। इसलिये अब अधिकांश लोग यह चाहने लगे है, कि अधिकाधिक कार्य सरकारों द्वारा ही किए जॉय। आधुनिक प्रगतियों के कारण कुछ क्षेत्रों में अब यह लगभग आवश्यक हो गया है कि राज्य उन कार्यो को स्वयं सम्पन्न करें, जो निजी व्यवसाय द्वारा नहीं किये जा सकते है। जब कि व्यक्तिगत व्यय द्वारा व्यक्तिगत वस्तुओं और सेवाओं का उपयोग ही सम्भव होता हैं, सार्वजनिक व्यय द्वारा ऐसी सेवायें, प्रस्तुत की जाती है जिनका उपयोग सम्पूर्ण समाज कर सकता है, जैसे सड़कें, पार्क आदि।

बैगनर के व्यय सिद्धांत की आलोचना यह की गई है कि वह यह मानकर चलता है कि व्यय में वृद्धि अनिवार्यतः हो जायेगी, यह विचार विभिन्न देशों में व्यय के ऐतिहासिक विश्लेषण के आधार पर भले ही सही हो, परन्तु इसमें सैद्धान्तिक सत्य का अभाव है क्योंकि ऐसा भी हो सकता है कि भविष्य में सरकार के कार्य सीमित हो जाय। ब्यूहलर ने इस बात में संदेह प्रकट किया है, कि सरकार सदा ही अपने कार्य अधिक से अधिक कुशलतापूर्वक करती रहेगी।

2.2.4 सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के कारण

आधुनिक काल में संसार के लगभग प्रत्येक देश के सार्वजनिक व्यय में आश्चर्य–जनक वृद्वि हुई है। सार्वजनिक व्यय में इस वृद्वि का कारण यह है कि राज्यों के कार्यो में विस्तृत एवं गहन दोनों ही प्रकार की वृद्वि हुई है। विस्तृत वृद्वि से तात्पर्य यह है कि राजकीय कार्यो की संख्या पहले से अधिक हो गई है और कई गुना बढ़ गई है। गहन वृद्वि से अर्थ यह है कि पहले जो कार्य राज्य के मौलिक कार्य समझे जाते थे, उन्हें पहले की अपेक्षा अब अधिक व्यय की आवश्यकता अनुभव होने लगी है, फलस्वरूप यह कार्य गत वर्षो में बहुत खर्चीले हो गए हैं जैसे पहले की अपेक्षा अब युद्व तथा सैनिक व्यवस्था पर अधिक व्यय होने लगा है, अधिक ट्राफिक के कारण अब चौड़ी और मजबूत सड़क बनायी जाती है, आदि।

सरकारी व्यय के विस्तार का एक प्रमुख कारण जनसंख्या का बढ़ना है। देश की जनसंख्या के बढ़ने के साथ–साथ सरकार के कार्यो तथा उत्तरदायित्वों में वृद्वि होना भी स्वाभाविक है। सरकार को बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये और अधिक शिक्षा, चिकित्सा, नागरिक सुविधा, कृषि व औद्योगिक विकास तथा रोजगार की व्यवस्था का भार उठाना पड़ता है। आन्तरिक शान्ति के लिये पुलिस तथा न्याय–व्यवस्था का भी विस्तार करना होता है। बढ़ती हुई जनसंख्या विभिन्न प्रकार की सामाजिक व आर्थिक समस्याओं को भी जन्म देती है, जैसे अपराध, गरीबी ट्रैफिक की भीड़–भाड़ जिन्हे हल करने के लिए सरकार को भारी मात्रा में व्यय करना पड़ता है। इस प्रकार जनसंख्या में वृद्वि के कारण सार्वजनिक व्यय काफी बढा़ है।

विभिन्न देशों में, प्रमुखतः अर्धविकसित देशों में आर्थिक विकास के लिए वहॉ की सरकारें आर्थिक साधनों का नियोजन करने लगी हैं जिससे कि उनका कार्यक्षेत्र वढ़ गया है और फलस्वरूप सार्वजनिक व्यय भी।

आधुनिक काल में राज्यो के व्यय में भारी वृद्वि का एक महत्वपूर्ण कारण युद्ध तथा उससे बचाव पर होने वाला व्यय रहा है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही संसार में या तो कहीं न कहीं युद्ध चलता रहा है और या फिर शीतयुद्ध की स्थिति बनी रही है। पहले तथा दूसरे महायुद्ध काल में तो विभिन्न देशों ने बहुत अधिक धन–राशि युद्ध की मद पर व्यय की थी। यद्यपि संसार अभी तीसरे विश्व युद्ध से बचा हुआ है पर शीतयुद्ध जारी है और संसार के अनेकों देश काफी मात्रा में सैनिक व्यय कर रहें है। संसार के दो शक्तिशाली देश रूस तथा अमरीका तो बहुमूल्य विनाशक अस्त्रों शस्त्रों के निर्माण पर तथा बड़ी–बड़ी सेनाओ के रखने पर बहुत भारी मात्रा में व्यय कर रहे है।

इसके अलावा संसार में सीमित पर भीषण युद्ध होते रहते हैं जैसे कोरियन युद्ध, भारत–चीन युद्ध, वीयतनाम युद्ध, भारत–पाक युद्ध आदि। इस कारण संसार के यह देश भी सैनिक तथा सामरिक व्यवस्था पर काफी व्यय करते है, ताकि उन पर परस्पर विरोधी देश आक्रमण न कर दें। विश्व संघ की भावना के फलस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओ की भी स्थापना हुई हैं और उनका विस्तार होता रहा है, जैसे संयुक्त राष्ट्रसंघ, विश्व स्वास्थ्य संघ आदि। ये संस्थायें प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रों के सार्वजनिक वित्त का कुछ भाग अवश्य ही व्यय करा देती है। उदाहरण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रस्तावों व सिफारिशों के फलस्वरूप श्रमिकों को विभिन्न प्रकार की सुविधा प्रदान करने में सरकारों के व्यय में अवश्य ही वृद्धि हुई है।

उपर्युक्त कारणों से विभिन्न देशों के सार्वजनिक व्यय में भारी वृद्धि हुई है। भविष्य में भी इन कारणों से सार्वजनिक व्यय में और अधिक वृद्धि होने की सम्भावना है।

2.1.5 सार्वजनक व्यय का महत्व

सार्वजनिक व्यय का राजस्व में उतना ही महत्व है, जितना कि उपभोग का अर्थशास्त्र में है। सार्वजनिक वित्त की सभी क्रियाएँ इसी के चारों ओर चक्कर लगाती हैं। पिछली शताब्दी के अन्त तक राजकीय व्यय को ओर बड़ी उदासीनता से देखा जाता था और अर्थशास्त्री सभी प्रकार के राजकीय व्यय को बुरा समझते थे। यह पिछले 75 वर्षो में ही सम्भव हो सका, कि व्यक्तियों ने राजकीय व्यय की वास्तविक महत्ता को समझने का प्रयास किया। प्राचीन समय में राज्य का मुख्य कार्य केवल पुलिस, न्याय एवं सुरक्षा आदि तक ही सीमित था, जिससे उसका अस्तित्व बना रहे। प्राचीन अंग्रेज लेखकों ने व्यय के सिद्धान्त के अध्ययन की आवश्यकता का अनुभव नहीं किया, क्योंकि सरकार के सिद्धान्त को जिसे वे मानते थे वे सरकारी कार्यो को स्थिर सीमा तक ही मानते थे। यह माना जाता रहा कि व्यक्ति सरकार की अपेक्षा अधिक कुशलता से धन व्यय कर सकता है। यह माना जाता था। कि ''व्यय का प्रत्येक भाग जो कि सामाजिक न्याय बनाये रखने एवं विदेशी आक्रमण से सुरक्षा के बाहर है, वह अपव्यय व अनुचित है तथा जनता पर बुरे दबाव के बराबर है।'' अतः सरकारी व्यय को अनावश्यक एवं अनुयोगी माना जाता था। रॉबर्ड पील का कथन था कि ''राज्य की तुलना में मुद्रा जनता के हाथों में अधिक फलदायी सिद्ध हो सकती है।'' सार्वजनिक व्यय का विरोध करते हुए ग्लेडस्टोन ने बहुत तीव्र वाला एवं खतरनाक बताया है। आधुनिक अर्थशास्त्री इस विचार से सहमत नहीं है। डाल्टन का मत है कि आधुनिक अर्थशास्त्री ऐसे गलत विचारों को ठीक करने में ढीले रहे हैं और इस प्रश्न को सिद्धान्त के आधार पर विवकेपूर्ण ढंग से रखने में समर्थ हुए है। सार्वजनिक व्यय का महत्व इस बात में निहित है कि इसका देश की अर्थ–व्यवस्था पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। सार्वजनिक व्यय समाज की प्रगति का सूचक होता है यदि वह देश से उत्पादन को बढ़ाने तथा वितरण में विषमताएँ कम करने के लिए किया जाता है। इस व्यय से आर्थिक जीवन को प्रभावित किया जा सकता है। सार्वजनिक व्यय अब देश में आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए उपकरण के रूप के प्रयोग किया जाता है–

1. शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, सस्ते मकानों की व्यवस्था तथा मनोरंजन पर किया गया व्यय व्यक्तियों की कार्यकुशलता में वृद्धि करता है।
2. सार्वजनिक व्यय अल्प आय वाले व्यक्तियों की बचत करने की योग्यता को बढ़ाता है क्योंकि यह व्यय उनकी वास्तविक आय में वृद्धि करता है।
3. पेन्शन, प्रोविडेण्ट फण्ड आदि के रूप में सरकारी व्यय व्यक्ति के जीवन में सुरक्षा लाते है।
4. सिचाई कृषि, उद्योग–धन्धों, विद्युत शक्ति, परिवहन के साधनों पर व्यय प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन में वृद्धि करता है।

5. प्रतिरक्षा पर व्यय अनुत्पादक होते हुए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह आक्रमण के भय को कम करता है, तथा राष्ट्र की सुरक्षा के लिए आवश्यक है।
6. निर्धन व्यक्तियों की भलाई के लिए किया गया व्यय देश में धन के वितरण में असमानताओं को कम करता है।
7. कीन्स ने सिद्व किया, कि सरकार अपने व्यय द्वारा देश में मन्दी तथा बेरोजगारी को रोक सकती है। उन्होने सुझाव दिया कि मन्दी की स्थिति को दूर करने के लिए सरकार द्वारा सार्वजनिक निर्माण कार्यो पर व्यय को बढ़ा देना चाहिए। व्यक्तिगत व्यय की कमी को सरकारी व्यय से पूरा करना चाहिए जिससे निवेश तथा उपभोग बढ़ सके। सरकारी व्यय एक प्रकार से नागरिकों की आय है। सरकारी व्यय बढ़ने से नागरिकों की आय बढ़ती है, तथा वस्तुओं की मॉग बढ़ती है जो मन्दी दूर करने के लिए आवश्यक है।
8. सार्वजनिक व्यय कम करके मुद्रास्फीति को रोका जा सकता है।
9. अल्प–विकसित देशों में सार्वजनिक व्यय से विकास की गति तेज की जा सकती है। शिक्षा, विद्युत शक्ति, परिवहन तथा संचार साधनों पर किया गया व्यय देश के आर्थिक विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है।

2.3 सार्वजनिक व्यय के वर्गीकरण

1. <u>सुरक्षात्मक, व्यावसायिक तथा विकासात्मक व्यय</u>

प्रो ऐडम्स ने सार्वजनिक व्यय को तीन वर्गो में बॉटा है– सुरक्षात्मक, **व्यापारिक तथा विकासात्मकः**

1. सुरक्षात्मक व्यय वह व्यय है जो देश के नागरिको की जान और माल की रक्षा हेतु किये जाते है जैसे पुलिस, सेना, न्यायालय, जेल आदि पर व्यय।
2. व्यापारिक व्यय, वह व्यय है जो देश में व्यापार और वाणिज्य की उन्नति के लिये किये जाते है, जैसे रेल, तार, डाक, यातायात आदि पर व्यय।
3. विकासात्मक व्यय, वह व्यय है जो देश के विकास के लिये और नागरिको के कल्याण के लिये किए जाते है, जैसे शिक्षा, मनोरंजन, सामाजिक बीमा सार्वजनिक निर्माण कार्य, आदि।

2. <u>वास्तविक तथा हस्तान्तरण व्यय</u>

यह वर्गीकरण पीगू ने किया है। जैसा डाल्टन ने बताया है, वास्तविक या पूर्ण व्यय का अर्थ यह है कि सरकार व्यय करने में उन वस्तुओ व सेवाओ का वास्तव में प्रयोग कर डालती है जो अन्यथा किसी और काम में प्रयुक्त हो सकती थी। इसके विपरीत हस्तान्तरण व्यय का अर्थ यह है कि वस्तुओं व सेवाओं को वास्तव में प्रयोग कर लेने के बजाय सरकार उन्हें एक व्यक्ति के अधिकार में हस्तान्तरित कर देती है।

उदाहरण – वास्तविक व्यय के उदाहरण शिक्षा, स्वास्थ्य, बॉध, पुल आदि पर व्यय है क्योंकि यहॉ सरकार व्यय के द्वारा वस्तु या सेवा खरीदती है और फिर उनका अपने कार्यो में उपयोग करती है।

हस्तान्तरण व्यय के उदाहरण ऋण पर ब्याज चुकाना, पेंशन आदि है क्योंकि इस व्यय के करने में सरकार कोई वस्तु या सेवा जिसका वह प्रयोग कर सके, नहीं खरीदतीं।

3. <u>अनिवार्य व्यय तथा ऐच्छिक व्यय</u>

यह वर्गीकरण मिल के द्वारा किया गया है। अनिवार्य व्यय ऐसा होता है जो सरकार को अनिवार्य रूप से करना होता है, जैसे पुराने वायदों या कानूनी प्रतिबन्धों के कारण कुछ व्यय

सरकार को अवश्य ही करने पड़ते है। ऐच्छिक व्यय वह होता है जिसका करना सरकार की इच्छा पर निर्भर होता है।

4. **प्राथमिक तथा गौण व्यय**

फिण्डले शिराज के अनुसार, प्राथमिक व्यय वह व्यय है कि जिसे सरकार ऐसे कार्यो पर करती है, जिनका करना सरकार को सरकार के नाते जरूरी होता है, जैसे सुरक्षा, कानून, न्याय, पुलिस, नागरिक प्रशासन, सार्वजनिक ऋण का भुगतान आदि पर व्यय। इस व्यय का महत्व प्रथम कोटि का होता है।

गौण व्यय वे हैं जिनका महत्व अपेक्षाकृत कम होता है, जैसे शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य,समाज कल्याण सम्बधी कार्य आदि।

वास्तव में यह वर्गीकरण अब असामयिक हो गया है, क्योंकि ऐसा व्यय जिसे पहले गौण समझा जाता था जैसे सामाजिक सेवाओं आदि पर व्यय, उसे ही अब महत्वपूर्ण माना जाने लगा है।

5. **अनुदान तथा कय–मूल्य**

डाल्टन ने सार्वजनिक व्यय को दो भागों में बांटा है : अनुदान और कय–मूल्य अनुदान उस सरकारी व्यय को कहते है जिसके बदले में सरकार को कोई सेवा या प्रतिकार नहीं मिलता। जैसे शिक्षा, चिकित्सा, सुरक्षा, न्याय, संरक्षण के रूप में सार्वजनिक व्यय।

कय–मूल्य वह व्यय है जिसके बदले में सरकार कोई वस्तु या सेवा प्राप्त करे, जैसे सरकार अपने कर्मचारियों को जो वेतन देती है वह क्रय–मूल्य कहलायेगा।

अनुदान दो प्रकार का हो सकता है : प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष अनुदान वह है जिसका सारा लाभ उसी व्यक्ति को होती है, जिसे सरकार से अनुदान की सारी राशि मिली हो, जैसे निर्धन व्यक्तियों को दी गई सरकारी सहायता।

अप्रत्यक्ष अनुदान वह है जिसका सारा लाभ उसी व्यक्ति को नहीं होता जिसे सरकार से अनुदान मिला हो बल्कि लाभ का कुछ या सारा भाग किसी अन्य व्यक्ति को मिलता है, जैसे उद्योगपतियों को मिलने वाली सरकारी सहायता अप्रत्यक्ष अनुदान होगी, यदि उसका एक भाग मजदूरों को अधिक मजदूरी के रूप में और उपभोक्ताओं को कम मूल्य के रूप में मिले।

आलोचना : इस वर्गीकरण का दोष यह है कि अनुदान और कय–मूल्य का अन्तर कहीं–कहीं पर अस्पष्ट हो जाता है। स्वयं डाल्टन ने ऐसी परिस्थिति का उल्लेख किया है जबकि कोई व्यय अनुदान और कय–मूल्य दोनों की ही श्रेणी में सम्मिलित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि सरकार निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने के लिये अथवा पीड़ितों के लिए व्यय करती है, तो विद्यार्थियों या पीड़ितों के दृष्टिकोण से यह व्यय अनुदान होगा क्योकि सरकार को इन लोगों से बदले में कोई सेवा या वस्तु नहीं मिलेंगी परन्तु शिक्षक तथा अन्य सरकारी कर्मचारियों के दृष्टिकोण से जिन्हें सरकार ने शिक्षा व सहायता कार्य के लिये नौकर रखा है और वेतन दिया है, यह व्यय मूल्य होगा क्योकि बदले में सरकार को इनकी सेवायें प्राप्त होगी।

6. **उत्पादक तथा अनुत्पादक सार्वजनिक व्यय**

डाल्टन के अनुसार, किसी व्यय की उत्पादकता की एकमात्र आर्थिक कसौटी उसके द्वारा उत्पन्न आर्थिक कल्याण है। लुटज के अनुसार यदि किसी किया के फलस्वरूप उपयोगिता का सृजन होता है अथवा ऐसी वस्तु होती है, जिससे आवश्यकता की सन्तुष्टि हो जाय, तो ऐसी किया को उत्पादक कहेंगें। इस प्रकार डाल्टन के अनुसार उत्पादकता की कसौटी आर्थिक कल्याण की उत्पत्ति तथा लुटज के अनुसार उपयोगिता का सृजन है। इन विचारों को ध्यान में रखते हुये उत्पादक तथा अनुत्पादक व्यय की निम्न परिभाषायें दी जा सकती है।

वह व्यय, जिससे प्रत्यक्ष रूप में उपभोग योग्य वस्तुओ व सेवाओं का उत्पादन होता है उत्पादक व्यय कहलाता है, वह व्यय जिससे आर्थिक कल्याण की प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से उत्पत्ति नही होती, अनुत्पादक व्यय कहलाता है।

उदाहरणार्थ उद्योगों व्यवसायो, सड़कों, शिक्षा, चिकित्सा स्वास्थ्य आदि पर किया गया व्यय उत्पादक व्यय कहलायेगा परन्तु किसी कार्य पर अनावश्यक किया गया व्यय या धन का अपव्यय अनुत्पादक व्यय कहलायेगा। इसी प्रकार, युद्ध पर व्यय तथा सुरक्षा व्यय भी अनुत्पादक होता है। अनुत्पादक व्यय के दो परिणाम उल्लेखनीय है। 1– मूल्यों में वृद्धि, तथा 2– सामाजिक कल्याण में कमी।

उत्पादक व्यय को भी दो भागों में बॅाटा जा सकता है–

1. पुनरूत्पादक व्यय
2. अपुनरूत्पादक व्यय

वह सार्वजनिक व्यय जिससे सरकार को प्रत्यक्ष मौद्रिक आय मिले पुनरूत्पादक व्यय कहलायेगा, जैसे सरकारी उद्योगों की स्थापना पर व्यय क्योकि सरकार को इससे प्रत्यक्ष आय प्राप्त होती है।

वह व्यय जिससे अप्रत्यक्ष लाभ ही हो, सरकार को कोई प्रत्यक्ष मौद्रिक आय न हो, पुनरूत्पादक व्यय कहलायेगा, जैसे शिक्षा, चिकित्सा, स्वास्थ्य आदि पर व्यय जिससे समाज को तो लाभ होता है परन्तु सरकार को कोई प्रत्यक्ष मौद्रिक आय नहीं। बहुत सा उत्पादक सार्वजनिक व्यय इसी प्रकार का होता है।

7. **केन्द्रीय व्यय, राज्य व्यय तथा स्थानीय व्यय**

इस वर्गीकरण का आधार प्रशासन की इकाई है।

केन्द्रीय व्यय से अर्थ उस व्यय से है, जो देश की केन्द्रीय सरकार द्वारा किया जाता है। जैसे भारत सरकार द्वारा सुरक्षा पर किया गया व्यय। इसे संघीय व्यय भी कहा जाता है।

राज्य व्यय वह है जो देश की राज्य सरकार द्वारा किया जाता है, जैसे पुलिस शिक्षा आदि पर राज्य सरकारों द्वारा किया गया व्यय। इसे प्रान्तीय व्यय भी कहा जा सकता है।

स्थानीय व्यय वह है जो स्थानीय सरकारों द्वारा किया जाता है जैस कार्पोरेशन, नगर–पालिका, जिला परिषद व ग्राम पंचायतों द्वारा व्यय।

8. **अपरिवर्ती और परिवर्ती व्यय**

जे0 के0 मेहता के अनुसार सार्वजनिक व्यय दो प्रकार के हो सकते हैः अपरिवर्ती व्यय अथवा परिवर्ती व्यय।

अपरिवर्ती व्यय वह व्यय है जिसकी लागत जनता द्वारा प्रयोग के बढ़ जाने से भी नही बढ़ती जैसे– सुरक्षा व्यय, हवाई अड्डों पर व्यय आदि।

परिवर्ती व्यय वह है जो उपयोग बढ़ाने के साथ–साथ बढ़तें है और उपयोग घटाने के साथ–साथ घटते है, जैसे– डाक–सेवाओं, शिक्षा आदि पर व्यय।

9. **विकास व्यय तथा गैर–विकास व्यय**

सार्वजनिक व्यय को बहुधा विकास व्यय एवं गैर–विकास व्यय के वर्गों में बॅाटा जाता है। जैसे भारत में केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों द्वारा व्यय को।

विकास व्यय वह है जो देश के सामाजिक एवं आर्थिक विकास हेतु किया जाता है। सामाजिक सेवाओं पर किये जाने वाले व्यय के उदाहरण है : शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, चिकित्सा, श्रमिकों की कल्याण योजनायें, ग्रामीण जल–पूर्ति, ग्रामीण रोजगार के कार्यक्रम, शिक्षित बेरोजगार हेतु कार्यक्रम, मलिन बस्तियों का सुधार, आदि पर व्यय। आर्थिक सेवाओं पर व्यय के उदाहरण है : बहुद्देशीय नदी घाटी योजनाये, सिचाई योजनाये, सार्वजनिक निर्माण कार्य, यातायात एवं सम्वादवाहन के साधन, औद्योगिक एवं कृषि विकास पर व्यय आदि।

गैर–विकास व्यय के अन्तर्गत अन्य विविध प्रकार के व्यय आते है जिनका देश के आर्थिक व सामाजिक विकास से सम्बन्ध नही होता जैसे सुरक्षा व्यय, ऋण सेवाये, प्रशासकीय सेवाओ पर व्यय, कर संग्रह पर व्यय, अकाल व बाढ़ सहायता पर व्यय, आदि।

निम्न चित्र विकास व्यय तथा गैर–विकास व्यय के वर्गीकरण को और स्पष्ट करता है :–

केन्द्रीय सरकार का व्यय

- विकास व्यय
  - सामाजिक सेवायें
  - आर्थिक सेवायें
- गैर विकास व्यय
  - सामान्य सेवायें
  - अन्य

10. चालू व्यय तथा पूँजी व्यय।

चालू व्यय वे हैं जिन्हें सरकार की चलती रहने वाली क्रियाओं के लिए हर वर्ष करना पड़ता है। पूँजी व्यय विशेष परियोजनाओं पर किया जाने वाला व्यय है, जो स्वभाव से विनियोजक अथवा अनावर्ती होता है, जैसे सार्वजनिक भवनों की निर्माण लागत व आर्थिक विकास की परियोजनाओं पर व्यय पूँजी व्यय के अन्तर्गत आता है।

11. योजना व्यय और गैर–योजना व्यय

सार्वजनिक व्यय का यह वर्गीकरण भारत में सरकारी बजटों में प्रयुक्त नहीं होता, बल्कि योजना आयोग द्वारा अपने प्रतिवेदनों में इसका प्रयोग किया जाता है।

भारत के योजना आयोग के अनुसार विभिन्न योजना परियोजनाओं पर किया जाने वाला व्यय योजना व्यय कहलाता है। इन योजना परियोजनाओं का सम्बन्ध कृषि, विद्युत, जल–पूर्ति, निर्माण, यातायात तथा सम्वादवाहन भूमि एवं निवास गृह, व्यापार, भंडार, होटल, बैंकिंग तथा बीमा, लोक प्रशासन तथा सुरक्षा से हो सकता है।

दूसरी ओर, विस्थापितों के पुनर्वास तथा उनके राहत पर व्यय, सीमा क्षेत्रों का विकास, पुलिस के आधुनिकीकरण पर व्यय गैर–योजना व्यय कहलाता है।

यह सुझाव दिया गया है, कि केन्द्रीय और राज्य सरकारों को चाहिए, कि वे अपने–अपने बजट में योजना व्यय तथा गैर–योजना व्यय भी दिखायें। यह इस लिये आवश्यक है कि धन की बड़ी राशि योजना में सम्मिलित स्कीमों पर व्यय की जाती है, और साथ ही, गैर–विकास स्कीमों पर भी की जाती है। अतः बजट प्रपत्रों में यह स्पष्ट होना चाहिए, कि कितनी धन–राशि योजना के अन्तर्गत प्रति वर्ष व्यय की गई है या की जाने वाली है। अनुमान समिति ने यह सुझाव दिया, कि एक अलग विवरण दिया जाना चाहिये, जिसमें योजना व्यय की समीक्षा की जाय, जिसमें विकास व्यय तथा गैर–विकास सम्बन्धी अनुमान दिखाये जायें और इस व्यय को राजस्व एवं पूँजी के विभागों में बॉटकर बजट में दिखाया जाय। कुछ राज्यों ने हाल के वर्षो में बजट प्रपत्रों में योजना व्यय तथा गैर–योजना व्यय अलग से दिखाने के प्रयत्न किए है।

2.4 सार्वजनिक व्यय के सिद्धान्त

1. फिण्डले शिराज के सिद्धान्त

प्रो0 फिण्डले शिराज ने अपनी पुस्तक **"The Science Of Public Finance"** में सार्वजनिक व्यय के चार सिद्धान्त बताये हैं :–

1. लाभ का सिद्धान्त
2. मितव्ययता का सिद्धान्त

3. स्वीकृति का सिद्धान्त
4. बचत का सिद्धान्त

1. **लाभ का सिद्धान्त**

अर्थ:

इस सिद्धान्त के अनुसार सरकारी व्यय की ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि अधिकतम सामाजिक लाभ व कल्याण हो अर्थात अधिक से अधिक व्यक्तियों को अधिक से अधिक लाभ हो।

व्यावहारिक नियमः

इस सिद्धान्त में सामाजिक कल्याण का मापन ठीक प्रकार से सम्भव नहीं। अतः इस सिद्धान्त का पालन करने के लिए निम्न नियम उपयोगी सिद्ध होते है :–

1. सार्वजनिक व्यय के निम्न प्रभाव होने चाहिए :–
1. विदेशी आक्रमण से रक्षा – लेकिन इस मद पर असीमित राशि नहीं व्यय की जा सकती ;
2. आंतरिक शांति तथा न्याय सुव्यवस्था ;
3. उत्पादन को प्रोत्साहन तथा उसमें वृद्धि ;
4. आर्थिक असमानताओं का कम होना।
2. सार्वजनिक व्यय पूरे समाज के हित में होना चाहिए – उससे होने वाला लाभ केवल किसी एक वर्ग क्षेत्र या व्यक्ति तक सीमित नहीं रहना चाहिए। यदि सार्वजनिक व्यय से निहित स्वार्थों की स्थापना होती है या उन्हे पोषण मिलता है तो ऐसा व्यय लाभ के सिद्धान्त के अनुकूल नहीं होगा।
3. सार्वजनिक व्यय किसी नीति द्वारा बाध्य होना चाहिए।

अपवाद – यद्यपि आमतौर से सार्वजनिक व्यय पूरे समाज के लाभ के लिए होना चाहिए लेकिन निम्न दशाओं में विशिष्ट व्यय विशेष व्यक्ति, वर्ग व क्षेत्र के लिए भी वांछनीय होगा।

1. जब कि व्यय की मात्रा बहुत थोड़ी हो;
2. जब कि वह व्यक्ति अथवा वर्ग न्यायालय द्वारा उस व्यय की मात्रा का अधिकार प्राप्त कर सकता हो;
3. जब व्यय किसी अधिकृत नीति के अनुसार हो;
4. जब व्यय किसी पिछड़ी जाति व क्षेत्र पर किया जाय;
5. जब व्यक्तियो का सरकार पुरस्कार व वृत्ति दे।

अल्पकाल में चाहे यह व्यय विशेष हित में मालूम हो, लेकिन दीर्घकाल में इनसे पूरे समाज को लाभ होता है और इस लिए इस विशिष्ट व्यय को जन हित में माना जायेगा।

2. **मितव्ययता का सिद्धान्त**

1. सार्वजनिक व्यय में अधिकतम मितव्ययता बर्तनी चाहिए अर्थात् राज्य को केवल उतना ही व्यय करना चाहिये जितना कि किसी उद्‌देश्य की पूर्ति के लिए बिल्कुल आवश्यक हो।

स्पष्टीकरण : इस सम्बन्ध में निम्न स्पष्टीकरण ध्यान देने योग्य हैः

1. मितव्ययता का अर्थ यह नहीं होता, कि व्यय किया ही न जाय। वास्तव में सरकार को व्यय सावधानीपूर्वक करना चाहिए न कि कृपणतापूर्वक। इस प्रकार मितव्ययता के अर्थ यह होंगे कि सरकार कुशलता के अभीष्ट स्तर के साथ साथ किसी अभीष्ट उद्‌देश्य को पूरा करते हुए कम से कम व्यय करे, कहीं यह न हो कि सरकार वॉछनीय तथा आवश्यक व्यय को ही न करे या उसमें कटौनी कर दे।

2. यद्यपि आमतौर से सरकारी व्यय लाभप्रद है तथापि वह हानिकारक भी हो सकता है। हानिकारक व्यय को रोकना भी मितव्ययता होगी।

2. मितव्ययता के सिद्धान्त का एक यह भी अर्थ होता है कि धन को सरकार इस प्रकार व्यय करे कि समाज की उत्पादन कुशलता व क्षमता में अधिकतम वृद्धि हो। इसके लिए यह आवश्यक है कि सार्वजनिक व्यय का लोगों की कार्य, बचत व विनियोग करने की योग्यता तथा इच्छा पर उचित प्रभाव पड़े और आर्थिक साधनों का दुरूपयोग न हो।

महत्व :

इस सिद्धान्त का महत्व निम्न तर्को पर आधारित है :–

1. सार्वजनिक व्यय की मात्रा बहुत अधिक होने के कारण अपव्यय की सम्भावना अधिक होती है।
2. सार्वजनिक व्यय स्वभाव से अव्यक्तिगत होता है अर्थात् जो धन सरकारी कर्मचारी व्यय करते है वह उनका अपना नहीं होता। अतः सार्वजनिक व्यय में लापरवाही आने की काफी सम्भावना होती है।
3. सार्वजनिक व्यय में इस बात की भी सम्भावना होती है कि सरकारी कर्मचारी अपने स्वार्थो की सिद्धि के लिए धन का दुरूपयोग करें।

इन कारणों से सार्वजनिक व्यय में मितव्ययता बर्तना बहुत आवश्यक है।

व्यावहारिक नियम :

इस सिद्धान्त का पालन करने में निम्न नियम उपयोगी सिद्ध होते हैः–

1. सरकारी कर्मचारी व्यय करने में उतनी सावधानी से काम लें जितनी कि वे अपने व्यक्तिगत व्यय करने में लेते है।
2. केवल आवश्यक मदों पर तथा अनिवार्य परिस्थितियों में व्यय हों।
3. सरकारी विभागों में सामग्री खरीदने के लिए टेण्डर मॅगाने चाहिए, भेजे गये माल का नमूने से मिलान करना चाहिए, निम्नतम मूल्य चुकाने चाहिए तथा भुगतान की रसीद लेनी चाहिए।
4. स्टोर्स में दिये गये माल का समुचित लेखा होना चाहिए।
5. सार्वजनिक लेखों के आडिट का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए।
6. संसद में विवेकपूर्ण बहस होनी चाहिए।

लाभ :

1. व्यय किये हुये धन से जनता को प्रत्यक्ष लाभ तुरन्त या निकट भविष्य में प्राप्त होता हुआ दिखाई देगा, जिससे कर देने से होने वाला असन्तोष कम होगा।
2. उचित व्यय प्रणाली से जनता में सरकार के प्रति विश्वास एवं सम्मान की भावना जागृत होती है, जिससे कि सरकार अधिक सीमा तक कर लगाने में समर्थ होती है।
3. उत्पादन शक्ति में उन्नति होने से समाज की करदान क्षमता बढ़ेगी और भविष्य में राज्य द्वारा अधिक आय प्राप्त होने की आशा रहेगी।
4. अपव्यय पर अंकुश रखने से कुल कर भार कम रहेगा।
5. उन दशाओं में जबकि सरकार को आवश्यकतानुसार कर से आय न मिलने पर घाटे का वित्त प्रबन्ध करना पड़ता है मितव्ययता के द्वारा घाटे की मात्रा घटाकर उससे होने वाली हानिकारक मूल्य–वृद्धि से भी बचा जा सकता है।

<u>3. स्वीकृति का सिद्धात</u>

अर्थ :

इस सिद्धान्त का अभिप्राय है कि किसी भी सार्वजनिक व्यय करने से पूर्व उसकी स्वीकृति उचित अधिकारियों से प्राप्त कर ली जाय। अस्वीकृत व्यय सरकार के किसी भी विभाग या कर्मचारियों को नहीं करने चाहिए। यही नहीं, जितनी राशि व्यय करने की स्वीकृति हो उससे अधिक भी नहीं व्यय करना चाहिए। साथ ही जिस कार्य, उद्देश्य, क्षेत्र के लिए व्यय करने की स्वीकृति मिली हो उसी के लिए ही व्यय करना चाहिए।स्वीकृति तीन प्रकार की होती हैः

1. वैधानिक स्वीकृति
2. प्रशासकीय स्वीकृति
3. तकनीकी स्वीकृति

1. <u>वैधानिक स्वीकृति</u>

जनतन्त्र की स्थापना और संसदीय प्रणाली के विकास के साथ यह आवश्यक हो गया, कि जब तक कि किसी व्यय की संसद द्वारा स्वीकृति न हो जाय, व्यय न किया जाय। इसलिये संसद तथा विधान सभाओं व परिषदों के सम्मुख सार्वजनिक आय–व्यय का बजट प्रस्तुत किया जाता है और इनकी स्वीकृति मिलने पर ही उसमें उल्लिखित व्यय किया जा सकता है। यदि किसी असाधारण व आकस्मिक व्यय के लिये वैधानिक स्वीकृति तत्काल न प्राप्त हो सके तो बाद में इस स्वीकृति का लेना आवश्यक होता है।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि विधान सभा व संसद द्वारा स्वीकृत सम्पूर्ण व्यय का करना किसी सरकार के लिये अनिवार्य नहीं है। वास्तव में संसदीय स्वीकृति के द्वारा व्यय की अधिकतम सीमा निर्धारित की जाती है। इस सीमा से भी अधिक कोई भी सरकारी विभाग व्यय नहीं कर सकता परन्तु यदि इससे कम व्यय करने से भी काम निकल जाय तो सबकी सब राशि व्यय करने के लिये सरकार बाध्य नहीं होती। दूसरे शब्दों में, वैधानिक स्वीकृति आदेशक नहीं होती।

2. <u>प्रशासकीय स्वीकृति</u>

वैधानिक स्वीकृति के पश्चात् भी विभिन्न विभागों में उच्चाधिकारियों की उचित स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक होगा। इससे सार्वजनिक व्यय एक नियमित तथा नियंत्रित रूप में केवल आवश्यकता के समय पर ही होता है। उच्चाधिकारी अपने नीचे के अधिकारियों को इस प्रकार की स्वीकृति देते समय यह ध्यान रखते है कि वैधानिक स्वीकृति के भीतर ही सम्बन्धित विभाग में किस समय क्या व्यय किया जाय और एक निश्चित अवधि में कितनी बार में वह व्यय हो।

3. <u>तकनीकी स्वीकृति</u>

जब कभी सरकार को ऐसे कार्यो पर व्यय करना होता है कि जिनको पूरा करने के लिए तकनीकी समस्याओं को हल करना होता है तो सरकार व्यय करने से पहले विशेषज्ञों की अनुमति प्राप्त करती है इस अनुमति को ही तकनीति स्वीकृति कहते है।

इस स्वीकृति की आवश्यकता निर्माण कार्यो में विशेष रूप से होती है जैसे सड़के बनाना, नहर, बॉध, विद्युत–योजना, लोहा–स्पात कारखाना आदि। कारण यह है कि विशेषज्ञ ही बता सकते है कि किसी एक योजना को जिसे सरकार जरूरी समझ रही है पूरा करना वास्तव में सम्भव भी है या नहीं और उसमें कितना व्यय होने की आशा है।

तकनीकी स्वीकृति स्वभाव से सलाहकारी होती है, और इसका मानना या न मानना सरकार पर निर्भर करता है इसके अलावा यह स्वीकृति वैधानिक तथा प्रशासकीय स्वीकृतियों से पहले ही प्राप्त की जाती है।

उपयोगी नियम :

स्वीकृति के सिद्धांत को कार्यान्वित करने के लिये निम्न व्यावहारिक नियम उपयोगी सिद्ध होते है :

1. प्रत्येक विभाग के अधिकारी तथा उप–अधिकारियों के लिए अधिकतम व्यय की सीमा–निर्धारण होना चाहिए।
2. किसी अधिकारी द्वारा ऐसे व्यय के लिए स्वीकृति नही देना चाहिये कि जिसके आगे चलकर, इतने बढ़ जाने की आशंका हो, कि उसकी स्वीकृति देना, उसके अधिकार से बाहर हो।
3. ऋणों द्वारा किया हुआ धन केवल उन्ही कार्यो पर व्यय होना चाहिये, जिनके लिये ऋण लिये गये हो।
4. प्रयेणात्मक व्यय को ऋण लेकर नही करना चाहिये।
5. ऋण लिये जाने पर उसकी वापसी के लिये शोधन–कोष की व्यवस्था होनी चाहिये।

लाभ :

1. मितव्ययता तथा अपव्यय से बचाव
2. सार्वजनिक कार्यो में देरी न होना
3. आवश्यक कार्यो को करने में धन का अभाव न होना
4. सार्वजनकि व्यय निर्धारित नीति के अनुसार होना

4. <u>बचत का सिद्धान्त</u>

अर्थ :

इस सिद्धान्त के अनुसार सरकार को अपने बजट में व्यय से अधिक आय रखनी चाहिए जिससे कि बजट में कुछ बचत हो जाय। दूसरे शब्दों में, सरकार को अपने बजट में बचट दिखानी चाहिए। फिन्डले शिराज के अनुसार, यदि किसी राज्य का बजट बचत दिखाता है तो उससे देश के वित्त मंत्री की कुशलता का परिचय मिलता है।

आवश्यकता :

इस बचत की आवश्यकता निम्न कारणों से होती है :–

1. बजट में किये गये व्यय के अनुमान से अधिक व्यय वास्तव में करना पड़े।
2. परिस्थिति में परिवर्तन होने के कारण अनुमानित व्यय से अधिक व्यय करना पड़े।
3. आकस्मिक दुर्घटना के कारण असाधारण व्यय करना पड़े।

कठिनाइयॉ :

ऐसी स्थिति में यदि बचत नहीं होगी तो निम्न कठिनाइयॉ आवेगीः–

1. सार्वजनिक कार्यो को पूरा करने में देरी होगी।
2. सार्वजनिक कार्यो को धन के अभाव से अधूरा छोड़ना पड़ेगा, जिससे कि जो कुछ व्यय हुआ भी होगा वह भी बेकार जावेगा।
3. धन के उपयोग से जनता में असंतोष उत्पन्न होगा।

अतः बजट में बचत रखना चाहिये। लेकिन यह बचत बहुत अधिक नहीं होना चाहिए क्योकि फिर कर का भार अधिक होगा और इसके अनुचित प्रभाव होवेंगे।

इस सम्बन्ध में, सन् 1920 में प्रो0 शिराज ने अपनी पुस्तक में ब्रूसेल्स के अंतर्राष्ट्रीय वित्त सम्मेलन के एक प्रस्ताव को इस प्रकार व्यक्त किया है।

''वह देश जो घाटे के बजटो की नीति को स्वीकार करता है, फिसलने वाले मार्ग पर चलता है; जो सर्वनाश की ओर ले जाता है, उस मार्ग से बचने के लिए कोई भी त्याग बड़ा नहीं है।

ग्लेडस्टोंन ने भी इसी प्रकार लिखा है – भविष्य के नाश, क्रान्ति गड़बड़ी से बचने के लिए बजट में सन्तुलन होना आवश्यक है। वर्तमान काल में इस सिद्धान्त के बारे में काफी परिवर्तन हुआ है उदाहरण के लिए निम्न दशाओ में बजट में बचत के स्थान पर घाटा होना उपयुक्त होगा :

आधुनिक विचार

1. आर्थिक मन्दी के काल में, क्योकि क्रयशक्ति की कमी को दूर करना होता है
2. युद्धकाल में, जबकि धन की भारी आवश्यकता होती है जिसे कि कर व ऋण लेकर पूरा नही किया जा सकता।
3. पिछड़े हुये देशो के आर्थिक विकास के लिए, क्योकि निर्धनता के कारण इस देश के नागरिक आवश्यक धन–राशि प्रदान करने में समर्थ नहीं होते।

परन्तु यदि देश में मुद्रा–स्फीति की दशा हो तो बचत का बजट बनाने का समर्थन किया जाना, चाहिए क्योकि ऐसे समय में सरकार को करों में वृद्धि करके तथा सार्वजनिक व्ययों में कमी करके देश में उपलब्ध क्रयशक्ति को घटाना होता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि आधुनिक विचार के अनुसार सार्वजनिक व्यय में बचत के सिद्धान्त का महत्व एक सीमित रूप में–मुद्रा स्फीति की दशा में ही है।

अन्य सिद्धान्त

1. लोच का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का तात्पर्य है कि व्यय का सामान्य ढॉचा लचीला हो अर्थात् राजकीय व्यय में आवश्यकतानुसार परिवर्तन हो सके। यह उल्लेखनीय है कि सार्वजनिक व्यय में वृद्धि करना तो सरल होता है पर आपत्ति काल में बहुधा उसे घटाना आसान नहीं होता और न ही यह सरल होता है कि किसी एक मद पर व्यय को घटाकर, दूसरी मद पर व्यय को बढ़ाया जा सके। इसलिये यह अत्यधिक आवश्यक है, कि राजकीय व्यय का ढॉचा ऐसा लचीला हो, कि संकट के समय उसमें कमी की जा सके।

2. उत्पादकता का सिद्धांत

जो सार्वजनिक व्यय पूॅजी निर्माण की गति बढ़ाने नये–नये उद्योगो की स्थापना करने बेकारी दूर करने, रोजगार के अवसर बढ़ाने उपभोग वस्तुओ का उत्पादन बढ़ाने जनता का स्तर उठाने तथा सामाजिक हित अग्रसर हित अग्रसर करने में सहायक हो वे उत्पादक कहे जायेगें और उचित होंगे। यही कारण ह कि एक सीमा तक सुरक्षा व्यय भी उत्पादक माना जाता है, क्योंकि वह राजनैतिक शांति के लिये आवश्यक है, और बिना राजनैतिक शांति के कोई भी उत्पादन कार्य सम्भव नहीं। इसी प्रकार सामाजिक सेवाओं तथा सामाजिक सुरक्षाओं पर होने वाला व्यय भी उत्पादक होता है, क्योंकि उससे व्यक्तियों की कार्य क्षमता में वृद्धि होती है।

3. न्यायपूर्ण वितरण का सिद्धांत

सार्वजनिक व्यय का उचित होना इस बात पर भी निर्भर करता है, कि कहॉ तक वह धन के वितरण में समानता उत्पन्न करने में सहायक हुआ है। विशेष रूप में अर्द्ध विकसित तथा पिछड़े हुये देशों में तो यह ध्येय बहुत महत्व का होता है। इस दृष्टि से निर्धन वर्ग के लोगो का जीवन स्तर सुधरेगा और इस व्यय के बिना वे इन सुविधाओं से वंचित रह जाते। दूसरी और ऐसा व्यय जो घनी वर्ग के लाभ के लिये हो धन की असमानताये बढ़ाएगा और इस सिद्धांत के प्रतिकूल होगा।

2.5 सार्वजनिक व्यय के प्रभाव

सार्वजनिक व्यय के निम्न प्रभाव प्रमुख है –

1. उत्पादन पर प्रभाव
2. वितरण पर प्रभाव
3. अन्य प्रभाव

1. उत्पादन पर प्रभाव

डाल्टन के अनुसार सार्वजनिक व्यय का उत्पादन पर तीन प्रकार से प्रभाव पड़ सकता है–

1. कार्य, बचत तथा विनियोग–शक्ति प्रभावित करके
2. कार्य, बचत तथा विनियोग–इच्छा प्रभावित करके
3. साधनों के पुनवितरण द्वारा।

कार्य–शक्ति – यदि सार्वजनिक व्यय के द्वारा लोगो में काम करने की कुशलता बढ़ जाती है तो इससे देश में उत्पादन को प्रोत्साहन मिलेगा। कुछ क्षेत्रों में प्रत्यक्ष रूप से आर्थिक सहायता व अनुदान देकर लोगों की कार्यक्षमता में वृद्धि की जा सकती है। जैसे सामाजिक कल्याण पर होने वाला व्यय इस श्रेणी में आता है। शिक्षा, अच्छा स्वास्थ्य, स्वच्छ आवास, चिकित्सा–सुविधा, मनोविनोद के साधन इत्यादि के द्वारा नागरिकों का शारीरिक एवं मानसिक विकास होता है। निर्धन वर्ग के व्यक्तियो को ऐसी सेवाओं का और भी अधिक महत्व होता है क्योकि यह सुविधाये उन्हे अपने सीमित व अल्प साधनों के कारण उपलब्ध नहीं हो पाती। कुछ अन्य व्यय जैसे मातृत्व लाभ, वृद्धावस्था पेंशन, पारिवारिक भत्ते स्वयं पाने वालों की कार्यकुशलता के अलावा भविष्य में उनके बच्चे की कार्य कुशलता बढ़ाने में भी सहायक होते है जैसे बच्चों को आरम्भ से ही पौष्टिक भोजन मिलने में उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है और वे अपनी युवावस्था में अधिक कार्य कुशल हो जाते है।

परन्तु कुछ दशाओं में सार्वजनिक व्यय से कार्य कुशलता में कमी हो सकती है जैसे यदि राज्य नगद रूपये के रूप में सहायता दे और सहायता पाने वाला इसका समुचित उपयोग न करे, उसमें कुछ खराब आदतें उत्पन्न हो जाय जैसे जुआ खेलना या मदिरापान। मनोरंजन की सुविधाओं के कारण लोग सुस्त तथा काम करने के प्रति उदासीन बन सकते है। इन सब दशाओं में सार्वजनिक व्यय से कार्यकुशलता बढ़ने के स्थान पर घट जायेगी। यदि सरकारी सहायता धन के रूप में न देकर वस्तु और सेवा के रूप में दी जाय, तो कार्यकुशलता बढ़ेगी। इसीलिये सुझाव दिया जाता है कि सरकार को धन न देकर वस्तु और सेवाओं के रूप में सहायता प्रदान करनी चाहिये।

बचत शक्ति – सार्वजनिक व्यय का बचत शक्ति बढ़ाने में भी काफी महत्व होता है कार्य–क्षमता बढ़ने से जिन व्यक्तियो की आय बढ़ जाती है। तो उनकी बचत करने की योग्यता भी बढ़ जाती है। इसके अलावा आमतौर से नागरिको को शिक्षा तथा स्वास्थ्य इत्यादि पर कुछ न कुछ व्यय अवश्य करना पड़ता है। उनकी आय का वह भाग जो सम्भवतः वे बचाकर रखते, इन सेवाओं को प्राप्त करने में व्यय हो जाता है। ऐसी स्थिति में यदि सरकार की ओर से निःशुल्क शिक्षा अथवा स्वास्थ्य व चिकित्सा की सुविधायें प्रदान की जाती है तो व्यक्ति इन सुविधाओं के लिये जो व्यय करते वह बचा सकेंगे। आधुनिक काल में, सरकारे सामाजिक कल्याण के विभिन्नि लाभो तथा सुविधाओं का प्रदान करना अपना कर्तव्य मानने लगी है, और इससे लोगों की बचत करने की सामर्थ्य में वृद्धि होती है।

विनियोग शक्ति – बचत शक्ति में वृद्धि होने से विनियोग सामर्थ्य बढ़ेगी अर्थात् उस धन राशि में वृद्धि होगी कि जिसे उत्पादन बढ़ाने में प्रयोग किया जा सकता है। इसके अलावा सरकार विभिन्न निजी या सरकारी उद्योगों को आर्थिक सहायता व अनुदान देकर उनकी विनियोग क्षमता में वृद्धि कर सकती है।

कार्य इच्छा एवं बचत इच्छा – सार्वजनिक व्यय लोगों की काम करने, बचत करने और विनियोग करने की इच्छा प्रभावित करके भी उत्पादन निर्धारित करता है।

यदि सामाजिक सुरक्षाओ के रूप में किये गये सार्वजनिक व्यय का लाभ व्यक्तियो को नियमित रूप से भविष्य में होते रहने की आशा हो तो अधिकांश लोग काम करने के प्रति उदासीनता दिखेंगे और भविष्य के लिये बचाना भी कम चाहेंगे। बहुधा देखा गया है कि जिन

देशों में राज्य या सामाजिक बीमें की व्यवस्था प्रचलित है वहां के लोगों से काम तथा बचत करने की प्रवृत्ति कम हो जाती है। यदि श्रमिकों के लिये सरकार की ओर से दुर्घटना बीमा, बेरोजगारी बीमा, वृद्धावस्था पेंशन आदि की व्यवस्था हो तो श्रमिक उपरोक्त परिस्थितियों का सामना करने के लिये न तो अधिक आय प्राप्त करने का प्रयत्न करेगें और न ही बचत। डाल्टन के अनुसार, निश्चित सामयिक तथा बिना शर्त मिलने वाले धन की आशा शायद ही कभी काम करने और बचाने की इच्छा बढ़ा सकेगी। इतना ही नही यदि प्राप्तकर्ता की आय सम्बन्धी मॉग पूर्णतया बेलोचदार हो, तो उसकी कार्य–इच्छा उस सीमा तक गिर जाएगी, कि जिससे आय अनुदान की राशि के बराबर घट जाय।

परन्तु यदि सरकार लोगों को धन देते समय कुछ विशेष शर्ते लगा दे जैसे अधिक काम करके अधिक आय प्राप्त करने वालो को अधिक पेंशन मिलेगी, वृद्धो को बचत के आधार पर पेंशन मिलेगी, तो कार्य और बचत–इच्छा पर अनुचित प्रभाव पड़ना जरूरी नहीं।

विनियोग इच्छा – सार्वजनिक व्यय विनियोग इच्छा पर प्रभाव डालकर भी उत्पादन को निर्धारित करता है। ऐसे सार्वजनिक व्यय के प्रमुख उदाहरण निम्न है :–

1. बाह्य आक्रमण से रक्षा तथा आंतरिक शांति व न्याय–व्यवस्था पर सरकार जो धन व्यय करती है, उससे देश में ऐसा वातावरण उत्पन्न होता है कि उत्पादन सम्भव हो सके। वास्तव में, यदि उत्पादको को इस बात का भय हो कि उनकी धन सम्पत्ति विरोधी तत्व नष्ट कर देंगे या छीन लेंगे तो वे विनियोग के लिए प्रेरित नहीं होगें और उत्पादन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा।

2. बुनियादी सेवाओं जैसे यातायात तथा संवादवाहन, विद्युत–शक्ति, नहरों आदि के विकास से भी औद्योगिक प्रगति तथा उत्पादन–वृद्धि में सहायता मिलती है। यह ऐसे कार्य है जिन्हें व्यक्ति स्वयं अधिक पूँजी की आवश्यकता तथा कम लाभ की आशा के कारण नहीं करते लेकिन सरकार द्वारा इन सेवाओं के उपलब्ध कर देने से उद्योगों की उत्पादकता बढ़ जाती है तथा उनमें लाभ की सम्भावना बढ़ जाती है जिससे कि उन्हें विनियोग के लिये प्रेरणा मिलती है।
3. सरकार द्वारा प्रत्यक्ष अनुदानों तथा आर्थिक सहायता प्रदान करने के फलस्वरूप ऐसे उंद्योगों में लागत कम तथा लाभ बढ़ जाने के कारण भी विनियोग–इच्छा प्रबल हो जाती है।

साधनों का पुनर्वितरण – सार्वजनिक व्यय के फलस्वरूप साधनों का पुनर्वितरण होता है। और यह पुनर्वितरण भी उत्पादन की मात्रा निर्धारित करता है। साधनों के पुनर्वितरण से तात्पर्य यह है कि सार्वजनिक व्यय के कारण उत्पादन के साधन पहले से भिन्न उद्योगो, क्षेत्रों तथा रूपों में लगने लगते है।

पुनर्वितरण के कुछ उदाहरण निम्न है।

1. आर्थिक मन्दी के समय लोग अपने धन को निष्क्रिय रूप में बचाकर रखते हैं और उनका उत्पादन के लिए विनियोग नहीं होता। सरकार कर या ऋण के रूप में उनके इस धन को प्राप्त करके व्यय कर देती है। इस प्रकार निष्क्रिय धन का बचत से निकालकर विनियोग में पुनर्वितरण हो जाता है। इस पुनर्वितरण से बेकार साधनों का उपयोग होता है तथा उत्पादन बढ़ता है।
2. सार्वजनिक व्यय के द्वारा सरकार स्वयं अपने उद्योग तथा व्यवसाय भी स्थापित करती है अर्थात साधनों का व्यक्तिगत उद्योगों से निकलकर सार्वजनिक उद्योगों में पुनर्वितरण हो जाता है।

   यदि सरकार व्यक्ति की अपेक्षा उद्योग चलाने में अधिक कुशल हो तो इस पुनर्वितरण के फलस्वरूप भी उत्पादन में वृद्धि होगी। लेकिन यदि व्यक्ति अधिक कुशल हो तो उत्पादन में हानि होगी।

3. सार्वजनिक व्यय के द्वारा साधनों का प्राथमिक कार्यो जैसे आक्रमण से सुरक्षा, आंतरिक शांति, पुलिस, न्याय, व्यवस्था, आदि की ओर भी पुनर्वितरण हो जाता है। यह वे कार्य जिन्हें सार्वजनिक हित में सरकार को ही करना चाहिये, यदि इन कार्यो को व्यक्तियों के सुपुर्द कर दिया जाय तो सम्भवतः एक दूसरे का शोषण हो सकता है। हालाकि इस पुनर्वितरण से प्रत्यक्ष रूप में तो कोई उत्पादन नहीं होता, लेकिन परोक्ष रूप से यह पुनर्वितरण अवश्य उत्पादन बढ़ाने में सहायक होता है। यदि सरकार इन कार्यो पर व्यय न करे तो लोग चोरी या लूट–पाट के भय से बहुत कम उत्पादन करेंगे।
4. सार्वजनिक व्यय के फलस्वरूप साधनों का पुनर्वितरण बुनियादी उद्योगों जैसे यातायात तथा संवादवाहन के साधन, बॉध, नहर तथा विद्युत योजनाओ, लोहा व स्पात कारखानों, मशीन औजार कारखानों आदि में भी होता है। यह वे उद्योग है, जिन्हें कम लाभ या दूरकालीन लाभ होने के कारण व्यक्ति स्वयं स्थापित करने में कोई रूचि नहीं लेते, लेकिन इन उद्योगों तथा सेवाओं के उपलब्ध हो जाने से अन्य उद्योगों की उत्पादकता बढ़ जाती है, और इस प्रकार उत्पादन को बहुत अधिक बढ़ावा मिलता है।
5. सार्वजनिक व्यय के फलस्वरूप साधनों का पुनर्वितरण पूॅजीगत वस्तुओं के उत्पादन करने वाले उद्योगों से निकल कर उपभोग वस्तुओं के उत्पादन करने वाले उद्योगो की ओर भी हो सकता है। ऐसा उस समय होगा, जब धनी वर्ग के व्यक्तियो पर आयकर लगाकर उससे प्राप्त धन–राशि को निर्धन वर्ग के लोगों पर व्यय किया जाय।
6. विभिन्न वांछनीय उद्योगों को मुद्रा एवं साख की सुविधायें प्रदान करके भी सरकार उनके लिये पूॅजी प्रदान करती है, और इस प्रकार उत्पादन बढ़ाने में सार्वजनिक व्यय सहायक होता है।
7. औद्योगिक अनुसंधान पर व्यय करके प्रत्यक्ष रूप से औद्योगिक उत्पादन को सरकार प्रोत्साहन देती है।
8. बहुधा सरकार युद्व तथा युद्व से बचाव के लिये भारी मात्रा में सैनिक व्यय करती है। युद्ध व्यय के रूप में होने वाले इस पुनर्वितरण से अवश्य ही उत्पादन घटता है क्योंकि यदि यह धन व्यक्तियों के हाथ में रहता तो वे इसका प्रयोग उत्पादक कार्यो में करते। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि युद्ध पर कभी व्यय होना ही नही चाहिये क्योंकि कभी कभी देश की स्वतन्त्रता खतरे में होती है और ऐसे समय में, उत्पादन में होने वाली कमी को अधिक महत्व नहीं दिया जा सकता। युद्व–व्यय में अधिकतम मितव्ययता अवश्य बर्तनी चाहिए।
9. यदि सरकार संरक्षण के उद्‌देश्य से ऐसे उद्योगो को आर्थिक सहायता प्रदान करती है, जो अकुशल हैं या जो देश के लिये आवश्यक नहीं है या जिनके लिये देश की प्राकृतिक स्थितियॉ उचित नहीं है तो ऐसी दशा में, लाभ की जगह हानि होगी। ऐसे उद्योग संरक्षण समाप्त होने पर अपने पैरों पर खडे न रह पायेगें और ठप हो जायेंगे।
10. यदि सार्वजनिक व्यय अनुत्पादक कार्यो पर किया गया, तो साधनों का पुनर्वितरण देश के लिये अहितकारी होगा।

अन्त में, सार्वजनिक व्यय के फलस्वरूप साधनों का पुनर्वितरण साधारणतया उत्पादन बढ़ाने में सहायक होता है। मन्दी के काल में बेकार साधनों का उपयोग करके उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। व्यक्तिगत उद्योगों की अपेक्षा सरकारी उद्योगो को अधिक कुशलतापूर्वक चलाकर उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है, प्राथमिक कार्यो पर सार्वजनिक व्यय उत्पादन के लिये अनुकूल परिस्थिति बनाता है। बुनियादी उद्योगों पर सार्वजनिक व्यय अन्य उद्योगों की उत्पादकता बढ़ाकर

उत्पादन वृद्धि में सहायक होता है। लेकिन युद्ध व्यय अवश्य उत्पादन घटाता है यद्यपि देश की स्वतन्त्रता को खतरा देखते हुये यह व्यय भी आवश्यक हो सकता है।

विकासशील देशों में सरकारें कुछ ऐसी मदों पर सार्वजनिक व्यय करती है कि जो सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टिकोण से अति आवश्यक है जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, बिजली पूर्ति, जल पूर्ति आदि पर व्यय। इन मदों पर व्यय करने से आर्थिक विकास की गति तेज होती है और यह पुनर्वितरण आर्थिक विकास की दृष्टि से लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

2. <u>वितरण पर प्रभाव</u>

धन के वितरण पर भी सार्वजनिक व्यय का प्रभाव पड़ता है। डाल्टन के अनुसार, सार्वजनिक व्यय तीन प्रकार का हो सकता है।

1. आनुपातिक व्यय
2. प्रतिगामी व्यय
3. प्रगतिशील व्यय

आनुपातिक व्यय वह है जब विभिन्न व्यक्यिों को सार्वजनिक व्यय से मिलने वाली राशि अथवा मौद्रिक लाभ उनकी आय के अनुपात में हो।

प्रतिगामी व्यय वह है जब कम आय वाले व्यक्तियो को कम दर से सार्वजनिक व्यय की राशि या उसका मौद्रिक लाभ मिले और अधिक आय वाले व्यक्तियो की अधिक दर से।

प्रगतिशील व्यय वह है जब कम आय होने पर अधिक दर से और अधिक आय होने पर कम दर से सार्वजनिक व्यय की राशि या उसका लाभ व्यक्तियों को मिले।

निम्न तालिका से यह अन्तर और स्पष्ट हो जाता है।

आय प्रति	**सार्वजनिक व्यय मिलने की दर**		
मास	**आनुपातिक व्यय**	**प्रतिगामी व्यय**	**प्रगतिशील व्यय**
रू0	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत
100	4	1	4
1000	4	2	3
2500	4	3	2
10000	4	4	1

उदाहरण :

सार्वजनिक व्यय के कुछ उदाहरण जिनका आर्थिक वितरण पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ता है निम्न है :–

1. **प्रत्यक्ष अनुदान :–** बहुधा सरकार उद्योगों को अनुदान व आर्थिक सहायता प्रदान करती है। यदि सहायता बड़े–बड़े उद्योगपतियों या पूँजीपतियों को मिलती है तो इसका प्रभाव आर्थिक वितरण पर खराब पड़ेगा परन्तु यदि सहायता छोटे–छोटे उद्योगों, कारीगरों, कृषकों तथा छोटे व्यापारियों को दी जाती है तो आर्थिक वितरण पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा।
2. **सामाजिक सुरक्षाये :–** सरकार बहुधा सामाजिक सुरक्षाओं पर भी काफी व्यय करती है जैसे निःशुल्क शिक्षा व चिकित्सा, छात्रवृत्तियॉ, वृद्धावस्था पेन्शन, बेकारी भत्ता आदि। यह ऐसे व्यय होते है कि जिनका अधिकांश लाभ निम्न आय के लोगों को प्राप्त होता है। अतः इनसे आर्थिक विषमतायें दूर होती है।

3. **रियायती मूल्य :–** सरकार कभी–कभी आवश्यकता की वस्तुओं को कम मूल्य पर बेचती है जैसे खाद्यान्न को कम कीमतों पर देना व बच्चों को मुफ्त दूध बटवाना। इससे भी निर्धन वर्ग के लोगो को अधिक फायदा होता है अतः आर्थिक विषमतायें कम होंगी।
4. **अविकसित क्षेत्रों पर व्यय :–** सरकार अपेक्षाकृत विकसित क्षेत्रों से कर आदि साधनों से धन जुटाकर उन्हें अविकसित व अल्पविकसित क्षेत्रों पर व्यय करती है जिससे वहॉ के निर्धन वर्गो को लाभ होता है और फलस्वरूप क्षेत्रीय विषमतायें कम होती है।

एक विचार यह है कि सरकार के द्वारा निःशुल्क सेवायें प्रदान किये जाने से यद्यपि धन का वितरण समानता की ओर अग्रसर होता है परन्तु उत्पादन पर इसका प्रभाव खराब पड़ता है। तर्क यह है कि अधिक सुविधायें मिलने से लोगों की काम करने व बचत करने की इच्छा कम होने लगती है। एक और तर्क यह है कि इन सेवाओं पर व्यय करने के लिये बहुत मात्रा में धन की आवश्यकता होगी जिसे पूरा करने के लिये सरकार को कर लगाना होगा। यह करारोपरण उत्पादकों को निरूत्साहित करेगा। इस प्रकार वास्तव में समृद्धि का वितरण नही होता बल्कि निर्धनता का ही वितरण होता है। इस प्रकार का प्रभाव सदैव नहीं होता क्योकि सरकार इस बात का ध्यान रखती है, कि करारोपण उत्पादन को निरूत्साहित न करने पाये। ब्युहलर ने भी कहा है कि धन के वितरण की असमानताओं को कम करने के लिये सरकार को गरीबों पर उदार व्यय तथा अमीरों पर अधिक करारोपण की नीति को कुछ समय तक लागू करना ही पड़ेगा।

धन के पुनवितरण का एक अच्छा प्रभाव यह होता है कि आर्थिक स्थिरता प्राप्त होती है। कीन्स ने बताया है कि निर्धनों में धनी व्यक्तियों की अपेक्षा उपभोग करने की प्रवृत्ति अधिक होती है, इसलिये जब धनी व्यक्तियों से धन लेकर गरीबों पर व्यय किया जाएगा तो देश में कुल व्यय किए हुए धन की मात्रा में वृद्धि होगी और देश में कुल रोजगार उत्पादन में वृद्धि होगी। परन्तु पिछडे हुये अथवा अविकसित देशों में जहॉ उत्पादन क्षमता सीमित होती है और उसके बढ़ाने में समय लगता है वहॉ निर्धन वर्ग द्वारा किये जाने वाले व्यय से पूर्ति न बढ़ने के कारण मूल्य बढ़ने लगते है।

3. अन्य प्रभाव

1. आर्थिक सहायता का बजट पर प्रभाव

सरकारें बहुधा व्यक्तियें व उद्योगों को आर्थिक सहायता प्रदान करती है, जैसे हमारे देश में सरकार द्वारा खाद्यान्न सहायता दी गई, निर्यात प्रोत्साहन हेतु सहायता दी गई, या इसी प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को जो हानि पर चले, उन्हें भी ऐसी सहायता दी गई जैसे बहुद्देशीय परियोजनाओ को। इन सहायताओ के फलस्वरूप बजट के घाटे में वृद्धि हो जाती है और इसके कारण सरकार को या तो करारोपण में वृद्धि करनी पड़ती है। या फिर घाटे के वित्त प्रबन्ध की व्यवस्था करनी पड़ती है इस प्रकार, सरकार द्वारा दी गई आर्थिक सहायता का बजट पर विशेष प्रभाव पड़ता है।

2. सार्वजनिक व्यय के कुछ प्रतिकूल प्रभाव

1. आवश्यकता से अधिक सुरक्षा पर व्यय करना देश के हित में नहीं होता, क्योकि ऐसी दशा में अन्य विकास–सम्बन्धी एवं कल्याण कार्यो पर व्यय में कटौती करनी पड़ती है तथा कर का अनावश्यक बोझ पड़ता है। वर्तमान काल में विश्व के अनेक देश अपनी सैनिक शक्ति का अधिकाधिक विस्तार करने के उद्देश्य से भारी सुरक्षा व्यय कर रहे है। यदि विश्व में शांति स्थापना के सफल प्रयत्न किये जाय, तो इस धन को विकास कार्यो में प्रयोग किया जा सकता है।
2. यदि सरकार ऐसे व्यवसाय व उद्योग को संरक्षण अथवा आर्थिक सहायता प्रदान करती है, कि जिन पर आर्थिक विकास में विशेष महत्व नहीं है या जो अपनी अकार्यक्षमता के

कारण एक आर्थिक बोझ बन जाते है तो ऐसा सार्वजनिक व्यय व्यर्थ चला जावेगा और समाज को उसका लाभ न मिल सकेगा।

3. श्रमिकों को बहुत अधिक रियायतें एवं सुविधाये देने का परिणाम यह भी हो सकता है कि वे अधिक परिश्रम न करना चाहें और आरामतलब हो जाएँ। इसके अतिरिक्त मजदूरों को रियायतें एवं बढ़ावा मिलने से यह भी सम्भावनायें होती है कि वे श्रमिक संघों के माध्यम से कठिनाइयॉ उत्पन्न करने लगे, शांति को खतरा बन जाये तथा उत्पादन गिरने लगे।

4. यदि सरकारी अधिकारी व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति के हेतु या राजनैतिक नेता किसी निर्वाचन क्षेत्र की जनता को अनुचित लाभ देने के उद्देश्य से स्थानीय कार्यो एवं विकास पर ही आवश्यकता से अधिक ध्यान दे, तो ऐसा व्यय, भी अधिकतम आर्थिक कल्याण प्राप्त करने में सहायक नहीं होगा। व्यवहार में, बहुधा स्वार्थमयी प्रवृत्ति के कारण विशेष वर्ग व निकट सम्बन्धियों के हित में सार्वजनिक धन का उपयोग कर दिया जाता है या कोई विशिष्ट, प्रभावशाली राजनैतिक नेता अपने चुनाव क्षेत्र की जनता का समर्थन प्राप्त करने हेतु स्थानीय कार्यो पर अत्यधिक व्यय करवा देता है। ऐसा सार्वजनिक व्यय उचित नहीं होता।

क्या सार्वजनिक व्यय बढ़ने के साथ–साथ विनियोग भी अवश्य बढ़ता है ?

सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होने का अर्थ यह नहीं होता कि उसके साथ–साथ विनियोग भी अवश्य बढ़ेगा, इसके दो प्रमुख कारण है।

1. हस्तांतरण व्यय
2. गैर–विकास व्यय

हस्तांतरण व्यय वे अनुदान या आर्थिक सहायता है, जो सरकार द्वारा व्यक्तियो या संस्थाओ को दिये जाते है, जैसे जरूरतमंद छात्रों को छात्र–वृत्तियॉ, वृद्धावस्था पेंशन, शैक्षिक व चिकित्सा संस्थानों को अनुदान आदि। हस्तांतरण व्यय से प्रत्यक्ष रूप में किसी सम्पत्ति का निर्माण नही होता।

गैर–विकास व्यय से भी विनियोग में वृद्धि नहीं होती। ऐसे व्यय के उदाहरण हैः करो की वसूली पर व्यय, प्रशासन सेंवाओ पर व्यय, सुरक्षा व्यय, ऋण सेवायें, राहत व्यय, नागरिक सुरक्षा आदि। इस प्रकार का व्यय भारत में काफी बढ़ा है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं, कि विनियोग भी उसी सीमा तक बढ़ा हो।

2.6 सारांश

सार्वजनिक व्यय से तात्पर्य सरकार द्वारा किया गया व्यय है। सार्वजनिक व्यय केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारो व स्थानीय सरकारों द्वारा किया जाता है। आधुनिक युग में राज्य का स्वरूप कल्याणकारी होता है, अतः सरकारे विशाल कार्यो एवं विस्तृत उत्तरदायित्वों पर भारी मात्रा में व्यय करती है। जर्मन अर्थशास्त्री बैगनर ने सार्वजनिक व्यय के सम्बन्ध में एक नियम का प्रतिपादन किया है जिसे राज्य की कियाओ में वृद्धि का नियम कहते है। राज्य की कियाओं में वृद्धि विस्तृत व गहरी दोनो प्रकार की होती है विस्तृत का अर्थ सरकार निरन्तर नये कार्य करने लगती है गहरी का अर्थ पुराने तथा नये कार्यो को अधिक कुशलता पूर्वक व पूरी तौर पर करती है। सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होने के अनेक कारण है जनसंख्या में वृद्धि, नगरीकरण, ऊँचा मूल्य स्तर, आर्थिक नियोजन तथा विकास, लोकतंत्र प्रणाली की लोक प्रियता, सरकारी कार्य क्षेत्र में वृद्धि, व्यापार–चक्र आर्थिक सहायता, युद्ध व युद्ध से बचाव तथा अन्तराष्ट्रीय संगठनो का प्रभाव। सार्वजनिक व्यय के नियम या सिद्धान्त का वर्णन अनेक विद्वनों ने किया है महत्वपूर्ण नियम मितव्ययिता, आधिक्य, लाभ व स्वीकृति से सम्बन्धित है प्रत्येक स्वीकृति या अनुमोदन के नियम के

अन्तर्गत प्रत्येक अधिकारी को सरकारी धनराशि व्यय करते समय अपने से उच्च अधिकारी का अनुमोदन प्राप्त कर लेना चाहिए। समान वितरण का सिद्धान्त यह कहता है कि धन के वितरण की असमानता सार्वजनिक व्यय के माध्यम से दूर होनि चाहिए। सार्वजनिक व्यय का उत्पादन वितरण एवं रोजगार पर प्रभाव पड़ता है। राज्य द्वारा ऐसे उद्योगों की स्थापना जिसमें लाभ कम तथा अधिक विनियोजन की आवश्यकता होती है। राज्य द्वारा निर्धन व्यक्तियों के जीवन निर्वाह की वस्तुऐ सस्ते मूल्यो पर प्रदान करके उनके कार्य क्षमता में वृद्धि करने का प्रयास किया जाता है सार्वजनिक व्यय के माध्यम से क्षेत्रीय विकास किया जा सकता है सरकार जिस क्षेत्र का क्षेत्रीय विकास कर सकती है।

2.7 शब्दावली

विस्तृत – सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के सम्बन्ध में विस्तृत का अर्थ यह है कि सरकार यदि पहले 10 कार्य करती थी तो आज 20 कार्य करने लगी है। अर्थात सरकार के कार्यो की संख्या में वृद्धि हुई है।

गहरी – सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के सम्बन्ध गहरी का अर्थ यह है कि सरकार जिन कार्यो को पहले करती थी। वह आज उन्ही कार्यो को आज अधिक कुशलता पूर्वक और पूरी तौर पर करती है।

सार्वजनिक सत्ताओ – सार्वजनिक सत्ताओ से आशय केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार व स्थानीय सरकारो से है।

स्वीकृति या अनुमोदन – सार्वजनिक व्यय तब तक नही किया जाना चाहिए जब तक कि उसके व्यय करने की स्वीकृति उच्च अधिकारी से नही मिल जाती है।

आधिक्य – जब आय की प्राप्ति अधिक तथा व्यय कम होती है तो उसे आधिक्य कहते है।

घाटे के बजट की नीति – जब बजट में आय की प्राप्ति कम तथा व्यय अधिक होती है तो इसे घाटे के बजट की नीति अथवा हीनार्थ प्रबन्धन कहते है।

धन के वितरण की असमानता दूर करना – जब सार्वजनिक व्यय निर्धनों पर इस आशय से किया जाता है कि निर्धन भी धनवान हो जाए, तो इसे धन के वितरण की असमानता दूर करना कहते है।

हस्तान्तरण व्यय – सरकार द्वारा नागरिक हितो में किये गये व्यय जैसे बेरोजगारी लाभ, बिमारी सहायता आदि हस्तान्तरण व्यय कहलाते है।

अहस्तान्तरण व्यय – सरकार द्वारा अपने व्यय के लिए किये गये व्यय जैसे नागरिक प्रशासन पर किया गया व्यय अहस्तान्तरण व्यय कहलाते है।

ऐच्छिक व्यय –जिस व्यय का करना सरकार की इच्छा पर निर्भर करता है उसे ऐच्छिक व्यय कहते है जैसे किसी स्थान पर अस्पताल खोला जाय या नहीं।

2.8 बोध प्रश्न

(अ) बहुविकल्पीय प्रश्न

1. लोक वित्त (सार्वजनिक व्यय) का अभिप्राय है–
    1. सरकार द्वारा अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए किया गया व्यय
    2. सरकार द्वारा घरेलू आवश्यकता की पूर्ति के लिए किया गया व्यय
    3. सरकार द्वारा खेलकूद पर किया गया व्यय
    4. उपर्युक्त में से कोई नहीं
2. लोक वित्त (सार्वजनिक व्यय) का कार्य के आधार पर वर्गीकरण किया गया है–

1. लाभ का सिद्धान्त
2. मितव्ययिता का सिद्धान्त
3. लोच का सिद्धान्त
4. व्यय आधिक्य

3. लोक व्यय (सार्वजनिक व्यय) के प्रकारों से सम्बन्धित नहीं है–
1. प्रतिगामी व्यय
2. आनुपातिक व्यय
3. प्रगतिशील व्यय
4. सार्वजनिक व्यय

4. प्रगतिशील व्यय से सम्बन्धित है–
1. प्रतिगामी व्यय
2. आनुपातिक व्यय
3. सार्वजनिक वित्त
4. सामाजिक सुरक्षा भुगतान

(ब) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. .... आय की वृद्धि के साथ–साथ बढ़ता जाता है।
2. .... से सभी व्यक्तियॉ को अपनी आय के अनुपात में लाभ प्राप्त होता है।
3. .... में कम आय वालों को अधिक लाभ, अधिक आय वालों को कम लाभ मिलता है।

(स) सत्य या असत्य कथनों की पहचान कीजिए।

1. सार्वजनिक व्यय का उद्देश्य समाज को अधिकतम लाभ पहुॅचाना है।
2. प्रत्यक्ष स्थानान्तरण में राज्य स्वयं साधनों का उपयोग करता है।
3. आर्थिक साधनों का स्थानान्तरण अविकसित देशों में नये–नये उद्योग स्थापित करने के लिए किया जाता है।

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ) बहुविकल्पीय।

1. सरकार द्वारा अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए किया गया व्यय
2. व्यय आधिक्य
3. सार्वजनिक व्यय
4. सामाजिक सुरक्षा भुगतान

(ब) रिक्त स्थानों की पूर्ति।

1. प्रतिगामी व्यय
2. आनुपातिक व्यय
3. प्रगतिशील व्यय

(स) सत्य/असत्य

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य

2.10 स्वपरख प्रश्न

(अ) लघुउत्तरीय प्रश्न

1. बैगनर का सार्वजनिक व्यय वृद्धि का नियम क्या है ?

2. लोक वित्त (सार्वजनिक व्यय) का अभिप्राय स्पष्ट कीजिये।
3. लोक वित्त (सार्वजनिक व्यय) में वृद्धि के कारणों पर प्रकाश डालिये।
4. लोक वित्त (सार्वजनिक व्यय) का वर्गीकरण समझाइये।
5. लोक वित्त (सार्वजनिक व्यय) के मितव्ययिता सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये।
6. लोक वित्त (सार्वजनिक व्यय) के कोई चार प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन कीजिये।
7. लोक वित्त (सार्वजनिक व्यय) का उत्पादन पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
8. लोक वित्त (सार्वजनिक व्यय) के वितरण पर पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या कीजिये।
9. आर्थिक साधनों के स्थानान्तरण पर सार्वजनिक व्यय की विवेचना कीजिये।
10. लोक वित्त (सार्वजनिक व्यय) का रोजगार, निवेशों तथा आर्थिक स्थिरता पर प्रभाव का उल्लेख कीजिये।
11. लोक वित्त (सार्वजनिक व्यय) का काम करने तथा बचत करने की इच्छा पर प्रभाव बताइये।

(ब) दीर्घ उत्तरीय

1. लोक वित्त (सार्वजनिक व्यय) के प्रमुख सिद्धान्तो का विवेचन कीजिये।
2. एक अर्थव्यवस्था में लोक वित्त (सार्वजनिक व्यय) का उत्पादन व वितरण पर पड़ने वाले प्रभाव का परीक्षण कीजिये।
3. आपके विचारों में लोक व्यय के उपयुक्त सिद्धान्त क्या हैं? डाल्टन एवं फिण्डले शिराज के विचारों का उल्लेख करते हुए पूर्ण विवेचन कीजिए।
4. वर्तमान वर्षो में विश्व में राजकीय व्यय में तीव्र वृद्धि क कारणों की विवेचना कीजिए।
5. लोक व्यय (सार्वजनिक व्यय) के 1. कार्य एवं बचत करने की क्षमता, 2. कार्य एवं बचत करने की इच्छा तथा 3. विभिन्न रोजगारों और साधनों के बीच साधनों के हस्तान्तरण पर प्रभाव बताइए।
6. किसी भी देश की अर्थव्यवस्था पर लोक व्यय (सार्वजनिक व्यय) के प्रभावों की विवेचना कीजिए।
7. वे कौन–कौन से नियम है जिन्हें सरकार को व्यय करते समय पालन करना चाहिए ?

   अथवा

   लोक वित्त (सार्वजनिक व्यय) के विभिन्न सिद्धान्तो की विवेचना कीजिए।

2.11 सन्दर्भ पुस्तकें

1. राजस्व : डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय
2. लोकवित्त : डॉ0 एस0 के0 सिंह
3. राजस्व : डॉ0 आर0 एस0 कौशिक
4. राजस्व सिद्धान्त एवं व्यवहार : के0 एल0 माहेश्वरी
5. Delton, H : Principles of public Finance
6. Public Finance Theory and Practice : Mehta and Agrawal
7. Shirras, Findley : The Science of Public Finance
8. Hicks, Ursula : Public Finance
9. A.C. Pigou : A Study of Public Finance
10. Taylor P.E. : Economics of Public Finance
11. Raja J Chhelliah : Fiscal Policy in under developed Countries.
12. Indirect Taxes अप्रत्यक्ष–कर : डॉ0 एच0 सी0 मेहरोत्रा एवं प्रो0 वी0 पी0 अग्रवाल
13. News Paper
14. Net Surfing
15. Discussion with Lawyers and CA’s

इकाई 3 सार्वजनिक –आय (अर्थ, श्रोत, वर्गीकरण, करारोपण के सिद्धान्त,कर–देय क्षमता, कर–भार करापात एवं कर –विवर्तन) Public Revenue (Meaning, Sources, Classfication And Canons Of Tax, Ability To Pay, Incidence And Shifting Effects Of Tax Burden)

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 सार्वजनिक आय का आशय व श्रोत
- 3.2.1 आशय
- 3.2.2 कर की परिभाषा
- 3.2.3 कर की विशेषताऐं
- 3.2.4 शुल्क
- 3.2.5 लाइसेन्स शुल्क
- 3.2.6 जुर्माना
- 3.2.7 विशेष निर्धारण
- 3.2.8 मूल्य

3.3 सार्वजनिक आय का वर्गीकरण
3.4 करारोपण के सिद्धान्त
3.5 कर–दान क्षमता या कर–देय क्षमता
- 3.5.1 कर–दान क्षमता निर्धारित करने के तत्व
- 3.5.2 कर–दान क्षमता की माप

3.6 कर–भार करापात एवं कर विवर्तन
- 3.6.1 कर–भार
- 3.6.2 करापात
- 3.6.3 कर–विवर्तन

3.7 सारांश
3.8 शब्दावली
3.9 बोध प्रश्न
3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.11 स्वपरख प्रश्न
3.12 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- सार्वजनिक आय के अर्थ, श्रोत व वर्गीकरण बता सके।
- करारोपण के सिद्धान्त समझ सके।
- कर–देय क्षमता बता सके।
- कराघात, करापात व कर–विवर्तन स्पष्ट कर सकें।

3.1 प्रस्तावना

सार्वजनिक व्यय करने के लिए आवश्यक धन–राशि जुटाना नितांत आवश्यक है। अतः सार्वजनिक आय भी राजस्व का प्रमुख अंग है। इस इकाई में आप सार्वजनिक आय का आशय व वर्गीकरण, करारोपण के सिद्धान्त, कर–दान क्षमता निर्धारित करने के तत्व व कर–भार करापात एवं कर विवर्तन का अध्ययन करेंगे।

3.2 सार्वजनिक आय का आशय व श्रोत

3.2.1 आशय

सार्वजनिक आय से अभिप्राय सरकार द्वारा प्राप्त किये गये उस धन से है जिसकी कि वापसी नहीं की जाती।

वे प्रमुख बातें जिनका अध्ययन इस विभाग के अन्तर्गत किया जाता है निम्न है :–

1. सार्वजनिक आय के कौन–कौन से साधन है, अर्थात् सार्वजनिक आय का वर्गीकरण ;
2. कर, जो कि सार्वजनिक आय का एक प्रमुख साधन है, कितने प्रकार के होते है, अर्थात् कर का वर्गीकरण ;
3. कर लगाने में किन–किन बातों पर ध्यान देना चाहिए, अर्थात् करारोपण के सिद्धान्त ;
4. जनता की कर देने की शक्ति से क्या तात्पर्य है और यह किन–किन बातों पर निर्भर करती है, अर्थात् करदेय क्षमता का अर्थ, तथा उसके निर्धारक तत्व ;
5. किन कारणों से एक करदाता कर का भार, किसी अन्य व्यक्ति पर टालने में सफल होता है अर्थात् कर विवर्तन के तत्व ;
6. सार्वजनिक आय का देश के उत्पादन तथा आर्थिक वितरण पर क्या प्रभाव पड़ता है अर्थात् सार्वजनिक आय के प्रभाव।

3.2.2 कर की परिभाषा

1. **परिभाषायें** :– कर को कुछ दशाओं में ड्यूटी अथवा इम्पोस्ट भी कहते है। विभिन्न लेखकों ने कर की परिभाषा विभिन्न प्रकार से दी है।

कुछ उल्लेखनीय परिभाषायें निम्न है :–

1. **सेलिगमैन के शब्दो में,**

"A Tax Is A Compulsory Contribution From The Person To The Government To Defray The Expenses Incurred In The Common Interest Of All Without Reference To Special Benefits Conferred."

"कर व्यक्तिओं द्वारा सरकार को दिया जाने वाला वह अनिवार्य भुगतान है, जो सरकार बिना किसी फायदे के सार्वजनिक हित में व्यय करती है।" -Essays in taxation, p. 432

3.2.3 कर की विशेषताये :

इन परिभाषाओं से कर के बारे में निम्न प्रमुख बातें स्पष्ट होती हैं:

1. कर, करदाता को अनिवार्य रूप से देना होता है, करदाताओं की इच्छा पर यह निर्भर नहीं करता, कि वे कर देंगे या नही।

2. कर से प्राप्त धन–राशि को लोकहित एवं जन–कल्याण के लिए व्यय किया जाता है न कि किसी व्यक्ति विशेष या स्वयं करदाता की ही सेवा के लिये, उदाहरणार्थ, विदेशी आक्रमण से सुरक्षा पर व्यय।

   कुछ दशाओं में ऐसा प्रतीत होता है कि सरकारी व्यय किसी विशेष व्यक्ति, वर्ग व क्षेत्र के हित में किया गया जा रहा है, न कि पूरे समाज के हित में, जैसे पिछड़ी जाति, क्षेत्र

वर्ग पर किया गया व्यय व कोर्ट के निर्णय के फलस्वरूप किसी व्यक्ति को सरकार से मिलने वाला जुर्माना व हर्जाना आदि। पर ध्यान से देखने पर मालूम होगा, कि इस प्रकार का व्यय भी अंततः पूरें समाज के हित में होता है– पिछड़ी जाति का उत्थान करने से पूरे समाज को लाभ होगा ; सरकार अपनी गलती पर जुर्माना देकर स्वयं अपने नियमों का पालन करती है, और अपनी इस निष्पक्षता के द्वारा लोगों को सरकारी कानून का पालन करने के लिये प्रोत्साहित करती है। अतः व्यय का उद्देश्य जन–कल्याण ही होता है।

3. कर के बदले में सरकार करदाता को कोई प्रत्यक्ष वस्तु या सेवा नहीं देती अर्थात करदाता के त्याग और सरकारी व्यय से मिलने वाले लाभ में कोई समान तथा प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता। उदाहरण के लिए, सरकार इस बात का वचन नहीं देती कि जो उत्पादन शुल्क सूती कपड़े से मिलेगा वह उस उद्योग पर ही व्यय कर दिया जायेगा। सुविधा नहीं मिलती। टासिग के मतानुसार ''करदाता तथा सरकार के बीच प्रत्यक्ष प्रतिफल का अभाव ही कर की वास्तविकता है।''
4. कर का एक उद्देश्य शासन प्रबन्ध का खर्च पूरा करने के लिये आवश्यक धन जुटाना होता है। परन्तु इसके अतिरिक्त कर लगाने का एक उद्देश्य नियमन व नियन्त्रण भी है, अर्थात् कुछ कार्यो के प्रचलन व प्रयोग को रोकने व सीमित, नियमित एवं नियन्त्रित करने के लिए भी सरकार कर लगाती है। उदाहरण के लिए शराब, अफीम तथा अन्य मादक वस्तुओं का उपभोग सीमित करने के लिए सरकार इन वस्तुओं के उत्पादन व उपभोग पर बहुधा कर लगा देती है। इसी प्रकार, स्वदेशी उद्योगों को संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से सरकार उपयुक्त वस्तुओं के आयात पर कर लगा देती है। बहुधा आवश्यक कच्चे माल पर निर्यात कर भी इस उद्देश्य से लगाया जाता है कि उनका निर्यात सीमित रहे और कच्चा माल देश के आन्तरिक उद्योगों को उपलब्ध हो सकें। बहुधा कर लगाने का उद्देश्य राजस्व–संग्रह तथा नियमन, दोनों एक साथ ही होता है।

संक्षेप में, कर की निम्न प्रमुख विशेषतायें है :–

1. यह एक अनिवार्य भुगतान है।
2. इसे सामान्य हित पर व्यय के लिए जुटाया जाता है।
3. कर के बदले में करदाता को कोई प्रत्यक्ष वस्तु या सेवा नहीं प्रदान की जाती।
4. कर का उद्देश्य आय प्राप्त करना व नियन्त्रण हो सकता है।

अतः कर की निम्न परिभाषा दी जा सकती है।

''कर एक अनिवार्य भुगतान है जो सरकार व्यक्तियों से सामान्य हित में प्राप्त करती है परन्तु जिसके बदले में कोई प्रत्यक्ष सेवा या सुविधा नही प्रदान की जाती; कर का उद्देश्य आय प्राप्त करना, या नियमन या दोनों होता है।''

3.2.4 शुल्क

शुल्क अथवा फीस की निम्न परिभाषा दी जा सकती है :–

''यह एक ऐसा भुगतान है, जो सरकार सामान्य हित में प्रदान की गई सेवाओं तथा सुविधाओं के बदले में लेती है लेकिन जिनसे शुल्कदाता को प्रत्यक्ष लाभ मिलता है। उदाहरण के लिए पेटेन्ट फीस, रजिस्ट्रेशन फीस, कोर्ट फीस आदि।''

फीस लगाने का आधार यह माना जाता है कि सेवा प्रदान करने व निगरानी करने में जो लागत आए, उसके बराबर फीस ली जाय। परन्तु व्यवहार में बहुधा सुविधा के कारण, बिना लागत का ध्यान रखे ही फीस निश्चित कर दी जाती है।

बहुधा फीस की मात्रा, लागत से अधिक होती है। ऐसी दशा में, आधिक्य को कर कहना उचित होगा। व्यवहार में, पूरे भुगतान को शुल्क ही कह लिया जाता है और उसे शुल्क तथा कर में विभाजित नहीं किया जाता।

शुल्क और कर में अन्तर :–

1. शुल्क के बदले में सरकार शुल्क दाता को विशेष लाभ, सुविधा या अधिकार देती है। परन्तु कर के बदले में करदाता को कोई प्रत्यक्ष लाभ नहीं मिलता।
2. शुल्क सिद्धान्तः सेवा की लागत को पूरा करने लिये लिया जाता है परन्तु कर के साथ इस प्रकार का प्रश्न नहीं उठता।
3. शुल्क ऐच्छिक है परन्तु कर अनिवार्य।

3.2.5 लाइसेन्स शुल्क

लाइसेन्स फीस या शुल्क उन मामलों में ली जाती है जब कि सरकारी अधिकारी स्वंय कोई कार्य या सेवा सेवा न करके किसी अन्य व्यक्ति को यह अधिकार सौंप देता है। इसमें नियमन एवं नियन्त्रण का अशं छिपा रहता है। समाज हित में कुछ व्यक्तियों को ही सेवायें सम्पन्न करने के अधिकार दिये जाते है और उनके बदले में उनसे लाइसेन्स फीस वसूल की जाती है। उदाहरणार्थ, मादक वस्तुओं के विक्रय के लिये लाइसेंस दिये जाते और बदले में लाइसेन्स शुल्क लिये जाते है।

शुल्क और लाइसेन्स शुल्क में अन्तर यह है, कि शुल्क उन मामलों में दिया जाता है जब सरकार कोई सेवा सम्पन्न करती है, जब कि लाइसेन्स शुल्क उन मामलों में दिया जाता है जब कि सरकारी अधिकारी कोई कार्य न करके, किसी व्यक्ति को कार्य व सेवा करने का अधिकार प्रदान कर देता है।

3.2.6 जुर्माना :

जुर्माना वह भुगतान है, जो सरकार नागरिकों से सरकारी कानून तोड़ने पर दण्ड स्वरूप लेती है। जुर्मने का उद्देश्य दण्ड लेकर समाज में होने वाली बुराइयों को रोकना होता है, तथा लोगों को सरकारी कानून का पालन करने के लिए बाध्य करना होता है।

जुर्माने तथा कर में अन्तर :–

जुर्माना तब ही लगता है जब किसी व्यक्ति ने कोई अपराध किया हो परन्तु कर बिना अपराध किये ही सरकार व्यक्तियों से ले लेती है। जब कि कर का उद्देश्य मुख्यतः आय प्राप्त करना होता है, जुर्माने का उद्देश्य अपराध रोकना होता है।

3.2.7 विशेष निर्धारण

सेलिगमैन के अनुसार '' विशेष निर्धारण एक ऐसा अनिवार्य अंशदान है जो प्राप्त होने वाले विशेष लाभ के अनुपात में लगाया जाता है ताकि जनता के हित में किये गए सम्पत्ति में विशेष सुधार की लागत को पूरा किया जा सके।''

ब्यूहलर के अनुसार विशेष निर्धारण एक अनिवार्य भुगतान है, जो चुनी हुई सम्पत्ति पर विशेष सुधार या सेवा के लिए लगाया जाता है; यह विशेष सुधार या सेवा जनहित में की जाती है लेकिन इससे सम्पत्ति के मालिको को भी लाभ होता है।

प्रमुख विशेषताये –

1. यह एक अनिवार्य अंशदान है; इसका देना व्यक्ति के लिए अनिवार्य होता है।
2. यह किसी स्थान विशेष के विकास की लागत पूरा करने के लिए लगाया जाता है।
3. स्थानीय विकास सामान्य हित में किया जाता है।

4. स्थानीय विकास के फलस्वरूप वहॉ के सम्पत्ति के स्वामियों को विशेष लाभ व सुविधायें उपलब्ध होती है तथा उनकी सम्पत्ति के पूँजीगत मूल्य में वृद्धि होती है।
5. विशेष निर्धारण आम तौर से भूमि पर और कभी–कभी भवन पर लगाया जाता है। चल सम्पत्ति पर विशेष निर्धारण नहीं लगाया जाता।
6. विशेष निर्धारण की राशि, प्राप्त लाभ के समानुपात में होती है।

उदाहरण –

(अ) यदि सरकार जनहित की दृष्टि किसी स्थानीय क्षेत्र में सड़कें बनवा दें, पार्क लगवा दे, नालियों की उचित व्यवस्था करदे, सीवर लाइन डलवा दे, जल–पूर्ति की व्यवस्था कर दे, तो स्थानीय लोगों को विशेष लाभ होगा और उनकी सम्पत्तियों के मूल्य में वृद्धि हो जायेगी।

(ब) इसी प्रकार, सिंचाई के लिए नहरों एवं कुओं की व्यवस्था कर देने से कृषि–भूमि का मूल्य भी बढ़ जायगा।

उपयुक्त दशाओं में व्यक्तिओं को मिलने वाला लाभ अनर्जित होता है, क्योंकि उसके लिए उन्हें कोई व्यय व परिश्रम नहीं करना पड़ता। इस लाभ का कुछ अंश सरकार विशेष निर्धारण के रूप में ले लेती है।

विशेष–निर्धारण एवं कर में अन्तर–

1. विशेष निर्धारण स्थानीय विकास होने पर लगाया जाता है, जबकि कर लगाने में ऐसा नहीं होता ;
2. विशेष निर्धारण की आय केवल सम्बन्धित क्षेत्र में स्थानीय विकास के हेतु उपयोग की जाती है जबकि कर से प्राप्त आय विकास कार्यो तथा राजकीय प्रबन्ध दोनों पर हीं की जाती है।
3. विशेष निर्धारण से प्राप्त आय उसी क्षेत्र में व्यय कर दी जाती है, जहॉ से उसे प्राप्त किया गया है परन्तु कर से प्राप्त आय सामान्यतः अन्य स्थानों पर व्यय की जाती है।
4. विशेष निर्धारण देने वाले व्यक्तियों को प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होता है जबकि कर देने वाले व्यक्तियों को प्रत्यक्ष लाभ नहीं मिलता।
5. विशेष निर्धारण, व्यक्ति को स्थानीय विकास से मिलने वाले लाभ के आधार पर निश्चित होता है, जबकि कर बहुधा करदाता की क्षमता पर।
6. विशेष निर्धारण का सम्बन्ध सम्पत्ति (विशेषकर भूमि) से होता है, जब कि कर का सम्बन्ध सम्पत्ति, आय, व्यय आदि किसी से हो सकता है।
7. सम्पत्ति कर से मुक्त हो सकती है परन्तु विशेष–निर्धारण से नहीं जब तक कि सम्पत्ति को स्थानीय विकास से लाभ ही न पहुॅचा हो।
8. विशेष निर्धारण केवल एक ही बार में निश्चित कर दिया जाता है, यद्यपि उसका भुगतान एक दम से या किस्तों में किया जा सकता है, परन्तु कर का निर्धारण प्रतिवर्ष होता है।

3.2.8 मूल्य

मूल्य यह ऐच्छिक भुगतान है जो सरकार व्यक्तियों से वस्तुओ तथा सेवाओं के बदले में प्राप्त करती है। इसके उदाहरण सरकारी उद्योगों तथा व्यापारिक संस्थानों के द्वारा बेची गई वस्तुओं के बदले में मिलने वाले मूल्य है। बहुधा सरकारी जनोपयोगी संस्थानो द्वारा बिजली, पानी, रेल यातायात, टेलीफोन आदि की सुविधाऍ प्रदान की जाती है; इनके बदले में जो मूल्य प्राप्त होता है उसे दर के नाम से पुकारा जाता है।

मूल्य एवं कर में अन्तर –

1. मूल्य एक ऐच्छिक भुगतान है; मूल्य देने के लिए सरकार किसी व्यक्ति को बाध्य नहीं कर सकती। यदि राजकीय वस्तुओं का उपभोग न किया जाय, तो मूल्य देने की आवश्यकता नहीं होती। दूसरी ओर, कर एक अनिवार्य भुगतान है, जिसका देना व्यक्ति की अपनी इच्छा पर निर्भर नहीं करता।
2. मूल्य के बदले में प्रत्यक्ष सेवा या सुविधा प्रदान की जाती है, जबकि कर के बदले में प्रत्यक्ष सेवा या सुविधा नही दी जाती।

3.3 सार्वजनिक आय का वर्गीकरण

1. ऐडमस्मिथ का वर्गीकरण

ऐडमस्मिथ ने आय को दो भागों में विभाजित किया है :–

1. **नागरिकों से होने वाली आय** – इस वर्ग में आय के वे सब साधन सम्मिलित हैं, जिनके अन्तर्गत सरकार को जनता से आय प्राप्त होती है जैसे कर।
2. **राजकीय सम्पत्ति से होने वाली आय** – इस वर्ग में वह आय आती है, जो सरकारी सम्पत्ति जैसे सरकारी भूमि व पूँजी से होती है।

ऐडमस्मिथ का यह वर्गीकरण आधुनिक दशाओं के लिए उपयुक्त नहीं है क्योंकि इसमें दोनो ही वर्ग बहुत विस्तृत है। आजकल नागरिकों तथा राजकीय सम्पत्ति से भी कई प्रकार की आय होती है, और एक उपयुक्त वर्गीकरण में इनका उल्लेख भी आवश्यक है।

2. ऐडम्स का वर्गीकरण

ऐडम्स ने सार्वजनिक आय को तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया है:

1. **प्रत्यक्ष आय** – इसके अन्तर्गत अधिकांशतः सार्वजनिक भूमि, सार्वजनिक उद्योगों जैसे रेल, तार, डाक आदि तथा अन्य सरकारी सम्पत्ति से होने वाली आय होती है।
2. **व्युत्पादित आय** – इस आय के अन्तर्गत वह आय सम्मिलित है जो नागरिकों से वसूल की जाती है, जैसे कर, शुल्क, दण्ड आदि से होने वाली आय।
3. **प्रत्याशित आय** – इस वर्ग के अन्तर्गत सार्वजनिक साख से होने वाली आय होती है जैसे वांण्डस की बिक्री या ट्रेजरी नोट्स से होने वाली आय।

उपर्युक्त वर्गीकरण का दोष यह है कि इसमें पहला वर्ग बहुत विस्तीर्ण हो गया है क्योकि इसके अन्तर्गत व्यापारिक कार्यो से होने वाली आय और प्रशासनिक कार्यो से होने वाली आय मिला दी गई है। परन्तु इन दोनों प्रकार की आयों के स्वरूप भिन्न है अतः इन्हें पृथक होना चाहिए।

3. सेलिगमैन का वर्गीकरण

सैलिगमैन ने सार्वजनिक आय को तीन भागों में विभक्त किया है :

1. **दानात्मक आय** – दानात्मक आय से तात्पर्य उस सरकारी आय से है, जो कि प्रजा सरकार को दान–उपहार के रूप में देती है। इसकी दो विशेषताये है

1. यह ऐच्छिक होती है,
2. इसके बदले में सरकार व्यक्ति को कोई प्रत्यक्ष सेवा, सुविधा या वस्तु प्रदान नहीं करती।

2. **संविदात्मक आय** – इस वर्ग में वे सब आय आती है जो राज्य को राजकीय उद्योगो और सम्पत्ति से प्राप्त होती है। साधारण व्यक्ति की भॉति राज्य भी उद्योग और व्यवसाय चलाती है; उदाहरण के लिए, सरकार कारखाने खोलती है, रेल, मोटर गाड़ियॉ और हवाई जहाज की सेवायें प्रदान करती है। इस आय की दो विशेषतायें होती है :–

1. यह ऐच्छिक होती है।
2. इसके बदले में सरकार प्रत्यक्ष सेवा, सुविधा व वस्तु प्रदान करती है।
3. **अनिवार्य आय** – इसके अन्तर्गत वह आय आती है जिसका देना व्यक्ति के लिए अनिवार्य होता है उसकी इच्छा पर निर्भर नहीं करता। ऐसी आय सरकार शासन–शक्ति, दण्ड विधान शक्ति तथा करारोपण शक्ति के द्वारा प्राप्त करती है। जुर्माने, कर, विशेषकर इस आय के उदाहरण है।

इसकी दो विशेषतायें है–

1. यह ऐच्छिक नहीं है।
2. इसके बदले में कोई प्रत्यक्ष सेवा, सुविधा नहीं दी जाती।

उपर्युक्त वर्गीकरण का दोष यह है कि इसमें अनिवार्य आय का वर्ग बहुत विस्तीर्ण हो गया है क्योकि इसमें कर से होने वाली आय और प्रशासनिक कार्यो से होने वाली आय दोनो ही ली जावेगी। परन्तु इन दोनों प्रकार की आयों के स्वरूप भिन्न है। अतः इन्हें पृथक होना चाहिए।

4. टेलर का वर्गीकरण

टेलर ने सार्वजनिक आय को चार भागों में विभाजित किया है ;

1. अनुदान तथा उपहार
2. प्रशासनात्मक आय
3. व्यापारिक आय
4. कर

1. अनुदान तथा उपहार :

इसके अन्तर्गत पहले तो वह आय सम्मिलित होती है, जो कि एक सार्वजनिक सरकार दूसरी सार्वजनिक सत्ता को सहायता अनुदान के रूप में देती है, जैसे केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों को या राज्य सरकार स्थानीय सरकारों को विभिन्न कार्यो के लिये अनुदान देती है। दूसरे सरकारों को उपहार के रूप में व्यक्तियो व गैर सरकारी संस्थाओं से कुछ धन मिल जाया करता है। परन्तु इस वर्ग की आय मात्रा के दृष्टिकोण से कोई विशेष महत्व की नहीं। इन दोनों प्रकार की आय की आधारभूत विशेषता यह है कि इनका मिलना दाता की स्वेच्छा पर निर्भर होता है और इसमें अनिवार्यता का तत्व नहीं होता।

2. प्रशासनात्मक आय :

इस श्रेणी के अन्तर्गत शुल्क, लाइसेन्स शुल्क, जुर्माने, जब्तगी, विशेष निर्धारण तथा वह आय सम्मिलित है जो कि राज्य को किसी व्यक्ति के बिना उत्तराधिकारी छोड़े हुए मर जाने पर उसकी सम्पत्ति से मिलती हैं वह आय सरकार की प्रशासनिक गतिविधियों के फलस्वरूप होती है।

3. व्यापारिक आय :

इस आय के अन्तर्गत वह आय शामिल है, जो सरकार के द्वारा उत्पन्न की हुई वस्तुओं को खरीदने पर मूल्यों के रूप में उसे दी जाती है, जैसे डाकखर्च, सरकारी निगमों को रूपया उधार देने पर, मिला ब्याज, अथवा सरकारी विद्युत कम्पनी को दिये जाने वाले मूल्य भी इसमें शामिल है। इस आय के अन्तर्गत सरकार को प्राप्त होने वाली आय तथा दाता को होने वाले लाभ में प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है, किन्तु सामाजिक हित को ध्यान में रखते हुए अपनी सभी सेवाओं के बदले में सरकार अपनी लागत से कुछ कम ही मूल्य वसूल करती है, जैसे प्रायः डाक सेवाओं के बारे में यह बात अच्छी तरह लागू होती है।

4. कर :

विभिन्न प्रकार के कर जो सरकार के द्वारा लगाये जाते है इस श्रेणी में रखे जाते है।

टेलर का यह वर्गीकरण अधिक सुव्यवस्थित, तर्क संगत तथा उपयोगी प्रतीत होता है। उसने निश्चय ही आय ही आय के विभिन्न साधनों को उनके स्वभाव के अनुसार विभिन्न वर्गो में प्रस्तुत किया है।

5. **भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा वर्गीकरण**

भारत में रिजर्व बैंक ने केन्द्रीय और राज्य सरकारो की आय के साधनों का अत्यन्त उपयोगी वर्गीकरण दिया है। इस वर्गीकरण के अनुसार सम्पूर्ण आय को प्रमुख भागों में बॉटा गया है।

1. कर से आय
2. गैर–कर आय

1. कर से आय के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के कर जैसे 1. आय तथा व्यय पर कर 2. सम्पत्ति तथा पूँजी के सौदों पर कर तथा 3. वस्तुओं और सेवाओं पर कर शामिल है।
2. गैर–कर आय के अन्तर्गत प्रशासनात्मक प्राप्तियॉ, सार्वजनिक उद्योगों जैसे रेलवे, टेलीग्राफ, मुद्रा तथा टकसाल से आय तथा अन्य आय (जैसे राज्यो से मिला ब्याज) शामिल है। राज्यों के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार के द्वारा दिए हुए अनुदान तथा अन्य प्रतिदान भी सम्मिलित है।

3.4 करारोपण के सिद्धान्त

कर लगाते समय कुछ सिद्धान्तो को ध्यान में रखना आवश्यक है। इन्हें करारोपण के सिद्धान्त कहा जाता है। यहॉ हम विभिन्न करारोपण के सिद्धान्तों का अध्ययन करेंगे।

1. एडम स्मिथ के करारोपण के सिद्धान्त

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री एडम स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'Wealth of Nations' में कर लगाने के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्त बताये है जो निम्नलिखित है–

1. **सिद्धान्त अथवा न्याय का सिद्धांत (Canon of Equality or Equity)-** इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न करदाताओं पर कर का भार न्याय संगत होना चाहिए अर्थात विभिन्न करों को लगाते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि करदाताओं के प्रति उचित न्याय किया जाय, एडम स्मिथ ने इस सिद्धान्त का उल्लेख इस प्रकार से किया है :

''हर राज्य की प्रजा को सरकार के पालन–पोषण के लिये जहॉ तक सम्भव हो अपना अंशदान अपनी –अपनी योग्यताओ के अनुपात के अनुपात में जिसका आनन्द वे राज्य की संरक्षता में प्राप्त करते है।''

समता अथवा न्याय का अर्थ समय के साथ बदलता रहा है। प्रारम्भ में यही उचित समझा जाता था कि हर एक करदाता बराबर मात्रा में कर चुकाये; व्यवहार में पोल कर (Poll Tax) एक ऐसा उदाहरण है जो हर व्यक्ति से समान मात्रा में लिया जाता है, परन्तु इसकी राशि राजस्व की दृष्टि से विशेष महत्व की नहीं होती। करदाता से समान मात्रा में कर लेने में करदाता की आय तथा अन्य परिस्थितियों पर कोई भी विचार नहीं किया जाता। अतः ऐसा कर न्यायशील नहीं होता।

इसके पश्चात् समानुपाती कर न्यायसंगत कहा गया। ऐसे कर से समर्थक फिजियोक्रैट्स, मान्टेस्क्यू, एडम स्मिथ, मैकुलाच तथा सीनियर थे। परन्तु अन्त में, सीमान्त उपयोगिता का विचार तथा ह्रासगत सीमान्त उपयोगिता नियम का प्रतिपादन होने से प्रगतिशील कर को ही न्यायसंगत माने जाना लगा है।

उदाहरण : निम्न तालिका में समान कर समानुपाती कर तथा प्रगतिशील कर के उदाहरण दिये हैः–

		अ	अ	अ
		Rs.	Rs.	Rs.
	आय :	1000	10000	50000
1.	समान कर :	100	100	100
2.	समानुपाती कर :	100	1000	5000
3.	प्रगतिशील कर :	100	1500	10000

(दर = 10%)

(दरें = 10% , 15% तथा 20% कमशः)

उपर्युक्त करों में से समान कर तथा समानुपाती कर को आधुनिक विचार के अनुसार न्यायसंगत नहीं माना जाता, प्रगतिशील कर ही न्यायसंगत माना जाता है। आधुनिक युग में आर्थिक विषमता को दूर करना न्यायशीलता का एक आवश्यक पहलू बन गया है।

यहॉ पर यह उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि स्वयं एडम स्मिथ के शब्दों के दो अर्थ लगाये जा सकते है : एक ओर, 'अनुपात में' शब्दों का यह अर्थ लगाया जा सकता है कि सबको अपनी आय के किसी उचित सम्बन्ध में योगदान करना चाहिए ; दूसरे यह भी अर्थ हो सकता है सब अपनी आय का समान अंश त्याग करें। इसके अतिरिक्त , 'Wealth of Nations'में ऐसे उदाहरण भी मिलते है जो समानुपाती दर तालिका के बजाय प्रगतिशील दर तालिका का सुझाव देते है।

2. निश्चितता का सिद्धान्त

इसका अर्थ यह है कि करदाता तथा कर पाने वाले अर्थात् सरकार दोनों को ही

1. कर की मात्रा
2. कर चुकाने का समय
3. कर चुकाने की रीति
4. कर चुकाने का स्थान

आदि का निश्चित रूप से सही और पूरा ज्ञान होना चाहिए। एडमस्मिथ के शब्दों में ही,

'' हर व्यक्ति को कर देना है, निश्चित होना चाहिए। मनमाना नहीं। भुगतान का समय, भुगतान की विधि, भुगतान की जाने वाली राशि, करदाता तथा हरेक व्यक्ति को स्पष्ट और साफ होना चाहिए।''

निश्चितता के अभाव में कर की वसूली में अनावश्यक व्यय होगा तथा बजट बनाने में भी कठिनाई होगी। इसके अतिरिक्त अन्य दोष भी उत्पन्न हो सकते है जैसे कर की चोरी, भ्रष्टाचार, घूस–खोरी, जनता में असन्तोष आदि। कर अधिकारियों के यहॉ बार–बार चक्कर लगाने और पूछ–ताछ करने में भी करदाता को असुविधा होगी। दूसरी ओर, यदि करदाता को विभिन्न बाते निश्चित रूप से ज्ञात हो, तो वह कर चुकाने की उपयुक्त व्यवस्था कर सकेगा और अपने व्यय की एक सुव्यवस्थित योजना भी बना सकेगा। इस प्रकार, निश्चितता के कारण ही कहा जाता है कि ''पुराना कर, कर नहीं है'' क्योकि पुराने कर की राशि, उसके भुगतान की रीति तथा समय से करदाता इतना अभ्यस्त हो जाता है कि उसे वह कर भार नहीं लगता। एडम स्मिथ ने लिखा था, कि एक व्यक्ति को जितना कर देना होता है उसका निश्चित होना इतना अधिक महत्वपूर्ण है कि सभी देशों के अनुभव के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहॅुचा हूॅ कि करों की बहुत बड़ी असमानता इतनी हानिकर नहीं होती जितनी कि अनिश्चितता की थोड़ी सी मात्रा होती है।

निश्चितता के लिये कई बातें आवश्यक है। प्रथम, कर अधिनियम, निर्देश एवं नियम स्पष्ट होने चाहिए। इसके अतिरिक्त, कर प्रशासन में स्वेच्छा की गुंजाइस न्यूनतम होना चाहिए।

3. सुविधा का सिद्धांत

एडमस्मिथ के कथनानुसार,

प्रत्येक कर ऐसे समय पर या ढंग से लगाया जाये कि करदाता को भुगतान करने मे वह अत्यधिक सुविधाजनक हो।

अतः, इस सिद्धान्त के अनुसार, सरकार को प्रत्येक कर चुकाने का समय, रीति, स्थान आदि इस प्रकार नियत करना चाहिए, कि वे करदाता के लिए अधिक से अधिक सुविधाजनक हों। विभिन्न करदाताओ की सुविधायें अलग अलग होती है। किसान के लिए लगान तथाा अन्य करों का देना, द्रव्य की अपेक्षा अनाज में अधिक सुविधाजनक होगा। इसी प्रकार उसे अधिक सुविधा तब होगी, जब कर फसल कटने के बाद ही लिया जाय।

निम्न कुछ उदाहरण ऐसे है जिनमें इस सिद्धान्त का विचार किया जाता है।

1. लगान दो भागो में वसूल किया जाता है– एक रवी और दूसरा खरीफ की फसल के बाद। फसल कटने के बाद लगान का चुकाना किसान के लिये सुविधाजनक होता है।
2. वेतन तथा ब्याज व लाभांश पर कर आय देने वाला व्यक्ति व कम्पनी स्वयं ही काट लेती है। इसे कर की श्रोत पर कटौती कहते है। इसमें करदाता को सुविधा होती है। कि कर चुकाने के लिये उसे व्यवस्था नहीं करनी पड़ती।
3. आय–कर साधारणतया तब ही दिया जाता है जबकि आय वास्तव में प्राप्त हो गई हो। तदनुसार, आयकर पिछले वर्ष की आय पर निर्धारित किया जाता है।
4. उपभोक्ताओं को अप्रत्यक्ष कर बहुत छोटे छोटे हिस्सों में वस्तु खरीदते समय जब कि उनके पास धन होता है, देना पड़ता है। इस प्रकार, अप्रत्यक्ष कर करदाताओं के लिये अधिक सुविधाजनक होते है।

लाभ :–

1. पर्याप्त मात्रा में सरकार को आय
2. कर की चोरी से बचाव
3. कर का भार करदाता को अनुभव न होना
4. कर वसूली में करदाता तथा सरकार दोनो को कम से कम असुविधा।

4. मितव्यता का सिद्धान्त

एडमस्थिम के कथनानुसार,

'प्रत्येक कर की रचना इस प्रकार की जाए कि जो भी राजकीय खजाने को प्राप्त हो, उसके अतिरिक्त व्यक्तियों की जेबों से कम से कम निकले।

अतः इस सिद्धान्त का अर्थ है कि करों के वसूल करने तथा चुकाने पर कम से कम व्यय होना चाहिये। यदि कर वसूली में इतने अधिक व्यक्तियों को नौकरी पर रख लिया जाय कि कर की राशि का अधिकांश भाग उन्ही के वेतनों पर खर्च हो जाय, तो यह अपव्ययता होती। यदि कर से प्राप्त आय उसकी वसूली में लगे खर्च से भी कम हो तो यह वांछनीय नहीं होगा।

साथ ही, यह भी उचित होगा कि कर की मात्रा निर्धारित करने तथा भुगतान की तैयारी के लिये करदाता को भी कम से कम व्यय करना पड़े। यदि करदाता को विस्तृत लेखा रखना पड़ता है, जटिल विवरण पत्र भरना पड़ता है, कर–अधिकारियों के यहॉ बार–बार चक्कर लगाने पड़ते है तथा विशेषज्ञों की सहायता लेनी पड़ती है तो उसे भारी व्यय करना पड़ेगा और यह भी अपव्ययता होगी। फलस्वरूप, जहॉ तक हो सकेगा वह कर से बचने का प्रयत्न करेगा, जिसका

राजकीय आय पर भी बुरा प्रभाव प्रड़ेगा। इसी प्रकार, थोड़े से उत्पादक करों का लगाना, बहुत से अनुत्पादक करों के लगाने की अपेक्षा अधिक अच्छा समझा जाता है।

मितव्ययता के अभाव में कर का बोझ अनावश्यक बढ़ जाता है। उदाहरण के लिये, यदि सरकार को 100 करोड़ रूपये की आय की आवश्यकता है, जिसकी वसूली की लागत 5 प्रतिशत हो तो कुल 105 करोड़ रूपये के बराबर कर लगाने होगें। यदि वसूली की लागत अधिक हो जैसे 10 प्रतिशत तो 100 करोड़ रूपये की आवश्यकता पूरा करने के लिये 110 करोड़ रूपये के कर लगाने होंगे। फलस्वरूप जनता पर कर का भार अनावश्यक बढ़ जाएगा। साथ ही करदाता का विश्वास भी उठ जाता है। वेंगनर, राबर्टजोन्स, विकस्टीड और हाब्सन के अनुसार मितव्ययता का सिद्धान्त एक उचित सिद्धान्त है।

लाभ :

इस सिद्धान्त के निम्न लाभ होगें

1. अनावश्यक कर–भार से बचाव,
2. कर की चोरी से बचाव,
3. कर अधिनियम तथा प्रशासन में जनता का अधिक विश्वास।

एडम स्मिथ के सिद्धान्त आज भी उतने ही महत्व के है जितने वे उस समय थे जबकि उनका प्रतिपादन किया गया था। वास्तव में प्रथम सिद्धान्त को छोड़कर एडम स्थिम के अन्य सिद्धान्त कर अधिकारियो के लिये महत्वपूर्ण प्रशासन सम्बन्धी निर्देशन प्रदान करते है। शिराज के अनुसार, जितनी सफलता एडम स्मिथ को कर के सिद्धान्तों को सरल और स्पष्ट रूप में रखनें में मिली है, उतनी सफलता अन्य किसी विद्धान को नही मिली है। आज एडम स्मिथ के कर के सिद्धान्त को राजकीय वित्त के अध्ययन का एक आवश्यक अंग समझा जाता है।

2. आधुनिक करारोपण के सिद्धान्त

एडम स्मिथ द्वारा बताये बताये गये सिद्धान्त आज से 200 वर्ष पहले के है। ऐसी दशा में, बाद के राजस्व शास्त्रियों ने करारोपण के कुछ नवीन सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया है जो एडम स्मिथ के सिद्धान्तो के पूरक माने जाते है। यह नवीन करारोपण के सिद्धान्त निम्न है :

1. उत्पादकता का सिद्धान्त

व्यावहारिक दृष्टिकोण से इस सिद्धान्त को सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त माना जाता है।

इस सिद्धान्त का अर्थ यह है, कि कर इस प्रकार लगाना चाहिए कि सरकार को पर्याप्त आय प्राप्त हो जाय। उत्पादकता का यह भी अर्थ है कि सार्वजनिक आय भविष्य में भी पर्याप्त मात्रा में होती रहेगी। इसके अतिरिक्त, एक कर जिससे अधिक आय होती है ऐसे छोटे–छोटे करों कि तुलना में पसन्द किया जाना चाहिए जिनसे आय कम तथा जिन पर व्यय बहुत होता है। अन्त में, पर्याप्त आय नियमित रूप से प्राप्त होते रहना चाहिए।

उत्पादकता को अल्पकालीन दृष्टिकोण से ही नही देखना चाहिए, क्योकि हो सकता है, अल्पकाल में अधिक आय प्राप्त करने की चेष्टा में सरकार ऐसी कर नीति अपना लें कि जिससे आगे चलकर सरकार की आय सूख जाये। बहुधापाया जाता है कि उच्ची दर से सरकार की आय गिर जाती है क्योकि लोग वैधानिक तथा अवैधानिक दोनो तरीकों से कर से बचने कि कोशिश करते है फिर उची कर की दरों से काम करने, बचत करने एवं विनियोग करने की शक्ति तथा इच्छा पर खराब प्रभाव पड़ सकता है तथा उद्योग एवं व्यवसाय को आर्थिक धक्का लग सकता है जिससे सरकार की आय गिरने की सम्भावना बढ़ जाती है।

करों की उत्पादकता निम्न तत्वों पर निर्भर होती है :

1. **कर का आधार** :– यदि कर का आधार विस्तृत हो तो आय अधिक होगी;
2. **कर की दर** :– दरें ऊँची होने पर उत्पादकता बढ़ भी सकती है और घट भी;

3. **कर की छूटें** :– छूट की मात्रा अधिक होने पर उत्पादकता कम होगी ;
4. **समाज की सम्पत्ति तथा उसके आर्थिक विकास की दशा** :– यदि देश विकसित है, राष्ट्रीय आय अधिक है तो उत्पादकता अधिक होगी;
5. **करदाताओं की प्रवृत्ति** :– यदि करदाता विरोध करते है, तो उत्पादकता कम होगी।

उत्पादकता के लिए निम्न बातें विशेषतया आवश्यक है:–

1. कर–प्रशासक कुशल होना चाहिए।
2. कर अधिनियम ठीक प्रकार से बनाने चाहिए।
3. कर–दाताओ का सहायोग प्राप्त होना चाहिए।

2. **लोच का सिद्धान्त**

लोच के सिद्धान्त से तात्पर्य यह है कर प्रणाली ऐसी होनी चाहिए कि आवश्यकतानुसार सरकार की प्राप्ति में कमी या वृद्धि थोड़े समय में ही की जा सके। इसके अतिरिक्त, यदि देश की राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो रही हो तो साथ–साथ करों से प्राप्त आय में भी स्वतः वृद्धि होनी चाहिए। कर प्रणाली के इस गुण को स्वनिर्मित लोच कहते है।

कर प्रणाली में लोच की आवश्यकता आपत्तिकालीन परिस्थितियों जैसे युद्ध, बेरोजगारी आदि का सामना करने के लिये विशेषकर होती है युद्धकाल में तुरन्त ही बहुत धन की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार आर्थिक मन्दी के समय भी सरकार को धन व्यय करने के लिये अधिक आय की आवश्यकता रहती है। कर प्रणाली में लोच होने से इन परिस्थितियों का सामना करने के लिये आय सरलता पूर्वक बढ़ाई जा सकती है।

लोच के सिद्धान्त का पालन करनें के लिये सरकार को पहले से ही योजना बना लेनी चाहिए कि कर लगाने के तरीकों, कर–आधारों तथा दरों में किस प्रकार से परिवर्तन करना होगा। बहुधा सरकारें कुछ करों को जैसे सामान्य बिक्रीकर या उच्चदर वाला आयकर, आपात् काल में प्रयोग के लिये सुरक्षित रखती है उदाहरणार्थ अति–लाभकर (Excess profit tax)

3. **विविधता का सिद्धान्त**

कर प्रणाली में विविधता भी होनी चाहिए अर्थात् कई प्रकार के कर होना चाहिए। इससे लाभ यह है, कि हरेक व्यक्ति को जिसे राज्य की सेवाओं से लाभ प्राप्त होता है, चाहे वह धनी हो या निर्धन, अपनी परिस्थितियों और क्षमता के अनुसार, सरकार को कुछ न कुछ देना ही पड़ेगा। इसके अलावा, सरकार को पर्याप्त आय मिल सके, इसके लिए भी विविधता का गुण आवश्यक है।

परन्तु विविधता से यह अर्थ नहीं है कि करों की संख्या अनावश्यक बढ़ा दी जाय, क्योंकि इससे तो फिर अपव्यय की सम्भावना ही बढ़ती है, कर–प्रशासन पर अनावश्यक बोझ बढ़ता है और करदाताओ को भी कठिनाई होगी।

4. **सरलता का सिद्धान्त**

कर प्रणाली में सरलता का गुण भी होना चाहिए जिससे कि साधारण नागरिक तथा कर अधिकारी दोनो ही उसे आसानी से समझ सके। यदि कर सम्बन्धी कानून व नियम पेचीदा व जटिल हैं, तो करदाता को असुविधा होती है, वे सरकार से असन्तुष्ट रहते है और कर से बचने का यत्न करते है। सरलता के लिए यह आवश्यक है कि कर–अधिनियम ठीक से बनाये जायें; उनका मतलब सरलता से निकाला जा सके, कर–निर्धारण सम्बन्धी उद्देश्यो को समझने में कठिनाई न हो तथा कर की मशीनरी को भी समझा जा सके।

5. **स्थायित्व का सिद्धान्त**

इसका तात्पर्य यह है, कि व्यापार चक्र उतार–चढ़ाव के साथ सरकार को करों से होने वाली आय में स्थायित्व रहे, ज्यादा उतार चढाव न हो। उदाहरण के लिए अवसाद काल में सरकार की आय में कमी होना स्वाभाविक है परन्तु कर प्रणाली में ऐसे प्रयोजन होना चाहिए, कि कमी विशेष न हो।

इसके लिए, कर का आधार विस्तृत होना चाहिए। यह सुझाव दिया जाता है कि सरकार को आपातकाल में प्रयोग के लिए अपनी आय का कुछ भाग सुरक्षित रख लेना चाहिए।

6. वांछनीयता कर सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक कर किसी न किसी आधार पर लगाया जाय ताकि उसका औचित्य सिद्ध किया जा सके। किसी कर को लगाने के पहले भली भॅाति यह समझ लेना चाहिए, कि वह क्या कारण है जिसकी वजह से कर लगाया जा रहा है और किस उद्देश्य की पूर्ति होगी। बिना समुचित कारण व आधार के तथा बिना उद्देश्य समझाये, किसी कर का लगाना उचित नही होगा।

इस सिद्धान्त की आवश्यकता इस कारण से होती है कि लोग अधिकांशतः पुराने करों की अपेक्षा नये करों का लगना पसन्द नहीं करते बल्कि उल्टा उनका विरोध करते है। ऐसी दशा में, किसी नये कर के लगाने में सफलता तब ही मिलेगी जब कि नये कर लगाने का उपयुक्त आधार हो ताकि करदाताओ को उसके औचित्य के बारे में भली भॅाति समझाया जा सके।

7. समन्वयता का सिद्धान्त

कर प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जिससे एक ही वस्तु पर अनेक स्थानों पर अथवा अनेक बार कर न चुकाना पड़े। उदाहरण के लिये कभी–कभी एक ही वस्तु पर पहले एक राज्य और फिर दूसरा राज्य बिक्री कर लगाता है जो उचित नही समझा जाता। अतः देश में विभिन्न राज्यों, नगरपालिकाओं एवं पंचायतों की कर नीतियों में समन्वयता स्थापित करने की आवश्यकता होती है।

उपसंहार :–

निश्चय ही किसी भी कर प्रणाली में उपर्युक्त सभी सिद्धान्त विद्यमान नहीं हो सकते। लगभग ऐसा कोई भी कर प्रणाली नहीं है जिस पर उक्त सभी सिद्धान्त लागू हो सके। ऐसी दशा में उपयुक्त यह होगा, कि एक प्रणाली में अधिक सिद्धान्तो का यथा सम्भव समावेश हो।

3.5 कर–दान क्षमता या कर–देय क्षमता

करदान क्षमता शब्द को दो अर्थो में प्रयुक्त किया गया हैः

1. पूर्ण करदान क्षमता
2. सापेक्ष्य करदान क्षमता

पूर्ण करदान क्षमता

पूर्ण करदान क्षमता से तात्पर्य राष्ट्रीय आय के उस भाग से है जो किसी देश की सरकार बिना उत्पादन तथा कार्यकुशलता पर अनुचित प्रभाव डाले, कर के रूप ले सकती है, इसे करारोपण की आर्थिक सीमा भी कह सकते है।

रिचर्ड मसग्रेव के अनुसार, करदान क्षमता सार्वजनिक गृहस्थी के आकार की वह उपरी सीमा बताती है कि जहॉ तक निजी क्षेत्र उसे सम्हाल सकता है। वास्तव में, सरकार कर लगाकर दुर्लभ साधनों को व्यक्तियो परिवारों एवं व्यवसायों से ले लेती है, और फिर उन्हें सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति पर या दूसरे शब्दों में, व्यक्तिगत क्रियाओं से भिन्न सामूहिक क्रियाओं पर व्यय करती है। इस प्रकार, सरकार द्वारा साधन निजी क्षेत्र से निकाल कर, सार्वजनिक क्षेत्र की ओर मोड़ दिये जाते है। जिस सीमा तक, इस क्षेत्र परिवर्तन का अर्थ–व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव

पड़े बिना किया जा सके वह ही करदान क्षमता की सीमा होगी। अतः करदान क्षमता को साइमन कजनेट्स की संक्षिप्त शब्दावली में मोड़ क्षमता भी कहा जा सकता है।

व्यवहारिक सीमा – व्यवहार में, करदेय क्षमता की वास्तविक सीमा आर्थिक सीमा से भी कम होती है क्योकि व्यावहारिक सीमा राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक तथा प्रशासकीय तत्वों पर निर्भर करती है। उदाहरणार्थ निम्न दशाओं में लोग कम कर देने के लिये इच्छुक होगे :

1. यदि सरकार विदेशी हो, क्योकि ऐसी सरकार में लोगों की आस्था कम होती है।
2. यदि देश में जनतांत्रिक प्रणाली हो क्योंकि यहां सरकार को जनता की भावनाओं का अधिक ध्यान रखना पड़ता है।
3. यदि सरकारी व्यय में अपव्यय हो रहा हो क्योंकि लोग कर चुकाने में कम तत्परता दिखाते है।

इसी प्रकार, यदि देश में कोई संकट आ गया हो जैसे विदेशी आक्रमण तो लोगो की करदेय क्षमता भी अधिक होगी।

सापेक्ष्य करदान क्षमता

सापेक्ष्य करदान क्षमता से तात्पर्य उस अनुपात से है जिसके अनुसार अमुक कर भार विभिन्न समुदायो, क्षेत्रों व व्यक्तियों के बीच वितरित होता है। प्रो0 शिराज के अनुसार, सापेक्ष्य करदान क्षमता यह स्पष्ट करती है, कि एक राज्य दूसरे राज्य की तुलना में सामूहिक कार्यो के लिये कितना योगदान दे, अथवा कर–भार का वितरण एक संघ के अन्तर्गत विभिन्न राज्यों अथवा प्रान्तों के बीच किस प्रकार किया जाय। डाल्टन के अनुसार इस विचार के अन्तर्गत यह देखना होता है कि समान व्यय के लिये दो या अधिक समुदायो को किस अनुपात में करारोपण द्वारा अंशदान करना चाहिए। यदि इनमें से कोई एक समुदाय अपने हिस्से के अनुपात से अधिक अंशदान कर रहा हो तो हम कह सकते है कि सापेक्ष्य अर्थ में, उसकी कर–दान क्षमता पार हो चुकी है। डाल्टन के अनुसार, सापेक्षिक करदान क्षमता के अन्तर्गत समस्या वैसी ही है जैसी कि कर–देय योग्यता की कसौटी के अनुसार किसी दिये हुये कर के भार का दो या अधिक व्यक्तियों के बीच वितरित करने की है। अतः करदेय योग्यता का नया नामकरण करदान क्षमता भी रखा जा सकता है।

पूर्ण एवं सापेक्ष्य करदान क्षमता में अन्तर :

पूर्ण करदान क्षमता एवं सापेक्ष्य करदान क्षमता में होने वाले अन्तर को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है जब हम यह जानना चाहे, कि कोई देश कर के भार के रूप में कितना बोझ उठा सकता है तो पूर्ण करदान क्षमता का अनुमान किया जाता है। दूसरी ओर, सापेक्ष्य करदान क्षमता द्वारा यह नियत किया जाता है, कि किसी निश्चित कर–भार का विभिन्न राज्यों में जो कि एक संघ के अंग है, किस अनुपात में वितरण हो या किसी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन में विभिन्न सदस्य देश किस अनुपात में प्रतिदान दे ताकि प्रतिदान न्यायशील रहें। पूर्ण करदान क्षमता के लिये हम कर की उस मात्रा की जॉच करते है, जो उत्पादन एवं कार्य कुशलता पर खराब प्रभाव पड़े, बिना प्राप्त की जा सकती है सापेक्ष्य करदान क्षमता वह अनुपात है जिसके द्वारा विभिन्न समुदाय पर कर का भार न्याय संगत किया जाता है।

3.5.1 कर–दान क्षमता निर्धारित करने के तत्व

1. **देश की जनसंख्या** – 1. जनसंख्या अधिक है तो अन्य बातो के समान रहते हुये करदेय क्षमता भी अधिक होगी। 2. यदि जनसंख्या में बच्चे तथा बूढ़े लोग अधिक हो तो कर क्षमता कम होगी।

यह भी उल्लेखनीय है कि करदान क्षमता इस बात पर भी निर्भर करती है, कि जनसंख्या तथा राष्ट्रीय आय में तुलनात्मक रूप से कितनी वृद्धि हो रही है। जनसंख्या की अपेक्षा

राष्ट्रीय आय जितनी अधिक तेजी से बढ़ेगी करदान क्षमता भी उतनी ही तेजी से बढ़ेगी; इसके विपरीत, यदि देश में राष्ट्रीय आय की तुलना में जनसंख्या अधिक तेजी से बढ़ रही हो तो करदान क्षमता उतनी ही कम होगी।

2. **धन का वितरण** : यदि राष्ट्रीय आय एक समान हो तो धन का वितरण असमान होने पर करदान क्षमता अधिक होगी। लेकिन धन का वितरण समान होने पर करदान क्षमता कम होगी। तर्क यह है कि असमान वितरण होने पर थोड़े से धनी व्यक्तियो पर ही कर लगाना होगा अधिकांश निर्धन व मध्यम वर्ग के लोग तो करदान क्षमता न होने की वजह से कर–मुक्त रहेंगे। अतः एक तो कर संग्रह का व्यय कम होगा और दूसरे थोड़े से धनी व्यक्तियों से सरलतापूर्वक एवं अधिक मात्रा में कर वसूला जा सकेगा।

परन्तु इस सम्बन्ध में निम्न बातें भी ध्यान योग्य है :–

1. धन का समान वितरण होने से बहुत से लोगों की कार्य क्षमता में वृद्धि हो जायेगी जिसके फलस्वरूप उत्पादन बढ़ेगा अतः राष्ट्रीय आय एवं करदान क्षमता भी बढ़ेगा।
2. धन के असमान, वितरण का समर्थन इस आधार पर करना चाहिए कि करदान क्षमता अधिक होगी, अनैतिक होगा।
3. **कर प्रणाली** :– यदि कर प्रणाली के अन्दर विभिन्न प्रकार के करों का ऐसा सम्मिश्रण किया जाये, कि लगभग प्रत्येक व्यक्ति पर किसी न किसी रूप में कर लग जाता है तो सरकार के लिये अधिक आय प्राप्त करने की सम्भावना बनी रहेगी।
4. **कर का उद्देश्य** :– यदि कर लगाने का उद्देश्य जनकल्याण हो तो लोग अधिक कर देने के लिये तत्पर रहेंगे। अकाल, युद्ध शिक्षा आदि के लिये बढ़ाये गये कर का विरोध कम होता है परन्तु यदि कर का उद्देश्य अधिकारियों के वेतन में वृद्धि, विदेशियों की सहायता आदि हो तो करदाता की उत्सुकता कम हो जायेगी और वह स्वेच्छा से कर देना नहीं पसन्द करेगा।
5. **गैर–मौद्रिक अर्थव्यवस्था का होना** – गैर–मौद्रिक अर्थ–व्यवस्था में करारोपण की सम्भावना कम हो जाती है। उदाहरण के लिये अन्न के रूप में आय प्राप्त करने वालों पर आय–कर नहीं लगाया जा सकेगा। साथ ही, अदल–बदल प्रणाली में बिक्री कर नहीं लगाया जा सकता। भारत जैसे देश में जहॉ अर्थ–व्यवस्था का एक बडा भाग गैर–मौद्रिक है और कृषि उत्पादन के अधिकतर भाग को बाजार में मुद्रा द्वारा खरीदा बेचा नहीं जाता, यह बात लागू होती है। यहॉ किसान उत्पादन का बहुत बड़ा भाग या तो स्वयं उपभोग करते है या मजदूरी के रूप में मजदूरो को दे देते है। आज भी गावों में अनाज से ही विभिन्न वस्तुओं को बदलने की प्रणाली प्रचलित हैं।
6. **करदाताओं की मनोवृत्ति** :– जितनी ही सरकार के प्रति जनता की श्रद्धा अधिक होगी उतना ही अधिक कर वसूल हो सकेगा। विदेशी सरकार की अपेक्षा अपनी सरकार को अधिक कर प्राप्त हो सकता है। राष्ट्रीय संकट के समय लोगों के देश प्रेम व भक्ति को जागृत करके सरकार अधिक आय प्राप्त कर सकती है। वर्तमान भारतीय सरकार ब्रिटिश सरकार की अपेक्षा अधिक कर तथा कर्ज आसानी से ले लेती है। इसी प्रकार सरकारी नीतियों को जितना समर्थन प्राप्त होगा व सरकार के साथ जितना सम्पर्क होगा, उतनी ही अधिक करदान क्षमता होगी।
7. **आय की स्थिरता** :– यदि आय स्थिर होगी तो करदेय क्षमता भी अधिक होगी। भारत में अधिकतर व्यक्तियों की आय अनिश्चित है क्योकि वह मानसून की सफलता पर निर्भर है, अतः करदान क्षमता कम है।

8. **मुद्रा स्फीति** : ऐसी दशा में लोगों की कयशक्ति बढ़ी हुई होती है अतः आय के बढ़ जाने से अधिक कर दिये जा सकते है।
9. **देश की आर्थिक स्थिति** :– यदि कृषि तथा औद्योगिक विकास हुआ है तो उत्पादन अधिक होने के कारण करदेय क्षमता अधिक होगी।
10. **कर–प्रशासन** :– यदि कर–प्रशासन सुदृढ़, कुशल एवं ईमानदार है तो करदान क्षमता अधिक होगी। इसके विपरीत शिथिल एवं भ्रष्टाचार पूर्ण कर–प्रशासन होने पर करदान क्षमता कम होगी।
11. **सार्वजनिक व्यय का उद्देश्य** :– रचनात्मक, निर्माणकारी तथा कल्याणकारी कार्यो के लिये अधिक कर प्राप्त किये जा सकते है।

3.5.2 कर–दान क्षमता की माप

करदेय क्षमता राष्ट्रीय आय पर निर्भर करती है अतः जैसा फिण्डले शिराज ने बताया है, इसे मापने के लिये दो विधियो का प्रयोग किया जा सकता हैः

1. आय प्रणाली
2. उत्पादन प्रणाली

इन प्रणालियों को समझने के लिये यह जानना उपयोगी होगा कि राष्ट्रीय आय को दो प्रकार से प्रकट किया जा सकता है :–

1. आय योगफल
2. उत्पादन योगफल

1. **आय योगफल** – जब देश में वस्तुओं का उत्पादन होता है तो उस के फलस्वरूप विभिन्न उत्पादन के साधनों से आय प्राप्त होती है जैसे मजदूरों को मजदूरी, मकान मालिकों को किराया, पूँजी प्रदान करने वालों को ब्याज।

अतः राष्ट्रीय आय ज्ञात करने के लिये विभिन्न प्रकार की आयों का योग ज्ञात किया जाता है जेसे मजदूरी और वेतन (W), ब्याज (I), किराया (R), लाभांश (D), कम्पनियों के अवितरित लाभ (P), इसके अतिरिक्त, सरकार को दिये गये अप्रत्यक्ष व्यापारिक कर (Indirect Business Taxes) भी जोड़े जाते है क्योकि इन्हें सरकार द्वारा प्रदान की गई सेवाओं का मूल्य माना जाता है। यह भी ध्यान रहे कि विभिन्न आयो की सकल राशि जोड़ी जाती है अर्थात, कर देने के पूर्व की आय। इस प्रकार ज्ञात की गई राष्ट्रीय आय को शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद कहते है। इसमें यदि ह्रास की राशि जोड़ दी जाय तो सकल राष्ट्रीय उत्पाद ज्ञात हो जाती है। इस प्रकार :

NNP=W+I+R+D+P+IBT

GNP=NNP+Depreciation

NNP= Net National Product शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद

GNP = Gross National Product सकल राष्ट्रीय उत्पाद

2. **उत्पादन योगफल** – इस विधि के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की अन्तिम वस्तुओ के उत्पादन मूल्य को ज्ञात किया जाता है। यहॉ, ध्यान योग्य बात है कि केवल अन्तिम उत्पादों के मूल्य ही जोड़े जायेगें, क्योकि कच्चे मालों और मध्यवर्ती उत्पादों के मूल्य अन्तिम उत्पादों में शामिल ही रहते है। जैसे कपड़े के मूल्य में सूत का मूल्य और सूत के मूल्य मे कपास का मूल्य। इसी प्रकार मोटर कार के मूल्य में इस्पात का मूल्य शामिल रहता है। अतः यदि कपड़े के मूल्य के साथ सूत तथा कपास का मूल्य जोड़ा जाय या कार के मूल्य के साथ उसमें प्रयोग की गई इस्पात का मूल्य जोड़ा जाय, तो यह दोहरा या बहुअंकन होगा जिससे राष्ट्रीय आय का गलत अनुमान निकलेगा। विभिन्न उत्पादों के मूल्य में निर्यात से शुद्ध आय (E) को भी जोड़ा जाता हैः

यदि निर्यात आयात से अधिक है तो यह आय धनात्मक होगी, यदि निर्यात आयात से कम है तो यह आय ऋणात्मक होगी। इस प्रकार प्राप्त राष्ट्रीय आय को सकल राष्ट्रीय उत्पाद कहते है। इसमें से यदि ह्रास घटा दिया जाय तो शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) ज्ञात होगा। अतः

G.N.P. = Output Total + (Net Exports)

NNP= G.N.P.- Depreciation

अब करदान क्षमता ज्ञात करने की निम्न विधियॉ होंगी–

अ–आय प्रणाली (Income Method)

इस विधि के अन्तर्गत निम्न चरण आते है :

1. प्रत्येक प्रकार की आय का योग ज्ञात किया जाय अर्थात मजदूरी और वेतन, ब्याज, किराया, लाभांश, कम्पनियों के अवितरित लाभ तथा अप्रत्यक्ष व्यापारिक करों का योग।
2. आय के योग में से न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये कुछ राशि (C) घटा दी जाय। अवशेष को सकल करदान क्षमता G.T.C. कहते हैं।
3. नये करों की सीमा ज्ञात करने के लिये सकल करदान क्षमता में से प्रभावित करारोपण (Effective Taxation)घटा देना चाहिये, तो शुद्ध करदेय क्षमता (Net T.C.) निकल आवेगी।
4. प्रभाविक करारोपण ज्ञात करने के लिये केन्द्रीय, राज्य तथा स्थानीय सरकारों द्वारा आरोपित कर (T) में से सरकार द्वारा देश में किया गया व्यय (E) घटा देना चाहिये, जैसेः–

1. ऋण पर दिया गया ब्याज तथा ऋण की वापसी
2. राष्ट्रीय विकास पर व्यय
3. सरकार द्वारा दिये गए अनुदान तथा बोनस आदि।

इस प्रकार

1- E.T = T-E;

2- G.T.C. = Y-C;

3- N.T.C. = G.T.C. - E.T.

E.T. = Effective Taxation

T=tax (सरकार द्वारा आरोपित कर)

E= Expenditure (सरकार द्वारा देश में किया गया व्यय)

G.T.C.= Gross Taxable Capacity (सकल करदान क्षमता)

Y= आय का योग (Yearly Income)

C= न्युनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कुछ धनराशि (Consumption)

NTC= Net Taxable Capacity , (शुद्ध करदान क्षमता)

E.T.= Effective Taxation (प्रभावित करारोपण)

आय प्रणाली की कठिनाइयॉ–

1. यह विधि उन देशों के लिये उपयुक्त है जहॉ व्यक्तियों की आय का ब्यौरा सुगमता पूर्वक मिल सके। परन्तु भारत जैसे देश में जहॉ अशिक्षितों की संख्या बहुत अधिक है, आय का लेखा नहीं मिलता।
2. इसके अतिरिक्त यदि आय के लेखे मिल भी जॉय, तो उनकी सत्यता की परख करना कठिन होता है। प्रत्येक व्यक्ति कर बचाने का प्रयत्न करता है, चाहे वह किसी देश में

क्यों न हो, इसलिये उनके द्वारा दिये गए लेखे में अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता।

3. न्यूनतम आवश्यकता पूर्ति के लिये कितनी धन राशि घटाई जाय इस सम्बन्ध में भी मतभेद हो सकता है।

व–उत्पादन प्रणाली

1. इसमें भिन्न 2 वर्गो के अन्तर्गत कितना उत्पादन हुआ है ज्ञात किया जाता है, जैसे कृषि, उद्योग, यातायात, व्यवसाय, आयात–निर्यात, निजी सेवायें आदि।
2. प्रत्येक वर्ग का फिर मूल्यांकन किया जाता है।
3. मूल्यांकन के पश्चात पूरा उत्पादन द्रव्य के रूप में ज्ञात हो जाता है।
4. उत्पादन के कुल मूल्य में से निम्न मदें घटा दी जाती है, ताकि सकल करदेय क्षमता ज्ञात हो जाय :–

1. पॅूजी का ह्रास तथा पॅूजी की बदली करने के लिये कुछ धनराशि
2. भविष्य के आर्थिक विकास के लिए कुछ पॅूजी की मात्रा
3. न्यूनतम उपभोग के लिये आवश्यक धन–राशि

फार्मूला –

1- O-D =G.T.C.

2- G.T.C.-E.T. =N.T.C.

जबकि **O = Output; D = Deductions;**

GTC = Gross Taxable Capacity

NTC = Net Taxable Capacity

E.T. = Effective taxation

3.6 कर–भार, करापात एवं कर–विवर्तन

राजस्व में करापात तथा कर के विवर्तन की समस्या का प्रमुख स्थान है। कर के विवर्तन की समस्या से अर्थ यह है, कि यदि किसी व्यक्ति पर कोई कर सरकार द्वारा लगाया गया है तो क्या उस व्यक्ति को ही वह कर सहन करना पड़ रहा है या उसने उस कर को किसी अन्य व्यक्ति पर टाल दिया है और वे कौन–कौन सी बातें है, जो कर के विवर्तन को निर्धारित करती है। करापात की समस्या यह है, कि किसी कर का मुद्रा भार किस व्यक्ति को अन्तिम रूप से सहन करना पड़ा है और इसके निर्धारक तत्व क्या है?

3.6.1 कर–भार

कर चुकाने में करदाता को धन तथा आर्थिक संतोष का त्याग करना पड़ता है। इस त्याग को ही कर का भार कहते है।

प्रकार –

डाल्टन ने कर के चार प्रकार के भार बताये है :–

1. प्रत्यक्ष मुद्राभार
2. प्रत्यक्ष वास्तविक भार
3. अप्रत्यक्ष मुद्राभार
4. अप्रत्यक्ष वास्तविक भार

1. **प्रत्यक्ष मुद्राभार :–** किसी कर के निमित्त जो धन राशि चुकाई जाती है, उसे कर का प्रत्यक्ष मुद्राभार कहते है। उदाहरणार्थ, आय कर के प्रत्यक्ष मुद्राभार से तात्पर्य, उस धन राशि से है, जो कि सरकार को आयकर के रूप में दी गई है।

2. **प्रत्यक्ष वास्तविक भार :–** प्रत्यक्ष मुद्राभार चुकाने में जो आर्थिक कल्याण का त्याग करना पड़ता है उसे कर का प्रत्यक्ष वास्तविक भार कहते है। इस प्रकार प्रत्यक्ष वास्तविक भार से मतलब आर्थिक कल्याण के रूप में किये गये त्याग से होता है जबकि प्रत्यक्ष मौद्रिक भार से अर्थ धन के रूप में किये गये त्याग से होता है।

प्रत्यक्ष वास्तविक भार के बारे में यह विचारणीय है कि यदि प्रत्यक्ष मुद्राभार धनी वर्ग के व्यक्ति चुकाये तो उन्हें उस धन की उपयोगिता कम होने के कारण ऐसी दशा में प्रत्यक्ष वास्तविक भार कम होगा परन्तु यदि निर्धन वर्ग के व्यक्ति चुकायें तो उस धन की उपयोगिता उन्हें अधिक होने के कारण प्रत्यक्ष वास्तविक भार अधिक होगा।

3. **अप्रत्यक्ष मुद्रा भार :–** कर के अप्रत्यक्ष मुद्राभार से तात्पर्य मुद्रा के उस त्याग से होता है जो कि करदाता को कर लगने के फलस्वरूप तो करना पड़ता है परन्तु कर के निमित्त नही। इसलिये यह धनराशि सरकार को कर के रूप में नहीं मिलती।

अप्रत्यक्ष मुद्रा भार के निम्न उदाहरण प्रमुख हैः–

1. करदाता जब कर की राशि सरकार को चुकाता है और बाद में अन्य किसी व्यक्ति पर उसे टालता है तो इन दोनों क्रियाओं के बीच कुछ समय लगता है। इसके कारण कर के रूप में दी गई धन–राशि पर ब्याज की हानि होती है। इस ब्याज की हानि को अप्रत्यक्ष मुद्राभार कहते है।
2. ब्याज की हानि से बचने के लिये करदाता वस्तु का मूल्य कर की राशि से कुछ और अधिक बढ़ा सकता है। इस अतिरिक्त मूल्य वृद्धि को जिसे कि उपभोक्ता को देना पड़ेगा, अप्रत्यक्ष मुद्राभार कहेंगे।
3. यदि कोई वस्तु उत्पादन व्यय ह्रास नियम के अन्तर्गत उत्पन्न की जा रही है और उस पर कर लगता है तो सम्भव है कि उस वस्तु के मूल्य में वृद्धि कर की राशि के बराबर न होकर कुछ और अधिक हो, ताकि कम उत्पादन करने से जो लागत बढ़ेगी वह भी पूरी हो जाय। इस प्रकार उपभोक्ता को कर राशि से कुछ और अधिक त्याग करना पड़ेगा और इस अतिरिक्त त्याग को अप्रत्यक्ष मुद्राभार कहेंगे।
4. कर लगने से उत्पादकगण उत्पादन में कमी कर देते है जिससे उन्हें मौद्रिक आय की कमी हो जाती है; इसे भी अप्रत्यक्ष मुद्राभार कहेंगे।

4. **अप्रत्यक्ष वास्तविक भार :–** कर के अप्रत्यक्ष वास्तविक भार से तात्पर्य आर्थिक कल्याण के उस त्याग से होता है जो कर लगने के फलस्वरूप तो होता है परन्तु कर के निमित्त दी हुई धनराशि के फलस्वरूप नहीं।

इसके निम्न उदाहरण प्रमुख है–

1. वस्तुओं के मूल्य बढ़ने के कारण उपभोग में कमी हो सकती है या घटिया किस्म की वस्तु का उपयोग बढ़ सकता है। इसमें आर्थिक कल्याण का त्याग होता है, जिसे अप्रत्यक्ष वास्तविक भार कहते है।
2. अप्रत्यक्ष मौद्रिक भार के रूप में धन का त्याग करने से भी आर्थिक कल्याण का त्याग होता है।

3.6.2 करापात

करापात कर का एक प्रकार का भार ही होता है और इसका सम्बन्ध प्रत्यक्ष मुद्रा भार से होता है। इसकी परिभाषा निम्न प्रकार से की जा सकती है।

''करापात से तात्पर्य किसी कर के उस प्रत्यक्ष मौद्रिक भार से होता है जो किसी व्यक्ति पर अन्तिम रूप से पड़ता है।'' इस प्रकार करापात की मुख्य विशेषतायें निम्न है :

1. यह एक मौद्रिक भार है अर्थात करापात सदैव मुद्रा के रूप में होता है।
2. यह एक प्रत्यक्ष भार होता है अर्थात करापात के रूप में दी गई धन–राशि कर चुकाने के निमित्त ही दी जाती है।
3. यह कर का अन्तिम भार होता है अर्थात यदि कर की धन–राशि को कोई करदाता दूसरे पर टाल देता है तो उस पर पड़ने वाले भार को हम प्रथम भार कहेंगे न कि करापात जबकि दूसरे व्यक्ति पर पड़ने वाले भार को हम करापात कहेंगे।

उदाहरण

मान लीजिये एक व्यक्ति को आयकर के रूप में 200 रू0 वर्ष भर के लिये देने पड़े और वह इस धन राशि को किसी अन्य व्यक्ति से वसूल नहीं कर पाया तो ऐसी दशा में हम कहेंगे कि इस व्यक्ति पर आयकर का करापात 200 रू0 के बराबर है क्योकि यह भार–

1. मुद्रा के रूप में है
2. प्रत्यक्ष है अर्थात् आयकर क निमित्त ही चुकाया गया है और
3. उस करदाता को 200 रू0 अन्तिम रूप से देने पड़े है।

अब हम एक दूसरा उदाहरण लेते है। मान लीजिये किसी वस्तु जैसे रेडियो के उत्पादक को उस पर 25 रू0 उत्पादन कर के रूप में देना पड़ा परन्तु बाद में उसने रेडियो का मूल्य 400 रू0 से बढ़ाकर 425 रू0 कर लिया और कर की राशि क्रेता से वसूल की, इस दशा में कर का अन्तिम भार क्रेता पर पड़ा न कि उत्पादक पर क्योकि क्रेता ने

1. मुद्रा के रूप में त्याग किया।
2. कर के निमित्त धन दिया, और
3. अन्तिम भार वहन किया।

उत्पादक पर जो भार पड़ा उसे हम करापात इसलिये नहीं कहेगे क्योकि उत्पादक को 25 रू0 अन्तिम रूप से नहीं सहन करने पड़े यद्यपि उसने भी त्याग मुद्रा के रूप में और कर के निमित ही किया था।

करापात और कर का प्रभाव में अन्तर

यहाँ पर करापात और कर के प्रभाव में अन्तर स्पष्ट करना भी उपयुक्त होगा। कुछ विद्वानों ने करापात और प्रभाव दोनो में कोई अन्तर नहीं किया, बल्कि उन्होने करापात शब्द का उपयोग विस्तृत अर्थो में किया जैसे मार्शल के अनुसार – करापात से तात्पर्य सब प्रभावो से होता है (Incidence means all effects).

पर आमतौर से करापात को संकुचित अर्थो में प्रयोग करना ही ठीक माना जाता है ताकि कर विवर्तन से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन ठीक प्रकार से हो सके। इस विचार के प्रमुख समर्थ डाल्टन तथा सेलिगमैन है। इस अन्तर के अनुसार, प्रत्यक्ष मौद्रिक भार को ही करापात कहा जायेगा और अन्य प्रकार की प्रतिक्रियायें जैसे प्रत्यक्ष वास्तविक भार, अप्रत्यक्ष मौद्रिक भार, अप्रत्यक्ष वास्तविक भार, करापात के अन्तर्गत नहीं आते बल्कि वे प्रभाव के अन्तर्गत आते है।

यद्यपि डाल्टन ने केवल इन्ही तीन प्रकार के भारों का उल्लेख किया है जिन्हे प्रभाव के अन्तर्गत माना जायेगा परन्तु कर की अन्य प्रतिक्रियाओं को भी प्रभाव के अन्तर्गत समझा जा सकता है। जैसे रोजगार, उत्पादन पर प्रभाव, आदि। सारांश यह है कि करापात से हमारा तात्पर्य

कर, के प्रत्यक्ष मुद्रा भार से होता है, जब कि कर की अन्य प्रतिक्रियाओं को हम प्रभाव के अन्तर्गत रखेंगें।

3.6.3 कर–विवर्तन (Shifting of Tax)

कर भार विवर्तन वह विधि है जिसके द्वारा कर का प्रत्यक्ष वास्तविक भार एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति पर हस्तांतरित किया जाता है। विवर्तन मूल्य परिवर्तन के द्वारा किया जाता है। यदि विक्रेता मूल्य में वृद्धि करके विवर्तन करता है तो यह आगे की ओर विवर्तन होगा यदि क्रेता मूल्य में कटौती करके पीछे की ओर विवर्तन करता है तो यह पीछे की ओर विवर्तन होगा कभी–कभी व्यापारी या उत्पादक यह अनुभव करता है कि यदि कर विवर्तन हेतु वस्तु का मूल्य बढ़ा दिया गया तो बिक्री गिर जावेगी। अतः वह उत्पादन कार्य मे प्रयुक्त वस्तुओं और सेवाओं के लिये कम मूल्य चुका कर के भार को उनके उत्पादको व विक्रेताओं पर हस्तांतरित करने का प्रयत्न करता है। इसे कर–विर्वतन को ही पीछे की ओर कर–विवर्तन कहते है।

विवर्तन

उत्पादक द्वारा

पीछे की ओर **आगे की ओर**

कच्चे माल की पूर्ति करने वालों पर श्रमिको पर थोक व्यापारियो पर फुटकर व्यापारियों पर उपभोक्ताओ पर

करापात एवं कर विवर्तन में अन्तर –

यहॉ पर करापात तथा कर के विवर्तन में अन्तर करना भी उचित होगा। वास्तव में विवर्तन मूल्य परिवर्तनों की एक क्रिया है, जिसके द्वारा कर के प्रत्यक्ष मुद्रा भार को अन्य व्यक्तियो पर टाला जाता है। जबकि विवर्तन एक क्रिया है, करापात इसी क्रिया का एक परिणाम है यदि विवर्तन नहीं हुआ तो करापात प्रथम करदाता पर ही पड़ेगा। कम विवर्तन हाने पर अन्य व्यक्तियो पर करापात कम पड़ेगा। अधिक विवर्तन होने पर अन्य व्यक्तियों पर करापात अधिक होगा। किसी कर के लगने पर यह अनिवार्य नहीं, कि उसका विवर्तन हो, परन्तु उस कर का करापात होना अनिवार्य है।

3.7 सारांश

सार्वजनिक आय से अभिप्राय सरकार द्वारा प्राप्त किये गये उस धन से है, जिसकी वापसी नही की जाती है। सार्वजनिक आय के अनेक श्रोत है, जैसे कर, शुल्क, लाइसेन्स शुल्क, जुर्माना, विशेष–निर्धारण, मूल्य, उपहार एवं अनुदान। कर सार्वजनिक आय का एक प्रमुख साधन है। कर लगाते समय कुछ सिद्धान्तों को ध्यान में रखना आवश्यक है। इन सिद्धान्तो को ही करारोपण का सिद्धान्त कहते है। करारोपण के सिद्धान्तो की सबसे महत्वपूर्ण व्याख्या एडम स्मिथ ने किया है। प्रो0 फिण्डले शिराज के अनुसार, एडमस्मिथ के बाद कोई भी विद्वान करारोपण के सिद्धान्तो को इतना सरल तथा स्पष्ट रूप में प्रस्तुत नही कर पाया है। प्रो0 एडम स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'Wealth of Nation' में करारोपण के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्त बताये है, जो

समता का नियम, निश्चितता का नियम, सुविधा का नियम तथा मितव्ययिता का नियम है। समता के नियम से आशय प्रगतिशील करो से है, निश्चितता का आशय कर के भुगतान का समय, विधि व धनराशि निश्चित होना चाहिए। सुविधा से आशय, कर चुकाने का समय, रीति व स्थान निश्चित होना चाहिए। मितव्ययिता से आशय करदाता को कर भुगतान के अतिरिक्त न्यूनतम राशि व्यय करना पड़े। कर–देय क्षमता से तात्पर्य, लोगो की आर्थिक समृद्धि या उनके जीवन–स्तर से है। जिस व्यक्ति की आर्थिक समृद्धि अधिक होगी, उसकी कर देने की योग्यता अधिक होगी। कर–भार के सम्बन्ध में तीन शब्द महत्वपूर्ण है कराघात, कर–विवर्तन तथा करापात। प्रत्येक कर का एक कर–भार होता है। सरकार जब कर लगाती है तो उसका प्रारम्भिक भार जिस व्यक्ति पर होता है उसे कराघात कहते है। कर के भार के कारण प्रत्येक करदाता, जिस पर कर लगाया जाता है वह चाहता है, कि यह दूसरे व्यक्ति पर टाल दिया जाए, यह टालने की प्रक्रिया ही कर–विवर्तन कहलाती है। यह टालने की प्रक्रिया तब तक चलती है जब तक कि इसे और टालना सम्भव नही होता है, उस दशा में, जिस व्यक्ति पर इसका अन्तिम भार पड़ता है, उस पर कर का करापात हुआ माना जाता है। एक वित्त मन्त्री के लिए यह जानना आवश्यक है, कि कर का अन्तिम भार किस व्यक्ति पर पड़ रहा है।

3.8 शब्दावली

कर (Tax) – कर एक अनिवार्य भुगतान है। कर के बदले करदाता को कोई प्रत्यक्ष वस्तु या सेवा नही प्रदान की जाती है।

शुल्क (fees) – शुल्क ऐच्छिक होता है परन्तु कर अनिवार्य होता है। शुल्क के उदाहरण पेटेन्ट शुल्क, रजिस्ट्रेशन शुल्क कोर्ट फीस आदि है।

लाइसेन्स शुल्क – शुल्क उन मामलो मे दिया जाता है जब सरकार कोई सेवा सम्पन्न करती है, लाइसेन्स शुल्क के अन्तर्गत सरकारी अधिकारी कोई कार्य न करके किसी व्यक्ति को कार्य या सेवा का अधिकार प्रदान कर देते है।

जुर्माना – जुर्माना तभी लगता है जबकि व्यक्ति ने कोई अपराध किया हो। जुर्माना का उद्देश्य अपराध–रोकना है।

विशेष निर्धारण – विशेष निर्धारण एक अनिवार्य अंशदान है जो प्राप्त होने वाले विशेष लाभ के अनुपात में लगाया जाता है उदाहरण विकास सेवी, विकास चार्ज आदि।

मूल्य – मूल्य वह ऐच्छिक भुगतान है जो सरकार व्यक्तियों से वस्तुओ और सेवाओं के बदले में प्राप्त करती है।

उपहार – कभी–कभी राष्ट्र–प्रेमी या दानात्मक स्वभाव के व्यक्ति या संस्था अथवा एक देश की सरकार अन्य देश को उपहार देती है। उपहार प्रायः बाढ़, सूखा महामारी व भूकम्प की स्थिति में दिये जाते है।

कर–देय क्षमता – कर–देय क्षमता से तात्पर्य लोगो की आर्थिक समृद्धि या उनके जीवन–स्तर से लगाया जाता है जिस व्यक्ति की आर्थिक समृद्धि अधिक होती है उसकी कर देने की योग्यता अधिक होती है।

प्रगतिशील कर – जब आय बढ़ने के साथ कर की दर बढ़ती जाती है तो ऐसे कर को प्रगतिशील कर कहते है। आयकर ऐसे कर का प्रमुख उदाहरण है।

प्रतिगामी कर – यदि आय बढ़ने के साथ–साथ कर की दर घटती जाय तो ऐसा कर प्रतिगामी कर कहलायेगा। ऐसे करो के उदाहरण अप्रत्यक्षकर (GST) है।

कराघात – जब सरकार किसी व्यक्ति पर कर लगाती है और उस राशि को उसी से वसूला जाता है इसे उस व्यक्ति पर कराघात कहेगें। उदाहरण के लिए उत्पादक पर कराघात होता है।

कर विवर्तन – उत्पादक कर की राशि थोक विक्रेता से वसूल लेता है, थोक विक्रेता फुटकर विक्रेता से वसूल लेता है कर के टालने की इस प्रक्रिया को कर–विवर्तन कहते है।

करापात – कर के टालने की प्रक्रिया जब समाप्त हो जाती है और जिस व्यक्ति पर इसका भार अन्त में, पड़ता है उस व्यक्ति पर करापात हुआ माना जाता है। उपभोक्ता पर करापात होता है।

3.9 बोध प्रश्न

रिक्त स्थान की पूर्ति करे।

1. कर एक .... भुगतान है।
2. शुल्क .... होता है।
3. .... के अन्तर्गत सरकारी अधिकारी कोई कार्य न करके किसी व्यक्ति को कार्य या सेवा का अधिकार प्रदान कर देते है।
4. जुर्माना का उद्देश्य .... है।
5. विशेष–निर्धारण का उदाहरण .... है।
6. मूल्य .... भुगतान है।
7. उपहार प्रायः .... की स्थिति में दिये जाते है।
8. कर देय क्षमता का तात्पर्य लोगो की .... से लगाया जाता है।
9. कराघात कर का .... है।
10. करापात कर का .... है।

3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. अनिवार्य
2. ऐच्छिक
3. लाइसेन्स शुल्क
4. अपराध–रोकना
5. विकास चार्ज
6. ऐच्छिक
7. प्राकृतिक आपदा
8. आर्थिक समृद्धि
9. प्रारम्भिक भार
10. अन्तिम भार

3.11 स्वपरख प्रश्न

1. सार्वजनिक आय को विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा किस प्रकार वर्गीकृत किया गया है ?
2. सार्वजनिक आय के वर्गीकरण पर एक टिप्पणी लिखिए।
3. कर की परिभाषा दीजिये तथा इसकी प्रमुख विशेषतायें समझाइये।
4. निम्नलिखित में अन्तर बताइये।
    1. कर तथा शुल्क,
    2. कर तथा विशेष निर्धारण
    3. कर तथा मूल्य
    4. कर तथा जुर्माना
5. करारोपण के सिद्धान्तों का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करिये।
6. एडमस्मिथ के करारोपण के सिद्धान्तों की विवेचना कीजिये।
7. कर के भार से क्या तात्पर्य है? विभिन्न प्रकार के करभारों को समझाइये।

8. कराघात, करापात तथा कर विवर्तन में अंतर बताइये।
9. करदान–क्षमता के विचार की परिभाषा दीजिये। किसी देश की करदान–क्षमता निर्धारित करने वाले तत्वों की उदाहरण सहित विवेचना कीजिए।
10. करदान क्षमता के विचार को समझाइये। इसे किस प्रकार मापा जाता है।
11. करदान क्षमता का क्या अर्थ है ? किसी देश की करदान क्षमता का निर्धारण कैसे होता है।

3.12 सन्दर्भ पुस्तकें

1. राजस्व : डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय
2. लोकवित्त : डॉ0 एस0 के0 सिंह
3. राजस्व : डॉ0 आर0 एस0 कौशिक
4. राजस्व सिद्धान्त एवं व्यवहार : के0 एल0 माहेश्वरी
5. Delton, H : Principles of public Finance
6. Public Finance Theory and Practice : Mehta and Agrawal
7. Shirras, Findley : The Science of Public Finance
8. Hicks, Ursula : Public Finance
9. A.C. Pigou : A Study of Public Finance
10. Taylor P.E. : Economics of Public Finance
11. Raja J Chhelliah : Fiscal Policy in under developed Countries.
12. Indirect Taxes अप्रत्यक्ष–कर : डॉ0 एच0 सी0 मेहरोत्रा एवं प्रो0 वी0 पी0 अग्रवाल
13. News Paper
14. Net Surfing
15. Discussion with Lawyers and CA’s

इकाई 4 भारत के मुख्य कर : वैट (VAT) तथा GST की अवधारणा
(Major Taxes in India: Value Added and Concept of GST)

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 वैट (VAT)
- 4.2.1 वैट (मूल्य वर्द्धित कर प्रणाली) क्या है ?
- 4.2.2 वैट के अन्तर्गत कर–दायित्व
- 4.2.3 वैट का औचित्य/प्रचलन के कारण
- 4.2.4 वैट की विशेषताएं
- 4.2.5 वैट का परम्परागत कर प्रणाली से श्रेष्ठता
- 4.2.6 वैट के गुण
- 4.2.7 वैट के दोष
- 4.2.8 इनपुट कर जमा की पूर्ति करना
- 4.2.9 वैट क्रियान्वयन में कठिनाइयां

4.3 वस्तु व सेवा कर Goods and Service Tax (GST)
- 4.3.1 वस्तु एवं सेवा कर के अन्तर्गत वस्तुओं और सेवाओं पर कर की दरें
- 4.3.2 इनपुट टैक्स क्रेडिट
- 4.3.3 वस्तु व सेवा कर के अन्तर्गत रिवर्स चार्ज तंत्र
- 4.3.4 जी एस टी समय पर न दाखिल करने पर लेट फीस सम्बन्धित नियम
- 4.3.5 E-way Bill
- 4.3.6 कम्पोजीशन स्कीम

4.4 सारांश
4.5 शब्दावली
4.6 बोध प्रश्न
4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.8 स्वपरख प्रश्न
4.9 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- वैट का आशय बता सके।
- वैट की विशेषताएं, गुण–दोष बता सके।
- वस्तु व सेवा कर को स्पष्ट कर सके।
- वस्तु एवं सेवा कर के अन्तर्गत इनपुट टैक्स क्रेडिट को समझ सके।
- वस्तु एवं सेवा कर के अन्तर्गत रिवर्स चार्ज तन्त्र क्या है, बता सके ।
- वस्तु एवं सेवा कर के अन्तर्गत E – way Bill व कम्पोजीशन स्कीम समझ सके।

4.1 प्रस्तावना

किसी वस्तु की खुदरा कीमत उत्पादन तथा वितरण के प्रत्येक चरण में होने वाले मूल्यसवर्धन का योग है। मूल्यसंवर्धन बिक्री कीमत तथा खरीदी गयी सामग्रियों की लागत का

अन्तर है। बिक्री कर के इस दूसरे सम्भव रूप के अन्तर्गत वस्तुओं पर उत्पादन तथा वितरण के प्रत्येक स्टेज पर होने वाली मूल्य वृद्धि पर कर लगाया जाता है, न कि कुल प्राप्ति पर। इसे मूल्य संवर्धन कर (वैट) का नाम दिया गया है।

4.2 वैट (VAT)

4.2.1 वैट (मूल्य वर्धित कर प्रणाली) क्या है ?

मूल्य वर्धित कर प्रणाली में राज्य में माल के प्रत्येक विक्रय पर कर लगता है तथा विक्रेता द्वारा राज्य में क्रेता को चुकाए गए कर का सेट–ऑफ 'इनपुट टैक्स रिबेट' के रूप में प्राप्त होता है। इस प्रणाली में एक बार प्रथम विक्रेता को पूर्ण विक्रय मूल्य पर कर लगता है तथा बाद के विक्रयों पर मूल्य संवर्धन पर ही विक्रेता को कर देना पड़ता है। चूंकि माल क्रय करते समय जो कर विक्रेता को दिया गया था, उसको उसके द्वारा माल विक्रय करते समय देय कर में से कम कर लिया जाता है। दूसरे शब्दों में, यह कह सकते हैं कि मूल्य वर्धित कर माल के प्रत्येक विक्रय पर लगने वाला कर है जिसमें विक्रय के पूर्व स्तर पर राज्य में चुकाए गए कर, को कम करने की प्रत्येक विक्रय के समय व्यवस्था है। Value added tax is levied at each stage of sale with a credit of tax paid at immediately purchase stage within the state. उदाहरण द्वारा इसे इस प्रकार रखा जा सकता है, मोहन एक पंजीकृत व्यवसायी है, वह किसी माल को सोहन को 1000 रू में विक्रय करता है तथा मूल्य वर्धित कर की दर 10 प्रतिशत है तो वह क्रेता से 1100 रू वसूल करेगा, 1000 रू माल की कीमत तथा 100 रू मूल्य वर्धित कर, कुल 1000 + 100 = 1000 रू। सोहन भी पंजीकृत व्यवसायी है, वह उस माल को 1300 रू में विक्रय करता है तथा 10 प्रतिशत से 130 रू मूल्य वर्धित कर वसूल करेगा। इस प्रकार सोहन का विक्रय मूल्य 1430 रू होगा। इस विक्रय पर उसे राज्य शासन को 130 रू – 100 (मोहन द्वारा चुकाया गया कर) = 30 रू जमा करने होंगे। यह प्रक्रिया तब तक चालू रहेगीं जब तक माल का विक्रय पंजीकृत व्यवसायियों की श्रृंखला के बीच चलता रहेगा तथा इस श्रृंखला के प्रथम विक्रेता व्यवसायी को अपने विक्रय मूल्य पर बनने वाला समस्त मूल्य वर्धित कर जमा करना होगा तथा श्रृंखला के शेष व्यवसायियों को केवल उनके द्वारा सवंर्द्धित मूल्य (Value addition) पर ही कर जमा करना होगा।

निर्माता व्यवसायी द्वारा वस्तु के निर्माण के लिए जो भी अन्य माल क्रय किया जायेगा, जिसमें कच्चा माल, आनुंषगिक माल, पैकिंग मैटेरियल तथा प्लान्ट एवं मशीनरी इक्यूपमेंट तथा स्पेयर पार्ट्स शामिल होगा, जिसका निर्माण की प्रक्रिया में उपयोग किया जाता है, अथवा व्यापारी द्वारा अनुसूची दो के माल के सम्बन्ध में उपयोग किया जाता है, तब ऐसे समस्त माल पर चुकाए गए कर सेट–ऑफ (Input Tax Rebate) के रूप में निर्माता व्यवसायी तथा व्यापारी को प्राप्त होगी, यदि निर्मित माल का विक्रय अपने राज्य में या अन्तर्राज्यीय व्यवसाय में अथवा भारत के बाहर निर्यात के अनुक्रम में किया जाता है।

अनुसूची एक में वर्णित कर–मुक्त माल के निर्माण में लगने वाली इनपुट पर भी यदि राज्य में पंजीकृत व्यवसायी से माल क्रय किया गया है तब 5 प्रतिशत से अधिक दर से चुकाए गए कर का इनपुट टैक्स रिबेट के सेट–ऑफ मिलगा, इसी प्रकार यदि निर्मित माल का राज्य से बाहर शाखाओं को ट्रांसफर कर दिया जाता है या राज्य से बाहर आढ़त में विक्रय के लिए भेजा जाता है तब भी राज्य के पंजीकृत व्यवसायियों से क्रय माल पर 5 प्रतिशत से अधिक दर से चुकाए गए कर का इनपुट टैक्स रिबेट प्राप्त होगा।

4.2.2 वैट के अन्तर्गत कर–दायित्व

मूल्य वर्धित कर प्रणाली में निर्माता, आयातक तथा अन्य व्यवसायियों के लिए पृथक–पृथक कर दायित्व की सीमा नहीं रखी गई है। समस्त व्यवसायियों के लिए कर दायित्व सीमा सामान्यतः 5 लाख रू रखी गई है। इस टर्नओवर में सभी प्रकार के विक्रय जैसे कर–मुक्त, कर–चुका, कर–योग्य शामिल होगा। 5 लाख रू में अधिक विक्रय होने पर ही कर–दायित्व उत्पन्न होगा। आयातक, निर्माता या अन्य का कर दायित्व के लिए कोई वर्गीकरण नहीं है।

मूल्य वर्धित कर अधिनियम राज्य में लागू होने पर जिन व्यवसायियों का विक्रय निर्धारित की सीमा से अधिक होगा उन पर कर–दायित्व मूल्य वर्धित कर कर अधिनियम लागू होने के पश्चात् से आएगा तथा जिनका विक्रय कम है उनका विक्रय यदि किसी वर्ष में निर्धारित सीमा से अधिक हो जाता है, तब जिस दिनांक को विक्रय सीमा से अधिक होगा उस दिनांक से कर दायित्व उदय होगा।

4.2.3 वैट का औचित्य/प्रचलन के कारण

विक्रय कर की वर्तमान संरचना में वस्तुओं पर दोहरे करारोपण तथा करों की बहुलता के करण समस्याएं उत्पन्न होती है जिसके परिणामस्वरूप कर बोझ स्तर दर स्तर बढ़ता है। उदाहरणस्वरूप वर्तमान प्रचलित कर ढांचे में किसी वस्तु के निर्मित होने से पूर्व उसके इनपुट्स (कच्चे माल) पर करारोपण होता है तथा उसके बाद जब वस्तु निर्मित हो जाती है तथा उसमें इनपुट पर लगा हुआ कर शामिल हो जाता है। जिसके कारण बहुस्तरीय कर बोझ बढ़ता है। मूल्य वर्धित कर में इनपुट टैक्स तथा पूर्ववर्ती क्रयों पर चुकाए गए कर के सम्बन्ध में सेट–ऑफ दिया जाता है। वर्तमान में प्रचलित विक्रय कर के ढांचे में अनेक राज्यों में बहुबिन्दु करों के करारोपण की स्थिति है यथा– टर्नओवर टैक्स, विक्रय पर अधिभार तथा अतिरिक्त अधिभार आदि। मूल्य वर्धित कर के कियान्वित होने पर इस प्रकार के अन्य कर समाप्त हो जाएंगे। इनके अतिरिक्त केन्द्रीय विक्रय कर (CST) को भी चरणबद्ध रूप से समाप्त किया जा रहा है जिसके लिए 1–6–2008 से CST की दर 2 प्रतिशत की गई है जिसे G.S.T. के साथ पूरा समाप्त किया जाना प्रस्तावित है। इसका परिणाम यह होगा कि समेकित रूप से पड़ने वाला कर बोझ युक्तिसंगत होगा तथा मूल्यों में भी सामान्यतः गिरावट आएगी।

- इनपुट टैक्स तथा पूर्ववर्ती क्रयों पर चुकाए गए कर का सेट–ऑफ दिया जाएगा।
- अन्य कर जैसे टर्नओवर टैक्स, अधिभार तथा अतिरिक्त अधिभार आदि समाप्त होंगे।
- समग्र रूप से कर बोझ का विवेकीकरण होगा।
- सामान्यतः कीमतें गिरेंगी।
- व्यवसायियों के द्वारा स्वतः कर–निर्धारण किया जाएगा।
- पारदर्शिता में वृद्धि होगी।
- राजस्व आय बढ़ेगी।

इस प्रकार मूल्य वर्धित कर जन–सामान्य, व्यवसायियों, उद्योगपतियों तथा शासन को सहायता करेगा। वास्तव में यह अधिक कार्यक्षमता तथा कर प्रणाली में पारदर्शिता तथा समान प्रतिस्पर्धा की ओर बढ़ाया जाने वाला एक कदम है।

4.2.4 वैट की विशेषताएं

माल के क्रय–विक्रय पर कर लगाने के लिए अभी तक जो कर प्रणालियां अपनाई जाती रही हैं, उनमें मूल्य वर्धित कर प्रणाली नवीनतम अवधारणा है। विश्व के अनेकों देशों में इस प्रणाली को अपनाया गया है एवं भारत में भी इस प्रणाली को सभी राज्य सरकारों ने लागू कर

दिया है। मूल्य सवंर्द्धित कर जो कि अपने संक्षिप्त नाम मूल्य वर्धित कर के रूप में जाना जाता है की प्रमुख विशेषताएं निम्न प्रकार है :

1. **राज्य सरकार द्वारा करारोपण –**

मूल्य सवंर्द्धित कर राज्य सरकारों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों द्वारा राज्य में माल का कय–विकय पर लगाया जाने वाला कर है। भारतीय संविधान में माल के कय–विकय पर कर लगाने का अधिकार राज्य सरकारों को दिया गया है। मूल्य वर्धित कर के पूर्व राज्य सरकारें विकय कर या वाणिज्यिक कर के रूप में माल के कय–विकय पर कर लगाती थी। अब इनका स्थान मूल्य वर्द्धित कर ने लिया है। इस कर को लागू करने के लिए विभिन्न राज्य सरकारों ने अपने–अपने अधिनियम एवं नियम बनाए है।

2. **अप्रत्यक्ष कर –**

मूल्य वर्द्धित कर एक प्रकार का अप्रत्यक्ष कर है। यह माल की बिकी पर विकेता द्वारा वसूला जाता है, एवं शासन को जमा किया जाता है। इसका भुगतान विकेता व्यापारी द्वारा किया जाता है और मूल्य में इसे जोड़कर उपभोक्ता से वसूला जाता है। इसका अंतिम भार उपभोक्ता पर पड़ता है। इसका कराघात व्यापारी पर एवं करापात उपभोक्ता पर होने के कारण यह अप्रत्यक्ष कर की श्रेणी में आता है।

3. **बहुबिन्दु कर –**

मूल्य वर्द्धित कर बहुबिन्दु कर है। किसी वस्तु को उत्पादक से उपभोक्ता तक पहुंचने में जितने स्तरों पर इसका हस्तान्तरण होता है, उतने स्तरों पर यह कर वस्तु के बढ़े हुए मूल्य पर लगता है। इसे हम निम्नलिखित उदाहरण से समझ सकते है :

प्रथम स्तर : उत्पादक द्वारा वितरक को विकय ;

द्वितीय स्तर : वितरक द्वारा थोक व्यापारी को विकय ;

तृतीय स्तर : थोक व्यापारी से उपभोक्ता को विकय ;

चतुर्थ स्तर : फुटकर व्यापारी से उपभोक्ता को विकय ;

वस्तु की बिकी से प्रत्येक स्तर यह कर राज्य में अपनाई गई गणना पद्धति के अनुसार लगेगा।

4. **बढ़े हुए मूल्य पर कर –**

यद्यपि मूल्य विर्धित कर बहुबिन्दु कर है, लेकिन प्रत्येक स्तर पर वस्तु के सम्पूर्ण मूल्य पर यह कर नहीं लगता है, बल्कि विकेता द्वारा की गयी वृद्धि (विकय मूल्य –कय मूल्य = अन्तर) पर यह कर लगता है।

5. **मूल्य वर्धित कर की राशि बिल में अलग से प्रदर्शित करना –**

मूल्य वर्धित कर, कर प्रणाली में पूर्ववर्ती विकेता को चुकाए गए कर की छूट व्यापारी को तभी मिल सकती है, जबकि बिल में ऐसे कर की राशि अलग से प्रदर्शित की गयी हो। अतः आगत कर की छूट की प्राप्ति केता व्यापारी को उस वस्तु के पुनः विकय पर देय कर में से मिल सके, इसके लिए ऐसे कर की राशि बिल में माल की कीमत में शामिल करने की बजाय पृथक से चार्ज की जाती है।

6. **कम्पोजिशन के सुविधा –**

जो छोटे व्यापारी इनपुट कर की छूट प्राप्त नहीं करना चाहते है, उनको यह विकल्प है कि वे एक निर्धारित प्रतिशत से एकमुश्त कर चुका कर अपने दायित्व को पूरा कर सकते है। इसे कम्पोजिशन कहते है। विभिन्न राज्यों के अधिनियमों के अन्तर्गत सामान्यतः 40 लाख रू तक के वार्षिक विकय वाले व्यापारियों को यह विकल्प प्राप्त होता है।

7. **पंजीयन –**

विक्रय कर या वाणिज्यिक कर की तरह राज्य के मूल्य वर्धित कर अधिनियम के अन्तर्गत भी व्यापारी के लिए पंजीयन कराना अनिवार्य है। इस सम्बन्ध में यह महत्वपूर्ण है कि जो व्यापारी किसी राज्य में पूर्ववर्ती विधान में पंजीकृत थे, उनको मूल्य वर्धित कर अधिनियम के अन्तर्गत पुनः नया रजिस्ट्रेशन कराने की आवश्यकता नहीं है। ऐसे व्यापारी मूल्य वर्धित कर के अन्तर्गत स्वतः ही पंजीकृत मान लिए गए है। नये व्यापारी जो अब पंजीकरण कराना चाहते है, उनका पंजीकरण उनके राज्य के मूल्य वर्धित कर अधिनियम के अन्तर्गत होगा।

8. स्वतः कर–निर्धारण –

मूल्य वर्धित कर प्रणाली की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इस प्रणाली में स्वतः कर–निर्धारण की व्यवस्था की गयी है। जो व्यापारी निर्धारित तिथि तक विक्रय विवरणी प्रस्तुत कर देते है एवं कर जमा कर देते हैं, उन्हें कर–निर्धारण के लिए कर विभाग के पास जाने की आवश्यकता नहीं है। अपवादस्वरूप जांच के लिए कुछ प्रतिशत व्यापारियों को लेखे या सबूत प्रस्तुत करने के लिए विभाग कह सकता है।

9. मूल्य वर्धित कर कियान्वयन हेतु प्रशासन –

विभिन्न राज्यों में मूल्य वर्धित कर प्रणाली को लागू करने एवं कर की वसूली के लिए पूर्ववर्ती वाणिज्यिक कर या विक्रय कर के अधिकारियों की सेंवाएं ही ली गयी है। जैसे – किसी राज्य में वाणिज्यिक कर के प्रशासन एवं वसूली के लिए वाणिज्यिक कर विभाग कार्यरत था, उसे ही मूल्य वर्धित कर के प्रशासन एवं वसूली का कार्य सौंपा गया है। मूल्य वर्धित कर निर्धारण का कार्य वाणिज्यिक कर अधिकारी ही कर करेंगे।

10. अन्तर्राज्यीय विक्रय पर कर –

राज्य के अन्दर वस्तुओं के विक्रय पर तो मूल्य वर्धित कर लगेगा, लेकिन अन्तर्राज्यीय विक्रय पर करारोपण की समस्या का अभी समाधान नहीं हो पाया है। इसलिए अन्तर्राज्यीय विक्रय पर अभी भी केन्द्रीय विक्रय कर लागू है। यद्यपि शासन ने केन्द्रीय विक्रय कर को क्रमशः समाप्त करने की घोषणा की है और इसी कड़ी में 1 अप्रैल 2007 से केन्द्रीय विक्रय कर की दर 4 प्रतिशत से घटाकर 3 प्रतिशत कर दी गयी है एवं 1 जून 2008 से इसे 2 प्रतिशत कर दिया गया है।

इस प्रकार मूल्य वर्धित कर प्रणाली एक प्रकार से विक्रय कर या वाणिज्यिक कर का सुधरा हुआ रूप है। इससे एक तरफ कर की अपेक्षाकृत कम दरों के कारण उपभोक्ताओं को कुछ राहत मिली है तो दूसरी तरफ राज्य सरकारों को करवंचना में कमी के कारण अधिक राजस्व प्राप्त हो रहा है।

4.2.5 वैट का परम्परागत कर प्रणाली से श्रेष्ठता

परम्परागत बिक्री कर के स्थान पर मूल्य वर्धित कर अपनाने की आवश्यकता निम्न कारणों से हो रही थी:

1. प्रथम बिन्दु कर के कारण कम कर प्राप्ति –

विक्रय कर या वाणिज्यिक कर प्रथम बिन्दु होने के कारण सरकार को न्यूनतम मूल्य पर कर मिलता है। इससे राजस्व की हानि होती है। उदाहरण के लिए, एक निर्माता एक वस्तु का निर्माण करता है जिसकी लागत 20 रू प्रति वस्तु आती है। निर्माता अपना सम्पूर्ण माल अपने एक डीलर को 22 रू प्रति वस्तु बेचता है तथा 22 रू पर ही विक्रय कर 10 प्रतिशत की दर से 2.20 रू चुकाता है। डीलर तत्पश्चात् उस वस्तु को 25 रू में खुदरा व्यापारी को कर चुका माल के रूप में विक्रय करता है तथा खुदरा व्यापारी व्यापारी उपभोक्ता को 40 रू पुनः कर चुका माल के रूप के रूप में विक्रय करता है। अतः यहां सरकार को मात्र 2.20 कर के रूप में प्राप्त होते है

जबकि वास्तव में 40 रू पर 10 प्रतिशत की दर से 4 रू प्राप्त होने चाहिए थे। यह दोष मूल्य वर्धित कर को अपनाकर ही दूर किया जा सकता है।

2. **प्रोत्साहनों एवं छूटों में राजस्व हानि –**

राज्य सरकारें अपने प्रदेश में औद्योगीकरण को बढ़ावा देने के उद्देश्य से औद्योगिक इकाइयों को विभिन्न प्रकार के प्रोत्साहन एवं छूटें प्रदान करती है। इस कारण से राज्य सरकार के राजस्व में कमी आती है। **मूल्य वर्धित कर व्यवस्था में सभी राज्यों में करमुक्त माल एंव कर की दरों में एकरूपता होने के कारण किसी राज्य विशेष को ऐसी छूटें या प्रोत्साहन देने का अधिकार नहीं रहेगा।**

3. **अन्तिम कर की अव्यावहारिकता –**

अन्तिम बिन्दु पर करारोपण के अन्तर्गत वस्तु का मूल्य अधिकतम होता है तथा उस पर एक निश्चित दर से कर वसूल किया जा सकता है परन्तु प्रशासकीय एवं व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण अन्तिम बिन्दु कर को व्यवहार में पूर्ण रूप से नहीं लाया जा सकता है। **अतः मूल्य वर्धित कर प्रणाली ही यह कठिनाई दूर कर सकती है।**

4. **कर दरों की अधिक संख्या –**

प्रथम बिन्दु कर को अपनाने पर राज्य सरकार को अनिवार्य रूप से भिन्न–भिन्न प्रकार की दरों का समावेश करना होता है। इस कारण से गणना सम्बन्धी कार्य जटिल हो जाता है, लेकिन राजस्व में कोई विशेष वृद्धि नहीं होती है। **मूल्य वर्धित कर अपनाने से दरों के कम से कम वर्ग अपनाए जा सकते है एवं सभी राज्यों में समान रूप से लागू किए जा सकते है।**

5. **टर्नओवर टैक्स के दोषों का निवारण –**

टर्नओवर टैक्स की दशा में विक्रय के प्रत्येक बिन्दु पर सम्पूर्ण मूल्य पर कर चुकाना पड़ता है, इससे वस्तु के मूल्य में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है। जैसे–एक वस्तु उत्पादक से उपभोक्ता तक पंहुचाने में चार कड़ियों से गुजरती है। ऐसी स्थिति में उसके विक्रय मूल्य पर चार बार कर लगेगा, जो कि वस्तु के अन्तिम मूल्य को अत्यधिक बढ़ा देगा, **जबकि वास्तविक रूप में मूल्य वर्धित कर की दशा में प्रत्येक चरण पर केवल बढ़े हुए मूल्य पर ही कर लगता है।**

6. **राजस्व में वृद्धि –**

विक्रय के प्रत्येक व्यवहार में बढ़े हुए मूल्य पर सरकार को कर मिलता है, इससे राजस्व में वृद्धि होती है। इस कर से सरकार को निरन्तर आय प्राप्त होती रहती है। **मूल्य वर्धित कर अपनाने से करवंचना पर भी रोक लगती है, क्योंकि विक्रय के विभिन्न चरणों में एक साथ कर चोरी सम्भव नहीं होती।**

7. **स्वतः नियन्त्रण –**

जमा कर घटाव विधि स्वतः नियन्त्रण का कार्य करती है। प्रत्येक व्यापारी अपने सकल कर दायित्व में से पूर्व में चुकाए गए कर की क्रेडिट पाने के लिए अपने पूर्व विक्रेता से बीजक प्राप्त करेगा। **ऐसी स्थिति में विक्रय के विभिन्न चरणों में बिना बीजक के व्यवहार नहीं होगें। इससे करवंचना पर नियन्त्रण की स्वतः व्यवस्था हो जाएगी।**

4.2.6 वैट के गुण

1. **प्रथम बिन्दु एवं अन्तिम बिन्दु कर का मिश्रण –**

मूल्य वर्धित कर कर प्रणाली में माल के विक्रय के प्रत्येक चरण में विक्रेता द्वारा वस्तु के मूल्य में की गयी वृद्धि पर कर चुकाया जाता है। इसमें प्रथम बिन्दु पर भी कर लगता है एवं बाद वाले चरणों में भी कर लगता है।

2. **करवंचना में कमी –**

मूल्य वर्द्धित कर में कर की चोरी का भय कम रहता है, क्योंकि प्रत्येक फर्म को केवल मूल्य वृद्धि पर ही कर देना पड़ता है, जो विक्रय कर की तुलना में काफी कम होता है। स्वाभाविक है उत्पादक कर की चोरी करने को प्रोत्साहित नहीं होते।

3. **पूर्ण हिसाब–किताब –**

मूल्य वर्धित कर व्यवस्था की यह विशेषता है कि इसमें प्रत्येक व्यापारी एवं निर्माता अपने व्यवसाय का सही एवं पूरा–पूरा हिसाब रखता है, क्योकि ऐसा करने से ही वह पूर्व में भुगतान किए गए करों पर छूट की मांग कर सकता है।

4. **सरलता –**

किसी भी व्यापारिक फर्म द्वारा देय कर का हिसाब लगाने के लिए सर्वप्रथम उसकी कुल बिक्री पर लागू दर से कर लगाया जाता है। इस कर में से फर्म या संस्था द्वारा मध्यवर्ती सामान के क्रय पर एवं मशीनों आदि के क्रय पर पहले दिए गए कर घटा दिए जाते है। सैद्धान्तिक रूप में, मूल्य वर्धित कर को इस ढंग से बनाया गया है, कि फुटकर स्तर एवं सेवाओं सहित अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों पर इसे लागू किया जा सके।

5. **निर्यात प्रोत्साहन –**

मूल्य वर्द्धित कर को उत्पादन लागत से सरलता से पृथक किया जा सकता है तथा कर भार को पृथक करके निर्यात व्यापार को प्रोत्साहित किया जा सकता है। यदि हम अन्य करों से तुलना करें, तो पातें है कि मूल्य वर्द्धित कर निर्यात व्यापार बढ़ाने में अधिक सहायक है।

6. **मूल्य नियन्त्रण में सहायक –**

विक्रय कर के फलस्वरूप मूल्य में अधिक वृद्धि होती है, किन्तु मूल्य वर्द्धित कर का भार, वितरण की सभी कियाओं में समान होने से मूल्य में अधिक वृद्धि नहीं होती।

7. **व्यावहारिक –**

अन्य करों की तुलना में मूल्य वर्द्धित कर अधिक व्यावहारिक है। यही कारण है कि यूरोप के अधिकतर देशों ने इसे अपनाया है एवं भारत के सभी राज्य भी इसे अपना रहे है।

8. **उत्पादन क्षमता में वृद्धि –**

मूल्य वर्द्धित कर लाभ के आधार पर न लगाया जाकर उत्पादन की मात्रा के अनुसार लगाया जाता है। लाभ हो या हानि फर्म को कर देना ही पड़ता है, अतः प्रत्येक फर्म यह प्रयास करती है कि न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन करे।

4.2.7 वैट के दोष

1. **व्यावहारिक कठिनाइयां –**

मूल्य वर्द्धित कर को लागू करने के लिए एक सक्षम एवं कार्यकुशल प्रशासन तन्त्र की आवश्यकता होती है जो उत्पादन एवं वितरण की विभिन्न कड़ियों में होने वाली मूल्य वृद्धि का सही लेखा–जोखा रख सके, परन्तु इस प्रकार के कुशल कर्मचारी न होने से इसे लागू करने में प्रारम्भिक कठिनाई हो सकती है।

2. **करदाताओं का सहयोग आवश्यक –**

यह कर प्रणाली उसी समय लागू की जा सकती है जब सरकार को करदाताओं का पूरा सहयोग मिल सके। इसके लिए फर्मो को उत्पादन व मूल्य की सही गणना करना जरूरी है। फर्मो को इसका हिसाब भी रखना पड़ता है, कि उत्पादन में जिन अन्य फर्मो से सामग्री क्रय की गई है, उन्होने कितने कर का भुगतान किया है।

3. **गणना सम्बन्धी कठिनाइयां –**

इस कर की गणना करना सरल नहीं है, क्योंकि इसमें काफी जटिलता रहती है। पूर्ववर्ती लागत या पूर्व में चुकाया गया कर, ज्ञात करने के लिए काफी रिकार्ड रखने पड़ते है।

4. **मूल्य वर्धित कर की विभिन्न दरें –**

कुछ प्रदेशों में अघोषित माल पर 13 प्रतिशत की दर से एवं घोषित माल पर 5 प्रतिशत की दर से मूल्य वर्द्धित कर लगता है जो कि काफी उंची है। जिन वस्तुओ पर वाणिज्यिक कर की दर कम थी उन पर भी मूल्य वर्धित कर 13 प्रतिशत से लगता है जो कि न्यायसंगत नहीं है।

5. **मूल्य वृद्धि –**

मूल्य वर्धित कर के कारण वस्तुओं के मूल्य घटने के बजाय बढ़ रहे है, क्योंकि विक्रय के प्रत्येक चरण में कर लगने के कारण उपभोक्ता पर अन्तिम भार काफी बढ़ गया है। व्यापारी पहले कर सहित मूल्य पर अपना माल बेचते थे। अब उसी मूल्य पर माल बेच रहे हैं एवं उपभोक्ता से मूल्य वर्धित कर अलग से वसूल कर रहे है।

6. **प्रशासकीय जटिलता –**

मूल्य वर्धित कर के कारण वाणिज्यिक कर विभाग को प्रशासकीय जटिलता एवं तकनीकी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। अधिकारियों एवं कर्मचारियों को मूल्य वर्धित कर की गणना प्रकिया एवं इनपुट रिबेट देने की पद्धति में व्यावहारिक कठिनाइयां आ रही है। इसका परिणाम, व्यापारियों को भुगतना पड़ रहा है। उन्हें अधिकारियों की मनमानी का शिकार होना पड़ रहा है।

7. **कर चोरी पर अंकुश की धारणा गलत –**

यह गलतफहमी है, कि मूल्य वर्धित कर लगने के कारण कर चोरी रूक जाएगी। मूल्य वर्धित कर प्रणाली में कर चोरी की सम्भावना विक्रय कर या वाणिज्यिक कर की तुलना में अधिक है। यदि प्रथम चरण में ही माल बिना बिल के बिकता है, तो अन्तिम चरण तक वह बिना बिल बिकता जाएगा और सरकार को किसी भी स्तर पर कोई राजस्व नहीं मिलेगा।

इस प्रकार यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण होगा कि मूल्य वर्धित कर प्रणाली लागू करने के बाद सरकार एवं व्यापारियों की सभी समस्याओं का समाधान हो गया है।

मूल्य वर्धित कर की अवधारणा एवं इनपुट कर जमा की प्रतिपूर्ति

मूल्य वर्धित कर का सार यह है, कि पूर्व में दिए गए कर की पूर्ति की जाती है। किसी भी अवधि से सम्बन्धित इनपुट कर जमा की राशि की किसी पंजीकृत व्यापारी द्वारा आउटपुट कर की राशि से, पूर्ति की जाती है। मूल्य वर्धित कर सदैव माल के मूल्य में वृद्धि पर लगाया जाता है, तथा व्यापारी पर मूल्य वर्धित कर के दायित्व की गणना, किसी भुगतान अवधि में बिक्री पर संग्रह किए गए इनपुट कर की जमा राशि से घटाकर की जाती है।

उदाहरण – राम ने 1,00,000 रू का इनपुट क्रय किया और उसकी बिक्री राशि 200000 रू है। इनपुट कर व आउटपुट कर की राशि की दर क्रमशः 4 प्रतिशत व 12.5 प्रतिशत है। इनपुट कर जमा/वसूल की गयी राशि तथा मूल्य वर्धित कर की गणना को निम्न प्रकार से दिखाया जाएगा :

	रू0
(अ) माह में क्रय किया गया इनपुट	100000
(ब) माह में बेचा गया आउटपुट	200000
(स) चुकाया गया इनपुट कर	4000
(द) देय आउटपुट कर	25000
(इ) माह में देय मूल्य वर्धित कर–इनपुट कर जमा की पूर्ति करने के बाद (द)–(स)	21000

4.2.8 इनपुट कर जमा की पूर्ति करना

इनपुट कर का लाभ, निर्माता व व्यापारी दोनों को इनपुट की खरीद पर दिया जाएगा, जो कि राज्य में व अन्य राज्यों में किए गए विक्रय/पुनः विक्रय पर दिया जाता है, जिसमें इस बात पर ध्यान नहीं दिया जाता है, कि इस इनपुट का उपयोग या विक्रय कब किया जाएगा। इससे कर–दायित्व में तुरन्त कमी आ जाती है।

स्टॉक हस्तान्तरण/माल के प्रेषण या बिक्री, जिसे राज्य के बाहर किया गया हो, जिस पर 4 प्रतिशत से अधिक इनपुट कर दिया गया हो तो उस पर कर का लाभ प्राप्त होगा।

व्यापारी द्वारा देय 'शुद्ध कर'

बिक्री पर लगाए गए कुल कर तथा किसी अवधि में चुकाए गए कर के मध्य अन्तर को शुद्ध देय कर कहा जाता है।

आउटपुट कर = बिक्री पर लगाया गया कर

इनपुट कर = क्रय पर लगाया गया कर

शुद्ध कर = आउटपुट कर – इनपुट कर

1. यदि आउटपुट कर पर दिया गया कर, इनपुट पर दिए गए कर से अधिक हो तो अन्तर देय कर होगा।
2. यदि इनपुट कर की राशि, आउटपुट कर की राशि से ज्यादा हो तो अन्तर की राशि कर की वापसी होगी, जिसे अगली अवधि में समायोजित कर दिया जाएगा।

उदाहरण – एक व्यापारी ने 500 इकाइयां 50 रू की दर से क्रय की और उस पर 12.5 प्रतिशत की दर से कर चुकाया है। क्रय मूल्य 28,125 रू है जिसमें रू 3125 चुकाया गया कर भी सम्मिलित है। यदि इस माल को 60 रू की दर से बेचा जाए जिस पर 12.5 प्रतिशत से कर लगता हो तो कुल बिक्री राशि 33750 रू है जिसमें कर की राशि 3750 रू है। चूंकि व्यापारी ने क्रय करते समय 3125 रू चुका दिए हैं अतः उसकी शुद्ध देय कर की राशि (3750 – 3125) 625 रू होगी।

4.2.9 वैट क्रियान्वयन में कठिनाइयां

1. वैट एक CST का साथ–साथ उद्ग्रहण

आर्थिक दृष्टि से भारत के सभी राज्यों के मध्य असंतुलन है। कुछ राज्य निर्माता राज्य हैं, जबकि अन्य राज्य उपभोक्ता क्षेत्र है। निर्माता राज्यों से विभिन्न माल उपभोक्ता/क्रेता राज्यों को भेजा जाता है, जिस पर **CST** उद्गृहीत होता है। जब ऐसा माल क्रेता राज्य में पुनः विक्रय होता है, उस पर कर दायित्व बढ़ जाता है, क्योंकि **CST** पहले लगा हुआ है और वैट अब लगना है अतः यह कर पर कर व्यवस्था है।

2. CST का वैट के विरूद्ध क्रेडिट नहीं

अन्तर्राज्यीय विक्रय पर **CST** उद्गृहीत होता है, परन्तु क्रेता को अपने राज्य में वैट के विरूद्ध इनपुट क्रेडिट उपलब्ध नहीं होता है, यद्यपि क्रेता डीलर **CST** दायित्व के विरूद्ध इसका क्रेडिट ले सकता है, परन्तु ऐसा सदैव और नियमित रूप से प्रायः नहीं होता है।

3. करों का दोहरापन

सॉफ्टवेयर संकर्म ठेका निष्पादन एवं लीजिंग के व्यवहारों पर वैट के साथ–साथ सेवाकर भी उद्गृहीत होता है।

4. राज्य सीमाओं पर चेक पोस्ट

राज्य सीमाओं पर चेक पोस्ट माल के परिवहन में देरी, भ्रष्टाचार एवं पीड़ा का बड़ा कारण है।

5. समरूपता का अभाव

सभी राज्यों में वैट की दरों, प्रक्रिया एवं वैधानिक प्रावधानों के मध्य विसंगतियां पाई जाती है। केन्द्र एवं राज्य सरकारे एक ही व्यवहार पर विभिन्न रूपों में कर लगाती हैं, क्योंकि माल एवं सेवाओं के मध्य पहचान एवं विभाजन के नियमों में भ्रामकता है।

6. वैट बहु बिन्दु कर प्रणाली है

प्रत्येक लेन–देन पूरक उद्ग्रहीत होता है, परिणामस्वरूप वस्तुओं के मूल्य बढ़ते जाते है। व्यवहार में, मूल्य निर्धारित करते समय चुकता वैट के क्रेडिट की सम्भावना को, प्रायः अनदेखा ही किया जाता है, क्योकि अगला डीलर पूर्व में उद्गृहीत वैट की चुकता ही मानता है।

7. अधिक प्रभावी करारोपण

पूर्ववर्ती कर की 4 प्रतिशत एवं 8 प्रतिशत दर वाली वस्तुओं को वैट के अधीन 13 प्रतिशत की श्रेणी में डाल दिया गया है, जिससे प्रभावित वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि होती है।

8. पूर्ववर्ती कर मुक्त वस्तुएं अब कर योग्य हैं

जीवनरक्षक दवाइयां, अभ्यास पुस्तिकाएं, थ्रेसर्स, ट्रक्टर्स ट्रौली, पूर्ववर्ती वाणिज्य कर, व्यवस्था में कर मुक्त थीं, जिन्हें अब वैट के अधीन कर योग्य कर दिया गया है।

9. नो विलिंग अथवा अंडर बिलिंग

पिछले डीलर को चुकता वैट का क्रेडिट ले पाना वास्तव में कष्टकारक एवं खर्चीली व्यवस्था है, जिससे बचाव के लिए डीलर बिना बिल के ही माल का क्रय–विक्रय करते है, परिणामस्वरूप न तो वैट चुकाना और न ही उसके क्रेडिट लेने का झंझट रहता है।

4.3 वस्तु व सेवा कर Goods and sessnce Tax (GST)

वस्तु एंव सेवा कर वस्तुओं एवं सेवाओं की आपूर्ति पर लगाया जाने वाला एकीकृत कर है। इसकी शुरूआत भारत में 01 जुलाई 2017 को की गई। इस कर में उत्पाद शुल्क, राज्य स्तरीय कर, मनोरंजन कर, सेवाकर व अन्य अप्रत्यक्ष स्थानीय कर शामिल है। वस्तु एंव सेवा कर का आरोपण अन्तिम उपभोक्ता पर किया जाता है। इसके प्रत्येक चरण के आपूर्तिकर्ता को इनपुट टैक्स क्रेडिट व्यवस्था के माध्यम से इसकी भरपाई करने की अनुमति होती है। वस्तु या सेवा पर एक दर से टैक्स लग रहा है। एंव दो राज्यों के मध्य टैक्स की दर में कोई भी विसंगति नहीं है। वस्तु एंव सेवा कर लागू होने के बाद, कर वहां लगेगा, जहां वस्तु या सेवा की आपूर्ति होगी। चूंकि वस्तु एंव सेवाकर केन्द्र व राज्य द्वारा लगाया जाने वाला एकीकृत कर है, इसलिए इसके बटवारे के लिए जी0 एस0 टी0 को चार भागों में बाटा गया है।

1. केन्द्रीय वस्तु एंव सेवाकर (CENTRAL GOODS AND SERVICE TAX-CGST)
2. राज्य स्तरीय वस्तु एंव सेवाकर (STATE GOODS AND SERVICE TAX-SGST)
3. एकीकृत वस्तु एंव सेवाकर (INTEGRATED GOODS AND SERVICE TAX-IGST)
4. संघ राज्य वस्तु एंव सेवाकर (UNION TERRITORY GOODS AND SERVICE TAX-UTGST)

1. केन्द्रीय वस्तु एंव सेवाकर :–

केन्द्रीय सरकार द्वारा वसूल किये जाने वाले कर को केन्द्रीय वस्तु एवं सेवाकर कहते है। पूर्व की अप्रत्यक्ष कर व्यवस्था में सेवा कर, उत्पाद शुल्क, कस्टम शुल्क आदि केन्द्रिय सरकार के प्रमुख अप्रत्यक्ष कर वसूली के साधन थे।

2. राज्य स्तरीय वस्तु एंव सेवाकर :–

राज्य सरकार के कर संग्रह का प्रमुख स्त्रोत बिक्री कर था। वस्तु एवं सेवा कर लागू होने के बाद राज्य स्तरीय वस्तु एवं सेवा कर ही राज्य सरकार के कर संग्रह का प्रमुख साधन है।

3. **एकीकृत वस्तु एवं सेवाकर :–**

एकीकृत वस्तु एंव सेवाकर विधेयक 27 मार्च 2017 को लोकसभा में पेश किया गया था, यह विधेयक वस्तुओं और सेवाओं को अंतर–राज्य की आपूर्ति पर, आयात निर्यात एंव विशेष क्षेत्र में आपूर्ति करने पर केन्द्र द्वारा लगाया जाता है।

4. **संघ राज्य वस्तु एंव सेवाकर :–**

सेवाकर विधेयक 27 मार्च को लोकसभा में पेश किया गया था केन्द्रशासित प्रदेश की सीमा के भीतर माल और सेवाओं की आपूर्ति पर यू0टी0जी0एस0टी0 लगाया जाता है।

4.3.1 वस्तु एंव सेवा कर के अंतर्गत वस्तुओ और सेवाओ पर कर की दरें :–

0 प्रतिशत की वस्तुएंः मांस, मछली, मुर्गी, अण्डा, दूध, दही, शहद, आटा, बिन्दी, नमक इत्यादि।

5 प्रतिशत की वस्तुएंः अगरबत्ती, पवनचक्की, बायोगैस, काजू इत्यादि

12 प्रतिशत की वस्तुएंः इक्सरसाइजबुक कटलरी, आइटम, कोटन वुल carpets, floor covering etc.

18 प्रतिशत की वस्तुएंः एल्युमिनियम स्क्रैप, पोस्टर कलर, स्कूल बैग, कम्प्यूटर प्रीन्टर, इत्यादि।

28 प्रतिशत की वस्तुएंः एयरक्राफ्ट, आटोमोबाइल, मोटरसाइकिल, पेन्ट, शेविंग क्रीम, हेयर शैम्पू, आदि।

4.3.2 इनपुट टैक्स क्रेडिट :–

जी0एस0टी0 व्यवस्था में इनपुट टैक्स क्रेडिट व्यापारियों के लिए मददगार साबित हो रहा है। यदि कोई पंजीकृत व्यापारी देश के किसी भी पंजीकृत व्यापारी से, माल या सेवाएँ पक्के बिल से खरीदता है, तो उसके द्वारा खरीदे गये माल या सेवा पर, जो कर भुगतान किया जाएगा, वह बिक्री पर देय कर मे से घटा दिया जाता है, इससे व्यापारी की करदेयता में कमी आती है, और इस व्यवस्था से दोहरे करारोपण से बचा जा सकता है। एक उदाहरण के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है कि इनपुट टैक्स क्रेडिट का लाभ एक व्यापारी कैसे लेता है।

उदाहरण :– मान लीजिये किसी निर्माण करने वाली फर्म को अपने उत्पाद के लिए 100 रू का कच्चा माल खरीदना पड़ रहा है और उस माल पर जी0एस0टी0 की दर 12 प्रतिशत है इस प्रकार कच्चे माल को प्राप्त करने के लिए कुल 112 रू चुकाने होगें, अब निर्माण फर्म जिस माल को तैयार कर रही है, उस माल की कीमत 150 रू है और जी0एस0टी0 की दर 18 प्रतिशत है तो उस फर्म की बिक्री पर कर 27 रू होगी, चूंकि उसने खरीद करते समय 12 रू का कर चुकाया है, तो उसे 27–12=15 रू ही जी0एस0टी का भुगतान करना होगा।

जीएसटी के अर्न्तगत इनपुट टैक्स क्रेडिट समायोजन के नियम

केन्द्र एंव राज्य के बीच वस्तु एंव सेवा कर के बटवारे के लिए इसे चार भागों में लगाया जाता है जब राज्य के भीतर माल या सेवा की सप्लाई की जाती है तो राज्य स्तरीय वस्तु एंव सेवा कर (STATE GOODS AND SERVICE TAC-SGST) और केन्द्रीय वस्तु एंव सेवा कर (CENTRAL GOODS AND SERVICE TAX-CGST) लगाया जाता है। एक पंजीकृत व्यापारी अपने इनवार्ड सप्लाई पर चुकाये गये CGST, SGST, और IGST का समायोजन आउटवर्ड सप्लाई पर देय CGST, SGST, और IGST से इस प्रकार कर सकता है –

1. INPUT CGST का समायोजन OUTPUT CGST से, शेष बचने पर यदि IGST की कोई देयता है तो IGST से समायोजन।
2. INPUT SGST का समायोजन OUTPUT SGST से, शेष बचने पर यदि IGST की कोई देयता है तो IGST से समायोजन
3. INPUT IGST का समायोजन OUTPUT IGST से, शेष बचने पर SGST और CGST की देयता को समायोजित किया जा सकता है। CGST और SGST का आपस में समायोजन नहीं हो सकता है।

4.3.3 वस्तु एंव सेवाकर के अर्न्तगत रिवर्स चार्ज तंत्र

वस्तु एंव सेवाकर तंत्र में सामान्यतः सप्लायर यानी वस्तु एंव सेवा बेचने वाला, ग्राहक या क्रेता से जी0एस0टी चार्ज करता है और सरकार को जमा करवाता है, लेकिन कुछ परिस्थिति ऐसी भी होती है कि जिसमें जी0एस0टी0 की जिम्मेदारी सप्लायर की न होकर, वस्तु या सेवा को प्राप्त करने वाले की होती है, इसे ही रिवर्स चार्ज तंत्र कहते है।

उदाहरण के लिए अगर कोई व्यापारी, किसी वस्तु या सेवा को अपंजीकृत व्यक्ति से खरीदता है, तो उसे वस्तु के मूल्य पर जी0एस0टी0 का भुगतान करना होता है, रिवर्स चार्ज की दर वस्तु या सेवा पर निर्धारित जी0एस0टी0 की दर के बराबर होता है, कुछ परिस्थितियों में यह दर कम हो सकती है।

उदाहरण अगर कोई व्यापारी किसी वस्तु या सेवा को आयात करता है तो यह परिस्थिति रिवर्स चार्ज में आती हैं, और क्रेता ने जितनी मूल्य की वस्तु या सेवा आयात की है उस पर जी0एस0टी0 का भुगतान करना होता है।

4.3.4 जी0एस0टी0 रिटर्न समय पर न दाखिल करने पर लेट फीस सम्बन्धित नियम

जी0एस0टी0 परिषद द्वारा निर्धारित तिथि के अन्दर रिटर्न न दाखिल करने पर CGST एक्ट और SGST एक्ट के अर्न्तगत 100–100 रू प्रतिदिन के हिसाब से लेट फीस का प्रावधान है, इस प्रकार अगर आप रिटर्न भरने में एक दिन की भी देरी करते है तो 200 रू लेट फीस चुकाना होगा। अधिकतम लेट फीस CGST एक्ट और SGST के अर्न्तगत 5,000–5,000 रू निर्धारित है इस प्रकार आपको एक माह के लेट रिटर्न के अधिकतम 10,000 रू लेट फीस का भुगतान करना होगा।

Due dates of All GST Returns

Return Form	Particulars	Frequency	Due Date
GSTR-1	Details of outward supplies of taxable goods and/or services effected	Monthly	10th of the next month***
GSTR-2	Details of inward supplies of taxable goods and/or services effected claiming input tax credit.	Monthly	15th of the next month***
GSTR-3	Monthly return on the basis of finalization of details of outward supplies and inward supplies along with the payment of amount of tax.	Monthly	20th of the next month***
GSTR-3B	Simple return for Jul – Dec 2017 [Not applicable from Jan 2018 onwards]	Monthly	20th of the next month
GSTR-4	Return for compounding taxable person	Quarterly	18th of the month succeeding quarter

GSTR-5	Return for Non-Resident foreign taxable person	Monthly	20th of the next month
GSTR-6	Return for Input Service Distributor	Monthly	13th of the next month
GSTR-7	Return for authorities deducting tax at source.	Monthly	10th of the next month
GSTR-8	Details of supplies effected through e-commerce operator and the amount of tax collected	Monthly	10th of the next month
GSTR-9	Annual Return	Annually	31st December of next financial year
GSTR-9A	Annual Return	Monthly	31st December of next financial year
GSTR-10	Final Return	Once. When registration is cancelled or surrendered	Within three months of the date of cancellation or date of cancellation order, whichever is later.
GSTR-11	Details of inward supplies to be furnished by a person having UIN and claiming refund	Monthly	28th of the month following the month for which statement is filed

4.3.5 E-Way Bill

E-Way Bill अब अप्रैल 2018 से लागू होगा

GST एक प्रकार का अप्रत्यक्ष कर है, जो कि वस्तुओं और सेवाओं की Supply पर लगाया जाता है। GST के अंतर्गत वस्तुओं के एक स्थान से मूव करने पर यानि कि माल को एक स्थान से दूसरे स्थान भेजने या प्राप्त करने पर, ई–वे बिल (E-Way Bill) जारी (Issue) करने का प्रावधान है। E-Way Bill एक प्रकार का इलेक्ट्रॉनिक बिल होगा, जिसमें भेजे जाने वाले या प्राप्त किये जाने वाले माल और उस पर लगने वाले GST की पूरी जानकारी होगी। E-Way Bill के आधार पर ही GST Officers ट्रांसपोर्ट किये गए माल की चेकिंग करेंगे ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके, कि माल पर उचित GST लगाया जा चुका है। GST से पहले Sales Tax या VAT कानून में Road Permit का प्रावधान था, जो GST के लागू होने के बाद E-Way Bill के रूप में जारी होगा।

E-Way बिल कब Issue करना पड़ेगा –

GST के अंतर्गत 50,000 रूपये से अधिक माल भेजने या प्राप्त करने पर E-Way Bill जारी करना अनिवार्य हैं। 50,000 से कम के माल पर E-Way बिल जारी करना आवश्यक नहीं है, लेकिन Supplier या Receiver अपनी इच्छानुसार जारी कर सकता है।

E-Way Bill किस समय और कैसे जारी करना है

E-Way Bill को माल के मूवमेंट शुरू होने से पहले यानि की वस्तु का ट्रांसपोर्टेशन शुरू होने से पहले GST Common Portal (gst.gov.in) पर Online जारी करना पडेगा।

ई–वे बिल जी0एस0टी0 कॉमन पोर्टल पर GST INS-1 Form में जारी होगा। E-Way बिल के जारी होने पर एक unique E-Way Bill number (EBN) प्राप्त होगा, जिसकी जानकारी माल के Supplier, Transporter और Recipient को GST Common Portal (gst.gov.in) पर पता चल जाएगी। सरकार द्वारा E-way bill जारी करने की भी सुविधा देगी।

E-way bill कौन जारी करेगा

अगर माल को रजिस्टर्ड सप्लायर या रिसीवर अपने ही ट्रांसपोर्ट व्हीकल में भेज रहे है, या रिसीव कर रहे है, तो उन्हे GST Common Portal पर जाकर माल को रवाना करने से पहले E-way bill जारी करना पड़ेगा।

अगर माल ट्रांसपोर्टर के माध्यम से भेजा जा रहा हैं, तो माल को ट्रांसपोर्टर को सौंपने से पहले, सप्लायर या रिसीवर E-way bill जारी कर सकता है। अगर सप्लायर या रिसीवर ने E-way bill जारी नहीं किया है, और माल ट्रांसपोर्टर को सौंप दिया है, तो फिर E-way bill ट्रांसपोर्टर के द्वारा जारी किया जाएगा और कुछ जानकारी Supplier या receiver के द्वारा भरी जाएगी।

Form GST INS-1 क्या हैं

E-way bill को Form GST INS-1 मे ही Issue किया जाता हैं। इस Form के Part-A में माल की जानकारी होती है, और Part-B में Transporter की जानकारी होती है।

4.3.6 कम्पोजीशन स्कीम

GST में छोटे व्यवसायी जिनका टर्नओवर 20 लाख रूपये (आसाम और उत्तर–पूर्वी राज्यों में 10 लाख रूपये) तक के हैं, उन्हें जी0एस0टी0 का भुगतान करने और रजिस्ट्रेशन लेने की आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार ऐसे छोटे और मध्यम आकार के व्यवसायी जिनका वार्षिक सेल या टर्नओवर 1 करोड़ रूपये (कुछ राज्यों में 75 लाख रूपये) तक हैं, उनके लिए GST को सरल करने के लिए कम्पोजीशन स्कीम हैं, जिसके तहत, व्यवसायी एक निश्चित अवधि की कुल सेल पर सीधा फिक्स रेट से टैक्स दे सकेंगे और उन्हें वर्ष में केवल 5 रिटर्न भरने की आवश्यकता होगी।

कम्पोजीशन स्कीम के लिए कौन से व्यवसाय योग्य हैं:

कम्पोजीशन स्कीम एक वैकल्पिक व्यवस्था है। ऐसे व्यवसाय (मैन्युफैक्चरर, ट्रेडर एंव रेस्टोरेंट) जिनका वार्षिक टर्नओवर 1 करोड़ रूपये तक हैं, वे सामान्य रूप से GST देने की बजाय, इस Composition Scheme को चुन सकते है। अगर व्यवसाय, उत्तरी–पूर्वी राज्य (Assam, Arunchal Pradesh, Manipur, Meghalaya, Mizoram, Nagaland, Tripura, Sikkim and Himachal Pradesh) में स्थित हैं, तो यह सीमा 75 लाख रूपये तक है।

नोट : निर्मांण क्षेत्र (Manufacturing Sector) में कम्पोजीशन स्कीम, तम्बाकू और आइसक्रीम निर्माताओं के लिए उपलब्ध नहीं है।

सेवा क्षेत्र में कम्पोजीशन स्कीम केवल रेस्टोरेंट व्यवसाय के लिए ही उपलब्ध है।

कम्पोजीशन स्कीम के लिए टैक्स रेट

कम्पोजीशन स्कीम में व्यवसायी को कुल बिक्री का एक निश्चित प्रतिशत GST के रूप में जमा करवाना होगा और इस स्कीम में व्यवसायी को खरीदे गए माल पर चुकाए गए GST की इनपुट क्रेडिट, का लाभ नहीं मिलेगा। कम्पोजीशन स्कीम के तहत ट्रेडर को 1 प्रतिशत, निर्माता को 2 प्रतिशत और रेस्तरां मालिक को 5 प्रतिशत की, फिक्स्ड रेट से GST का भुगतान करना पड़ेगा।

कम्पोजीशन स्कीम के लाभ

- व्यवसायों को कम दर से टैक्स का भुगतान करना पड़ेगा।
- व्यवसायों को हर महीने 3 रिर्टन की जगह तीन महीने में केवल एक बार quarterly return (त्रैमासिक रिटर्न) फाइल करना होगा।
- कम्पोजीशन स्कीम के व्यवसायों के लिए Detailed Invoice की आवश्यकता नहीं होगी, केवल the bill of supply ही काफी होगा।
- छोटे व्यवसायों को Return में HSN कोड की जानकारी नहीं देनी पड़ेगी।
- GST से सम्बंधित अन्य Compliance भी आसान होगी।

कम्पोजीशन स्कीम की हानि

व्यवसायों के लिये कम्पोजीशन स्कीम एक विकल्प हैं, जिनका उपयोग वे चाहें तो कर सकते है, नही तो वे सामान्य टैक्स व्यवस्था का पालन कर सकते है। इसलिए कम्पोजीशन स्कीम को चुनते समय अच्छे से विश्लेषण कर लेना चाहिए, क्योंकि इस स्कीम का सबसे बड़ा नुकसान यह हैं कि आप खरीदें गए माल पर, चुकाए गए GST की Input Credit का लाभ नही ले सकते। इसके साथ–साथ आप बिल में भी GST अलग से नहीं दिखा सकते, इसलिए आपके Customer भी आपके द्वारा बेचे गए माल पर इनपुट क्रेडिट का लाभ नहीं ले सकेंगे।

ज्यादात्तर व्यवसायों के लिए कम्पोजीशन स्कीम फायदेमंद ही होती है क्योंकि इसमें बहुत ही कम रेट से टैक्स देना होता है। लेकिन कुछ व्यवसाय, जिनके Input Credit की मात्रा अधिक होती है या फिर वे आगे Credit pass on करना चाहते है, उनके लिए यह स्कीम नुकसानदायक भी हो सकती है।

4.4 सारांश

किसी वस्तु की खुदरा कीमत, उत्पादन तथा वितरण के प्रत्येक चरण में होने वाले मूल्य सवर्धन का योग है। मूल्य संवर्धन बिक्री कीमत तथा खरीदी गयी सामग्रियों की लागत का अन्तर है। बिक्री कर के इस दूसरे सम्भव रूप के अन्तर्गत, वस्तुओं पर उत्पादन तथा वितरण के प्रत्येक स्टेज पर होने वाली मूल्य वृद्धि पर कर लगाया जाता है, न कि कुल प्राप्ति पर। इसे मूल्य संवर्धन कर वैट का नाम दिया गया है। वस्तु एवं सेवा कर, वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति पर लगाया जाने वाला एकीकृत कर है। इसकी शुरूआत भारत में 1 जुलाई 2017 को की गई। इस कर में उत्पाद शुल्क, राज्य स्तरीय कर, मनोरंजन कर, सेवा कर व अन्य अप्रत्यक्ष स्थानीय कर शामिल है। वस्तु व सेवा कर, का आरोपण अन्तिम उपभोक्ता पर किया जाता है। इसके प्रत्येक चरण के आपूर्तिकर्ता को इनपुट टैक्स क्रेडिट व्यवस्था (Input tax credit Facility) के माघ्यम से इसकी भरपाई करने की अनुमति होती है।

4.5 शब्दावली

एकीकृत कर (Integrated Tax) – कई करो को मिलाकर एक कर लगाया जाना एकीकृत कर होता है।

आरोपण (भार) (Burden) – आरोपण का अर्थ, भार या अन्तिम भार से है।

इनपुट टैक्स क्रेडिट व्यवस्था (Input Tax credit facility) – विक्रेता को क्रय पर दिये गये कर, का छूट प्राप्त होना, इनपुट टैक्स क्रेडिट की व्यवस्था कहलाता है।

भरपाई (Set off) – अब तक दिये गये कर का क्रेडिट प्राप्त करना, भरपाई कहलाता है।

विसंगति (Inconsistent) – अन्तर का न होना, विसंगति न होना कहलाता है।

रिवर्ज चार्ज तन्त्र (Reverse Charge Mechanism) – जहॉ प्राप्तकर्ता कर का भुगतान करता है।

E-way Bill – एक प्रकार का electronic bill जिसमें भेजे जाने वाले या प्राप्त किये जाने वाले माल और उस पर लगने वाले GST की पूरी जानकारी रहेगी।

Road Permit (सड़क – अनुमति) – वैट कानून में Road Permit का प्रावधान था, जो GST के लागू होने के बाद E-way Bill के रूप में जारी होगा।

Mandatory Requirement अनिवार्यतः आवश्यक – अनिवार्यतः आवश्यक का उदाहरण यह है कि GST के अन्तर्गत 50,000रू से अधिक माल भेजने या प्राप्त करने पर E-way Bill जारी करना अनिवार्यतः आवश्यक है।

आपूर्तिकर्ता (Supplier) विक्रेता होता है।

ट्रांसपोर्टर Transporter के माध्यम से वस्तु आपूर्तिकर्ता से वस्तु प्राप्तकर्ता तक वस्तुऐं पहुॅचायी जाती है।

प्राप्तकर्ता Recipient मध्यस्थ या क्रेता होता है।

कम्पोजीशन स्कीम – कम्पोजीशन स्कीम में व्यवसायी को कुल बिक्री का एक निश्चित प्रतिशत GST के रूप जमा करवाना होगा।

क्रेडिट पास आन (Credit pass on) - क्रेडिट (छूट) को आगे हस्तान्तरित करना Credit Pass On कहलाता है।

HSN Code (Harmonized System of Nomenclature Code) – प्रत्येक मद (item) का कोड होता है।

Compliance – नियम व नियमावली का अनुसरण करना Compliance कहलाता है।

करापवंचन (Tax evasion) – कर की चोरी करना करापवंचन कहलाता है।

क्रेडिट (Credit) – क्रेडिट का अर्थ छूट से है।

4.6 बोध प्रश्न

रिक्त स्थान की पूर्ति करिये :

1. VAT का पूरा रूप हैं ....
2. GST का पूरा रूप हैं ....
3. VAT कानून का Road Permit, GST कानून का .... है।
4. GST लागू किया गया .... को।
5. क्रेडिट का अर्थ .... से है।
6. HSN प्रत्येक .... के कोड को कहते है।
7. कई कर को मिला कर एक कर लगाना .... कहलाता है।
8. GST के अन्तर्गत 50,000 रू से अधिक माल भेजने या प्राप्त करने पर .... जारी करना अनिवार्य है।
9. कम्पोजीशन स्कीम में व्यवसायी को कुल बिक्री पर .... GST के रूप में जमा करवाना होगा।
10. इनपुट टैक्स क्रेडिट व्यवस्था में विक्रेता को .... पर दिये गये कर के छूट का लाभ प्राप्त होना है।

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. Value Added Tax
2. Goods and Services Tax

3. E-WAY Bill
4. 1 जुलाई 2017
5. छूट
6. मद (Item)
7. एकीकृत कर
8. E-WAY Bill
9. एक निश्चित प्रतिशत
10. कय

4.8 स्वपरख प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मूल्य सवर्धन कर क्या है ?
2. मूल्य सवर्धन कर के प्रकार बताइए।
3. मूल्य सवर्धन कर के लाभ–दोष बातइए।
4. मूल्य सवर्धन कर के उदाहरण दीजिए।
5. GST के अन्तर्गत वस्तुओ और सेवाओं पर कर की दरें बताइए।
6. इनपुट टैक्स केडिट क्या है ?
7. GST के अन्तर्गत रिवर्स चार्ज तन्त्र क्या है ?
8. GST समय पर दाखिल न करने पर लेट फीस सम्बन्धी नियम बताइए।
9. E-Way Bill क्या होता है ?
10. कम्पोजीशन स्कीम के लाभ–दोष बताइये।

4.9 सन्दर्भ पुस्तकें

1. राजस्व : डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय
2. लोकवित्त : डॉ0 एस0 के0 सिंह
3. राजस्व : डॉ0 आर0 एस0 कौशिक
4. राजस्व सिद्धान्त एवं व्यवहार : के0 एल0 माहेश्वरी
5. Delton, H : Principles of public Finance
6. Public Finance Theory and Practice : Mehta and Agrawal
7. Shirras, Findley : The Science of Public Finance
8. Hicks, Ursula : Public Finance
9. A.C. Pigou : A Study of Public Finance
10. Taylor P.E. : Economics of Public Finance
11. Raja J Chhelliah : Fiscal Policy in under developed Countries.
12. Indirect Taxes अप्रत्यक्ष–कर : डॉ0 एच0 सी0 मेहरोत्रा एवं प्रो0 वी0 पी0 अग्रवाल
13. News Paper
14. Net Surfing
15. Discussion with Lawyers and CA’s

इकाई 5 सार्वजनिक ऋण

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 सार्वजनिक ऋण का वर्गीकरण
5.3 सार्वजनिक ऋण एवं व्यक्तिगत ऋण में अन्तर
5.4 सार्वजनिक ऋण के सिद्धातों के निर्धारक तत्व
5.5 सार्वजनिक ऋण के सिद्धांत
5.6 सार्वजनिक ऋण के स्रोत
5.7 सार्वजनिक ऋण के आर्थिक प्रभाव
5.8 सार्वजनिक ऋणों का भार
5.9 सार्वजनिक ऋणों के शोधन के ढंग
5.10 सारांश
5.11 शब्दावली
5.12 बोध प्रश्न
5.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.14 स्वपरख प्रश्न
5.15 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- सार्वजनिक ऋण के विभिन्न वर्गीकरण की व्याख्या कर सके।
- व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक के बीच भेद कर सके।
- सार्वजनिक ऋण के सिद्धांतो को समझ सके।
- सार्वजनिक ऋण के स्रोत को जान सके।
- सार्वजनिक ऋण के आर्थिक प्रभाव व सार्वजनिक ऋण के शोधन की विधियों की व्याख्या कर सके।

5.1 प्रस्तावना

प्रायः राज्य अपने सामान्य व्यय को अपनी सामान्य आय से पूरा कर देता है परन्तु कभी—कभी ऐसे अवसर भी आते हैं, जब सामान्य आय—व्यय के बढ़ते हुए आकार को पूरा करने में समर्थ नहीं होती। एक आधुनिक सरकार को बहुत से सामान्य कार्य करने पड़ते हैं और इनको करने के लिए बढी मात्रा में साधनों की आवश्यकता होती है। कुछ असामान्य परिस्थितियां जैसे युद्ध, आकाल, विकास योजनाएं इत्यादि ऐसे असामान्य व्यय को जन्म देते हैं जिनके लिए सरकार को ऋण लेकर ही काम चलाना पड़ता है। राज्य द्वारा लिए गये ऋण को सार्वजनिक ऋण का नाम दिया जाता है। राज्य के अन्तर्गत केन्द्रीय शासन, राज्य शासन तथा स्थानीय शासन सब सम्मलित होते हैं। सार्वजनिक ऋण राज्य की आय का एक साधन है तथा गत वर्षों में यह सार्वजनिक वित्त व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग बन गया है, परन्तु ऋण का भुगतान करना पड़ता है, अतः आय का यह साधन अन्य साधनों से भिन्न है। अल्पकालीन दृष्टि से हम इसे सरकार की आय कह सकते हैं, दीर्घकालीन दृष्टि से नहीं। कुछ ऐसे ऋण भी हो सकते हैं निरन्तर चलते हैं जिन्हें

लौटाना नहीं पड़ता; केवल व्याज ही देना पड़ता है। परन्तु व्याज तो देना ही पड़ेगा। ब्रैस्टेबिल ने लिखा है, "जिस प्रकार एक व्यक्ति निरन्तर ऋण लेकर अपना काम नहीं चला सकता है, इसी प्रकार सरकार निरन्तर ऋण लेकर अपना काम नही चला सकती है।"

सरकार द्वारा ऋण लेना पर्याप्त पुरानी प्रथा है, परन्तु प्राचीन काल में ऋण प्रायः शासक को दिया जाता था। जब एकतन्त्र का युग था तो राजा साधारण जनता से ऋण न लेकर केवल कुछ धनी व्यक्तियों से ऋण लेता था तथा इस ऋण की वापसी भी राजा की इच्छा पर निर्भर करती थी। इसके अतिरक्त यह आवश्यक नहीं था कि इस ऋण का उद्देश्य जनता की भलाई के कार्यों पर व्यय करना हो। राजा प्रायः उसे अपने व्यक्तिगत हितों पर व्यय करता था। अतः सही रूप में हम इसे सार्वजनिक ऋण नहीं कह सकते। राजतन्त्र का युग समाप्त हो गया है तथा उनका स्थान लोकतान्त्रिक शासन ने ले लिया। इस नवीन शासन–प्रणाली के साथ ही सार्वजनिक ऋण का उदय हुआ। सार्वजनिक ऋण वर्तमान युग का शिशु है। प्रोफेसर जे0 के0 मेहता का यह कथन सत्य है कि "सार्वजनिक ऋण अपेक्षाकृत आधुनिक घटना है तथा विश्व में सरकारों के लोकतान्त्रिक स्वरूप के साथ इसका जन्म हुआ है।" सार्वजनिक ऋण तो आर्थिक विकास तथा मौद्रिक प्रणाली का परिणाम है। केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारें तथा स्थानीय सरकारें सभी ऋण ले रही हैं। लोकतान्त्रिक सरकार जनता से ऋण लेती है, किसी एक व्यक्ति से नहीं तथा इसका व्यय किसी एक व्यक्ति की भलाई के लिए न होकर सम्पूर्ण समाज की भलाई के लिए किया जाता है। इस ऋण को लौटाने के लिए सरकार बाध्य होती है।

इस इकाई मे ंवित्तीय प्रशासन के एक महत्वपूर्ण अंग अर्थात सार्वजनिक ऋण पर प्रकाश डाला गया है। इस इकाई में हम सरकारी ऋण के विभिन्न वर्गीकरणों तथा व्यक्तिगत व सार्वजनिक ऋण में भेद व सार्वजनिक के सिद्धातों, स्रोतों व आर्थिक प्रभावों व विधियों पर चर्चा करेंगें।

5.2 सार्वजनिक ऋण का वर्गीकरण

सार्वजनिक ऋण के वर्गीकरण को निम्न प्रकार से रखा जा सकता हैः

सार्वजनिक ऋण का वर्गीकरण

ऋण की दृष्टि से	उत्पत्ति की दृष्टि	स्मय की दृष्टि	शोधन की दृष्टि से	स्वेच्छा की दृष्टि से	सम्पत्ति की दृष्टि से	अन्य दृष्टि से

1. **ऋण की दृष्टि से–** ऋण की दृष्टि से सार्वजनिक ऋणों को निम्न प्रकार रख सकते हैंः

(i) आन्तरिक ऋणः– आन्तरिक ऋण वे ऋण हैं, जिन्हें किसी देश की सरकार अपने देश के अन्दर से ही प्राप्त करती है। यह अपने देश की मुद्रा में ही प्राप्त किये जा सकते हैं। आन्तरिक ऋण केवल उसी समय सम्भव हो सकता है जबकि नागरिकों के पास पर्याप्त मात्रा में खर्चा पूर्ण करने के पश्चात बच रहता है। आन्तरिक ऋण के भुगतान की समस्या अधिक जटिल नहीं होती है क्योंकि इनका भुगतान देश की मुद्रा में ही किया जाता है। आन्तरिक ऋणों पर ब्याज का भुगतान भी देश के नागरिकों को ही किया जाता है। आन्तरिक ऋण इच्छित वं अनिच्छत दोंनों ही प्रकार का हो सकता है। इस ऋण को प्राप्त करने हेतु देश के लागों पर दबाव भी डाला जा सकता है।

(ii) बाह्य ऋण –बाह्य ऋण वे ऋण होते हैं, जोकि विदेशों से प्राप्त किये जाते हैं। डाल्टन का मत है कि" एक ऋण आन्तरिक या बाह्य हो सकता है। एक ऋण आन्तरिक उस समय होता है जबकि सार्वजनिक अधिकारी, जो ऋण प्राप्त करता है, के सीमा क्षेत्र के अन्तर से प्राप्त किया जाए और इस सीमा से बाहर प्राप्त करने पर बाह्य हो जाता है।" बाह्य ऋणों का भार देश के नागरिकों को सहन करना पड़ता है। इस ऋण का द्राव्यिक का भार ब्याज व मूल धन के रूप में दी जाने वाली राशि से लगाया जाता है तथा उस ऋण का प्रत्यक्ष वास्तविक भार देश के नागरिकों के आर्थिक कल्याण में कमी होना है।

2. **उत्पत्ति की दृष्टि से–** उत्पत्ति की दृष्टि से सार्वजनिक ऋणों के अग्र भेद हैं।

(i) उत्पादक ऋण– उत्पादक ऋण से आशय ऐसे ऋणों से है जिनका भुगतान व्यवसाय से प्राप्त आय से कर दिया जाता है। जो ऋण विकास कार्यो से जैसे नदी–घाटी योजना, जलकल, यातायात, लौह इस्पात, खाद व सीमेंट के कारखानों में लगाया जाता है उसे उत्पादक ऋण कहा जाता है। वर्तमान समय में सरकार द्वारा लिये गये ऋण नियोजन कार्य में लगाने से उत्पादक ही माने जाते हैं। क्योंकि इनसे भविष्य में उत्पादन एवं रोजगार की मात्रा में वृदि होगी जिससे राष्ट्रीय व प्रति व्यक्ति आय बढ़कर करों के रूप में अधिक धनराशि प्राप्त होकर ऋणों का भुगतान सरलतापूर्व्रक किया जा सकेगा। उदाहरणार्थ बाढ़, भूकम्प, प्रतिरक्षा आदि पर किया गया व्यय उत्पादक माना जाता है।

(ii) अनुत्पादक ऋण–प्रत्यक्ष रूप से मौद्रिक लाभ न देने वाले ऋण अनुत्पादक ऋण कहे जाते हैं। यदि सरकार ऋण ऐसे उपयोगों में लगाती है जहां पर मूलधन एवं ब्याज की राशि का भुगतान करने हेतु पृथक से व्यवस्था करनी पड़े तो ऐसे ऋणों को अनुत्पादक या मृतभार ऋण कहते हैं जैसे बाढ़ पीड़ितों को सहायता देने तथा अकाल एवं सुरक्षा आदि पर धन व्यय करना आदि। यद्यपि ऐसी सहायता से समाज का हित होता है, और जनता के कल्याण में वृद्धि होती है, परन्तु मौद्रिक रूप से इसका कोई लाभ प्राप्त नहीं होता है। वास्तव में कोई ऋण अनुत्पादक नहीं माना जा सकता। "किसी भी देश की सम्पन्नता वहां की भूमि एवं डालरों में निहित न होकर स्वस्थ एवं प्रसन्न पुरूषों एवं बच्चों में होती है।"

3. **समय की दृष्टि से–** समय की दृष्टि से ऋणों को निम्न भागों में बांट सकते हैंः–

(i) अल्पकालीन ऋण–जब सरकार थोड़े समय के लिए ऋण प्राप्त करे तो इन्हें अल्पकालीन ऋण कहेंगें। इस ऋण की मूल धनराशि को भविष्य में वापस कर दिया जाता है। इन ऋणों इसलिए इन ऋणों को चल ऋण कहा जाता है। इस ऋण को व्याज के साथ वापस करना होता है।

(ii) दीर्घकालीन ऋण–जब सरकार के द्वारा लम्बी अवधि के लिए ऋण प्राप्त किये जाये तो उसे दीर्घकालीन ऋण कहते हैं। इस ऋण का एक निश्चित अवधि के पश्चात लौटाने का वायदा नहीं किया जाता परन्तु प्रतिवर्ष व्याज का भुगतान अवश्य कर दिया जाता है। इस ऋण की स्थापना हेतु सरकार द्वारा एक कोष की स्थापना की जाती है। यह ऋण कब लौटाये जायेंगें, इसकी सीमा नहीं होती।

4. **शोधन की दृष्टि से**– शोधन की दृष्टि से सार्वजनिक ऋण निम्न प्रकार के होते हैं:

(i) शोध्य ऋण– जब सरकार किसी ऋण के सम्बन्ध में एक निश्चित भावी तिथि पर भुगतान करने का वचन देती है तो ऐसे ऋण को शोध्य ऋण कहा जाता है।

(ii) अशोध्य या स्थायी ऋण– ऐसे ऋण जिनके भुगतान का वायदा नहीं किया जाता इसे अशोध्य ऋण कहते हैं। इस ऋण में सरकार केवल ब्याज देने की गारंटी करती है तथा मूलधन को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं की जाती। जे0के0 मेहता का मत है कि, "शोध्य ऋण वे हैं जिन्हें सरकार एक भावी तिथि पर भुगतान करने का वचन देती है। वे जिनके लिए कोई वायदा नहीं किया जाता, वे अशोध्य ऋण कहलाते हैं। सार्वजनिक ऋण प्रायः शोध्य ऋण होते हैं।"

5. **स्वेच्छा की दृष्टि से**– स्वेच्छा की दृष्टि से ऋणों को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है:–

(i) ऐच्छिक ऋण –जब जनता स्वेच्छा से सरकार को जब ऋण देती है तो ऐसे ऋण को एच्छिक ऋण कहा जाता है। यह आन्तिरिक एवं बाह्ला दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं।

(ii) बलात ऋण–आवश्यकता से कम ऋण प्राप्त होने से सरकार द्वारा जनता से मजबूरन ऋण प्राप्त किया जाता है। 17 वीं या 18 वीं शताब्दी में ऐसे ऋणों का अधिक प्रचलन रहा है। इन ऋणों को देश में उत्पन्न हुए आपातकाल को दूर करने में प्रयोग किया जाता रहा है।

डाल्टन का मत है कि " ऋण ऐच्छिक या बलात हो सकता है। बलात ऋण वर्तमान राजस्व व्यवस्था में कदाचित ही हो, क्योंकि इसमें हानियाँ अधिक व लाभ कम पाये जाते हैं जिससे दोनों ही करों को स्वैच्छिक माना जा सकता है।"

6. **सम्पत्ति की दृष्टि से** – सम्पत्ति की दृष्टि से सार्वजनिक ऋण के प्रमुख भेद निम्न हैं:

(i) पुनरूत्पादक ऋण– यह वे ऋण होते हैं, जिनके लिए सरकार उनके बराबर सम्पत्ति अपने पास रखती है, और इसकी आय में से ब्याज एवं मूलधन कर दिया जाता है।

(ii) मृतक बोझ ऋण– इस ऋण में सरकार के पास उनके मूल्य के बराबर सम्पत्ति नहीं रखी जाती तथा ऋणों को भुगतान करारोपण की आय से हो जाता हैं इस ऋण को ऐसे कार्यों पर व्यय किया जाता हे जिनसे कोई भी आय प्राप्त न

हो जैसे युद संचालन पर व्यय करना, अकाल, भूकम्प व बाढ़ पीड़ितों की सहायता आदि।

7. **अन्य दृष्टि से**– इस आधार पर सार्वजनिक ऋणों के रूप निम्न प्रकार हैंः

(i) सूद सहित एवं सूद रहित ऋण–सूद सहित ऋणों में सरकार द्वारा एक निश्चित अवधि के पश्चात ब्याज दी जाती है, जबकि सूद रहित ऋणों में सरकार द्वारा कोई भी ब्याज नहीं दी जाती है। प्राचीन के शासकों के द्वारा बिना ब्याज का ऋण लिया जाता था।

(ii) वार्षिक वृत्ति एव लाटरी ऋण– सरकार द्वारा ऋण किश्तों में ऋण लेने की पद्धति को वार्षिक वृत्ति कहते हैं। ऐसे ऋण का भुगतान भी एक साथ न करके किश्तों में ही वार्षिक वृत्ति के रूप में कर दिया जाता है। लाटरी ऋण में मूलधन के अतिरिक्त इनाम भी घोषित किये जाते हैं।

(iii) क्रय योग्य एवं अक्रय योग्य ऋण– क्रय योग्य ऋणों में वे सरकारी प्रतिभूतियां आती हैं जिनका बाजार में स्वतन्त्रतापूर्वक क्रय विक्रय किया जा सकता है। इसके विपरीत अक्रय योग्य ऋण में वे ऋण सम्मिलित किये जाते हैं जो बाजार में न बेचे जाकर एक निश्चित अवधि के पश्चात सरकार को ही वापस कर दिये जाते हैं।

(iv) कुल ऋण एवं शुद ऋण– एक निश्चित अवधि में सरकार द्वारा लिये गये समस्त प्रकार के ऋणों के योग को कुल ऋण कहा जाता है। इन ऋणों के भुगतान हेतु जो कोष सरकार द्वारा रखा जाता है, उसे घटाने पर शुद्ध ऋण ज्ञात होता है।

सार्वजनिक ऋण एक समान न होकर सदैव एक दूसरे से भिन्न होते हैं। इस सम्बन्ध में जे0के0मेहता का मत है कि "सार्वजनिक ऋण एक दूसरे से भिन्न होते हैं क्योंकि उनका आधार भिन्न–भिन्न होता है। इनमें यह अन्त बाजार ब्याज, चुकाने के ढंग आदि के कारण ही पाया जाता है।"

5.3 सार्वजनिक ऋण एवं व्यक्तिगत ऋण में अन्तर

सरकार एवं व्यक्ति दोनों ही ऋण प्राप्त करते हैं, परन्तु इन दोनों की व्यवस्था में अन्तर पाए जाते हैं जिन्हे निम्न प्रकार से रखा जा सकता है।

1 **ऋण भार का अन्तर**– व्यक्तिगत ऋण में ऋण को सम्पूर्ण राशि वापस मिल जाती है, जबकि सार्वजनिक ऋण में प्रत्यक्ष रूप से तो समस्त राशि मिलती है, परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से उसका भार व्यक्ति को ही सहना पड़ता है, क्योंकि राज्य उस ऋण के भुगतान करने के लिए जनता पर कर लगाता है तथा उसी कर से प्राप्त राशि का ही भुगतान कर दिया जाता है।

2 **अनिवार्यता एवं ऐच्छिकता का अन्तर**– सार्वजनिक ऋण में सरकार के पास सार्वभौमिक सत्ता होने के कारण वह जनता को ऋण देने के लिए बाध्य कर सकती है और वह ऋण कम ब्याज दर पर भी प्राप्त किये जा सकते हैं। इसके विपरीत, व्यक्तिगत ऋण केवल व्यक्तिगत की इच्छा पर ही प्राप्त किया जा सकता है तथा ब्याज की दर का निर्धारण ऋण देने वाले पर रहता है न कि ऋण लेने वाले पर इस प्रकार सार्वजनिक ऋण अनिवार्य होता है, जबकि व्यक्तिगत ऋण ऐच्छिक।

3 **साख का अन्तर**– सरकार की आय अच्छी होने के कारण उसे कम ब्याज पर पर्याप्त मात्रा मे ऋण प्राप्त हो जाता है।तथा यह ऋण किसी भी समय प्राप्त किये जा सकते हैं। इसके विपरीत व्यक्तिगत ऋण के लिए यह सुविधा नहीं होती और न तो यह कम ब्याज पर और नही हर समय निर्गमित किये जा सकते हैं।

4 **प्रतिभूति का अन्तर**– व्यक्तिगत ऋण पर्याप्त मात्रा में प्रतिभूति देने पर ही प्राप्त हो सकते हैं और अपर्याप्त प्रतिभूति होने पर प्रायः ऋण प्राप्त नहीं होते। इसके विपरीत राज्य अपनी साख के कारण आन्तरिक एवं विदेशी साधनों से ऋण प्राप्त कर सकता है।

5 **व्यय की लोच का अन्तर**– सार्वजनिक व्यय में लोच अधिक होने के कारण ऋण प्राप्त करना आवश्यक हो जाता हैं। इसके विपरीत, व्यक्ति को ऋण के स्थान पर अपने व्यय को भी कम करना पड़ता है। राज्य भी केवल प्रशासन व्यय में कमीं दूर कर सकता है ओर युद्धकालीन समय में कोई कमी सम्भव पाती।

6 **गोपनीयता का अन्तर**– व्यक्तिगत ऋण सदैव गोपनीय रखे जाते हैं, जबकि सार्वजनिक ऋणों को नहीं रखा जाता है। सार्वजनिक ऋण सर्वविदित होते हैं और उसे प्रचार करक प्राप्त किया जाता है जिसमें कोई भी गुप्तता नहीं रहतीं । व्यक्तिगत ऋण इसलिए गुप्त रखे जाते हैं क्योंकि ऋण लेने वाले व्यक्ति को अच्छा नहीं माना जाता है, जबकि सरकार का ऋण लेना सार्वजनिक हित में अच्छा माना जाता है।

7 **आवश्यकता का अन्तर**– व्यक्ति बहुत आवश्यकता होने पर ही ऋण प्राप्त करता है, जबकि राज्य बिना आवश्यकता के भी ऋण प्राप्त कर सकता है जैसे स्फीतिक काल में राज्य व्यक्तियों से ऋण प्राप्त करके क्रय शक्ति को कम कर देता है, जिससे सामान्य मूल्य स्तर नीचे गिर जाता है।

8 **उत्पादकता का अन्तर**–राज्य प्रायः उत्पादक कार्यो के लिए ऋण प्राप्त करता है और उसे देश के कार्यो में लगा देता है। इसके विपरीत व्यक्ति द्वारा ऋण का उपयोग अनुत्पादक कार्यो में भी किया जाता है तथा इस ऋण को उपभोग कार्यो पर अधिकांशतया व्यय कर दिया जाता है। व्यक्ति के सम्मुख एकता के दृष्टिकोण के साथ–साथ उपभोग का दृष्टिकोण भी रहता है।

9 **स्रोत का अन्तर**–राज्य को ऋण प्राप्ति के व्यापक स्रोत प्राप्त होते हैं और आवश्यकता पडने पर हीनार्थ प्रबन्धन की सहायता से नोट छापकर वित्त की व्यवस्था की जा सकती है। इसके विपरीत, व्यक्ति को इस प्रकार की कोई भी सुविधा प्राप्त नहीं होती।

10 **क्षेत्र का अन्तर**– व्यक्ति के ऋण का क्षेत्र बहुत सीमित होता है जवकि सार्वजनिक ऋणों का क्षेत्र बहुत व्यापक होता है। राज्य ऋणों की प्राप्ति आन्तरिक एवं बाह्य दोनों ही साधनों से कर सकता है। इसके विपरीत, व्यक्तिगत ऋण में सीमित साख होने के कारण आन्तरिक साधनों से ही ऋण प्राप्त किये जा सकते हैं तथा बाह्य ऋणों को प्राप्त करने में अनेक प्रकार की कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है।

11 **ऋण भुगतान में अन्तर**–राज्य ऋण का भुगतान करने से इन्कार भी कर सकता है परन्तु व्यक्ति का भुगतान करने के लिए इन्कार नहीं कर सकता क्योंकि ऋणदाता न्यायलय की सहायता से उससे ऋण प्राप्त कर सकता है। राज्य यदि

भुगतान से इनकार करता हे तो उसके विरूद्ध न्यायालय में कोई वादा नहीं किया जा सकता। परन्तु राज्य द्वारा इस प्रकार से इन्कार बहुत कम किया जाता है।

12 **भुगतान दायित्व का अन्तर–** व्यक्ति की आय सीमित होने के कारण उसे केवल अल्पकालीन ऋण ही प्राप्त हो पाते हैं। इसके विपरीत, राज्य एक स्थायी संस्था होने के कारण दीर्घकालीन अवधि के लिए ऋण प्राप्त कर सकता है तथा उनका भुगतान एक लम्बी अवधि के पश्चात किया जा सकता है।

13 **उपयोग के अन्तर–** व्यक्तिगत ऋणों को व्यक्ति द्वारा केवल अपने ही उपयोग में प्रयोग किया जा सकता है तथा उसका कोई भी लाभ ऋणदाता को प्राप्त नहीं हो पाता । इसके विपरीत, सरकार द्वारा लिये गये ऋण को जनता के लाभार्थ ही व्यय कर दिया जाता है और उसका प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति ही लाभ प्राप्त होता है। इस प्रकार सार्वजनिक ऋण मे ऋणदाता भी लाभ उठा लेता है, जबकि व्यक्तिगत ऋण में ऋणदाता कभी भी लाभ प्राप्त नहीं कर पाता। डॉ0 शर्मा के अनुसार "राज्य द्वारा उधार लिए गये कोष समुदाय के हित मे ही व्यय कर दिया जाता है। निजी ऋणों का उपयोग केवल व्यक्तियों के लाभार्थ ही किया जाता है।"

5.4 सार्वजनिक ऋण के सिद्धांतों के निर्धारक तत्व

प्रो0 जे0 एम0 बुचानन ने सार्वजनिक ऋण के आधुनिक सिदांत में निम्न बातों को सम्मिलित किया हैः

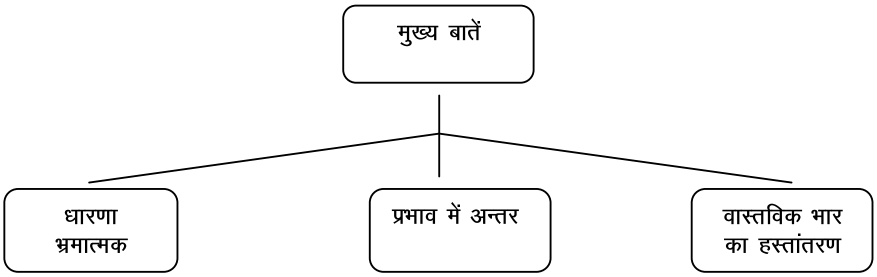

1 **सार्वजनिक ऋण एवं व्यक्तिगत ऋण की धारणा भ्रमात्मक**–निजी एवं सार्वजनिक वित्त के मध्य भ्रमात्मक अन्तर होने से सार्वजनिक ऋण के बारे में अनेक गलत धारणाएं उत्पन्न हो जाती हैं। इस सन्दर्भ में **प्रो0 एल्विन एच0 हेन्सन** का मत है कि "उत्पादक रोजगार एवं आय के सम्बन्ध में सार्वजनिक एवं निजी अर्थशास्त्र में भेद करने से भ्रमात्मक निष्कर्ष प्राप्त होते हैं। दोनों ही अर्थशास्त्र अपनी आय का अधिकतम करना चाहतें हैं, परन्तु यह लक्ष्य सार्वजनिक अर्थशास्त्र में सरलता से प्राप्त नहीं किया जा सकता है। निजी वित्त में व्यय को आय तक सीमित रखा जाता है परन्तु सार्वजनिक वित्त में व्यय में वृद्धि करने से कुल राष्ट्रीय आय में वृद्धि होकर राज्य की प्रशुल्क स्थिति सुधर जाती है। व्यक्ति की स्वयं की आर्थिक क्रियाओं का प्रभाव अन्य व्यक्तियों पर भी पड़ता है। परन्तु सार्वजनिक वित्त में स्थिति भिन्न प्रकार की रहती है। सार्वजनिक नीति की सफलता एवं असफलता सार्वजनिक व्ययों, करों एवं ऋणों के कुल राष्ट्रीय आय पर प्रभावों से प्रभावित होती है कि किस प्रकार राष्ट्रीय आय का वितरण किया

जाता है।"अतः सार्वजनिक ऋण प्रकृति में निजी ऋण से भिन्न होता है। हेन्सन का मत है कि " आन्तरिक रूप से प्राप्त सार्वजनिक ऋण निजी ऋण से भिन्न होता है, जो कि निजी ऋण का कोई भी चिन्ह नहीं रखता सार्वजनिक ऋण सार्वजनिक नीति का एक उदाहरण है। यह राष्ट्रीय आय का नियन्त्रित करने का एक साधन माना जाता है।"

2 **आन्तरिक एवं बाह्य सार्वजनिक ऋण के प्रभाव में अन्तर**— बाह्य ऋणों के भुगतान से घरेलू अर्थ व्यवस्था के साधन विदेशों को हस्तान्तरित होकर सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था को हानि पहुंचाते हैं। साधनों के हस्तान्तरण की सीमा तक भावी पीढ़ी की वास्तविक आय घट जाती है। ऋणों के भुगतान हेतु करों को लगाया जाता हैं तथा कर की दरों में वृद्धि की जाती है जिससे बाह्य ऋण का भार भावी पीढ़ी पर हस्तान्तरित हो जाता है।

3 **सार्वजनिक ऋण की उत्पत्ति भावी पीढ़ी पर प्राथमिक वास्तविक भार का हस्तान्तरण नहीं करती**—

"सरकारी ऋण का भार तथा अन्य प्रभाव उसी अवधि में रहते हैं। **बुचानन का** मत है कि **"सार्वजनिक व्ययों की पूर्ति ऋण द्वारा करने या करों द्वारा करने में कोई भौतिक भेद नहीं है। दोनों ही दशाओं में वास्तविक भार वर्तमान पीढ़ी पर ही है। इस प्राथमिक वास्तविक भार का परिवर्तन करना असम्भव रहता है।"** सार्वजनिक ऋण भावी पीढ़ी पर एक दायित्व छोड़ जाता है।

5.5 सार्वजनिक ऋण के सिद्धांत

सार्वजनिक ऋण के प्रमुख सिद्धांत निम्न प्रकार हैं:

1 **विनियोक्ताओं की आवश्यकता की पूर्ति**— सार्वजनिक ऋण का प्रबन्ध इस ढंग से किया जाना चाहिए कि विनियोक्ता की आवश्यकताएं सरकारी प्रतिभूतियों के प्रकार एवं उनके निर्गमन के सम्बन्ध में सन्तुष्ट होनी चाहिए।

2 **प्रशुल्क व मौद्रिक नीति से समन्वय**— देश में आर्थिक स्थिरता एवं आर्थिक विकास हेतु सार्वजनिक ऋण नीति का प्रशुल्क व मौद्रिक नीति के साथ समन्वय स्थापित करना आवश्यक है। ऋण नीति से बने रहना चाहिए।

3 **परिपक्वता, वितरण एवं ऋणधारी के प्रकार**—यदि कुल ऋण का एक बड़ा भाग अल्पकालीन ऋण है जो अधिकांशतया बैंक द्वारा लिया जाता है तो उसमें उच्च प्रकार की तरलता होगी जो कि स्फीति दबाव बतायेगी, जबकि अपस्फीतिक नीति की आवश्यकता होती है। अतः ऋण की उच्च तरलता स्फीतिक नियन्त्रण को कठिन बना देती है।"

4 **अल्पकालीन ऋणों का दीर्घकालीन ऋणों में परिवर्ततन**— सार्वजनिक ऋण प्रबन्ध में अल्पकालीन ऋणों को दीर्घकालीन ऋणों में परिवर्तित किया जाना चाहिए विशेषकर अति दीर्घकालीन ऐसे ऋणों में जो कभी परिपक्व नहीं होते। परन्तु यह कार्य इस ढंग से किया जाना चाहिए जिससे आर्थिक स्थायित्व में कोई कठिनाई न हो।

5 **सार्वजनिक ऋण की ब्याज सेवा का न्यूनतम होना**— सरकार द्वारा सार्वजनिक ऋण की प्राप्ति न्यूनतम ब्याज दर भार पर करनी चाहिए। यह ऋण प्रबन्ध का एक प्रमुख उददेश्य है।ब्याज भार न्यूनतम होना चाहिए क्योंकि ब्याज की व्यवस्था अतिरिक्त करारोपण से ही सम्भव हो पाती है। करारोपण की दर में

कमी करने से विभिन्न प्रेरणाओं पर कम प्रतिकूल प्रभाव पड़ते हैं। जनता कर के भार को उठाने में असमर्थ रहती है।

5.6 सार्वजनिक ऋण के स्रोत

भारत में सार्वजनिक ऋण को निर्गमन करने या प्राप्त करने की विभिन्न रीतियों को निम्न प्रकार रखा जा सकता है–

1 आन्तरिक ऋण

आन्तरिक ऋण की दृष्टि से सरकार निम्नलिखित तकनीकों ओर स्रोतों से ऋण प्राप्ति करती है–

विपणन उधार– सरकार द्वारा लोक ऋण लेने की एक महत्वपूर्ण तकनीकी निश्चित तिथि वाले ऋणों का निर्गमन करना है। इसमें सरकार की निश्चित तिथि या वर्ष में भुगतान होने वाले ऋण–पत्र, बाण्ड या ऋण का निर्गमन करती है इन पर ब्याज की दर भी निश्चित रहती है। यह ऋण सामान्य रूप से विक्रय के लिए होते हैं और जन–सामान्य द्वारा खरीदे जाते हैं, लेकिन इनका अधिकांश भाग व्यापारिक बैंको, बीमा कम्पनियों और गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं द्वारा क्रय किया जाता है।

लघु बचतें–सरकार जन सामान्य से ऋण प्राप्त करने की दृष्टि से लघु बचत तकनीक का प्रयोग करती है। इसके लिए विभिन्न प्रकार के ऋण प्रमाण पत्रों का निर्गमन किया जाता है। इस प्रकार के ऋण को प्राप्त करने के लए सरकार आय–कर में भी छूट प्रदान करती है और कभी कभी इन बचतों में राशि लगाना अनिवार्य भी कर दिया जाता है,

अकोषित ऋण– सरकार प्रॉविडेण्ड फण्ड, अनिवार्य बचत योजनाऐं, एन्यूटी जमा इत्यादि के आधार पर भी अकोषित ऋण प्राप्त कर लेती है।

ट्रेजरी बिलों का निर्गमन– सरकार के हाथ में ऋण प्राप्त करने का एक विशिष्ट साधन ट्रेजरी बिल होते हैं। इनमें से अधिकांश ट्रेजरी बिलों का प्रयोग रिजर्व बैंक से ऋण प्राप्त करने में किया जाता है।

लोक ऋण प्रवर्तन की उपर्युक्त तकनीकों के अतिरिक्त राज्य सरकारों द्वारा निम्न स्रोतों का भी प्रयोग किया जाता है–

(i) केन्द्रीय सरकार के ऋण और अग्रिम – राज्य सरकार के ऋणों का एक बड़ा भाग केन्द्रीय सरकार से ऋण और अग्रिम के रूप में प्राप्त किया जाता है। यह ऋण और अग्रिम नियोजन और गैर नियोजन दोनों उददेश्यों से लिए जाते है।

(ii) बैंको और संस्थाओं से ऋण– राज्य सरकारें बैंकों और अन्य संस्थाओं से भी ऋण और अग्रिम प्राप्त करती हैं। इनमें व्यापारिक बैंक, राष्टीय कृषि साख (दीर्घकालीन कियान्वयन) कोष, राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम और जीवन बीमा निगम का नाम उल्लेखनीय है।

(iii) रिजर्व बैंक से ऋण और अधिविकर्ष– राज्य सरकारें रिजर्व बैंक से "**Ways and Means Advances from the Reserve Bank of India**" योजना के अन्तर्गत ऋण और अधिविकर्ष भी प्राप्त करती है।

2 विदेशी या बाह्य ऋण

विदेशी ऋणों में तीन स्रोतों को शामिल किया जाता है–(**I) विदेशी जनता (ii) विदेशी सरकारें एवं (iii) विशिष्ट संस्थाएं**– विदेशी जनता से ऋण प्राप्ति

लगभग नगण्य रहती है, लेकिन विदेशी सरकारों तथा विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं से पर्याप्त मात्रा में ऋण प्राप्त किया जाता है। विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक , अन्तर्राष्ट्रीय विकास परिषद तथा एशियन विकास बैंक का उल्लेख किया जा सकता है।

5.7 सार्वजनिक ऋण के आर्थिक प्रभाव

जिस प्रकार सार्वजनिक आय एवं सार्वजनिक व्यय से पूरी अर्थव्यवस्था प्रभावित होती है, उसी प्रकार से सार्वजनिक ऋणों का प्रभाव भी सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। ऋण की प्रकृति, स्वभाव–अवधि एवं रू^प आदि पर सार्वजनिक ऋणों के प्रभाव निर्भर करते हैं। भारत में 1996–97 में कुल सार्वजनिक ऋण की मात्रा 368216 करोड़ रूपये थी तथा 1996–97में सरकार का कुल दायित्व 630329 करोड़ रू0 था। सार्वजनिक ऋणों के प्रभावों को निम्न प्रकार से रखा जा सकता हैः–

1 आर्थिक प्रभाव

उत्पादन पर प्रभाव– सार्वजनिक ऋण का उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभावों को निम्नवत अध्ययन किया जा सकता है।

कार्य, बचत एवं विनियोग की शक्ति पर प्रभाव– सार्वजनिक ऋणों से व्यक्ति की बचत करने की शक्ति पर निम्न प्रकार प्रभाव पड़ता हैः

(i) यदि ऋण से प्राप्त धन को ऐसी योजनाओं पर व्यय किया जाए जोकि उत्पादक है और उससे नागरिकों की उत्पादन क्षमता में वृद्धि हो जाती हो, तो उससे नागरिकों की कार्य करने, बचत करने एवं विनियोग करने की शक्ति पर अच्छे प्रभाव पड़ेंगे। यदि इस राशि को इस प्रकार व्यय किया जाए जिससे निर्धन वर्ग की आय बढ़े तो उससे निर्धनों की कार्य करने की शक्ति अधिक बढ़ जाती है। ऋणों का उपयोग सदैव इस ढंग से किया जाना चाहिए कि उससे निर्धन वर्ग लाभान्वित हो सके।

(ii) यदि प्राप्त ऋण को उत्पादन कार्यो मे लगा दिया है तो ऋणों का मूलधन व ब्याज के भुगतान हेतु करारोपण करने की आवश्यकता नहीं होगी। इसके विपरीत यदि प्राप्त ऋण राशि को अनुत्पादक कार्यों में लगा दिया जाए तो ऋण के भुगतान के लिए करारोपण करना होगा और उससे नागरिकों की कार्य करने, बचत करने एवं विनियोग करने की शक्ति पर बुरे प्रभाव पड़ेंगे।

कार्य करने एचं बचत करने की इच्छा पर प्रभाव– सार्वजनिक ऋणों के अच्छे साधनों में विनियोग करने से नागरिकों की बचत करने की इच्छा पर अच्छे प्रभाव पड़ते हैं। प्रायः यह कहा जाता है कि सार्वजनिक ऋण से कार्य करने एवं बचत करने की इच्छा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ते हैं, क्योंकि–

(i) सरकारी प्रतिभूतियों में धन लगाने से निरन्तर आय प्राप्त होते रहने से नागरिकों की कार्य करने की इच्छा कम हो जाती हैं क्योंकि उन्हें आय निरन्तर प्राप्त होती रहती है।

(ii) करारोपण का सहारा लिये जाने पर इससे नागरिकों की कार्य करने व बचत करने की इच्छा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ते हैं। यदि केवल ऋण लेने की ही व्यवस्था रखी जाए, तो उससे जनता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।

साधनों के स्थानान्तरण पर प्रभाव– सरकार द्वारा ऋण लेने पर उसे ऐसे उपयोगों में व्यय किया जाता है जिससे नागरिकों की उत्पादन शक्ति में वृद्धि हो जाती है। यदि ऋण का उपयोग अनुत्पादक कार्या में हो तो ऐसे हस्तानान्तरण से उत्पादन हतोत्साहित होगा।

जे0के0 मेहता का मत है कि " भावी वर्षो में जहां पर ऋणों के भुगतान के लिए कर लगााये जाये ंतो व्यक्ति अपने उपयोग को कम करता है। अतः यह कहा जाता है कि ऋण के वर्तमान उपभोग कम न होकर भविष्य के उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है। भविष्य में उत्पादन कम नहीं होता वास्तव में उत्पादन में वृद्धि हो जाती है।"

साधनों का एक उपयोग से दूसरे उपयोग को स्थानान्तरण– सार्वजनिक ऋणों की क्रिया से उत्पत्ति के साधनों को एक उपयोग से दूसरे उपयोग की ओर स्थानान्तरित कर सकते हैं। अनुत्पादक कार्यो से देश का समुचित विकास नहीं हो पाता है।

2 **रोजगार पर प्रभाव**– जिन कारणों से सार्वजनिक ऋण उत्पादन की वृदि करता है, उन्हीं कारणों से रोजगार मे भी वृद्धि करता है। सरकार रोजगार एवं मूल्य स्तर को द्रव्य की मात्रा से नियमित करती है। लर्नर का कथन है कि सार्वजनिक ऋण के सम्बन्ध में क्रियात्मक वित्त सिद्धांत का पालन करना चाहिए तथा उत्पादन की मात्रा एवं उस पर होने वाले व्यय में सदा सन्तुलन स्थापित होना चाहिए।

3 **उपभोग पर प्रभाव**– सार्वजनिक ऋणों का उपयोग पर प्रभाव ऋण देने के ढंग पर निर्भर करेगा। यदि ऋण की धनराशि उपभोग में से कटौती करके दी जाती है, तो उपभोग पर बुरे प्रभाव पड़ेंगे। उपभोग पर सार्वजनिक ऋण का प्रभाव वर्तमान में न पड़कर भविष्य में पड़ता है। इससे उपभोग में कमी होने की अपेक्षा बढ़ेगी। जब व्यक्ति अपने उपभोग में कमी करके सरकार को ऋण देता है तो उसे पर्याप्त उपयोग न होने के कारण व्यक्तियों के स्वास्थ्य पर बुरे प्रभाव पड़ने लगते हैं। इससे उनकी कार्य क्षमता गिर जाती है तथा उत्पादन गिरने से वस्तुएं महँगी हो जाती है और उपभोग पूर्व की अपेक्षा और कम हो जाता है।

4 **निजी क्षेत्र पर प्रभाव**– सार्वजनिक व्यय द्वारा जनता की क्रय शक्ति के बढ़ने से वस्तुओं की मांग में वृद्धि हो जाती है तथा चलन में मुद्रा की मात्रा भी बढ़ जाती है। जब यह व्यय करों से प्राप्त किया जाए तो चालू उपभोग कम हो जाता है। परन्तु यह व्यवस्था ऋण कें रूप में करने से बचतों का सदुपयोग होता है और चालू उपभोग कम नहीं हो पाता। यदि ऋण का उपयोग निजी क्षेत्र मे उत्पादित माल के लिए किया जाए तो निजी क्षेत्र मे मांग में वृद्धि की जा सकती है। यदि ऋण के एक भाग का उपयोग सरकारी अधिकारियों की मजदूरी व वेतन के रूप में प्रयोग किया जाता है, तो वह निजी क्षेत्र में उत्पादित वस्तु के उपयोग पर व्यय हो सकता है, जिससे सार्वजनिक ऋण के अनुकूल प्रभाव पड़ते हैं। निजी क्षेत्र में विनियोग बढ़ने से लाभ की सम्भावनाएं भी बढ़ जाती है।

5 **उत्पादन लागत पर प्रभाव**– लागत में सामग्री व्यय तथा अन्य व्ययों को सम्मिलित किया जाता है। यदि सरकार ऋण राशि का उपयोग उत्पादकों को उचित मूल्य पर कच्ची समग्रियों की पूर्ति पर करे, औद्योगिक अनुसन्धानों को

प्रोत्साहित करे, तो उससे उत्पादन लागत में कमी होगी तथा ऋणों के अनुकूल प्रभाव पड़ेंगें।

6 **विनियोग पर प्रभाव**–प्रायः सार्वजनिक ऋणों का विनियोग पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। यदि सरकार बैंकों से ऋण प्राप्त करती है तो उससे जनता पर अतिरिक्त क्रय–शक्ति आयेगी और विनियोग की राशि में कोई कटौती नहीं होगी। यदि ऋणों के लिए धन निजी बचतों या व्यापार से लिया जाता है तो विनियोग में कमी होगी क्योकि धनराशि को या तो विनियोग किया जा सकता है या उसे ऋण के रूप में दिया जा सकता है।

7 **वितरण पर प्रभाव**– सार्वजनिक ऋणों के उपयोग से कभी धन के वितरण में समानता लायी जा सकती है तो कभी धन के वितरण में असमानता। सार्वजनिक ऋणों से धन के वितरण में समानता लाना लाभकारी रहता है, इससे गरीब वर्ग लाभान्वित होता है। धन के वितरण में समानता लाने से देश मे कल्याणकारी कार्यो को बढ़ाया जा सकता है। सार्वजनिक ऋणों का वितरण पर निम्न प्रकार से प्रभाव पड़ता हैः

(i) नवीन वर्ग का जन्म– सार्वजनिक ऋण से एक ऐसे नवीन वर्ग का जन्म हो जाता है जो केवल ब्याज पर ही निर्भर रहता है और अपना जीवन–यापन करता है। यह सूदखोर वर्ग मूल धन की अपेक्षा ब्याज प्राप्त करने पर अधिक जोर देता है तथा उसी की वसूली के प्रयास करता है।

(ii) व्यय करने का ढंग–यदि ऋण धनी वर्ग से प्राप्त करके निर्धन वर्ग पर व्यय कर दिया जाता है तो उससे धन की असमानता कम होगी।व्यवहार से धनी वर्ग ही इस ऋण को क्रय करता है और इनके भुगतान के समय जनता पर करारोपण किया जाता है जो कि हानिकारक होता है।

(iii) छोटे–छोटे ऋण– यदि ऋण छोटी मात्रा के हैं ता उससे ब्याज का भुगतान निर्धन वर्ग को प्राप्त होगा ओर धन की असमानता भी कम हो जायेगी। **प्रो0 पीगू** का मत है कि "ऋण से व्यय की वित्त व्यवस्था का अर्थ करना करारोपण से वित्त व्यवस्था करने के स्थान पर गरीब वर्ग पर भारी भार डालती है।"

8 **तरलता पर प्रभाव**– जो व्यक्ति सरकारी प्रतिभूतियां क्रय करते हैं, उनकी सम्पत्ति में उच्चकोटि की तरलता बनी रहती है जिसे किसी भी उद्देश्य हेतु प्रयोग किया जाता सकता हैं । अतः सार्वजनिक ऋण उच्चतम तरलता सम्पत्ति प्रदर्शित करते हैं। स्फीतिक परिस्थितियों मे केन्द्रीय बैंक, व्यापारिक बैंकों की साख निर्माण क्षमता को बैंक दर, खुले बाजार की क्रियाएँ आदि सीमित कर देती हैं। अधिक मात्रा में सार्वजनिक ऋण बाजार भार को बढ़ा देते हैं जो कि समाज पर स्फीतिक या अस्फीतिक प्रभाव डालते हैं।

9 **विदेशी ऋणों का प्रभाव**–विकासशील देशों में बाह्य ऋण पूजीगत माल के आयात को प्रोत्साहित करता है, जो कि उपभोग व विनियोग पर अनुकूल प्रभाव डालता है। विदेशी माल के आयात से जनता का जीवन स्तर बढ़ जाता है इस दृष्टि से कभी–कभी विदेशी ऋणों को प्राप्त करना अच्छा समझा जाता है।

10 **मुद्रा बाजार पर प्रभाव**– यदि निजी क्षेत्र से कोष के लिए अधिक मांग है तो सरकार को अधिक ब्याज दर पर प्रतिभूतियों को आकर्षित करना होगा अतः

सरकार द्वारा ऋण प्राप्त करते समय उसे निजी क्षेत्र से तुलना करनी होगी। यदि सरकार विद्यमान पूर्ति की तुलना में अधिक ऋण लेना चाहती है तो उससे मुद्रा का विस्तार होगा । इस बढ़ी हुई मुद्रा का उपयोग देश की विकास योजनाओं व कार्यक्रमों पर किया जा सकेगा।

11 **साधन आबंटन व राष्ट्रीय आय पर प्रभाव**– करों के विपरीत, सार्वजनिक ऋणों का साधनों के आवंटन एवं राष्टीय आय पर थोड़ा ही प्रभाव पड़ता है। यदि विनियोग स्तर गिरता है तो उससे पूँजीगत माल के उत्पादन मे कमी होगी। इससे विपरीत, यदि पूँजीगत माल से उत्पादन बढ़ता है तो उसे राष्ट्रीय आय में वृदि हो जाती है तथा गुणंक के प्रभावकारी असर के कारण दीर्घकाल में रोजगार तथा आर्थिक क्रियाओं पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

5.8 सार्वजनिक ऋणों का भार

डाल्टन ने सार्वजनिक ऋण के भार को निम्न दो वर्गो में विभाजित किया है– आन्तिरक ऋण का भार एवं बाह्य ऋण का भार।

1 **आन्तरिक ऋण का भार**– आन्तरिक ऋण में राज्य अपने ही देश के लोगों व संस्थाओं से ऋण प्राप्त करता हैं अत इसके भार से सम्बन्धित मुख्य बातें निम्न हैं:

(i) प्रत्यक्ष वास्तविक भार– यदि ऋणपत्र निर्धन वर्ग ने क्रय किये हैं और इनके भुगतान हेतु सरकार ने धनी वर्ग पर कर लगाया है तो ऋण का वास्तविक भार कम होगा। व्यवहार में ऋण पत्र धनी वर्ग के द्वारा ही क्रय किये जाने के कारण वास्तविक भार बढ़ जाता है।

(ii) प्रत्यक्ष मौद्रिक भार– आन्तरिक ऋणों में धन का पुनवितरण होने के कारण उसका कोइ प्रत्यक्ष मौद्रिक भार नहीं होता क्योंकि सरकार जनता से ही ऋण लेती है और उन्हीं पर कर लगाकर उसे वापस कर देती है।

(iii) अप्रत्यक्ष मौद्रिक भार– सरकार ऋण लेकर यदि उसे विकासात्मक कार्यो पर व्यय करे तो इससे वस्तुओं की मांग बढ़ जाती है और उससे मूल्यों मे भी वृद्धि हो जाती है।

(iv) अप्रत्यक्ष वास्तविक भार–ऋण का शोधन करने हेतु जनता पर कर लगाया जाता है जिससे आन्तरिक ऋणों का अप्रत्यक्ष भार नागरिकों पर ही पड़ता हैं इससे करदाता की कार्य करने एवं बचत करने की शक्ति एवं इच्छा हतोत्साहित हो जाती है।

रेडफोर्ड के अनुसार" आन्तरिक ऋण का प्रभावपूर्ण प्रभाव ऋण का भावी आय पर प्रभाव पड़ता है । भारी करारोपण से विनियोग रूक जाता है।"

2 **बाह्य ऋणों का भार**– बाह्य ऋण वे माने जाते है जिनमें मूलधन व ब्याज विदेशियों को दी जाती हो। ब्याज के रूप मे काफी धन प्रतिवर्ष विदेशी मुद्रा के रूप में विदेशों को चला जायेगा जिससे विदेशी विनिमय कोष पर बुरे प्रभाव पड़ सकते हैं। देश के दीर्घकालीन आर्थिक विकास कार्यक्रम में बाह्य ऋणों पर कम निर्भर रहना चाहिए तथा व्यवस्था आन्तरिक ऋणों से ही की जानी चाहिए। इसके भार से सम्बन्धित मुख्य बातें निम्न प्रकार हैं:–

(i) प्रत्यक्ष वास्तविक एवं द्राव्यिक भार– वास्तविक भार का अनुमान उस समय लगता है जबकि नागरिकों को विदेशी भुगतान के बदले में देश की वस्तुओं एवं

सेवाओं को निर्यात करना होता है जिससे आर्थिक कल्याण में कमी हो जाती है। यदि ऋणों का भुगतान निर्धनों की तुलना मे धनी करें तो प्रत्यक्ष वास्तविक भार उस राशि से मापा जा सकता है जो ऋणी देश को मूलधन व ब्याज के रूप में विदेशों को चुकानी पड़ती हो।

(ii) अप्रत्यक्ष द्राव्यिक व वास्तविक भार– यह भार प्रायः उत्पादन की कमी के कारण पड़ता हैं। बाह्म ऋण से उत्पादन दो प्रकार से हतोत्साहित होता है –**(अ)** ऐसे ऋणों के शोधन के लिए भारी मात्रा में करारोपण करना पड़ता है जिससे कार्य करने एवं बचत की शक्ति पर बुरे प्रभाव पड़ते हैं। **(ब)** इन ऋणों के भुगतान करने से सरकार को सार्वजनिक व्ययों में कमी करनी होती है जिससे उत्पादन हतोत्साहित होता है। परन्तु यह सत्य नहीं है।

5.9 सार्वजनिक ऋणों के शोधन के ढंग

सार्वजनिक ऋणों का उपयोग देश के आर्थिक विकास में किया जाता है व नियोजन की सहायता से विकास कार्यक्रम बनाये जाते हैं। इन ऋणों को एक निश्चित अवधि के पश्चात चुकाया जाना आवश्यक माना जाता हैं सार्वजनिक ऋणों के भुगतान के हेतु अनेक प्रकार की विधियों को अपनाया जाता है, इनमे से मुख्य विधियां निम्नलिखित है–

1 **पूंजी कर**– पूंजी कर लगाकर ऋणों का भुगतान किया जा सकता है। यदि लिये गये ऋण का उपयोग युद्ध कार्य पर किया गया है तो उसका भुगतान विशेष करारोपण द्वारा ही किया जाना चाहिए। जब सरकार अन्य प्रकार के कर लगाने में असमर्थ हो तो पूंजी कर को ही अपनाना उचित माना जाता हे। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद बहुत से अंग्रेज अर्थशास्त्रियों ने सरकार पर इस ढंग से ऋणों का भुगतान करने हेतु दबाव डाला था। डाल्टन का विचार है कि "ऋणों के भुगतान के सम्बन्ध में सम्पूर्ण वाद–विवाद के मध्य अपने स्वयं के गुणों के कारण पूंजी कर ही सर्वोत्तम नीति है।" पूंजी कर को लगाया जाना चाहिए या नहीं, इस सम्बन्ध में सदैव ही वाद–विवाद रहा है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने इसके पक्ष एवं विपक्ष में अनेक तर्क दिये हैं। रिकार्डो ने नेपोलियन को युद्ध के उपरान्त इस कर को लगाने की सलाह दी थीं उनके अनुसार, " एक राष्ट्र जिस पर बहुत ऋण एकत्रित हो जाते हैं, वह बहुत ही कृत्रिम स्थिति में हो जाता है। जो देश इस प्रकार की कृत्रिम स्थिति की कठिनाइयों में फंस जाता है, वह इससे छुटकारा पाने हेतु अक्लमन्दी से कार्य करेगा और अपनी सम्पत्ति को ऋण के शोधन करने के लिए त्याग करने को तत्पर होगा।" इस कर के अन्य समर्थकों **में ए0एस0 हेन्सन, ए0सी0पीगू, एजवर्थ एवं लारेन्स** थे। इसके विरोध में **जोशिया स्टैम्प** एव **पेन** थे।

2 **ऋण परिशोधन कोष**– इंग्लैंड में सर्वप्रथम सार्वजनिक ऋण के शोधन में ऋण परिशोधन कोष प्रणाली को अपनाया गया। उसके बाद विश्व के अन्य राष्ट्रो ने इस तरीके को अपनाया। इस रीति में सरकार द्वारा एक कोष का निर्माण किया जाता है और उसी से मूलधन एवं ब्याज का भुगतान कर दिया जाता है। करारोपण से जो आय प्राप्त होती है उसे भी इसी कोष में जमा कर दिया जाता है।यह कोष दो प्रकार से स्थापित किया जा सकता है। वार्षिक आय से कुछ बचत इसमें रखकर, या नवीन ऋणों का जारी करके।

डॉ0 डाल्टन ने परिशोध कोष को दो भागों मे विभाजित किया है , **जैसे (अ) निश्चित परिशोध कोष एवं (ब) अनिश्चित परिशोध कोष–** जब धन की एक निश्चित मात्रा प्रतिवर्ष कोष मे जमा की जाए तो उसे निश्चित परिशोध कोष कहेंगे। इसके विपरीत जब कोष मे जमा की जाने वाली राशि निश्चित न हो तो उसे अनिश्चित परिशोध कोष कहेंगे। **डाल्टन** का मत है, "एक संचयी परिशोध कोष में एक निश्चित ऋण राशि एवं कोष ब्याज पर लगा दिया जाता है जिससे बयाज के रूप में अर्जित धन राशि को परिशोधन कोष में लगा दिया जाता है। अतः वार्षिक परिशोधन कोष मे चक्रवृद्धि से ब्याज वृदि हो जाती है।"

ऋण भुगतान की अवधि को निश्चित कर लेने के बाद सरकार का दूसरा कदम यह होता है कि भुगतान कोषों को इस अवधि पर किस प्रकार फैलाया जाए। इसके लिए निश्चित परिशोध कोष की स्थापना तीन आधारों पर की जाती है **जैसेः–**

(i) ऋण शोधन की अवधि निश्चित करके,

(ii) भुगतान कोषों को इस निश्चित अवधि में वितरित करके एवं

(iii) शोधन कोष में बटवारा विभिन्न प्रकार के ऋणों में करके।

(i) ऋण शोधन की अवधि निश्चित करके– इसमें ऋण के भुगतान की अवधि निश्चित कर दी जाती है और उस अवधि की समाप्ति पर ऋणों का भुगतान कर दिया जाता है। इस निश्चित अवधि की समाप्ति पर सभी प्रकार के ऋणों का भुगतान कर दिया जाता है।

(ii) भुगतान कोषों को इस अवधि में वितरित करके– ऋणों के भुगतान करने की अवधि जितनी थोड़ी होगी उतना ही कम भार उस देश की अर्थव्यवस्था पर पड़ेगा। भुगतान कोषों को ऋणों के भुगतान में निम्न प्रकार से प्रंयोग किया जा सकता है।

(अ) **मात्रा कम करके–** इस विधि मे वार्षिक ब्याज की राशि से भी अधिक ऋणदाताओं को भुगतान कर दिया जाता है जिससे प्रतिवर्ष ऋण भार कम हो जाता है। मूलधन अधिक लौटा दिये जाने से ब्याज का भाग कम हो जाता है और व्यय के रूप में भी धन कम रह जाता है।

(ब) **भुगतान मात्रा समान रखकर–** इसके अनुसार वर्ष में प्राप्त होने वाली ब्याज की सम्पूर्ण राशि को कोष में जमा नहीं करते, वरन् उसका केवल एक भाग ही इस कोष में जमा कर देते हैं और शेष राशि को ऋणदाताओं में वितरित कर दिया जाता है, जिससे प्रतिवर्ष ऋण का भार समान बना रहता है।

(स) **भुगतान की मात्रा बढ़ाकर–** इसमें एक संचयी परिशोध कोष की स्थापना की जाती है जिसमें धनाशि चक्रवृदि दर से बढ़ती है और प्रतिवर्ष एक निश्चित धनराशि जमा करते हैं जिससे इस कोष की मात्रा में वृदि होती रहती है।

(iii) शोधन कोष का बटवारा विभिन्न प्रकार के ऋणों में करके– इसमें शोधन कोष को विभिन्न प्रकार के ऋण में विभाजित करके, ऋण के भुगतान की व्यवस्था की जाती है। प्रो0 मेहता का मत है कि "परिशोध कोष की पद्धति ऋण भुगतान का सबसे अच्छा ढंग है। यह अत्यन्त क्रमबद्ध है तथा कोई उसे किसी विशेष ऋण की आवश्यकताओं की पूर्ति में समायोजित कर सकता है।"ऋण शोधन की इस क्रिया को अग्र क्रिया से सरलतापूर्वक समझा जा सकता है।

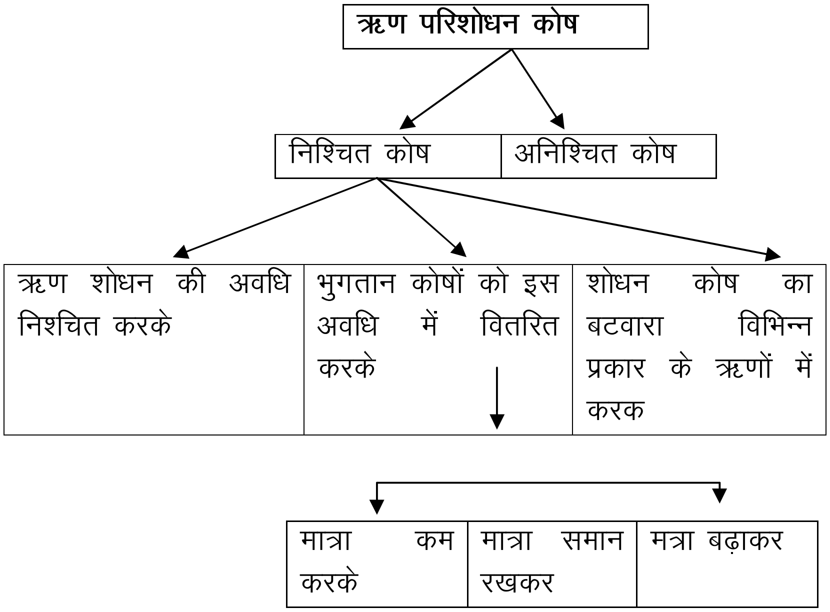

3 **ऋण निषेध**–सार्वजनिक ऋण से छुटकारा पाने का सबसे सरल ढंग यह है कि सरकार इसे चुकाने से इन्कार कर दे। परन्तु ऋणों के भुगतान को मना करने पर सरकार की साख समाप्त हो जाती है और युद की सम्भावनाएं बढ़ जाती हैं। **डाल्टन का** मत है कि "खुला सैनिक आक्रमण सहित प्रचार से विभिन्न आर्थिक एवं वित्तीय दबाव तक ऐसे ढंग हैं जो ऋणदाताओं द्वारा ऋण वसूल करने में प्रयोग किये जाते हैं। विशेषकर जबकि विदेशी ऋणों का निषेध करना हो।" जनतन्त्रीय सरकार द्वारा ऋण निषेध की रीति को निम्न कारणों से अपनाया जाना उचित नहीं माना जाताः

(i) अन्याय पूर्ण– ऋण समाज के किसी एक वर्ग द्वारा प्रदान किया जाता है और उसका भुगतान न करने से समाज के किसी एक वर्ग को ही हानि सहन करनी होगी। जबकि उस ऋण से सम्पूर्ण समाज को लाभ पहुंचाये जा सकते हैं।

(ii) राजनीतिक स्वतन्त्रता को खतरा– सरकार द्वारा विदेशी ऋणों को मनाही न करने से राजनीतिक स्वत्न्त्रता को खतरे उत्पन्न हो सकेंगे। कहा जाता है कि "विदेशी ऋण के साथ विदेशी झण्डा भी आ जाता है जो देश की अर्थव्यवस्था को खतरे में डाल सकता है।"

(iii) नवीन ऋण प्राप्ति में कठिनाई– यदि सरकार किसी ऋण के भुगतान करने को इन्कार कर देती है तो भविष्य में नवीन ऋणों को प्राप्त करने में अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ उपस्थित होंगी।

4 **ऋण परिवर्तन**– इस विधि से सरकार पुराने ऋणों को नये ऋणों में बदल देती है, जिन पर सूद की दर कम होती है। इस विधि में ऋणों की शर्तो एवं ब्याज की दर में परिवर्तन कर दिया जाता है। जो ऋणदाता नवीन ऋणों को स्वीकार नहीं करते उन्हें भुगतान कर दिया जाता है। ब्यूहलर के शब्दों में, "ऋण परिवर्तन से आशय ब्याज करों की राशि को कम करने के लिए तथा उसका लाभ प्राप्त करने के लिए वर्तमान ऋणों को नवीन ऋणों में परिवर्तन करने से लगाया

जाता है।" ऋण परिवर्तन की क्रिया उस समय अपनायी जाती है जबकि ऋण के भुगतान की अवधि आ चुकती है, और साधनों के अभाव में सरकार ऋणों का भुगतान न कर पाती हो। अतः इस क्रिया में ऋण के भुगतान को टालने का प्रयास किया जाता है। कभी–कभी सरकार के ऋणों को चुकाने हेतु नवीन आकर्षक ऋणों को प्रारम्भ कर देती है।

5 **क्रमानुसार भुगतान–** क्रमानुंसार भुगतान में प्रति वर्ष थोड़ी –थोड़ी मात्रा में भुगतान किया जाता है। इसमें समस्त ऋणों की व्यवस्था इस ढंग से की जाती है कि प्रतिवर्ष कुछ ऋणों की परिपक्वता हो जाए और उस भाग को उस वर्ष चुकता कर दिया जाए।

6 **पुनः ऋणशोधन–** इस रीति में सरकार नवीन ऋणों को चालू करने से जो राशि प्राप्त करती है उससे पुराने ऋणों का भुगतान कर दिया जाता है। नवीन ऋण कम ब्याज दर पर प्राप्त किये जाते हैं। जिससे भविष्य में सरकार पर ऋण का बोझ कर हो जाए।

7 **बजेटरी बचत–** सरकार द्वारा बनाये गये बजटों में से कुछ राशि प्रतिवर्ष बचत के रूप में निकालकर ऋणों के भुगतान में प्रयोग की जा सकती है।

8 **लाटरी द्वारा भुगतान–** इस विधि में ऋणों का भुगतान लाटरी के आधार पर किया जाता है तथा जिस व्यक्ति का नम्बर आ जाता है उसी को ऋण का भुगतान कर दिया जाता है लाटरी से नम्बर निकलने की एक पूर्ण प्रक्रिया है, जिसका पालन करके ही इस रीति का प्रयोग किया जा सकता है।

9 **वार्षिक वृत्ति–** इसमें सरकार जो ऋण प्राप्त करती है उसे वार्षिक किश्तों के रूप में चुका दिया जाता है। इसमें ऋण की राशि शनैः शनैःकम हो जाती है और एक निश्चित अवधि के बाद पूर्णतया समाप्त हो जाती है।

10 **ब्याज दर में कमी–** सरकार द्वारा ब्याज दर में कमी करके भी ऋण के भार को कम किया जा सकता है औरऋण का भुगतान हो सकता है। परन्तु यह ढंग व्यावहारिक नहीं माना गया और इसका विरोध सभी स्थानों पर किया गया।

5.10 सारांश

किसी वर्ष में बजेटरी व्यवहार से उत्पन्न असन्तुलन को हम राजकोषीय घाटा से व्यक्त करते हैं, सरकार इस घाटे की पूर्ति वर्ष में की गयी आन्तरिक तथा विदेशी उधारी से करती है। इस उधारी को लोक व सार्वजनिक ऋण की संज्ञा दी जाती है। कालांतर में सार्वजनिक ऋण सरकार की एक सरल और अल्पकालीन गतिविधि के स्थान पर एक महत्वपूर्ण राजकोषीय घटक और एक सक्षम नीति–अस्त्र की पद्वीं प्राप्त कर चुका है। वर्तमान भारतीय बजेटरी व्यवहार के अनुसार केन्द्र सरकार के सार्वजनिक ऋण के अन्तर्गत तीन प्रकार की देयतायें आती हैं– (क) आन्तरिक ऋण (ख) विदेशी ऋण (ग) अन्य देयताएं। आन्तरिक तथा विदेशी ऋण भारत के सार्वजनिक ऋण के अन्तर्गत आते हैं। इस इकाई में लोकऋण वर्गीकरण सिद्धातोंः स्रोतों, आर्थिक प्रभावों तथा शोधन विधियों की चर्चा की गई है।

5.11 शब्दावली

लोकऋणः आन्तरिक व विदेशी ऋण

आन्तरिक/घरेलू ऋणः जनता द्वारा ऋण यथाः विपणन उधार, लघु बचतें आदि।
गैर उत्पादक ऋणः निजी व गैर उत्पादक ऋण,
कालावधिः ऋण शोधन समय सीमा
राजकोषीय घाटाः बजेटरी व्यवहार से उत्पन्न असन्तुलन

5.12 बोध प्रश्न

क रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1— .... ने लोक ऋण का विरोध किया था

2— लोक ऋण की प्रवृति .... होती है।

3— ....के लिए लोक ऋणों का विशेष महत्व है

4— लोक ऋण विनियोग पर .... प्रभाव डालते है।

5— एक निश्चित अवधि के बाद जिन ऋणों के भुगतान का वचन सरकार द्वारा दिया जाता है वे ....कहलाते हैं।

ख सही विकल्प चुनिए

1— लोक ऋण होते है—
(अ) ऐच्छिक (ब) अनवार्य
(स) उपर्युक्त दोनों (द) उपर्युक्त दोनों नहीं।

2— सिचाई परियोजना के लिये लिया गया ऋण है—
(अ) अनुत्पादक (ब) उत्पादक
(स) उपर्युक्त कोई नहीं (द) अनिश्चित।

3— किसका ऋण भार कम होता है7
(अ) शोध्य ऋणों का (ब) अशोध्य ऋणों का
(स) उपर्युक्त दोनों का (द) अनिश्चित।

4— लोक ऋण के बाह्र स्रोत हैं—
(अ) विश्व बैंक (ब) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष
(स) अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ (द) उपर्युक्त सभी।

ग निम्नांकित कथन सत्य हैं अथवा असत्य?

1— आर्थिक नियोजन में बढ़ते व्यय ने लोक ऋण भार को बढ़ाया है।

2— लोक ऋण भुगतान सन्तुलन की प्रतिकूलता को ठीक करने में सहायक नहीं है।

3— शोध्य ऋणों से मुद्रा स्फीति का भय नहीं रहता।

4— ऋणें की प्रकृति ऐच्छिक होती है।

5— उत्पादक ऋण हानिकारक नहीं होते।

5.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

क.

1. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों 2. ऐच्छिक 3. आर्थिक नियोजन 4. प्रतिकूल 5. शोध्य ऋण)

ख.

(अ) 2. (ब) 3. (ब) 4. (द)।)

ग.

1. सत्य 2. असत्य 3. असत्य 4. सत्य 5. असत्य।

5.14 स्वपरख प्रश्न

1. लोक ऋण का वर्गीकरण कीजिए तथा बताइये कि वे किन–किन उद्देश्यों के लिए जाने जाते हैं?
2. आर्थिक विकास में सार्वजनिक ऋण की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए?
3. एक विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक ऋण के महत्व का समझाइए?
4. सार्वजनिक ऋण एक आधुनिक घटना है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए तथा सार्वजनिक ऋणों के औचित्य तथा आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।

5.15 सन्दर्भ पुस्तकें

1. भाटिया, एच0 एल0, लोक वित्त विकास पब्लिशिंग हाउस लि0, नोएडा।
2. थावराज, एम0जे0के0, फायनेन्सियल एडमिनिस्ट्रेशन आफ इन्डिया, सुल्तान चंद एवं संस, नई दिल्ली।
3. बर्मन, किरण, 1978 इंडियोज पब्लिक डेट् एंड पालिसी सिंस इंडिपेंडेंस, चुघ पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
4. चन्द्रा, अशोक भारतीय प्रशासन जार्ज ऐलन अनविन लिमिटेड।

इकाई 6 बजट

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 बजट के तत्व
6.3 बजट के उद्देश्य
6.4 बजट के सिद्धांत
6.5 बजट की प्रक्रिया
6.6 बजट के वर्गीकरण
6.7 आय व पूजीं बजट में अन्तर
6.8 बजट का महत्व
6.9 सारांश
6.10 शब्दावली
6.11 बोध प्रश्न
6.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
6.13 स्वपरख प्रश्न
6.14 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- बजट के तत्व व उद्देश्यों को समझ सके।
- बजट के सिद्धात व प्रक्रिया को जान सके।
- बजट के वर्गीकरण की व्याख्या कर सके।
- आय व पूँजी बजट में अन्तर को जान सके व बजट के महत्व को समझ सके।

6.1 प्रस्तावना

भारत एक जनतान्त्रिक देश है, जिसमें प्रत्येक वर्ष सरकारी आय एवं व्यय की रूपरेखा को विधायी सभा द्वारा पारित करना अनिवार्य है। इस इकाई में देश में केन्द्रीय सरकार के स्तर पर बजट का विस्तृत अध्ययन किया गया है।
इस इकाई में हम भारत में बजट व्यवस्था के क्रमबद्ध विकास का, एवं बजट सिद्धातों की व्याख्या करेंगें। वर्तमान इकाई में बजट निर्माण के विभिन्न चरणों तथा बजट चक्र पर भी प्रकाश डाला जाएगा।

6.2 बजट के तत्व

देश की अर्थव्यवस्था में बजट का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि बजट से सरकार की आर्थिक क्रियाओं का प्रतिबिम्ब झलकता है। साधारण शब्दों में बजट गत वर्ष के लेखों का वार्षिक वित्तीय विवरण तथा आने वाले वर्ष के लिए राजस्व और व्यय का अनुमान है।

वर्तमान में बजट को गुप्त नहीं रखा जाता वरन् इसे संसद में प्रस्तुत किया जाता है समस्त समाचार पत्रों में इसे प्रकाशित किया जाता है। ऐसा माना जाता है कि वर्तमान अर्थ में बजट का प्रयोग 1733 में शुरू किया गया। यहां हम बजट की कुछ प्रमुख परिभाषाओं पर विचार करेंगें–

फिण्डले शिराज के अनुसार," संक्षेप में बजट पिछले वर्ष की प्राप्तियों और व्यय का विवरण एवं आने वाले वर्ष की प्राप्तियों तथा व्यय का अनुमान है।यदि बजट में घाटा है तो बजट में उसकी पूर्ति के प्रस्ताव भी शामिल होते हैं तथा यदि आधिक्य रहता है तो उसके विभाजित किए जाने का भी विवरण होता है।"

प्रो0 टेलर के शब्दों में, "बजट सरकार की अति महत्वपूर्ण वित्तीय योजना है बजट, प्रत्याशित आय एवं प्रस्तावित व्यय के आकलनों को बजट वर्ष के लिए एक साथ प्रस्तुत करता है।"

प्रो0 डाल्टन का विचार है कि "संतुलित बजट की सामान्य धारणा यह है कि एक समयावधि में आय में आधिक्य होता है अथवा कम से कम वह व्यय की तुलना में कम नहीं होती।

विलोबी के अनुसार, " बजट एक ही साथ एक प्रतिवेदन, एक अनुमान तथा एक प्रस्ताव है। साथ ही यह एक ऐसा उपकरण है जिसके साथ वित्तीय प्रशासन की समस्त प्रक्रियाएं सहसम्बधित होती हैं, उनकी तुलना की जाती है एवं समन्वित किया जाता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि "बजट सार्वजनिक व्यय और सार्वजनिक आय का अनुमान है जो सामान्यतः वित्तीय वर्ष के अन्त मे आगामी वर्ष के लिए बनाया जाता है। इसमें निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सरकार की स्पष्ट नीतियों का उल्लेख होता है।"

बजट के आवश्यक तत्वः

बजट की परिभाषा जान लेने के बाद संक्षेप में बजट के आवश्यक तत्वों का विवेचन इस प्रकार है–

(i) बजट अवधि– सामान्य रूप से बजट की अवधि एक वर्ष होती है। यह बात दूसरी है कि व्यय के आधिक्य को देखते हुए उसी वर्ष में पूरक बजट भी प्रस्तुत किया जावे।

(ii) बजट का आधार नकद राशि–बजट बहीखाते के आधार पर नहीं वरन् नकदी के आधार पर तैयार किया जाता है अर्थात सरकार को समस्त आय रोकड़ में प्राप्त होगी तथा व्यय भी रोकड़ में करना होगा।

(iii) समन्वित रूप– इसका अर्थ यह है कि बजट सरकार की समस्त क्रियाओं के लिए समन्वित रूप से प्रस्तुत किया जाता है जिससे देश की सम्पूर्ण आर्थिक स्थिति की जानकारी मिल सके।

(iv) लेखों की समानता– न केवल केन्द्र सरकार के लेखों में प्रत्येक वर्ष समानता रहनी चाहिए वरन् राज्यों के लेखे भी समान होने चाहिए ताकि विभिन्न राज्यों के बजट की तुलना की जा सके।

(v) सकल राशि का उल्लेख–बजट शुद्ध राशि के आधार पर नहीं वरन् सकल राशि के आधार पर तैयार किया जाता है। आय को व्यय घटाकर नहीं दिखाया जाता वरन् आय और व्यय का पृथक्–पृथक् उल्लेख किया जाता है।

(vi) आय–व्यय मदों का विभाजन– सामान्य रूप से बजट में आय व्यय के मदों को दो भागों को विभाजित किया जाता है। पूजी लेखा तथा राजस्व लेखा, इसे आगे स्पष्ट किया गया है।

विशेष वर्ष में व्यय न किया जाय तो वह राशि सरकार को वापस करनी होती हैं। उसे अगले वर्ष के लिए अधिक्य के रूप में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता।

(viii) वैज्ञानिक आधार तथा कुशल वित्तीय प्रबन्ध– बजट का आधार वैज्ञानिक होना चाहिए अर्थात उसका निर्माण निश्चित नियमों के अनुसार होना चाहिए तथा अनुमानों का कुशल वित्तीय प्रबन्ध किया जाना चाहिए जिससे अनुमान एवं वास्तविकता में अधिकतम समानता रहे।

(ix) आर्थिक प्रगति का सूचक– बजट का निर्माण इस दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए कि उससे देश की आर्थिक प्रगति का सही प्रतिबिम्ब ज्ञात हो सके।

6.3 बजट के उद्देश्य

बजट एक भावी कार्यक्रम है। अतीत के अनुभव के आधार पर इसका निर्माण किया जाता है बजट को मौद्रिक रूप में प्रस्तुत किया जाता है। बजट वित्तीय प्रशासन का एक महत्वपूर्ण उपकरण एवं राजकोषीय नीतियों को लागू करने का एक प्रभावशाली साधन है। आय एवं व्यय के अनुमान प्रस्तुत करने के अतिरिक्त बजट के प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार हैंः–

(i) राजकोषीय नीति को कार्यान्वित करने हेतु –सार्वजनिक व्यय एवं सार्वजनिक आय राजकोषीय नीति के प्रधान उपकरण हैं जिनके माध्यम से एक ओर मन्दी के प्रभाव को दूर किया जा सकता है तथा दूसरी ओर रोजगार में वृद्धि की जा सकती हैं। बजट में, आय और व्यय का समायोजन राकोषीय नीति के अनुसार किया जा सकता है।

(ii) सरकार का दृष्टिकोण स्पष्ट करने के लिए– बजट का यह भी एक मुख्य उद्देश्य होता है कि आर्थिक नीतियों क क्षेत्र में इससे सरकार का दृष्टिकोण स्पष्ट होता हैं। इससे सरकार की औधोगिक नीति एवं व्यवसायिक नीति की भी जानकारी मिलती है।

(iii) आर्थिक योजनाओं का दृष्टिकोण–सरकार के योजना व्यय को सपष्ट करना भी बजट का उद्देश्य होता हैं। योजना व्यय के प्रावधानों को दृष्टिकोण बजट में प्रस्तुत किया जाता है। बजट के स्पष्ट दो भाग होते हैं–योजना व्यय व गैर योजना व्यय।

(iv) संसद के प्रति लेखा सम्बन्धी उत्तरदायित्व–बजट का एक यह भी उद्देश्य है कि सरकार किसी भी प्रकार के व्यय के लिए जनता के प्रति उत्तरदायी रहती है अतः बजट बनाकर उसे पहले संसद से पारित कराया जाता है तथा इस बात की व्यवस्था की जाती है कि स्वीकृत राशि से अधिक व्यय न किया जाय।

(v) आर्थिक उद्देश्य की प्राप्ति– प्रो0 डाल्टन के शब्दों में , "बजट को आर्थिक जीवन में स्थायित्व लाने वाले प्रभाव के रूप में समझा जाना चाहिए।" आधुनिक दृष्टिकोण के अनुसार वांछनीय आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए बजट सबसे महत्वपूर्ण उपकरण है। अतः विशेष रूप से विकासशील देशों में पूर्ण रोजगार, विनियोग का स्तर बढ़ाने एवं मुद्रास्फीति को दूर करने के उद्देश्य से बजट का निर्माण किया जाता **है। प्रो0 केन्स** ने इस उद्देश्य पर बहुत बल दिया है।

आय एवं व्यय के अनुमान प्रस्तुत करने के अतिरिक्त बजट के प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार हैः

(i) भावी विकास– बजट का उद्देश्य भावी परिस्थितयों को ध्यान में रखकर विकास के कार्यक्रमों का निर्माण करना होता हैं। बजट में गत वर्ष व चालू वर्ष पर ध्यान तो देते हैं व साथ ही भावी विकास पर भी पर्याप्त ध्यान दिया जाता है।

(ii) आय व्यय का अनुमान लगाना– बजट के आधार पर देश की कुल आय एवं कुल व्यय के अनुमान लगाये जाते है तथा ब्याज के आधार पर आय प्राप्ति के साधनों की खोज की जाती है। सरकारी वित्त में व्यय की मदों के आधार पर आय के साधनों को प्राप्त करने के प्रयास किये जाते हैं।

(iii) नियोजन सम्बन्धी उद्देश्य– राष्ट्रीय बजट का उद्देश्य नियोजन से समबन्धित होती है और जो भी बजट बनाया जाता है उसमें योजना को भी सम्मिलित किया जाता है। इसी प्रकार जो योजनाएं बनायी जाती हैं, वे भी बजट का रूप धारण कर सकती हैं क्योंकि दोनों में ही भविष्य की आय– व्ययों को ध्यान में रखकर योजना का निर्माण किया जाता है।

(iv) सरकार का अधिकार– बजट का उद्देश्य सरकार को एक निर्धारित मात्रा में व्यय करने एवं आय प्राप्त करने के अधिकार प्रदान करना होता है। संस्दीय प्रणाली में सरकार के आय एवं व्यय की सीमा संसद बजट पास करने पर ही निर्भर करती है।

(v) लेखा देयता– लोकतन्त्र में कोई भी व्यय करारोपण संसद व विधानसभा की अनुमति के बिना सम्भव नहीं है। वार्षिक बजट प्रणाली बजट वित्त पर विधानमण्डल का नियन्त्रण रखने का एक सबल माध्यम है। इस बात की व्यवस्था ही जाती है कि व्यय हेतु जितनी राशि स्वीकृत हुई है उससे अधिक राशि व्यय नहीं की जानी चाहिए।

(vi) कार्यकलाप बजट पद्धति– बजट प्रस्तावों की रचना का उनके कार्यान्वयन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। बजट की रचना एवं उसके वास्तविक परिणामों के मध्य मेल स्थापित किया जाता है।

(vii) राजकीय नीति का उपकरण– बजट राजकीय नीति का एक प्रधान उपकरण हैं अर्थव्यवस्था में वांछित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु बजट–नीति का निर्धारण किया जाता है। कराधान व सार्वजनिक व्यय के स्तर द्वारा आर्थिक लक्ष्य, आर्थिक विकास तथा सम्पत्ति के वितरण में विषमता को कम किया जाता है।

(viii) कार्यात्मक दृष्टिकोण–बजटों में आय तथा व्यय का ऐसा प्रावधान किया गया है जो आर्थिक क्षेत्र में प्रभावकारी परिणाम दे सकें इसमें सरकार के कार्यों का स्पष्ट चित्र जनता के सामने हो जाता है।

(ix) योजना से सम्बन्धित– आर्थिक विकास के सन्दर्भ में योजनाओं से सम्बन्धित बजट प्रावधानों को रखा जाता है। लक्ष्यों का निर्धारण करके उसे प्राप्त करने के प्रयास किये जाते हैं। लक्ष्यों का निर्धारण योजना के आधार पर ही किया जाना चाहिए।

6.4 बजट के सिद्धांत

बजट राजकोषीय नीति का एक महत्वपूर्ण उपकरण है। इसे मुदास्फीति एवं मुद्रा संकुचन दोनों के विरूद्ध लड़ाई में प्रयोग किया जा सकता है। समय समय पर बहुत से बजट सिद्धांत प्रतिपादित किये गयेः

1 **वार्षिक संतुलित बजट**–संस्थापित अर्थशास्त्री सन्तुलित तथा छोटे बजटों की नीति का समर्थन करते थे। तीसा की महान मन्दी से पहले इस नीति की सत्यता पर कोई सन्देह नहीं करता था। जब अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति के बिना पूर्ण रोजगार स्थापित है तो प्रत्येक वर्ष का बजट सन्तुलित होना चाहिए किन्तु जब अर्थव्यवस्था मे मुद्रास्फीति है तो सन्तुलित बजट का सिद्धांत आर्थिक स्थिरता के लक्ष्य के विरूद्ध पड़ता हैं ऐसे समय कर दरों में वृद्धि तथा सरकारी व्यय मे कमी करके बचत का बजट बनाना अच्छा रहेगा। इसे विपरीत संकुचन काल में घाटे का बजट बनाना ठीक रहेगा।

2 **चक्रीय रूप से सन्तुलित बजट**– इस विचारधारा के अनुसार जो कि तीसा में स्वीडन में प्रचलित थी किसी बजट को किसी एक वित्तीय वर्ष में सन्तुलित होने की आवश्यकता नहीं है। व्यापारिक चक्र की अवधि में कुल मिलाकर बजट सन्तुलित होना चाहिए। स्फीति काल में कर प्राप्ति व्यय से अधिक हो तथा संकुचन काल में करों से प्राप्ति व्यय से कम हो किन्तु व्यापारिक चक्र की अवधि में मिलाकर बजट सन्तुलित रहे। इस नीति से सन्तुलित बजट की मूल प्रकृति भी कायम रहेगी तथा राजकोषीय नीति की कीमत स्थिरता की भूमिका भी पूरी हो सकेगी। यह नीति आसानी से तब काम कर सकेगी जब तेजी तथा मन्दी समान अवधि तक रहे तथा उनकी तीव्रता भी समान रहे।

3 **पूर्णतयः प्रबन्धित क्षतिपूरक बजट**– प्रबन्धित बजट नीति सार्वजनिक आगम, सार्वजनिक व्यय तथा सार्वजनिक ऋणों को जान बूझकर इस प्रकार समायोजित करने की रीति है कि बिना स्फीति के पूर्ण रोजगार स्थापित हो जायें। इस नीति को कीन्स ने लोकप्रिय बनाया। बजट को मुद्रास्फीति रहित पूर्ण रोजगार के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उपकरण रूप में अपनाया है। यदि अथव्यवस्था गतिहीन हो जाती है तो घाटे की चिन्ता नहीं की जायेगी। व्यापक बेरोजगाारी को दूर करने के लिए बडा सार्वजनिक ऋण लिया जा सकता है। दूसरी ओर यदि अर्थव्यवस्था तेजी की ओ बढ़ रही है तो बजटों मे निरन्तर बचत दिखाई जा सकती है।

6.5 बजट की प्रकिया

बजट एक ऐसा लेखा है जिसमें आय तथा व्यय की एक स्वीकृत प्रारम्भिक योजना होती हैं । बजट प्रक्रिया को हम निम्नलिखित भागों में बॉंट सकते हैं–

1 **बजट की तैयारी**– स्मरण रहे कि पूरे देश का कोई एक बजट नहीं होता। राज्यों के अपने बजट अलग होते हैं। हमारे देश का संविधान संघीय है। केन्द्रीय स्तर पर भी दो बजट होते हैं– सामान्य बजट तथा रेल बजट। रेल बजट को 1921 में सामान्य बजट को पृथक् कर दिया गया था। इस व्यवस्था का लाभ यह सोचा गया था कि इससे रेल नीति में व्यावसायिक दृष्टिकोण आ सकेगा., तथा देसरे देश की सामान्य आय को एक निश्चित अनुदान देने के पश्चात रेलें अपने शेष लाभ को अपने विकास के लए रख सकेंगी।

वार्षिक वित्तीय विवरण (बजट) बनाने, इसे संसद में रखने, विभिन्न विभागों द्वारा इसको व्यावहार में लाने की देखंभाल करने, आय का संग्रह करने, प्रशासनिक विभागों को वित्तीय सलाह देने तथा सामान्य प्रशासनिक नियन्त्रण लागू करने के लिए वित्त मन्त्रालय उत्तरदायी होता है।

बजट की तैयारी से सम्बन्धित कार्य अगले वित्त वर्ष में शुरू होने से 6–8 महीनें पहले आरम्भ हो जाता है। बजट तैयार करने से पहले विभिन्न विभागों के

अध्यक्षों को सूचित किया जाता है कि वे अपने–अपने विभाग की आय तथा व्यय के अनुमान भेजें। ये अनुमान मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किये जाते हैं। पहले भाग में वर्तमान आय तथा व्यय से सम्बन्धित अनुमान होते हैं। आय–व्यय क इस ब्योरे का एक फार्म में भरा जाता है जिसमें पाँच खाने होते हैं–

(i) पिछड़े वर्ष के वास्तविक आय व्यय,

(ii) चालू वर्ष के स्वीकृत अनुमान,

(iii) चालू वर्ष में दोहराये गये आय– व्यय का अनुमान,

(iv) आने वाले वर्ष के बजट अनुमान व

(v) चालू वर्ष तथा पिछले वर्ष की वास्तविक आय व्यय के आँकड़े।

दूसरे भाग में आने वाले वर्ष में नयी योजनाओं पर व्यय का अनुमान होता है पहले भाग का सम्बन्ध वर्तमान से होता है जबकि दूसरे भाग का सम्बन्ध भविष्य से होता है।

बजट की तैयारी स्थानिक कार्यालयों से प्रारम्भ होती है। स्थानिक अधिकारी आय व्यय सम्बन्धी उपर्युक्त सूचनाएं विभागाध्यक्षों का पहँचा देते हैं और विभागाध्यक्ष सावधानी से इन सभी अनुमानों का अध्ययन करके सम्पूर्ण विभाग के लिए एक संयुक्त अनुमान तैयार करते हैं। विभिन्न विभागों के अनुमान तब प्रशासनिक मन्त्रालय को भेजे दिये जाते हैं जहां सामान्य नीति के प्रकाश में उनकी फिर छानबीन की जाती है तब इन अनुमानों को लगभग नबम्बर के मध्य में वित्त मंत्रालय के बजट डिवीजन को भेज दिया जाता है। प्रशासनिक मन्त्रालय द्वारा भेजे गये इन अनमानों पर वित्त मंत्रालय का बजट डिवीजन सर्चलाइट फेंकता है। इसका मुख्य कार्य मितव्ययिता से सम्बन्धित होता है । इसे विभिन्न प्रशासनिक मंत्रालयों द्वारा भेजी गयी गई मांगों को सरकार के पास उपलब्ध धन से समायोजित किया जाता है। नये व्यय के सम्बन्घ में कुछ ऐसे प्रश्न उठाये जाते हैं– क्या प्रस्तावित व्यय वास्तव में आवश्यक है? यदि ऐसा है तो अब तक इसके बिना कैसे काम चलता रहा? अब ही कयों? दूसरे स्थानों पर क्या किया जाता है? इसकी लागत क्या होगी तथा पैसा कहाँ से आयेगा?

स्मरण रहे कि वित्त मंत्रालय या वित्तमंत्री कोई तानाशाह नहीं होता। पंचवर्षीय योजनाओं की आवश्यकता, मंत्रीमंडल के नीति विषयक निर्णय तथा देश की वर्तमान अवस्था– इन सबकी बजट मे झलक मिलती है तथा यह वित्तमंत्री की मनमानी पर प्रतिबन्ध लगाते हैं।

2 **बजट पेश करना**– यह एक मूल सिद्धांत है कि संसद के पूर्व अनुमोदन के बिना कोई कर नहीं लगाया जा सकता है और न कोई व्यय किया जा सकता है अतः बजट का संसद द्वारा पास किया जाना बजट प्रक्रिया का महत्वपूर्ण भाग है। तैयार किया बजट केन्द्र में फरवरी के अन्त में अथवा मार्च के आरम्भ में लोकसभा में पेश किया जाता है। राज्यों में यह विधान सभा में पेश किया जाता है। बजट पेश करते समय वित्त मंत्री भाषण देता है, जिसमें वह विगत दस ग्यारह महीनों का आय व्यय विवरण तथा अन्त में आगामी वित्तीय वर्ष के लिये सरकार की वित्तीय नीतियों की झलक प्रस्तुत करता है। नये करों तथा व्ययों के वित्तीय प्रस्तावों का सारांश देता है। बजट में बचत अथवा घाटा दिखया जा सकता है। घाटे के बजट में यह भी बताया जाता है कि इस घाटे को कैसे पूरा किया

जायेगां। बजट तथा वित्त मंत्री के भाषण की एक एक प्रति सदन के प्रत्येक सदस्य को दे दी जाती है।

3 **सामान्य बहस**– वित्त मंत्री के बजट भाषण के तुरन्त पश्चात लोकसभा या विधानसभा में कोई वाद–विवाद नहीं होता। बहस के लिए दिन निश्चित कर दिया जाता है तथा बजट पर बहस लगभग तीन दिन चलती है। यह बजट का महत्पूर्ण चरण है। यह सामान्य चर्चा होती है।बजट के विवरणों पर चर्चा नहीं होती और न उस पर मतदान होता है। बजट पर सामान्य चर्चा की एक प्राचीन परम्परा है। इस बहस के दौरान सदस्यों को अनुमानों तथा प्रस्तावों की आलोचना करने का अधिकार होता है। वाद– विवाद के अन्त में वित्त मंत्री सदस्यों के आक्षेपों का उत्तर देता है।

4 **मतदान**– मतदान योग्य विषयों पर सम्बन्धित मंत्री अनुदानों की मांग करते हैं जिन पर अलग अलग बहस होती है। कुछ मदें ऐसी होती हैं जिनके व्यय के लिए लोकसभा मे मतदान की कोई आवश्यकता नहीं होती है। ये व्यय हैं जैसे राष्ट्रपति का वेतन, भत्ता तथा उसके कार्यालय से सम्बन्धित अन्य व्यय, संसद के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष का वेतन तथा भत्ता, सर्वोच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के वेतन, भारत के प्रधान लेखा परीक्षक का वेतन तथा भत्ता इत्यादि। प्रत्येक मांग पर बहस का समय निश्चित होता है। बहस के दौरान सदस्य उस अनुदान की मांग को कम करने या अधिक करने का प्रस्ताव रखते हैं। सदस्य कटौती के प्रस्ताव भी रख सकते हैं। कटौती के प्रस्ताव प्रायः व्यय में मितव्ययिता लाने के लिए नहीं किये जाते हैं। इनका उद्देश्य केवल वाद विवाद को आरम्भ करना होता है। इनके पीछे एक राजनीतिक उद्देश्य होता है। इस तरह के प्रस्तावों द्वारा सरकार की नीतियों की कटु आलोचना की जाती है। ये कटौती प्रस्ताव सदन के सदस्यों को एक छड़ी प्रदान करते हैं जिसके द्वारा वे प्रशासन को पीट सकें। प्रत्येक बहस के बाद अनुदान की मांग पर मत लिए जाते हैं। इनके पास न होने पर इसका अर्थ सरकार में अविश्वास समझा जाता है।

5 **विनियोग विधेयक**– बजट की मांगों पर बहस के बाद एक विनियोग विधेयक रखा जाता है जिसमें कर लगाने के सब प्रस्ताव होते हैं। प्रक्रिया साधारण विधेयक की भाँति होती है। कर घटाने या अस्वीकार करने के संशोधन विरोधी दलों द्वारा प्रस्तुत किये जा सकते हैं। और कभी– कभी सरकार उन्हें स्वीकार भी कर लेती हैं। लोक–सभा में वित्त विधेयक पर कार्यवाही करने के पश्चात उसे अनेमोदन के लिए राज्य सभा में भेज दिया जाता है। इस विधेयक से सदन द्वारा पास की गयी मांगों को कानूनी रूप मिल जाता है और सरकार को संचित कोष में से रूपया निकालने का अधिकार मिल जाता है। वित्तीय वर्ष की समाप्ति के पूर्व ही यदि सरकार को किसी मद पर व्यय करने के लिए अधिक धन की आवश्यकता होती है तो इसके लिए सरकार अनुपूरक मांग पेश करती हैं। अनुपूरक मांगों का अनुमान बजट की तरह लगाया जाता है तथा इसे भी बजट की भाँति पास कराना पड़ता है।

6 **बजट की कार्यान्विति**– वित्त मन्त्रालय के अधीन "सेन्ट्रल बोर्ड ऑफ रेवेन्यू" होता है जो वित्त मन्त्रालय के लिए सरकार के विभिन्न विभागों से कर वसूल करता है। इस बोर्ड के कई विभाग होते हैं। जैसे आयकर विभाग, आबकारी विभाग, तटकर विभाग जो अपने अपने क्षेत्रों में कर एकत्रित करते हैं। करों की

धनराशि रिजर्व बैंक अथवा स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया में जमा होती है। राज्यों में कर वसूली का कार्य वित्त विभाग को न सौंपा जाकर राजस्व विभाग को सौंपा जाता है।

विनियोजन विधेयक पास हो जाने के पश्चात् मंत्रलायों को व्यय करने का अधिकार मिल जाता है। विभिन्न विभागों को उनके लिए स्वीकार की गई धनराशि के सम्बन्ध में सूचित कर दिया जाता है। प्रत्येक कर्मचारी को इस रकम को व्यय करते समय अपने उच्च अधिकारी की आज्ञा लेनी पड़ती है। प्रत्येक विभाग का व्यय निर्धारित रकम से अधिक नहीं होना चाहिए तथा स्वीकृत कार्य के लिए ही होना चाहिए। इसकी देख रेख के लिए प्रतयेक राज्य में एकाउन्टेंट जनरल तथा ऑडीटर जनरल रहता है।

7 **लेखा अनुदान**— वित्तीय वर्ष एक अप्रैल से आरम्भ होता है किन्तु संसद नये वित्त वर्ष के आरम्भ हो जाने के पश्चात भी बजट पर विचार जारी रख सकती है। तब क्या नया वर्ष वित्तीय प्रावधान के बिना आरम्भ नहीं हो जायेगा? ऐसी घटना से निपटने के लिए लेखा अनुदान का उपाय निकाला गया है। लेखा अनुदान संसद द्वारा पास किया गया एक अग्रिम अनुदान है जो नियमित बजट पास होने तक वित्तीय वर्ष के एक भाग के लिए अनुमानित व्यय के सम्बन्ध में होता है।

8 **अंकेक्षण**— लेखो के तैयार हो जाने के बाद उनका अंकेक्षण किया जाता है ओर फिर महालेखा अंकेक्षण रिर्पोट प्रस्तुत करता है। जिसे संसद में प्रस्तुत किया जाता है। अंकेक्षण रिर्पोट प्रस्तुत करना बजट का एक आवश्यक अंग माना जाता है।

6.6 बजट के वर्गीकरण

बजट के विभिन्न रूपों को निम्न प्रकार से रखा जा सकता है:—

(i) आधिक्य बजट— जब सार्वजनिक व्यय की तुलना में आय अधिक हो तो ऐसे बजट को अधिक्य बजट कहते हैं परन्तु वर्तमान में ऐसे बजट को सन्देह की निगाह से देखा जाता है। प्राचीन समय में इस प्रकार के बजटों को को बनाया जाता था और उनका विशेष स्थान होता था।

(ii) पूँजीगत बजट— इस बजट में केवल पूँजीगत मदों को ही सम्मिलत किया जाता है । इसके लिए सार्वजनिक ऋण द्वारा ही धन प्राप्त किया जाता है। इसे सामान्य बजट से पृथक रखा जाता है।

(iii) रोकड़ बजट— इस बजट में सरकार के समस्त रोकड़ सम्बन्धी आय एवं व्ययों को रखा जाता है। इससे देश की सही आर्थिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इस बजट में उधार लेन देन को नहीं लिखा जाता है।

(iv) बहुउद्देशीय बजट— इस बजट का उद्देश्य देश में वित्तीय नियन्त्रण रखना एवं वित्तीय योजना को सफल बनाना है। देश में समस्या उत्पन्न होने पर बजट की सहायता से उसका उचित समाधान कर दिया जाता है। अतः यह बजट अल्पकालीन होते हैं। कार्य निष्पादन बजट विकास सम्बन्धी कार्य कर रहे सभी मन्त्रालयों/विभागों द्वारा तैयार किये जाते हैं ओर उसे संसद के सदस्यों में परिचालित किया जाता है।

(v) आपत्तिकालीन बजट– युद्ध एवं मन्दी जैसी संकटकालीन परिस्थितियों में साधारण बजट के अतिरिक्त बदली हुई परिस्थितियों के अनुरूप एक और बजट का निर्माण किया जाता है जिसे आपत्तिकालीन बजट कहते हैं। इसमें केवल आपत्तिकालीन कार्यो के ही आँकड़े दिये जाते हैं।

(vi) साधारण बजट– जो बजट सामान्य परिस्थितियों में वार्षिक आधार पर तैयार किये जाते हैं उन्हें साधारण बजट कहतें हैं। इस बजट में सरकार की समस्त क्रियाओं का सही विवरण प्राप्त नहीं हो पाता।

(vii) घाटे का बजट– यदि बजट में आय की अपेक्षा व्यय को अधिक मात्रा में दिखाया जाए तो उसे घाटे का बजट कहते हैं । वर्तमान में घाटे के बजट का निर्माण करना ही उत्तम माना जाता है। नियोजित अर्थव्यवस्था में सरकारें प्रायः घाटे के बजट का ही निर्माण करक देश का आर्थिक विकास करती हैं।

(viii) सन्तुलित बजट– जब बजट अवधि में आयगत प्राप्तियां तथा आयगत व्यय बराबर हों तो उसे सन्तुलित बजट कहते हैं। यह एक आदर्श व्यवस्था होती है जिसका पालन करना बड़ा कठिन कार्य होता है। वर्तमान में सरकार के चाहने पर भी इन बजटों का बनाना सम्भव नहीं है क्योंकि सार्वजनिक व्ययों में वृद्धि के कारण इन बजटों को सन्तुलित होने से रोक दिया गया है।

6.7 आयगत बजट व पूँजीगत बजट में अन्तर

आयगत बजट– आयगत बजट चालू व्यय एवं प्राप्ति का एक सामान्य बजट है। इस बजट का अधिकांश भाग गैर विकास व्ययों तथा शेष भाग विकास प्रयासों पर व्यय किया जाता है। समस्त सम्भावित व्ययों को व्यय विभाग तथा आर्थिक क्रिया विभाग द्वारा परीक्षण किया जाता है। आयगत पक्ष की ओर कर एवं गैर कर आय को सम्मिलित किया जाता है। जिसमें फीस, मूल्य आदि को भी जोड़ा जाता है। गैर विकास व्ययों का, जो प्रशासनिक कार्यो के संचालन के लिए होते हैं, बजट के व्यय पक्ष की ओर दर्शाते हैं। यदि व्यय की अपेक्षा आय अधिक है तो आधिक्य बजट कहलाता है। इसके विपरीत यदि व्यय पक्ष अधिक है तो उसे घाटे का बजट कहते हैं। वर्तमान में प्रायः घाटे के बजट बनाने पर ही अधिक जोर दिया जाता है।

पूँजीगत बजट–ऋणों के भुगतान एवं कोषों के वित्तीय व्यवहारों के लेखे को पूँजीगत बजट कहते हैं। इसमें विकास योजनाओं से सम्बन्धित व्ययों को सम्मिलित किया जाता है। यह बजट दीर्घकालीन दृष्टि से बनाये जाते हैं जिसमें कई वर्षो तक चलने वाली योजनाओं को सम्मिलित किया जाता हैं । भारत में पूँजी बजट देश की पंचवर्षीय योजनाओं से सम्बन्धित होते हैं। पूँजीगत बजट का निर्माण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके आधार पर भारत की पंचवर्षीय योजनाओं को वार्षिक योजनाओं में विभाजित कर दिया जाता है।

6.8 बजट का महत्व

किसी भी देश के लिए बजट का स्थान काफी महत्वपूर्ण है। **प्रो0 फिण्डले शिराज** का यह कथन उचित है कि निःसन्देह बजट प्रशासन की धुरी है तथा सुदृढ़ सिद्धांतों पर आधारित बजट के अभाव में वित्तीय अव्यवस्था फैल जाती है। देश की प्रगति का सही मूल्यांकन वहां के बजट के द्वारा ही किया जा सकता है। बजट के महत्व को निम्न बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

(i) आर्थिक नियन्त्रण का साधन– बजट में सरकार की आय व्यय का स्पष्ट निर्देश रहता है। यद्यपि बजट को सरकार द्वारा कार्यान्वित किया जाता है, किन्तु इसे संसद द्वारा पारित किया जाता है। इस प्रकार संसद का सरकार के ऊपर नियन्त्रण रहता है। बजट के माध्यम से ही समस्त विभागों के व्यय पर नियन्त्रण रखा जाता है। यदि बजट न बनाया जाय तो आय व्यय की समस्त प्रक्रिया अनियन्त्रित हो जायेगी।

(ii) आर्थिक स्थिरता– वर्तमान में देश में आर्थिक स्थिरता लाने का बजट एक सशक्त माध्यम है। यदि मुद्रा स्फीति की स्थिति विद्यमान है तो अधिक करों का प्रावधान करके अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त क्रय शक्ति को वापस लिया जा सकता है। यदि आर्थिक मन्दी की स्थिति है, तो व्यय में वृद्धि करके सरकार उत्पादन और रोजगार में वृद्धि कर सकते हैं। इस प्रकार देश में आर्थिक स्थिरता लाई जा सकती है।

(iii) आर्थिक और सामाजिक प्रगति का माध्यम– बजट में कृषि, उद्योगों आदि को आर्थिक सहायता का प्रावघान कर देश मे आर्थिक विकास का सूत्रपात किया जा सकता है। बजट में उचित प्रावधानों के द्वारा आर्थिक समानता भी लाई जा सकती है। यदि धनी व्यक्तियों पर कर लगाकर, सरकार सार्वजनिक व्यय के माध्यम से उसे गरीबों पर व्यय करती है तो इससे आर्थिक असमानता को दूर किया जा सकता है एवं सामाजिक प्रगति की जा सकती है।

(iv) नीति के उपकरण के रूप में बजट– पूर्व में बजट को मात्र लेखा और अनुमानों का विवरण माना जाता था। किन्तु राजकोषीय नीति की बढ़ती हुई भूमिका के कारण वर्तमान में बजट, सरकारी नीति का एक महत्वपूर्ण उपकरण है। अर्थव्यवस्था में वांछनीय परिणामों को प्राप्त करने के लिए सार्वजनिक व्यय, करारोपण एवं सार्वजनिक ऋणों को बजट का अभिन्न अंग माना गया है।

आज के आर्थिक जीवन में राज्य की भूमिक काफी महत्वपूर्ण है तथा इस भूमिका का निर्वाह करने तथा इसकी पूर्ति की दिशा में बजट का महत्व निर्विवाद है।

उपर्युक्त बिन्दुंओं में बजट का जो महत्व प्रतिपादित किया गया है वह सभी अर्थव्यवस्थाओं मे लागू होता है चाहे वह पूजीवादी अर्थव्यवस्था हो या समाजवादी या मिश्रित अर्थव्यवस्था हो। भले ही पूजीवादी प्रणाली में सरकार का हस्तक्षेप अधिक नहीं होता फिर भी उसे अनेक प्रकार के लोक कल्याणकारी कार्य करने पड़ते हैं तथा सार्वजनिक व्यय, सार्वजनिक आय एवं लोक ऋणों की नीतियों का प्रयोग करना पड़ता है जो बजट के माध्यम से सम्भव होता है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था में तो राज्य का क्षेत्र अधिक विस्तृत होता है तथा राज्य के आर्थिक विकास के लिए आर्थिक नियोजन को अपनाया जाता है । ऐसी प्रणाली में तो बजट की भूमिका ज्यादा महत्वपूर्ण होती हैं मिश्रित अर्थव्यवस्था मे सरकार विभिन्न क्षेत्रों– सरकारी क्षेत्र, निजी क्षेत्र, संयुक्त क्षेत्र तथा सहकारी क्षेत्र के आर्थिक विकास का प्रयत्न करती है तथा इनमें समन्वय स्थापित किया जाता है जो बजट के माध्यम से ही सम्भव होता है।

बजट के उपर्युक्त महत्व को दृष्टि में रखते हुए ही प्रो0 टेलर बजट को "सरकार की की वृहद् योजना" कहते हैं।

6.9 सारांश

बजट सार्वजनिक व्यय और सार्वजनिक आय के अनुमान हेतु वित्तीय विवरण है। जो सामान्यता वित्तीय वर्ष के अन्त में आगामी वर्ष के लिए बनाया जाता हैं इसमें निश्चित उदेश्यों को प्राप्त करने के लिए सरकारी नीतियों का उल्लेख होता है। जैसा कि इकाई में कहा गया है कि आज के दौर में बजट राष्ट्र निर्माण की योजनाओं को कियान्वित करने वाले साधन के रूप में कार्य करतें है।

एक आधुनिक सरकार का बजट बहुआयामी होता है और इसमें विविध अनुमानित आंकड़े और नीतियों का समावेश रहता है। यह सरकार की वित्तीय प्राप्तियों और इसके संवितरणों का एक विस्तृत और मद–वार प्रलेख होता है। यह सरकार का समग्र नीति–समूह का एक दर्पण होता है।

6.10 शब्दावली

आयगत बजट– वर्तमान व्यय और प्राप्ति का एक सामान्य बजट।
पूँजीगत बजट– इसके अन्तर्गत पूँजी प्राप्तियां और भुगतान शामिल रहते हैं।
विधायी नियंत्रण– संसद द्वारा राजस्व, व्यय, ऋणदान पर नियंत्रण।
राजकोषीय नीति– राजस्व इकट्ठा करने एवं उसके व्यय करने की नीति।

6.11 बोध प्रश्न

सही विकल्प का चुनाव कीजिएः

1– सन्तुलित बजट की अवधारणा यह है किः
(अ) व्यय आय के बराबर हो (ब) व्येय आय से अधिक हो
(स) आय व्यय से दुगनी हो (द) व्यय आय से आधा हो।

2– व्यय की दृष्टि से बजट को बाँटा जाता हैः
(अ) संतुलित व असंतुलित (ब) आयगत व पूँजीगत
(स) घरेलू व विदेशी (द) देशी व अन्तर्राष्ट्रीय।

3– व्यापार चक, धन की असमानता आदि को आधार मानते हैंः
(अ) बजटरी नीति का (ब) निर्यात नीति का
(स) आयात नीति का (द) औद्योगिक नीति का।

4– एक वर्ष की भारी कमी अर्थव्यवस्था को पहुंचाती हैः
(अ) भारी आघात (ब) हानि
(स) लाभ (स) व्यवस्था।

5– कभी–कभी संतुलित बजट बनाने में करना पड़ता हैः
(अ) बेकार व्यय (ब) अधिक व्यय
(स) असमान वितरण (द) अधिक व्यय।

6– आय व व्यय के सम्बन्ध में अनुमान होना चाहिए
(अ) वास्तविक (ब) काल्पनिक
(स) भ्रमात्मक (द) अनुमानतः

7– बजट देश की आर्थिक नीति का हैः
(अ) आधार (ब) मुख्य बातें
(स) निर्देशांक (द) वित्त नीति।

8– संसद द्वारा ही सार्वजनिक व्ययों पर लगाया जाता हैः

(अ) प्रतिबन्ध (ब) नियंत्रण
(स) रोक (द) व्यवस्था।

6.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.(अ) 2. (ब) 3. (अ) 4. (अ) 5. (अ) 6. (अ) 7. (अ) 8. (ब)

6.13 स्वपरख प्रश्न

1. बजट की परिभाषा दीजिए। सरकार के लिए बजट का क्या महत्व है। स्पष्ट कीजिए।
2. बजट के विभिन्न रूपों को स्पष्ट करते हुए पूँजीगत एवं राजस्व बजट की मदों को समझाइए।
3. भारत में केन्द्रीय बजट को तैयार करने में अपनायी जाने वाली प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

6.14 सन्दर्भ पुस्तकें

1. बर्क हैड जेसी, गवर्नमेंट बजटिंग, जान विली एन्ड संस, न्यूयार्क।
2. चन्द्रा, अशोक, भारतीय प्रशासन जार्ज ऐलन अनविन लिमिटेड।
3. थावराज, एम0जे0के0, फायनेन्सियल एडमिनिस्ट्रेशन आफ इन्डिया, सुल्तान चंद एवं संस, नई दिल्ली।
4. भाटिया, एच0 एल0, लोक वित्त विकास पब्लिशिंग हाउस लि0, नोएडा।

इकाई 7 घाटे की वित्त व्यवस्था अथवा हीनार्थ–प्रबन्धन

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 भारत में हीनार्थ प्रबन्धन की विभिन्न धारणयें
7.3 हीनार्थ प्रबन्धन का उद्देश्य
7.4 राजस्व घाटा
7.5 प्रभावी राजस्व घाटा
7.6 पूंजी घाटा
7.7 राजकोषीय घाटा
7.8 प्राथमिक घाटा
7.9 मौद्रिकृत घाटा
7.10 निवल मूल घाटा
7.11 सार्वजनिक क्षेत्र की उधार आवश्यकता
7.12 संरचनात्मक घाटा
7.13 परिचालन घाटा
7.14 बजट घाटा तथा बजट अधिशेष
7.15 घाटे का वित्त पोषण
7.16 घाटे की वित्त पोषण की आवश्यकता
7.17 घाटे की वित्त पोषण के साधन
7.18 राजकोषीय घाटे की बनावट
7.19 राजकोषीय नीति
7.20 सारांश
7.21 शब्दावली
7.22 बोध प्रश्न
7.23 बोध प्रश्नों के उत्तर
7.24 स्वपरख प्रश्न
7.25 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- हीनार्थ प्रबन्धन, राजस्व घाटा व प्रभावी राजस्व घाटा, पूँजी घाटा तथा राजकोषीय घाटा की व्याख्या कर सके।
- प्राथमिक और मौद्रिकृत घाटा बीच भेद कर सके।
- बजट घाटा तथा बजट अधिशेष की व्याख्या कर सके।
- घाटे का वित्त पोषण तथा उसकी आवश्यकता व साधन की व्याख्या कर सके।
- राजकोषीय घाटे की बनावट व राजकोषीय नीति को समझने में सक्षम हो सके ।

7.1 प्रस्तावना

हीनार्थ–प्रबन्धन से आशय सरकार द्वारा प्रबन्धित उस धनराशि से है, जिसमें सरकार अपनी सामान्य आय से अधिक व्यय करती है, अर्थात सरकार के सम्भावित व्यय उसकी सम्भावित आय से अधिक होने पर सरकार उसको पूरा करने के लिए जो उपाय करती है उसको हीनार्थ–प्रबन्धन कहते हैं।

हीनार्थ प्रबन्धन को परिभाषा के रूप में निम्न प्रकार रखा जा सकता है–

(1) **डॉ0 बी0के0आर0वी0 राव के अनुसार,** "जब सरकार जान बूझकर किसी उद्देश्य से अपनी आय से अधिक व्यय करे और अपने घाटे की पूर्ति किसी भी ऐसी विधि से करे, जिससे देश में मुद्रा (धातु, पत्र या साख) की मात्रा बढ़े, तो उसे हीनार्थ–प्रबन्धन कहना चाहिए।"

(2) **भारतीय योजना आयोग के अनुसार ,** "हीनार्थ–प्रबन्धन शब्द का प्रयोग बजट के घाटे द्वारा कुल राष्ट्रीय व्यय में प्रत्यक्ष वृद्धि को प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है। ये घाटे आगम खाते से सम्बन्धित हों या पूंजी खाते से" ।

ऐसी नीति अपनाने का सार यही होता है कि सरकार अपनी उस आय से अधिक मात्रा में व्यय करती है जो उसे करारोपण, सरकारी उपक्रमों से प्राप्त आय, जनता से प्राप्त ऋण, जमा एवं कोष तथा अन्य विविध स्रोतों से प्राप्त होती है। सरकार इस घाटे की पूर्ति या तो अपने संचित कोषों को काम में लाकर करती है अथवा बैंकों से उधार लेकर (मुख्य रूप से देश की केन्द्रीय बैंक से और इस तरह मुद्रा का निर्माण करके। इस इकाई में हम हीनार्थ प्रबन्धन
व भारत में हीनार्थ प्रबन्धन की विभिन्न धारणाएं यथाः बजेटरी घाटा, राजस्व घाटा, प्रभावी घाटा, राजकोषीय घाटा, प्राथमिक व मौद्रिकृत घाटा, हीनार्थ प्रबन्धन के उद्देश्य व वित्त पोषण (आवश्यकता व साधन) के साथ राजकोषीय नीति पर प्रकाश डाला जाएगा।

7.2 भारत में हीनार्थ प्रबन्धन की (घाटे की वित्त–व्यवस्था) विभिनन धारणायें

भारत में केन्द्रीय सरकार के बजट में हीनार्थ प्रबन्धन या घाटे को विभिन्न रूपों में दिखाया जाता है जो इस प्रकार है–

1 **बजटरी घाटा** – सरकार की सभी प्राप्तियों की तुलना में सरकार के कुल व्यय की अधिकता को बजटरी घाटा कहा जाता है।

बजटरी घाटा = कुल व्यय–कुल प्राप्ति

=(आयोजन व्यय + गैर आयोजन व्यय) –{आगम प्राप्तियां + पूंजी गत प्राप्तियां}

={(राजस्व खाते पर आयोजन व्यय + पूंजी खाते पर आयोजन व्यय)+ (राजस्व खाते पर गैर–आयोजन व्यय + पूंजी खाते पर गैर आयोजन व्यय)}–{(कर आगम + गैर–कर आगम) + (ऋणों की वसूली + अन्य प्राप्तियां + उधार एवं अन्य देयताएं)}

2 **आगम या राजस्व घाटा**– सरकार की आगम आय की तुलना में आगम व्यय की अधिकता को आगम घाटे के नाम से दर्शाया जाता है। सूत्र के रूप में–

आगम या राजस्व घाटा = आगम व्यय– आगम प्राप्ति

=(राजस्व खाते पर आयोजन व्यय + राजस्व खाते पर गैर– आयोजन व्यय –(कर आगम + गैर–कर आगम)

3 **प्रभावी राजस्व घाटा**– यह धारणा 2012–13 केन्द्रीय बजट से प्रारम्भ की गयी है। इसका आशय राजस्व घाटा तथा पूंजी सम्पत्तियों के सृजन हेतु दिये गये अनुदान के अन्तर से है। इस पर ध्यान केन्द्रित करने से राजस्व घाटे के उपभोग सम्बन्धी घटक में कमी लाने और अभिवृद्धित पूंजीगत व्यय हेतु क्षमता स्थापित करने में सहायता मिलेगी।

4 **राजकोषीय घाटा**– इसका अर्थ आगम प्राप्तियों ओर ऋण–भार उत्पन्न न करने वाली पूंजीगत प्राप्तियों पर कुल व्यय के आधिक्य से होता है।

सूत्र के रूप में –

राजकोषीय घाटा = कुल व्यय–(आगम प्राप्तियां + ऋण भार उत्पन्न करने वाली पूंजीगत प्राप्तियां)

या =बजटरी घाटा + उधार एवं अन्य देयताएं

नोट–

(अ) राजकोषीय घाटे को **"सकल राजकोषीय घाटा"** भी कहा जाता है।

(ब) ऋण भार उत्पन्न न करने वाली पूंजीगत प्राप्तियों से आशय ऋणों की वसूली तथा अन्य पूंजीगत प्राप्तियों (उधार एवं अन्य देयताओं को छोड़कर) से होता है।

5 **प्राथमिक घाटा**– राजकोषीय घाटे में सरकार द्वारा ब्याज के रूप में भुगतान की जाने वाली राशि को घटाकर आने वाला घाटा प्राथमिक घाटा कहलाता है। इसे "प्राथमिक राजकोषीय घाटा" भी कहते हैं।

सूत्र के रूप में –

प्राथमिक घाटा = राजकोषीय घाटा – ब्याज भुगतान

या

प्राथमिक राजकोषीय घाटा =सकल राजकोषीय घाटा–ब्याज भुगतान

6 **मौद्रिकृत घाटा**– यह घाटा राजकोषीय घाटे का वह भाग है जिसकी पूर्ति रिजर्व बैंक द्वारा नये नोटों को छापकर की जाती है **सूत्र के रूप में–**

मौद्रिकृत घाटा = भारतीय रिजर्व बैंक के बकाया ट्रेजरी बिलों की शुद्ध राशि + सरकार की बाजार उधार में रिजर्व बैंक का योगदान

या

= केन्द्र सरकार के लिए भारतीय रिजर्व बैंक की शुद्ध साख में होने वाली वृद्धि।

यह उल्लेखनय है कि सन 1997–98 के बजट से तदर्थ ट्रेजरी बिलों और 91 दिन के ट्रेजरी बिलों की व्यवस्था समाप्त हो जाने के कारण "बजटरी घाटा" की धारणा की प्रासंगिकता समाप्त हो गयी है।

7.3 हीनार्थ प्रबन्धन का उद्देश्य

विश्व में हीनार्थ प्रबन्धन की व्यवस्था का प्रारम्भ आर्थिक मन्दी तथा युद्धकालीन संकटों का सामना करने के लिए किया गया, लेकिन वर्तमान समय में इसे आर्थिक विकास की वित्त व्यवस्था के लिए भी व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है। विस्तृत रूप से हीनार्थ प्रबन्धन के उद्देश्य को अग्र प्रकार रखा जा सकता है–

1 **मन्दी के प्रभाव को रोकने के लिए–** मन्दी के समय कुल प्रभावपूर्ण मांग में कमी आ जाती है जिसके परिणाम स्वरूप रोजगार में गिरावट आ जाती है। **लार्ड कीन्स का मत** है कि मन्दी काल में प्रभावपूर्ण मांग की कमी के कारण रोजगाार में कमी आ जाती है तथा रोजगार में कमी प्रभावपूर्ण मांग को कम कर देती है। इस प्रकार एक दुष्चक्र पैदा हो जाता है जो कि सार्वजनिक व्यय को बढ़ाकर समाप्त किया जा सकता है। **कीन्स ने** सुझाव दिया कि हीनार्थ प्रबन्धन का प्रयोग क्षतिपूरक वित्त के रूप में किया जायें इसके अन्तर्गत व्यक्तिगत व्यय में हुई कमी को सरकार अपने व्यय से पूरा करती है। इसके परिणामस्वरूप प्रभावपूर्ण मांग में वृद्धि हो जाती है। यदि मन्दी काल में सरकार सार्वजनिक निर्माण कार्यों पर व्यय आरम्भ कर दे तो इसके फलस्वरूप रोजगार की मात्रा बढ़ेगी और नागरिकों के हाथों में अधिक क्रय शक्ति आयेगी। इससे वस्तुओं तथा सेवाओं की मांग बढ़ेगी, कीमतें उठेंगी, उत्पादन बढ़ेगा, रोजगार बढ़ेगा तथा मन्दी का चक्र समाप्त हो जायेगा परन्तु इस दिशा में सफलता तभी मिलेगी जब हीनार्थ–प्रबन्धन किया जाए क्योंकि उसे अतिरिक्त द्रव्य का सृजन होगा जिससे समाज में कुल व्यय–योग्य कोष मे वृद्धि हो जायेगी। उन्नत देशों, विशेषकर अमरीका में मन्दी के प्रभावों को दूर करने के लिए इसका आश्रय लिया गया है। ऐसे हीनार्थ प्रबन्धन का मुद्रास्फीतिजनक प्रभाव नहीं होता वरन् गिरती कीमतों को ऊपर उठाकर निष्क्रिय अर्थयवस्था को चेतन किया जाता है।

मन्दी के उपचार के लिए हीनार्थ–प्रबन्धन का प्रयोग तीन प्रकार से किया जा सकता है:

(i) **पम्प प्राइमिंग–** इसके अन्तर्गत मन्दी से उत्पन्न शिथिलता को दूर करने के लिए सार्वजनिक निर्माण नीति प्रयोग में लायी जाती है। सड़कें, पुल, नहरें इत्यादि का निर्माण आरम्भ किया जाता है। व्यक्तियों को रोजगार मिलता है। उनके हाथों में क्रय शक्ति आती है। वस्तुओं की मांग बढ़ती हैं बड़े पैमाने पर क्षतिपूरक व्यय किया जाता है। **टेलर के** शब्दों में, "पम्प प्राइमिंग इस विश्वास पर आधारित है कि यदि पर्याप्त मात्राओं में तथा उचित परिस्थितियों के अन्तर्गत सार्वजनिक कोषों का आय–प्रवाह में इन्जेक्शन लगा दिया जाये तो वह आशा की प्रवृति को बदल देगा तथा मन्दी से उभार को प्रोत्साहन देगा।"

(ii) **चक्रीय–** हीनार्थ–प्रबन्धन के अन्तर्गत सरकार अपने व्यय में वृद्धि करने के साथ–साथ करों में छूट आदि की सुविधाएं देती है। इसका उद्देश्य व्यापार–चक्र के परिणामस्वरूप उत्पन्न मन्दी की तीव्रता कम करना है।

((iii) **चिरकालिक–** हीनार्थ प्रबन्धन के अन्तर्गत दीर्घकाल तक धाटे के बजट बनाये जाते हैं। सरकारी व्यय में वृद्धि की जाती है। धीरे धीरे नये विनियोगी निवेश करने के लिए प्रोत्साहित होने लगते हैं। **हेन्सन की मान्यता है** कि लम्बी अवधि तक तीव्रगति से विकास होने पर अर्थव्यवस्था में परिपक्वता आ जाती है। नयी पूंजी के निवेश की दर गिरने लगती है। नये निवेश के अवसर नहीं होते। निष्क्रियता का वातावरण पैदा हो जाता है। ऐसी धारणा बन जाती है कि अब कोई लाभ नहीं होगां इसे दूर करने के लिए लम्बे समय तक हीनार्थ–प्रबन्धन किया जाता है।

2 **युद्धकाल में हीनार्थ–प्रबन्धन–** युद्ध काल में समस्या यह होती है कि देश के समस्त साधनों को यृद्ध के प्रयत्नों में लगाया जाये। यह काम हीनार्थ–प्रबन्धन से किया जा सकता है। यृद्धकाल में अत्यधिक धन की आवश्यकता होती है जिसकी पूर्ति करारोपण, सार्वजनिक उपक्रमों से आय तथा ऋणों द्वारा की जाती है परन्तु इन सबसे प्राप्त आय पर्याप्त नहीं होती अतः युद्ध चलाने के लिए सरकार हीनार्थ प्रबन्धन करती है। इसके द्वारा सरकार के हाथों में अतिरिक्त क्रय–शक्ति आ जाती है जिससे यृद्ध के लिए सामग्री तथा सेवाएं खरीदी जाती हैं। इस प्रकार के हीनार्थ प्रबन्धन से उत्पादन घट जाता है क्योंकि उत्पत्ति के साधन सामान्य वस्तुओं के उत्पादन से हटाकर युद्ध की वस्तुओं को पैदा करने में लग जाते हैं तथा जनता के हाथों में सरकारी व्यय द्वारा अतिरिक्त क्रय शक्ति पहुँच जाती है। परिणामतः कीमतें बढ़ जाती हैं।

3 **आर्थिक विकास के लिए हीनार्थ–प्रबन्धन–** एक विकसशील देश को विभिन्न क्षेत्रों में निवेश के लिए धन की आवश्यकता होती है जिससे अर्थव्यवस्था को धरातल से उपर उठाने की स्थिति में लाया जायें। यह निवेश बड़ी राशि में होना चाहिएं अल्प विकास के घेरे में फंसी अर्थव्यवस्था को झटका देकर निकाला जा सके। अल्प विकसित देश में प्रति व्यक्ति आय कम होती है अतः बचत भी कम होती है। जीवन निर्वाह ही कठिनाई से होता है बचत कहां से हो? इस कारण विकास के लिए धन नहीं मिल पाता। जनता निर्वाह स्तर से भी नीचे रहती है। धन के वितरण में असमानता होती है। कुछ धनी व्यक्ति उपभोग पर बहुत व्यय करते हैं। इस उपभोग को सरकार कर लगाकर कम कर सकती हैं परन्तु इससे पर्याप्त धन नहीं मिल पाता। ऋण भी इतने नहीं मिल पाते कि विकास की आवश्यकता को पूरा कर सके। लोकतन्त्र में सरकार अधिक कर लगाते हुए भी हिचकिचाती है क्योंकि उसे भय रहता है कि आगामी चुनाव में लोग उसे वोट नहीं देंगें, अतः हीनार्थ प्रबन्धन का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है। यदि लक्ष्य अच्छा है तो साधन कैसे भी क्यों न हों वे उचित ही कहे जायेंगें। नई मुद्रा का सृजन कर प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों को काम में लगाया जाता हैं।

7.4 राजस्व घाटा

सरकारी बजट के राजस्व खाते की कुल व्यय यदि कुल आय से अधिक हो तो घाटे की मात्रा राजस्व घाटा कहलाता है। राजस्व व्यय अनिवार्य है तथा तत्कालिक होता है। ऐसे व्यय उपभोगात्मक तथा अनुत्पादक होते हैं। इस प्रकार के व्यय को वित्तीय नीति के क्षेत्र में अपराध मााना जाता है। इस घाटे को कम करने के लिए खर्च किए जाने वाले पैसे का उपयोग किसी भी विकासात्मक कार्य के लिए किया जा सकता है। भारत में इस नयी शब्दावली का प्रयोग वित्त वर्ष 1997–98 से प्रारम्भ हुआ।

सरकारी बजट के राजस्व खाते की यदि कुल आय कुल व्यय से अधिक हो तो यह आधिक्य राजस्व अधिशेष कहलाता हैं। इस तरह की वित्तीय नीति को बेहतर माना जाता है, क्योंकि राजस्व अधिशेष के पैसों का उपयोग उत्पादक क्षेत्रों में किया जा सकता है। दूसरी बात जो ध्यान में रखी जानी चाहिए कि किस प्रकार सरकार ने इस अधिशेष का प्रबन्ध किया है तथा इस दिशा मे अपनाई गई नीति औचित्यपूर्ण है अथवा नहीं। दूसरी पंचवर्षीय योजना में भारत राजस्व अधिशेष राज्य बन गया, लेकिन विशेषज्ञों ने इसकी सराहना नहीं की है, क्योंकि प्रभाव

अर्थव्यवस्था पर अच्छा नहीं था– कर के अधिक दर हो जाने के कारण कर की चोरी होने लगी तथा भ्रष्टाचार, काला धन इत्यादि भी अर्थव्यवस्था में व्याप्त हुआ।

किसी भी वित्त वर्ष के राजस्व घाटे को मात्रात्मक रूप अथवा सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में दर्शाया जाता है। सामान्यतः राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय आकलन के लिए इसे प्रतिशत के रूप में दर्शाया जाता है।

7.5 प्रभावी राजस्व घाटा

प्राभावी राजस्व घाटा एक नयी अवधारणा है जिसे संघीय बजट 2011–12 द्वारा पहली बार इस्तेमाल किया गया। परंपरागत रूप से राजस्व घाटा सरकार की राजस्व प्राप्ति और व्यय के बीच का ऋणात्मक अंतर है। ज्ञात हो कि इस घाटे में केन्द्र सरकार के वे व्यय भी शामिल होते हैं जो वह राज्य सरकार को 'अनुदान' के रूप में देता है और इनसे कई विकासशील परिसंपत्तियों का सृजन होता है। हालाकि इन परिसंपत्तियों का स्वामित्व केन्द्र के बजाय राज्यों का होता है। केन्द्रीय वित्त मंत्री (वर्ष 2011–12) के अनुसार केन्द्र के इस व्यय को 'गैर विकासात्मक' या 'अनुत्पादक' नहीं माना जा सकता, क्योंकि इनसे प्रत्यक्ष विकासशील निवेश होता है। इस प्रकार यह तर्क रखा गया कि इस कारण केंद्र के राजस्व व्यय में से न उन खर्चो को जिनसे राज्यों में परिसंपत्तियाँ सृजित होती हैं, को घटाकर देखा जाना चाहिए और जो मात्रा बचती है वास्तव में वहीं केंद्र का राजस्व घाटा माना जाना चाहिए। इसे सूचित करने के लिए ही इस नयी अवधारणा का ERD उपयोग किया गया। अर्थात ERD की प्राप्ति केंद्र के राजस्व घाटे में से उसके "पूंजीगत अस्तियों संबधी अनुदानों" को घटाने से होती है। इन अस्तियों में मुख्यातया प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना, त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम आदि शामिल थे।

इस अवधारणा का अंतिम उल्लेख हमें केंद्रीय बजट 2013–14 में मिलता है, जिसके अनुसार 2016–17 तक जबकि RD 1.5 प्रतिशत रहने का अनुमान लगााया गया था ERD शून्य हो गया थां। इसका अर्थ है, वर्ष 2016–17 तक RDकेवल GoCAs के कारण होना चाहिए था। यह वास्तव में आर डी की व्याख्या करने का एक नया तरीका थां हम केंद्रीय बजट 2014–15 (पूर्ण) के बाद 2016–17 तक भारत सरकार द्वारा इसका इस्तेमाल नहीं पाते हैं। इस तरह नई अवधारणा को समाप्त मान लिया गया है।

7.6 पूँजी घाटा

सार्वजनिक वित्त या अर्थशास्त्र में कोई ऐसा शब्द नहीं है। लेकिन व्यवहार में अक्सर यह शब्द पूंजी की कमी, पूंजी की विरलता के अर्थ में रोजमर्रा के आर्थिक समाचारों में सुनने में आता है। दर असल सरकार सार्वजनिक व्यय के लिए अपेक्षित निधि, धन, पूंजी के प्रबंधन की समस्या से जूझ रही होती है। ऐसे खर्चे राजस्व संबधित भी हो सकतें हैं या पूंजी से जुड़े हुए भी। विकासशील अर्थव्यवस्था में पूंजीगत व्यय की उच्च आवश्यकता के चलते इस तरह की मुश्किलें हमेशा बनी रहती हैं। क्या इस स्थिति को दर्शाने के लिए अगर कोई उपयुक्त शब्द है यह स्वाभिक रूप से पूंजी घाटा रहा है।

7.7 राजकोषीय घाटा

यदि सरकार की कुल प्राप्ति (राजस्व व पूंजी प्राप्ति) तथा कुल व्यय (राजस्व व पूंजी व्यय) का संतुलन नकारात्मक हो तो यह राजकोषीय घाटे को दर्शाता है। इस अवधारणा का उपयोग भारत में वित्त वर्ष 1997–98 से किया जा रहा है।

राजकोषीय घाटे का अभिप्राय यह है कि सरकार द्वारा किया गया खर्च उनके साधनों से कहीं अधिक है यानि सरकार अपने आय से अधिक व्यय कर रही है। राजकोषीय घाटे को मात्रात्मक रूप अथवा सकल घरेलू उत्पादक के प्रतिशत के रूप में दर्शाया जा सकता है। राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय अध्ययनों के लिए सामान्यतः इसे प्रतिशत में ही दर्शाया जाता है। भारत में प्रायः यह घाटा देखा गया है तथा यह घाटा बहुत अधिक होता रहा है।

वित्तीय घाटे को मात्रात्मक रूप में (यानी कि घाटे का कुल मुद्रात्मक मूल्य) या उस विशेष वर्ष की GDP के प्रतिशत के रूप मे दिखाया जा सकता है। सामान्यतः घरेलू या अंतराष्ट्रीय अध्ययनों (यानी कि तुलनात्मक अर्थशास्त्र) में प्रतिशत का इस्तेमाल किया जाता है।

भारत एक ऐसा देश रहा है जहां न सिर्फ नियमित बल्कि भारी वित्तीय घाटा रहा है। इसके अलावा इसके वित्तीय घाटे की संरचना आलोचना का आसान शिकार भी रही है।

7.8 प्राथमिक घाटा

वित्तीय घाटा, एक साल की ब्याज देनदारियां हटाकर, प्राथिमक घाटा है। इस शब्द का इस्तेमाल भारत ने 1997–98 के बजट से करना शुरू किया था। यह उस साल अर्थव्यवस्था के वित्तीय घाटे को दर्शाता है, जिसमें विभिन्न ऋणों और देनदारियों पर ब्याज का भुगतान नहीं करना है। यह मात्रात्मक और जींडीपी के प्रतिशत दोंनों रूपों में दिखाया जाता है।

इसे सरकार के व्यय के स्वरूप में ज्यादा पारिदर्शिता लाने के लिए एक बहुत कारगर उपकरण माना जाता है। इससे किन्हीं भी दो सालों की तुलना की जा सकती है और बहुत सारी चीजें स्पष्टतः जानी जा सकती हैं।

7.9 मौद्रीकृत घाटा

राजकोषीय घाटे का वह भाग जिसकी आपूर्ति सरकार को RBI द्वारा की गयी (कर्ज के रूप में) उसे मौद्रीकृत घाटा कहा जाता हैं इस नयी अवधारणा को भारत द्वारा वर्ष 1997–98 से उपयोग में लाया जा रहा है। किसी वित्त वर्ष के लिए इसे मात्रात्मक तथा सकल घरेलू उत्पाद GDP के प्रतिशत के रूप में दर्शाया जाता है।

इस अवधारणा का विकास एक नयी शुरूआत है जिसके द्वारा भारत सरकार के बाजार ऋाणों पर निर्भरता तथा राजकोषीय प्रबंधन में पारदर्शिता लायी जाती है। वास्तव में अपनी व्यय की पूर्ति के लिए भारत सरकार बाजार ऋणों (जो आंतरिक ऋण है) पर बड़े अर्थों में निर्भर रही है। इस बाजार ऋण का प्रबंध RBI करती है। इसके अतिरिक्त सरकार अपनी प्रतिभूतियों, बॉण्डो आदि से जो बाजार ऋण लेती रही है। उसका प्राथमिक ग्राहक भी RBI ही रहा है। (वैसे 2006–7 से अब RBI यह बाध्यता नहीं रही)। इन माध्यमों से सरकार भारी मात्रा में आंतरिक ऋणों की उगाही करती रही है तथा भारत की राजकोषीय नीति का यह एक

चिंताजनक पहलू रहा था। वर्ष 1991–92 में शुरू किये राजकोषीय समेकन की प्रक्रिया के प्रारम्भ का यह एक प्रतिफल है कि इस अवधारणा का विकास किया गयां अब सरकार RBI को दीर्घावधिक ऋणों की उगाही के लिए बाध्य नहीं करती है। वह अब इससे सिर्फ अर्थोपाय अग्रिम (ways and means advance) के माध्यम से ही ऋण लेती है जो छोटी अवधि के ऋण हैं (364 दिनों तक के)।

7.10 निवल मूल घाटा

सकल मूल घाटे से सरकार द्वारा दिये गये ऋण और अग्रिम को घटाने पर निवल मूल घाटे का अनुमान प्राप्त होता है। इसको राजकोषीय घाटे से ब्याज की अदायगियों और उधार और अग्रिम को घटा कर तथा ब्याज प्राप्तियाँ जोड़कर भी अनुमानित किया जा सकता है ।

7.11 सार्वजनिक क्षेत्र की उधार आवश्यकता

यह पूरे क्षेत्र का एकीकृत घाटा है तथा इस क्षेत्र द्वारा अर्थव्यवस्था के संसाधनों के निवल उपभोग का परिमापन है। इसे बजटीय घाटे का सर्वाधिक विस्तारित परिमापन कहा जा सकता है तथा इसमें सरकार के सभी अंगों के घाटे जुड़े रहते हैं। संक्षिप्त शब्दों में इसे समस्त सरकारी इकाइयों के (कुल व्यय–कुल राजस्व प्राप्तियाँ) के बराबर, अथवा (नये उधार–ऋण भुगतान–जमा रोकड़ में कमी) के बराबर अनुमानित किया जा सकता है।

नोट करें कि यहाँ पर व्यय में सार्वजनिक क्षेत्र के कर्मचारियों के वेतन एवं भत्ते, वस्तुओं तथा सेवाओं पर व्यय, अचल पूँजी निर्माण, ऋण पर ब्याज, आर्थिक सहायताएँ तथा अन्य अन्तरण शामिल होते हैं। परन्तु व्यय के इस परिमापन में ऋण का भुगतान तथा वित्तीय प्रतिभूतियों के संग्रहण के तद्नुरूप अदायगियों को शामिल नहीं किया जाता। इसी प्रकार राजस्व में करों से प्राप्तियों, फीसें, जुर्माने शुल्क, उपभोक्ताओं से वसूलियाँ ,सार्वजनिक परिसंपत्तियों की बिक्री से प्राप्त धन राशियों को शामिल किया जाता है। परन्तु जमा रोकड़ से निकाली गई राशियों को राजस्व का भाग नहीं माना जाता।

इस परिमापन में कुछ कठिन सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक प्रश्नें का सामना करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, किन आर्थिक इकाइयों को सरकार का अंग माना जाए? इसके अतिरिक्त इस परिमापन से सरकारी क्षेत्र के घाटे के कारण अर्थव्यवस्था द्वारा वहन की जाने वाली वास्तविक संसाधन लागत का अनुमान नहीं लगाया जा सकता क्योंकि यह लागत केवल घाटे तक ही सीमित नहीं रहती; इसके प्रभाव मुद्रास्फीति तथा अन्य कई रूपों में भी प्रकट होते हैं।

7.12 संरचनात्मक घाटा

सरकारें बहुधा ऐसे कदम उठाती है जिससे सरकारी व्यय में कमी अथवा राजस्व में बढ़ोतरी हो सकती हैं परन्तु यदि ऐसे कदम अल्पकालीन हों तो उनके बजटीय प्रभाव भी अल्पकालीन ही होंगें। अतः वस्तुस्थिति का सही अनुमान लगाने के लिए बजटीय घटे को अनुमानित करते समय इन अल्पकालीन प्रभावों वाले घटकों को अनदेखा कर देना चाहिए। ऐसा करने पर 'सार्वननिक क्षेत्र की उधार आवश्यकता' (PSBR) के संशोधित अनुमान को संरचानात्मक घाटे की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार के घाटे का यह परिमापन सार्वजनिक क्षेत्र की दीर्घकालीन घाटे की स्थिति दर्शाता है।

7.13 परिचालन घाटा

'सार्वननिक क्षेत्र की उधार आवश्यकता' के परिमापन के अनुमान पर कीमतों में परिवर्तन का प्रभाव भी पड़ता है। यदि यह अनुमान कीमतों के इस प्रभाव को दूर करने के उपरांत लगाया जाए, तो इसे परिचालन घाटे की संज्ञा दी जाती है। परन्तु व्यावहारिकता में इस अनुमान में कई कठिनाइयाँ आती है। उदाहरण के लिए सर्वप्रथम कठिनाई एक उचित कीमत सूचकांक के चुनाव की रहती है। इसी प्रकार परोक्ष करों के कारण समस्याा यह उठाती है कि एक ओर तो इनसे सरकार के राजस्व में वृद्धि होती है, परन्तु दूसरी ओर कीमतें भी बढ़ जाती हैं यही बात सरकारी उद्यमों द्वारा कीमतें बढ़ाने पर लागू होती हैं वहाँ भी राजस्व में वृद्धि के साथ हही उपभोक्ताओं (जिनमें सरकार स्वयं भी शामिल है) के लिए कीमतें बढ़ जाती हैं।

7.14 बजट घाटा तथा बजट अधिशेष

सरकार बजट की कुल आय (राजस्व खाते की आय+पूंजी खाते की आय) यदि व्यय से अधिक हो तो इस आधिक्य को बजट अधिशेष कहते हैं। इसी तरह सरकारी बजट का कुल व्यय (राजस्व खाते का आय+पूंजी खाते का व्यय) यदि कुल आय (राजस्व खाते का आय+पूंजी खाते का आय) से अधिक हो तो यह आधिक्य बजट घाटा कहलाता है।

व्यवहार मे दुनिया भर की सरकारें अधिशेष वाला बजट पेश नहीं करतीं क्योंकि इसे सरकारों के विकास के प्रति उदासीनता का प्रतीक माना जाता है। लेकिन राजनीतिक हथियार के रूप में सरकार ऐसा बजट ला सकती है । उदाहरण के लिए वर्ष 2006–07 का उत्तरांचल का बजट एक अधिशेष बजट था)। कोई सरकार किसी विकासशील राज्य में अधिशेष का बजट केसे ला सकती है जबकि विकसित देशों को भी विकास की जरूरत होती है और वहां घाटे के बजट आ रहे हैं? भारत में केंद्र सरकार के बजट को कभी भी एक अधिशेष बजट के रूप में पेश नहीं किया गया। पहली बार 1930 में अमेरिका में सार्वजनिक वित्त के क्षेत्र में शब्द (घाटे की वित्त व्यवस्था) का इस्तेमाल किया गया था, आज इसका इस्तेमाल कार्पोरेट सेक्टर भी कर रहा है और व्यवसायिक रणनीति के तहत किसी कंपनी का वित्तीय प्रबंधन इसका इस्तेमाल भी कर सकता है। किसी बीमार कंपनी को कई साल तक घाटे की वित्तीय व्यवस्था का रास्ता अपनाना पड़ सकता है ताकि वह खतरे के निशान से ऊपर आ सके (यानी कि नुकसान को बन्द कर सके)।

7.15 घाटे का वित्त पोषण

यह सरकार द्वारा बजट घाटे के लिए की गई वित्त प्रबंध की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में सरकार को यह पूर्व से ही मालूम होता है कि उसका कुल व्यय कुल प्राप्ति से अधिक होगा तथा वह ऐसी नीतियों का निर्धारण करती है, जिससे इस घाटे को वहन किया सकें। इसका पहली बार उपयोग 1930 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका में लोक वित्त के क्षेत्र में किया गया। अब इस शब्द का प्रयोग कॉर्पोरेट क्षेत्र में भी किया जाता है।

तीस के दशक की शरूआत में अमेरिका को पहले घाटे की वित्त व्यवस्था मे हाथ आजमाने पड़े और फिर पूरे यूरोप–अमेरिका की सरकारों ने यह रास्ता

अपनाया। हालांकि इस रास्ते से विकसित दुनिया महामंदी (1929) के खौफ से बाहर निकल आईं । साठ के दशक तक यह विचार पूरी दुनिया में लोकप्रिय हो गयां भारत ने घाटे की वित्त व्यवस्था में अपने हाथ 1969 में आजमाए और 1970 से यह एक नियमित कार्यक्रम बन गया, तब तक जब तक कि यह निराधार और अतार्किक नही हो गया ओर तुरंत सुधार मी मांग नहीं करने लगा। भारत में वित्तीय घाटा न सिर्फ अवहनीय स्तर के शीर्ष पर पहुंच गया बल्कि इसकी संरचना ही न्यायसंगत नहीं थी और अर्थशास्त्र के आधारभूत सिद्धातों के अनुरूप नहीं थीं अंततः भारत ने वित्तीय सुधारों की धीमी लेकिन सुदृढ़ प्रक्रिया शुरू की जिसे वित्तीय मजबूती की प्रक्रिया के रूप में भी जाना जाता है।

7.16 घाटे के वित्त पोषण की आवश्यकता

1920 के दशक में इस प्रकार की नीति की आवश्यकता महसूस की गई तथा इस अवधारणा का उद्भव हुआ। इसकी आवश्यकता तब होती है जब सरकार को किसी निर्धारित अवधि में विकास हेतु उपार्जन से अधिक खर्च करने की आवश्यकता होती हैं विकास होने के बाद आय से अधिक खर्च किए गए पैसों की प्रतिपूर्ति की जाती है– यही सोच इसका आधार है।

1930 के दशक में पहली बार संयुक्त राज्य अमेरिका ने इस प्रकार की नीति को अजमाया तथा उसके तुरंत बाद सभी यूरोप–अमेरिकी सरकारों ने इस नीति का अनुसरण किया। इस नीति के द्वारा ही विश्व के विकसित देश 1929 की आर्थिक मंदी से ऊभर पाए। 1960 के दशक में यह अवधारणा विश्वभर में लोकप्रिय हो गई। भारत ने वित्तीय अभाव की नीति को 1969 में आजमाया तथा 1970 के दशक से यह एक अनिवार्य नीति बन गईं धीरे–धीरे भारत ने राजकोषीय सुधार की प्रक्रिया को अपनाया जिसे वित्तीय समेकन की प्रक्रिया कहा जाने लगा।

7.17 धाटे के वित्त पोषण के साधन

जब वित्तीय अभाव की नीति लोक वित्त के क्षेत्र में विश्वभर में एक स्थापित प्रक्रिया बन गई तब समय के साथ–साथ इसके साधन भी विकसित होने लगें ये साधन निम्नलिखित हैं–

(i) विदेशी सहायताः यह सबसे उचित साधन है जिसके द्वारा सरकारी घाटे की आवश्यकता को पूरा किया जा सकता है यदि यह निम्न ब्याज के साथ आता हो तो भीं। यदि यह सहायता बगैर ब्याज के आता हो तो इससे बेहतर और कुछ नहीं हो सकता। विदेशी अनुदान इससे भी बेहतर साधन है, क्योंकि न तो इस पर किसी किस्म का ब्याज होता है तथा न ही इसकी अदायगी जरूरी है, यह निःशुल्क होता है। इस तरह का अनुदान भारत को पोखरण परमाणु परीक्षण (1975) के बाद मिलना बंद हो गया। कई बार भारत ने इस तरह के अनुदान को नहीं स्वीकारा हैः जैसे सुनामी के उपरांत भारत को दिया गया अनुदान (क्योंकि इनमें शर्ते छुपी होती हैं)

(ii) विदेशी ऋणः विदेशी ऋण वित्तीय घाटे को संभालने का दूसरा सबसे बेहतर तरीका है, बशर्ते कि वे तुलनात्मक रूप से सस्ते तथा लंबी अवधि के हों। यद्यपि विदेशी ऋण वो देश की संप्रभु निर्णय लेने की प्रक्रिया पर हस्तक्षेप माना

जाता है, लेकिन इसके अपने फायदे हैं तथा यह आंतरिक ऋण से दो कारणों से बेहतर मान जाता है–

(अ) विदेशी ऋण विदेशी मुद्रा के रूप में आता है जिससे सरकारी खर्च को अतिरिक्त फायदा होता है , सरकार चाहे तो इस ऋण का उपयोग देश के अंदर अथवा आयात पर टिकी विकास की आवश्यकताओं के लिए कर सकती है।

(ब) यह "क्राउडिंग ऑउट" प्रभाव के कारण भी बेहतर माना जाता है, क्योंकि सरकार यदि देश के बैंकों से ऋण लेगी तो अन्य निवेश के लिए कहां से ऋण लेंगें?

(iii) आंतरिक ऋणः आंतरिक ऋण वित्तीय घाटे को कम करने का तीसरा सबसे बेहतर तरीका है लेकिन यदि इस किस्म का ऋण अत्यधिक लिया गया तो जनता तथा निजी क्षेत्र के निवेश संभावनाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, अर्थव्यवस्था पर दोहरा नकारात्मक प्रभाव पड़ता है– निम्न निवेश (जिसके कारण निम्न उत्पादन, निम्न सकल घरेलू उत्पाद तथा निम्न प्रति व्यक्ति आय इत्यादि) व निम्न माँग (आम जनता तथा निजी क्षेत्र द्वारा)– अर्थव्यवस्था की गति धीमी पड़ जाती है, जैसा कि 1960, 1970 तथा 1980 के दशक में देखा गया।

(iv) मुद्रा छापकरः यह वित्तीय घाटे को कम करने का अंतिम हथियार है। लेकिन इस साधन की विकलांगता यह है कि सरकार इसके द्वारा वह व्यय नहीं कर सकती है जिसे विदेशी मुद्रा में किया जाना है। मुद्रा छापने के कारण अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले अन्य प्रतिकूल प्रभाव निम्नलिखित हैं–

(अ) यह अनुपातिक रूप में मुद्रास्फीति में वृद्धि करता है।

(ब) यह सरकारी के वेतनमान मं संशोधन करने के लिए सरकार को बाध्य करता है जिसके कारण सरकारी खर्च का भार अधिक हो जाता है। सरकार इन सभी साधनों में से किसी भी साधन का चयन कर अपने वित्तीय घाटे को कम कर सकती हैं। सामान्यतः सरकारें वित्तीय प्रबंधन के लिए इन सभी साधनों के संयोजन का प्रयोग करती है।

7.18 राजकोषीय घाटे की बनावट

वित्तीय अभाव के लिए **जे0एम0केन्स** की अवधारणा को सामान्यतः सभी तीसरे विश्व की अर्थ्व्यवस्थाओं ने अपनाया, लेकिन उसके पूर्ण अर्थो पर अमल नहीं किया गया। यह अवधारणा इस बात पर आधारित थी कि क्यों कोई अर्थव्यवस्था, राजकोषिय घाटे से निपटने के लिए कदम उठाना चाहती है। इस प्रश्न को समझने के लिए राजकोषीय घाटे की बनावट/संघटन का आकलन आवश्यक है।

सरकार के दो विस्तृत खर्च के भार में–राजस्व व्यय तथा पूंजी व्यय – निम्नलिखित व्यय की बनावट का सुझाव दिया गया है–

(i) अधिशेष राजस्व बजट अथवा शून्य राजस्व व्यय के साि राजकोषीय घाटा सबसे बेहतर संयोजन है तथा वित्तीय अभाव की नीति के लिए सबसे उपयुक्त है।

(ii) निम्न राजस्व व्यय तथा अधिक पूंजी व्यय के लिए घाटे की आवश्यकता इसके लिए दूसरा बेहतर विकल्प है बशर्ते राजस्व घाटे को शीघ्र ही मिटा दिया जाए।

(iii) एक अंतिम स्थिति ऐसी हो सकती है जब वित्तीय अभाव को कम करने की नीति का मुख्य भाग राजस्व व्यय की पूर्ति करता है तथा एक लघु भाग पूंजी

व्यय के लिए होता है। घाटे का पूरा पैसा राजस्व व्यय में जा सकता है जो इसका सबसे बदतर रूप हो सकता है।

भारत में घाटे की वित्त व्यवस्था के पीछे बेहतर कारण कम गैर योजनागत खर्च या उच्च योजनागत खर्च थे (हांलांकि भारत में पूंजीगत व्यय का विशिष्ट लक्षण रहा है जो इस गठजोड़ को घाटे की वित्तीय व्यवस्था का ऐसा प्रकार बना देता है जिसकी सलाह नहीं दी जाती)।

हालांकि विकासशील देशों की अर्व्यिवस्थाएं (भारत समेत) भारी से भारी राजकोषीय घाटे और घाटे की वित्तीय व्यवस्था का इस्तेमाल कर रही थीं लेकिन या तो वह पूंजी और गैर आय खर्चो के लिए माकूल घाटे को साध नहीं पाई या साधना नहीं चाहा।

7.19 राजकोषीय नीति

वित्तीय नीति का वास्तविक अर्थ महत्व तथा प्रभाव महामन्दी तथा द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान सामने आया। वित्तीय नीति सरकार की वह नीति है; जिसका संबन्ध सरकारी क्रय के स्तर , स्थानान्तरण के स्तर तथा कर संरचना से है – यह संभवतः वित्तीय नीति की सबसे बेहतर परिभाषा है जिसे विशेषज्ञों ने भी माना है। इसके उपरांत समष्टि अर्थव्यवस्था पर राजकोषीय नीति के प्रभाव का बेहतर तरीके से विश्लेषण किया गया। चूंकि इस नीति का अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव होता है इसलिए इस नीति की परिभाषा उस नीति के रूप में दी जाती है जो सरकारी खर्च तथा कर को संचालित करता है तथा आर्थिक गतिविधियों (जिसे संख्यात्मक रूप में सकल घरेलू उत्पाद से दर्शाया जाता है) को उत्प्रेरित करता है। जे0 एम0 केन्स पहले अर्थशास्त्री थे जिन्होंने राजकोषीय नीति तथा आर्थिक निष्पादन को जोड़ने वाले सिद्धांत का विकास किया।

राजकोषीय नीति को एक अन्य तरीके से भी परिभाषित किया जा सकता है। यह सरकारी व्यय तथा करों में किया जाने वाला बदलाव है जिसका लक्ष्य समष्टि अर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करना है (जैसे विकास, रोजगार, निवेश इत्यादि) इसलिए हम यह कह सकते हैं कि राजकोषीय नीति कर तथा सरकारी व्यय के उपयोग को दर्शाता है

कर तथा सरकारी व्यय संपूर्ण अर्थव्यवस्था को किस तरह प्रभावित करती है। इसकी चर्चा नीचे की गई है। पहले हम कर तथा अर्थव्यवस्था पर उसके प्रभाव की चर्चा करेंगें–

(i) कर का लोगों की आय, उनकी क्रय शक्ति, उपभोग तथा परिणामस्वरूप उनके जीवन स्तर पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।

(ii) कर का व्यक्तियों, परिवारों तथा कंपनियों की बचत पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है जिससे अर्थव्यवस्था में निवेश प्रभावित होता है –निवेश से सकल घरेलू उत्पाद प्रभावित होता हैं जिसका असर प्रति व्यक्ति आय पर पड़ता है।

(iii) कर का वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्य पर भी प्रभाव पड़ता है, क्योंकि उनका उत्पादन मूल्य प्रभावित होता है।

सरकारी व्यय का अर्थव्यवस्था पर प्रभाव निम्नलिखित दो रूपों में पड़ता हैः–

(i) वस्तुओं एवं सेवाओं को यदि सरकार द्वारा खरीदा जाए तो उन पर भी कुछ व्यय होता है जैसे सड़कों, रेलवे तथा बन्दरगाह का निर्माण, खाद्यान्न की

खरीद (वस्तुओं के वर्ग में)तथा सरकारी कर्मचारियों को वेतन का भुगतान (सेवाओं के वर्ग में)।

(ii) सरकार द्वारा गरीबों, बेरोजगारों व वृद्ध व्यक्तियों को सहायता प्रदान करने में भी कुछ व्यय खर्च होता है, जिसे सरकारी **अंतरण भुगतान** कहते हैं।

7.20 सारांश

वर्तमान समय में हीनार्थ–प्रबन्धन को वित्तीय संसाधनों के महत्वपूर्ण अंग के रूप में माना जाता है। 20 वीं शताब्दी के शुरू में हीनार्थ–प्रबन्धन को अच्दा नहीं माना जाता था, क्योंकि राष्ट्रों द्वारा सन्तुलित या बचत का बजट बनाया जाता था, परन्तु सन् 1930 की विश्वव्यापी मन्दी में प्रो0 कीन्स ने हीनार्थ प्रबन्धन को एक महत्वपूर्ण राजकोषीय उपाय के रूप में अपनाने पर जोर दियां वर्तमान समय में विकास और युद्ध दोनों की परिस्थितियों में वित्त व्यवस्था की दृष्टि से हीनार्थ–प्रबन्धन एक उपयोगी और महत्वपूर्ण उपकरण बन गया है।

इस इकाई में हमने हीनार्थ– प्रबन्धन, राजस्व घाटा, पूँजी घाटा, राजकोषीय घाटा, प्राथमिक घाटा, मौद्रिक घाटा, घाटे का वित्त पोषण के साधनों व राजकोषीय नीति का वर्णन किया गया है।

7.21 शब्दावली

राजस्व घाटा–सरकारी बजट के राजस्व खाते की कुल व्यय की कुल आय पर आधिक्य। (RD)

पूँजी घाटा– पूँजी की कमी अथवा विरलता। (CD)

राजकोषीय घाटा– सरकारी कुल प्राप्ति तथा कुल ब्याज का नकारात्मक सन्तुलन।(FD)

प्राथमिक घाटा– वित्तीय घाटे में से एक वर्ष की ब्याज देनदारियां घटाकर बचा अवशेष। (PD)

मौद्रिक घाटा– राजकोषीय घाटे का वह भाग जिसकी आपूर्ति सरकार को RBI द्वारा की जाती है।(MD)

महामंदी– विश्वव्याप्त महामन्दी सन् 1929 से 1935 तक ।

लोक नीति– जिसमें कुछ सार्वजनिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कराधान, सार्वजनिक व्यय ओर सार्वजनिक ऋण का आरोपण किया जाता है।

RBI- रिजर्व बैंक ऑफ इन्डिया।

GDP-सकल घरेलू उत्पाद।

7.22 बोध प्रश्न

क रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1– हीनार्थ प्रबन्धन मुद्रा–स्फीति को......................हैं।

2– हीनार्थ प्रबन्धन से बलात् बचतें..................हैं।

3– निश्चित सीमा के अन्दर अपनाया गया हीनार्थ– प्रबन्धन देश के ....के लिए सहायक है।

4– सुरक्षित सीमा के बाद हीनार्थ प्रबन्धन देश में .... प्रवृतियों को जन्म देता है।

5– हीनार्थ प्रबन्धन का अभिप्राय अतिरिक्त .... से है।

ख निम्नांकित सत्य हैं अथवा असत्य?

1– आधुनिक समय में हीनार्थ प्रबन्धन आर्थिक विकास का एक सहायक है।

2– हीनार्थ प्रबन्धन में मुद्रा–स्फीति की दर बढ़ती है।

3– हीनार्थ प्रबन्धन देश के आर्थिक विकास के लिए किसी भी सीमा तक करना लाभदायक रहता है।

4– आधुनिक समय में युद्ध के वित्त पोषण के लिए हीनार्थ–प्रबन्धन किया जाता है।

5– हीनार्थ प्रबन्धन सदैव हानिकारक नहीं होता।

ग सही विकल्प चुनिए

1– घाटे के वित्त से मुद्रा आपूर्ति–

(अ) बढ़ती है (ब) घटती है

(स) अप्रभावित रहती है (द) अनिश्चित रहती है।

2– घाटे का वित्त उत्पन्न करता है–

(अ) मन्द (ब) मुद्रा स्फीति

(स) उपर्युक्त दोनों (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं।

3– घाटे के वित्त से भुगतान सन्तुलन–

(अ) प्रतिकुल होता है (ब) अनुकूल होता है

(स) अप्रभावित रहती है (द) अनिश्चित रहती है।

4– घाटे के वित्त का सम्बन्ध है–

(अ) राजस्व घाटे से (ब) पूंजी घाटे से

(स) उपर्युक्त दोनों (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं।

5– केन्द्रीय सरकार के बजट में किस वर्ष से बजटरी घाटे की धारणा की प्रासंगिकता समाप्त हो गई है–

(अ) 1991–92 (ब) 1995–96

(स) 1997–98 (द) 2000–01।

6– प्राथमिक घाटे की गणना के लिए राजकोषीय घाटे में क्या समायोजन होता है?

(अ) ब्याज भुगतान जोड़ना (ब) ब्याज भुगतान घटाान

(स) ब्याज एवं ऋण भुगतान जोड़ना (द) ब्याज एवं ऋण भुगतान घटाना।

7– निम्न में सी कौन दशा हीनार्थ प्रबन्धन का मुख्य उद्देश्य नहीं बनती?

(अ) समृद्धि काल (ब) मन्दी काल

(स) युद्ध काल (द) आर्थिक विकास।

8– राजस्व आगम एवं राजस्व व्यय का अन्तर प्रदर्शित करता है?

(अ) राजस्व घाटा (ब) राजकोषीय घाटा

(स) प्राथमिक घाटा (द) बजटरी घाटा।

9– सरकार की कुल प्राप्ति पर कुल व्यय का आधिक्य स्पष्ट करता है?

(अ) मौद्रिकृत घाटा (ब) राजस्व घाटा

(स) राजकोषीय घाटा (द) बजटरी घाटा।

10– केन्द्र सरकार के लिए भारतीय रिजर्व बैंक की शुद्ध साख में होने वाली वृद्धि को कहा जाता है?

(अ) प्राथमिक घाटा (ब) आगम घाटा
(स) पूंजीगत घाटा (द) ।मौद्रिकृत घाटा।

7.23 बोध प्रश्नों के उत्तर

क

1. बढ़ाता, 2. बढ़ाता, 3. आर्थिक विकास, 4. स्फीतिक, 5. मुद्रा सृजन।)

ख

1. सत्य, 2.सत्य, 3. अस्त्य, 4. सत्य, 5. सत्य।

ग

1. (अ) 2.(ब), 3. (अ), 4. (स) 5. (स), 6. (ब), 7. (अ), 8. (अ), 9. (द), 10. (द)।

7.24 स्वपरख प्रश्न

1. हीनार्थ प्रबन्धन के औचित्य पर प्रकाश डालिए। इसको किस प्रकार कम किया जा सकता है?
2. घाटे की वित्त व्यवस्था का अर्थ समझाइए और इसके प्रभावों का वर्णन कीजिए।
3. हीनार्थ प्रबन्धन की विभिन्न धारणाओं को स्पष्ट कीजिए तथा उन्हें उचित उदाहरण समझाइये।
4. घाटे की वित्त व्यवस्था की परिभाषा दीजिए। भारत जैसे आर्थिक रूप से अल्पविकसित देश में किन–किन दशाओं में घाटे की वित्त व्यवस्था उपयुक्त होती है?

7.25 सन्दर्भ पुस्तकें

1. **भाटिया, एच0 एल0,** लोक वित्त विकास पब्लिशिंग हाउस लि0, नोएडा।
2. **थावराज, एम0जे0के0,** फायनेन्सियल एडमिनिस्ट्रेशन आफ इन्डिया, सुल्तान चंद एवं संस, नई दिल्ली।
3. **बर्मन, किरण,** 1978 इंडियोज पब्लिक डेट् एंड पालिसी सिंस इंडिपेंडेंस, चुघ पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
4. **त्रिपाठी, आर0 एन0 व राम त्रिपाठी;** पब्लिक फाइनेन्स एण्ड इकोनॉमिक डेवलपमेंट इन इण्डिया, मिततल पबिलकेशन्स, दिल्ली।

इकाई 8 केन्द्रीय बजट –2016–17(समीक्षात्मक अध्ययन)

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 बजट का रेखांकित दृष्टिकोण व आर्थिक पृष्ठभूमि
8.3 चुनौतीपूर्ण बजट प्रतिबन्ध
8.4 नौ स्तम्भ तकनीक
8.4.1 कृषि तथा कृषक कल्याण
8.4.2 ग्रामीण क्षेत्र
8.4.3 समाजिक क्षेत्र (स्वास्थ्य सहित)
8.4.4 शिक्षा कौशल तथा रोजगार सृजन
8.4.5 अधोसंरचना तथा निवेश
8.4.6 वित्तीय क्षेत्र सम्बन्धी सुधार
8.4.7 प्रशासन तथा व्यपार करने की सुगमता
8.4.8 राजकोषीय अनुशासन
8.4.9 कर सुधार
8.5 बजट–एक झलक में
8.6 समीक्षात्मक विश्लेषण
8.7 सारांश
8.8 शब्दावली
8.9 बोध प्रश्न
8.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
8.11 स्वपरख प्रश्न
8.12 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- केन्द्रीय बजट 2016–17 के रेखांकित दृष्टिकोण की व्याख्या कर सके।
- आर्थिक पृष्ठभूमि व चुनौतीपूर्ण बजट प्रतिबन्ध की व्याख्या करने एवं समीक्षात्मक विश्लेषण में सक्षम हो सके।

8.1 प्रस्तावना

बजट एक समष्टिगत राजकोषीय अस्त्र हैं। इसका अर्थशास्त्र मे मूल योगदान दोहरा होता है, जहां कुल सार्वजनिक व्यय एक ओर अर्थव्यवस्था में मांग में वृद्धि (व्यय की वृद्धि के कारण) के स्रोत के रूप मे कार्य करता है, वहीं दूसरी ओर इसके वित्तीयन का तरीका अर्थव्यवस्था में समष्टिगत आर्थिक स्थिरता को प्रभावित कर सकता है। बजट के द्वारा जहां एक ओर सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के द्वारा सरकार घरेलू तथा बाहरी समग्र मांग में कमी के कारण मन्दी की स्थिति से गुजर रही अर्थव्यवस्था को राहत देने की कोशिश करती है, वहीं दूसरी ओर मांग में वृद्धि अर्थव्यवस्था में निवेश, रोजगार तथा उत्पादन उत्प्रेरित करेगी। सरकार बजट के द्वारा अर्थव्यवस्था में निवेश को उत्प्रेरित करती है। एक ऐसी स्थिति मे जबकि

समग्र माग का बाहरी भाग या बाहरी मांग कमजोर हो वित्तमंत्री ने आर्थिक संबृद्धि की प्रक्रिया में मन्दी को रोकने के लिए "घरेलू मांग" के उत्प्रेरण का रास्ता चुना। इस दृष्टि को रेखांकित करते हुए वित्त मंत्री ने 29 फरवरी को 2016–17 का तीसरा संघीय बजट प्रस्तुत किया।

इस इकाई में हम वित्तमंत्री द्वारा पार्लियामेंट में प्रस्तुत केन्द्रीय बजट 2016–17 का अध्ययन तथा विश्लेषण निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत करेगें ।

8.2 बजट का रेखांकित दृष्टिकोण व आर्थिक पृष्ठभूमि

केन्द्रीय बजट 2016–17 का रेखांकित दृष्टिकोण व आर्थिक पृष्ठभूमि निम्नवत् हैः

1 **बजट का रेखांकित दृष्टिकोण** यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक वृद्धि की गति मन्द नहीं हो हमें घरेलू मांग पर विश्वास करना चाहिए। ऐसी स्थिति में जबकि विदेशी मांग अत्यन्त ही कमजोर हो जैसा लगातार 15 महीनों से गिरते हुए निर्यात से प्रदर्शित है, घरेलू मांग को, समग्र व्यय से विशेष रूप से, सार्वजनिक व्यय की वृद्धि से बढ़ाना आवश्यक है।

2 **आर्थिक पृष्ठभूमि जिसने बजेटरी चिंतन को प्रभावित किया–**

(i) ग्लोबल आर्थिक वृद्धि दर जो 2014 वित्तीय वर्ष में 3.4 प्रतिशत थी 2015 में घटकर 3.1 प्रतिशत रह गयी। ग्लोबल व्यापार में अत्यधिक संकोचन तथा वित्तीय बाजार में तीव्र आघात की स्थिति रही, फिर भी वर्तमान सरकार की नीतियों तथा अर्थव्यवस्था की अन्तनिर्हित शक्ति के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था दृढ़ता के साथ बनी रहीं।

(ii) आर्थिक वृद्धि दर 7.6 प्रतिशत तब जबकि ग्लोबल निर्यात वृद्धि दर 4.4 प्रतिशत ही रही, जबकि यू0पी0ए0 सरकार की अन्तिम वर्षों की अवधि में यह वृद्धि दर 7.6 प्रतिशत रही।

(iii) सी0पी0आई0 स्फीति 5.4 प्रतिशत रही जबकि यू0पी0ए0 सरकार की अन्तिम तीन वर्ष की अवधि मे इसकी दर 9.4 प्रतिशत थी।

(iv) वर्षा में कमी सामान्य से 13 प्रतिशत रहीं।

(v) च ालू खाता घाटा इस समय 14.4 बिलियन डालर जिसके इस वर्ष के अन्त में जी डी पी के 1.4 प्रतिशत होने की उम्मीद है।

(vi) विदेशी विनिमय कोष 350 विलियन डालर।

भारतीय अर्थव्यवस्था की आर्थिक स्थिति तथा प्रगति की समीक्षा करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने भारतीय अर्थव्यवस्था मन्द पड़ती हुयी ग्लोबल अर्थव्यवस्था के बीच एक चमकते स्थान के रूप में प्रशंसा कीं । वर्ल्ड एकोनामिक फोरम ने यहां तक कहा कि भारतीय आर्थिक संवृद्धि दर असामान्य रूप से ऊँची है।

8.3 चुनौतीपूर्ण बजट प्रतिबन्ध

वैश्विक मन्दी, गिरते हुए वैश्विक निर्यात तथा इसके साथ निराशजनक रूप से गिरते हुए भारतीय निर्यात की चुनौतियों के अलावा जिनकी चर्चा हम लोगों ने ऊपर की, वित्तमंत्री बजट के प्रारम्भ में ही कुछ अन्य चुनौतियों की बात करते हैं, जो राजकोषीय अवसर को संकुचित करते हैं, ये हैं–

(क) चौदहवें वित्त आयोग की सिफारिशों के फलस्वरूप कर से प्राप्त कुल राजस्व में से अब केन्द्र को 58 प्रतिशत प्राप्त होगा, जो इसके पूर्व 68 प्रतिशत था, जबकि 2015–16 के दौरान बिना इसको दृष्टि में रखे हुए, राजस्व उत्प्लवता के सन्दर्भ में बजेटेड सार्वजनिक व्यय के अनुपात में सुधार आया है।

(ख) सातवें वेतन आयोग की संस्तुतियों को लागू करने का प्रतिबन्ध।

(ग) रक्षा क संबंघ में OROP लागू करने के कारण प्रतिबन्ध।

(घ) कृषि क्षेत्र, ग्रामीण क्षेत्र तथा अवस्थापना क्षेत्र का विकास तथा बैंकों के सम्बन्ध में पुर्नपूंजीकरण में वृद्धि सरकार की वर्तमान प्राथमिकतायें है, जिनके लिए भारी मात्रा में सरकारी व्यय की आवश्यकता होगी।

(ड) वित्तमंत्री के अनुसार वर्तमान में चल रहे सामाजिक क्षेत्रीय कार्यक्रमों पर भारी मात्रा में होने वाले व्ययों के अलावा, सरकार ने चालू वर्ष में तीन बहुत बड़ी स्कीमों का शुरू करने का निर्णय लिया है, जो निश्चित रूप से बजेटरी प्रक्रिया में फिजिकल स्पेस में कमी लायेगी। वित्तमंत्री के अनुसार प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना की घोषणा पहले ही की जा चुकी है जिसका उद्देश्य प्रकृति के प्रकोपों से किसानों को सुरक्षा प्रदान करना है। एक स्वास्थ्य बीमा योजना जो भारतीय जनसंख्या के एक तिहाई को हास्पिटलाइजेशन (अस्पताल में भर्ती) व्ययों से प्रतिरक्षित करने से सम्बंधित है, की घोषण भी की जा चुकी है। इस के अलावा सरकार ने एक और उज्जवला नामक नई स्कीम शुरू करने का निर्णय लिया है जिसमे अनुसार प्रत्येक बी0पी0एल0 परिवार को रसोई गैस कनेक्शन, जिसमें सरकार सब्सिडी देगी, सुनिश्चित किया जायेगा।

8.4 नौ स्तम्भ तकनीक

वित्तमंत्री अगले वर्ष में अर्थव्यवस्था को रूपान्तरित करने के सम्बन्ध में बजट की व्याख्या नौ स्पष्ट स्तम्भों के अन्तर्गत करने की बात करते हैं, वित्तमंत्री के बजट प्रस्ताव की व्याख्या तथा विश्लेषण इन्हीं स्तम्भों के अन्तर्गत किया जा सकता हैं, ये नौ स्तम्भ हैं–

8.4.1 कृषि तथा कृषक कल्याण

प्रमुख रूप से यह महसूस करते हुए कि किसान अर्थव्यवस्था में खाद्यान्न सुरक्षा के मेरूदण्ड हैं, किसानों को अनिश्चितता की सोच से बाहर निकालने के लिए सरकार ने कृषि तथा गैर कृषि क्षेत्र में हस्तक्षेप का निर्णय लिया है, जिससे 2022 तक कृषकों की आय दोगुनी हो जाये। बजट में कृषक कल्याण के संबंध में रू0 35984 करोड़ आबंटित है।

(i) **सिंचाई तथा प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना को** और मजबूत किया गया और इसके अन्तर्गत 28.5 लाख हेक्टेयर भूमि सिंचाई में लायी जायेगी, AIBP में तेजी से प्रगति की जायेगी और इसके अन्तर्गत 80.6 लाख हेक्टेयर भूमि सिंचाई के अन्तर्गत आयेगी। AIBP के अन्तर्गत चल रही 89 परियोजनाओं में से 23 को 31 मार्च, 2017 तक पूरा कर लिया जायेगा जिन पर 17000 करोड़ रूपया आबंटित हैं, आने वाले पांच वर्षों में इन पर 86500 करोड़ रूपया व्यय होगा।

(ii) **दीर्घकालीन सिंचाई कोष (लांगटर्म इरीगेशन फंड)** को नाबार्ड के अर्न्तत स्थापित किया जायेगा जिसकी शुरूआती मात्रा (व्यय) 20000 करोड़ रूपया होगी 2016–17 में बजेटरी सहायता तथा बाजार उधारी से 12517 करोड़ की व्यवस्था की गयी है।

60000 रूपये के व्यय से जमीनी जल संसाधन के पोषणीय प्रबन्धन का कार्यक्रम तैयार किया गया है।

(iii) **मृदा स्वास्थ्य कार्ड स्कीम** (स्वायल हेल्थ कार्ड स्कीम) इस समय क्रियान्वयन में हैं । इसके द्वारा किसान अपनी भूमि की पोषणीयता के स्तर के संबंध में जानकारी प्राप्त करते हैं तथा उसके अनुसार उवर्रकों का न्यायोचित प्रयोग कर सकते हैं। मार्च 2017 तक सभी 14 करोड़ जोतों को इसके द्वारा कवर करने का लक्ष्य हैं। बजट में नेशनल प्रोजेक्ट आन स्वायल हेल्थ एण्ड प्रोडक्टविटी के संबंध में 368 करोड़ रूपया आबंटित किया गया है।

(iv) **आर्गेनिक फार्मिंग**– आर्गेनिक फार्मिंग को प्रात्साहित करने के लिए सरकार ने दो महत्वपूर्ण स्कीमें चालू की हैं–**स्थायी कृषि विकास योजना** दूसरी **आर्गेनिक वैल्यू चेन डेवेलपमेंट नार्थ ईस्ट रीजन** जिसका उद्देश्य इन क्षेत्रों में उत्पादित आर्गेनिक उत्पादों के लिए निर्यात बाजार में अधिक मूल्य सुनिश्चित कराना है।

(v) **दालों को राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (NFSM) में सम्मिलित कर लिया गया है। जिसके अन्तर्गत दालों के उत्पादन को प्रोत्साहित करने** के लिए 500 करोड़ रूपया आबंटित किया गया हैं NFSM के अन्तर्गत अब 622 जिलों को सम्मिलित कर लिया गया है।

कृषकों की आय में वृद्धि के संबंध में बाजार पहुंच के महत्व को महसूस करते हुए सरकार **एकीकृत कृषि विपणन योजना** (यूनीफाइड एग्रीकल्चरल मार्केटिंग स्कीम) को जिसके साथ e–मार्केट प्लेटफार्म अन्तनिर्हित है, 585 नियमित थोक बाजार में क्रियान्वित कर रही हैं । राज्यों को ए0पी0एम0सी अधिनियम में संशोधन इसके साथ जुड़ने की आवश्यक दशा हैं उल्लेखनीय है कि 12 राज्यों ने इसमें संशोधन कर दिया है और इससे जुड़ने के लिए तैयार हैं। इस प्लेटफार्म को 14 अप्रैल 2016 को बाबा साहेब अम्बेडकर की जन्मतिथि पर राष्ट्र को समर्पित किया गया।

(vi) **प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (PMGSY)** जिसे फिर से चालू किया गया तथा जिसके संबंध में 2012–13 तथा 2013–14 में क्रमशः 8885 करोड़ रूपया तथा 9805 करोड़ रूपया आबंटित किया गया, 2016–17 के लिए वित्तमंत्री ने 19000 करोड़ रूपया आबंटित किया हैं । इसमें राज्य सरकारों के हिस्से को जोड़ने के बाद इस पर कुल व्यय योग्य राशि 27000 करोड़ रूपया आती है। इसमें अवशिष्ट अर्ह 65000 घरों को 2.33 लाख किलोमीटर सड़क के निर्माण के द्वारा जोड़ने का लक्ष्य है जिसे पूर्व निर्धारित 2021 समय सीमा के पहले 2019 में प्राप्त कर लिया जाएगा।

(vii) **ऋण व्यवस्था**– इस बात पर बल दिया जायेगा कि किसानों को समय पर उचित मात्रा में ऋण मुहैया हो सके। 2016 –17 के लिए किसानों को दिए जाने वाले ऋण का लक्ष्य 9 लाख करोड़ रूपया रखा गया है जो कि 2015–16 में 8.5 लाख करोड़ रूपया थां ब्याज माफी स्कीम के तहत 2016–17 बजट में 15000 करोड़ रूपये की व्यवस्था की गयी है।

सरकार ने प्रंधानमंत्री फसल बीमा योजना स्वीकृत कर दी है । बजट 2016–17 में इस स्कीम के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए 55000 करोड़ रूपये आबंटित किये गये है।

(viii) **न्यूनतम समर्थित मूल्य** (MSP) की व्यवस्था से देश के सभी भाग के किसानों को लाभान्वित करने के लिए 2016–17 मे बजट में इस दिशा में तीन विशिष्ट व्यवस्थायें की गयी हैं– प्रथम बचे हुए राज्यों को विकेन्द्रीकृत वसूली प्रणाली को स्वीकार करने के लिए प्रोत्साहित किया जायेगा, दूसरा एफ0सी0आई0 के माध्यम से आन लाइन क्रय प्रणाली शुरू की जायेगी तथा तीसरा दालों के क्रय के लिए प्रभावी व्यवस्था अपनायी जायेगी।

(ix) **पशुधन तथा डेयरी विकास**– यह दृष्टि में रखते हुए कि कृषि से सम्बद्ध क्रियायें कृषक की आय में वृद्धि लाती हैं वित्तमंत्री ने पशुधन तथा डेयरी विकास को अधिक आय अर्जक करने के लिए चार नयी परियोजनाओं की घोषणा की– पहली पशुधन संजीवनी जो पशुओं के स्वास्थ्य से सम्बन्धित होगी जिसके अन्तर्गत पशु स्वास्थ्य कार्ड **(नकुल स्वास्थ्य पत्र)** निर्गत होगा, **दूसरा उन्नत प्रजनन टेक्नालजी** तीसरा **e– पशुधन हाट** की स्थापना तथा चौथा **घरेलू प्रजाति के लिए नेशनल जेनेटिक सेन्टर** की व्यवस्था इन चारों परियोजनाओं की 5 वर्षों की लागत करोड़ 8500 करोड़ रूपया होगी।

8.4.2 ग्रामीण क्षेत्र

बजट में यह घोषणा की गयी कि सरकार 14 वें वित्त आयोग की संस्तुतियों के अनुपालन में 2.87 लाख करोड़ रूपया ग्रान्ट इन एड रूप में दिया जायेगा। ग्राम पंचायतों को दी जाने वाली राशि में पिछले पांच वर्षों की तुलना में 228 प्रतिशत की वृद्धि हुयी। औसतन प्रत्येक ग्राम पंचायत को 80 लाख रूपया तथा नगरी स्थानीय निकाय को 21 करोड़ रूपया प्राप्त होगा।

MANREGA पर 2016–17 बजट में 38500 करोड़ रूपया आबंटित किया गया है।

श्यामा प्रसाद मुखर्जी अरबन मिशन के अन्तर्गत जिसे हाल में ही शुरू किया गया 300 अरबन क्लस्टर्स तैयार किए जायेंगें।

मई 01, 2018 तक देश के सभी गाँवों तक बिजली पहुंचाने के लक्ष्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से **दीन दयाल उपाध्याय ग्राम ज्योति योजना के तहत 8500 करोड़ रूपया आबंटित किया गया है।**

स्वच्छ भारत अभियान पर 9000 करोड़ रूपया आबंटित हैं उल्लेखनीय है कि स्वच्छ भारत अभियान एक केन्द्र समर्थित योजना है। इसमें प्राप्त सफलता की गति को बनाये रखने के लिए सरकार ने उन गांवों को जिन्होंने खुले में शौच से 100 प्रतिशत की मुक्ति प्राप्त कर ली है, पुरस्कृत करने की नीति अपनायी है।

सरकार ने **ग्रामीण भारत में डिजिटल साक्षरता क विस्तार के लिए दो मिशन नेशनल डिजिटल लिटरेसी मिशन तथा डिजिटल साक्षरता अभियान** चालू किए थे बजट 2016–17 के दौरान वित्तमंत्री ने एक नये मिशन डिजिटल लिटरेसी मिशन स्कीम फार रूरल इन्डिया की घोषणा की है, जो आगामी तीन वर्षो में लगभग 6 करोड़ अतिरिक्त परिवारों को लाभान्वित करेगी।

नेशनल लैंड रिकार्ड माडेरनाइजेशन प्रोग्राम को डिजिटल इन्डिया इनीशियेटिव के अन्तर्गत नवीकृत किया गया। **इसका कियान्वयन एक केन्द्रीय योजना के रूप में 1 अप्रैल 2016 से किया जायेगा। इसके लिए बजट में आबंटित 150 करोड़ रूपया है।**

राष्ट्रीय ग्राम स्वराज अभियान एक नयी पुर्नसंरचित स्कीम शुरू की गयी है जिसके लिए 2016–17 बजट में 655 करोड़ रूपये की व्यवस्था की गयी है जिसका उद्देश्य पोषणीय विकास के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पंचायत राज संस्थाओं को प्रशासनिक योग्यता विकसित करने के संबंध में प्रशिक्षित करना है।

सम्पूर्ण ग्रामीण विकास के लिए बजट 2016–17 बजट के लिए 87765 करोड़ रूपया आबंटित किया गया है।

8.4.3 समाजिक क्षेत्र (स्वास्थ्य सहित)

बजट में सामाजिक क्षेत्र जिसमें स्वास्थ्य सुरक्षा सम्मिलित निम्न प्रावधान किये गये हैः (i)**एल0पी0जी0 कनेक्शन–** वित्त मंत्री ने यह घोषणा की है कि गरीब परिवारों को परिवार के स्त्री सदस्य के नाम एल पी जी कनेक्शन देने की व्यवस्था होगीं यह सुविधा एक करोड़ 50 लाख बीपीएल परिवारों को मुहैया करायी जायेगी जिसकी शुरूआती लागत को पूरा करने के लिए इस वर्ष के लए बजट में 2000 करोड़ रूपया आबंटित किया जायेगा। यह स्कीम दो और वर्ष तक चलायी जायेगी।

सरकार ने एक नयी स्वास्थ्य सुरक्षा स्कीम चालू करने का निर्णय लिया है जो प्रत्येक गरीब परिवार को एक लाख रूपये की स्वास्थ्य सुरक्षा मुहैया करायेगी, वरिष्ठ नागरिकों को जिनकी आयु 60 वर्ष से अधिक है, 30000 रूपया का एक अतिरिक्त पैकेज मुहैया कराया जायेगा।

प्रधानमंत्री जन औषधि योजना के अन्तर्गत जिससे लोगों को वहनीय मूल्य पर मुहैया करने के उद्देश्य से सरकार द्वारा 2016–17 को दौरान 3000 दुकानें खोली जायेंगी।

नेशनल हेल्थ मिशन (NRHM) के अन्तर्गत सरकार ने नेशनल डायलसिस सर्विस प्रोग्राम शुरू करने का निर्णय लिया है जो सभी जिला अस्पतालों में उपलब्ध होगा इस कार्यक्रम की फंडिंग पी पी पी माडल के तहत होगी सरकार डायलसिस के कुछ पार्टस को बेसिक कस्टम ड्यूटी, उत्पाद शुल्क, सी वी डी तथा सैड (SAD) से मुक्त करने का निर्णय लिया है।

स्टैंड अप इण्डिया प्रोग्राम के तहत, अनुसूचित जाति तथा जनजाति तथा महिला साहसियों को प्रोत्साहित करने के लिए 560 करोड़ रूपया आबंटित किया गया है।

नेशनल सेडयूल्डकास्ट एण्ड सेंडयूल्ड ट्राइब हब की स्थापना MSME मंत्रालय के अन्तर्गत की जायेगी जो अनूसूचित तथा अनुसूचित जनजाति के साहसियों को व्यावसयिक सहायता मुहैया करायेगा।

8.4.4 शिक्षा कौशल तथा रोजगार सृजन

आने वाले दो वर्षों में ऐसे जिलों में जहां नवोदय विद्यालय नहीं हैं, 62 नये नवोदय विद्यालय खोले जायेंगे तथा सर्वशिक्षा अभियान के तहत अधिक संसाधनों का आबंटन किया जायेगा।

हायर ऐजूकेशन फाइनेसिंग एजेन्सी (HEFA) स्थापित की जायेगी जिसके मूल पूंजी 1000 करोड़ रूपया होगीं HEFA एक ऐसा संगठन होगा जो लाभ के लिए कार्य नहीं करेगा यह बाजार से अपनी पूंजी उगाही करेगा तथा कमी को दान तथा सी एस आर फंड से पूरा करेगा। इन फंडों का प्रयोग शीर्ष शैक्षगिक संस्थाओं की अधोसंरचना की फंडिंग में प्रयुक्त होगा।

कौशल विकास

प्रधान मंत्री कौशल विकास योजना (PMKVY) के लिए 1700 करोड़ आबंटित, जिसके अन्तर्गत पूरे देश में 1500 मल्टीस्किल ट्रेनिंग इन्स्टीट्यूटस खोले जायेंगे जिसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र में दरवाजे तक साहसी सम्बन्धी कौशल पहुंचाया जा सके।

रोजगार सृजन

नये रोजगार सृजन को प्रोत्साहित करने के लिए वित्तमंत्री ने यह घोषणा की कि नये नियुक्तों के सम्बन्ध में कर्मचारी पेंशन स्कीम (EPFO) में 8.33 प्रतिशत अंशदान को तीन वर्षों तक सरकार जमा करेगी, इसके तहत 1000 करोड़ रूपये आबंटित किए गये हैं।

जुलाई 2015 में **ए नेशनल केरियर सर्विस शुरू** की गयी जिसके अन्तर्गत 35 मिलियन रोजगार चाहने वालों ने पंजीकृत कराया हैं सरकार ने 2016–17 में 100 ऐसे माडल केरियर सेन्टर खोलने का निर्णय लिया है।

सरकार ने यह निर्णय लिया है कि वह शीघ्र ही माडल शाप एण्ड इस्टेब्लिसेंट बिल लायेगी जो राज्यों के लिए ऐच्छिक होगा जो छोटा तथा मध्य आकार की दुकानों को 7 दिन तक खोलने से सम्बन्धित होगा जैसा शापिंग माल्स के सम्बन्ध में पाया जाता है। इसके कारण और रिटेल शाप खुल सकती हैं तथा रोजगार सृजन में वृद्धि हो सकती है।

8.4.5 अवसंरचना तथा निवेश

यह महसूस करते हुए कि भारत के रूपान्तरण में अधोसंरचना क्षेत्र की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होगी, वित्तमंत्री ने इस क्षेत्र के विकास पर विशेष बल दिया इससे सम्बन्धित मुख्य बिन्दु इस प्रकार है–

(i) बजट में सड़क तथा राष्ट्रीय राजमार्ग के लिए रूपया 55000 करोड़ आबंटित, इसके अलावा NHAI बांड से 15000 करोड़ रूपया उगाही करेगा। इस प्रकार इसमें PMGSY सम्मिलित करने के बाद सड़क के निर्माण पर निवेश 2016–17 में रूपया 97000 करोड़ होगा। रेलवे पर होने वाले पूंजीगत व्यय को इसमें सम्मिलित कर लेने पर निवेश की कुल मात्रा 218000 करोड़ रूपया आयेगी । ऐसी आशा की जाती हे वर्ष 2016–17 के दौरान 10000 किलोमीटर राजमार्ग की अनुमति होगी।

2016–17 वर्ष में अवसंरचना क्षेत्र पर कुल व्यय 221246 करोड़ रूपया होगा।

वित्तमंत्री ने बजट भाषण में इसका उल्लेख किया कि सागर माला परियोजना पूरी हो चुकी है। सरकार देश के दोनों ही पूर्वी तथा पश्चिमी तट पर नयी ग्रीनफील्ड पोर्टस विकसित करने जा रही है। राष्ट्रीय जल मार्ग तथा इन परियोजनाओं के लिए बजट 2016–17 में रूपया 800 करोड़ आबंटित किया गया है।

पावर सेक्टर– दीर्घकाल मे पावर उत्पादन में स्थिरता तथा विविधीकरण लाने को दृष्टि में रखते हुए सरकार न्यूक्लियर एनर्जी विकसित करने के लिए 15–20 वर्ष की व्यापक योजना बना रही हैं इसके लिए 3000 करोड़ रूपया वार्षिक रूप से बजट से व्यवस्था होगी तथा साथ ही सार्वजनिक निवेश किया जायेगा।

अवसंरचना के विकास के लिए NHAI, DFC, REC, IRDA, NABARD तथा इनलैंड वाटर अथारिटी को 2016–17 का दौरान बांड के माध्यम से 31000 करोड़ रूपया अतिरिक्त फण्ड उगाही की अनुमति दी जायेगी।

PPP माडल को अधिक प्रभावी बनाने के लिए बजट में तीन प्रयास शुरू किये गये हैं–

(क) 2016–17 के दौरान पब्लिक युटिलिटी (रिजाल्युशन एण्ड डिसप्यूट) बिल लाया जाएगा जिसका उद्देश्य अवसंरचना निर्माण **PPP** तथा जनउपयोगी संविदाओं से विवादों के निपटाने से सम्बन्धी व्यवस्था करना होगा।

(ख) PPP कनसेशन एग्रीमेंट को फिर से चालू करने के सम्बन्ध में निर्देश जारी किए जायेंगें ऐसा करते समय ऐसे प्रसंविदाओं के दीर्घकालीन स्वभाव तथा वास्तविक अर्थव्यवस्था में उत्पन्न होने वाली अनिश्चितओं को दृष्टि में रखा जायेगा पर इनकी पारदर्शिता के साथ कोई समझौता नहीं होगा।

(ग) अवसंरचना परियोजनाओं के विशेष सन्दर्भ में नयी क्रेडिट रेटिंग प्रणाली विकसित की जायेगी।

प्रत्यक्ष विदेशी नीति में अनेक सुधारों की घोषणा की गयी जो मुख्यतयः बीमा तथा पेंशन क्षेत्र, एआरसी, स्टाक एक्सचेंज आदि से सम्बन्धित थे। वित्तमंत्री ने डयूटी ड्रा बैंक स्कीम का और अधिक फैलाव किया जिससे इसमें और अधिक वस्तुओं (उत्पादों) तथा देशों को सम्मिलित किया जा सके । वित्तमंत्री ने इसकी भी घोषणा की कि आगे से एफआईपी बी रूट से खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में 100 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति होगीं इसके परिणामस्वरूप कृषक लाभन्वित होंगें, खाद्य प्रसंस्करण उद्योग प्रोत्साहित होगा तथा अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त रोजगार सृजित होगा।

सरकार ने जैसी बजट में घोषणा की गयी, सार्वजनिक क्षेत्रीय उद्यमों जिसमें विनिवेश था स्ट्रैटजिक सेल सम्मिलित है, में सरकारी निवेश के प्रबन्धन के लिए एक नयी नीति अनुमोदित की। **सरकार केन्द्रीय उद्यमों(सीपीएसई) को उनकी निजी सम्पत्तियों जैसे भूमि विनिर्माण इकाइयां आदि को बेचने** को प्रोत्साहित करेगी जिससे ये नये प्रोजेक्ट में संसाधन लगा सकें।

सरकार ने यह निर्णय लिया है कि डिपार्टमेंट ऑफ डिसइन्वेस्टमेंट को फिर से **डिपार्टमेंट ऑफ डिसइन्वेसटमेंट एण्ड पब्लिक असेट मैनेजमेंट (DPAM)के नाम से जाना जायेगां** उल्लेखनीय है कि 1996 मे जीबी रामकृष्ण की अध्यक्षता में प्रथम विनिवेश आयोग गठित किया गया, जिसे समाप्त करके अरूण जेटली की अध्यक्षता मे सबसे पहले विनिवेश विभाग स्थापित किया गया।

8.4.6 वित्तीय क्षेत्रीय सम्बन्धी सुधार

यह महसूस करते हुए कि एक प्रभावी तथा प्रवैगिक वित्तीय क्षेत्र प्रत्येक अर्थव्यवस्था की आर्थिक वृद्धि के लिए एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है, वित्तमंत्री ने वित्तीय क्षेत्र के सुधार के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण घेषणायें की–

(i) 2016–17 के दौरान **कोड आन रिजाल्युशन ऑफ फाइनेन्सियल फर्मस बिल** के रूप में पार्लियामेंट में पेश किया जायेगा। यह बैंक, बीमा कम्पनियों तथा वित्तीय क्षेत्र की इकाइयों के दिवालियापन सम्बन्धी समस्याओं के समाधान के लिए विशिष्ट मेकेनिज्म प्रस्तुत करेगा।

(ii) **आर बी आई ऐक्ट 1934 में संशोधन के बाद मानेटरी पालिसी फ्रेमवर्क एण्ड मानेटरी पालिसी कमेटी** के लिए आधार तैयार किया जायेगा, जिसके लिए 2016–17 के दौरान पार्लियामेंट में बिल पेश किया जायेगा।

(iii) **FSDC के तत्वाधान में फाइनेन्सियल डेटा मैनेजमेंट सेन्टर** की स्थापना।

(iv) सरकारी प्रतिभूतियों में अधिक फुटकर भागीदारी में वृद्धि लाना।

(v) सेबी द्वारा कामोडिटी डेरिवेटि्क्स मार्केट में नया डेरिवेटिव प्राडक्ट विकसित करना।

(vi) बैंकिग प्रणाली की कार्यप्रणाली में सुधार लाने के लिए वित्तमंत्री ने सार्वजनिक बैंकों के नवीकृत की बात की। इस दिशा में इन्द्रधनुष का कियान्वयन हो रहा हैं । इस समय बैंकिग प्रणाली की प्रमुख समस्या (स्ट्रेस असेट्स) की है जिसके सम्बन्ध में अनेक कदम उठाये गये है। **2016–17 के दौरान सरकार ने सार्वजनिक बैंकों के पुर्नपूंजीकरण के सम्बन्ध में 25000 करोड़ रूपया आबंटित किया है। सरकार ने यह भी निर्णय लिया है कि सरकार सार्वजनिक बैंकों में अपनी अंशधारिता को 50 प्रतिशत से कम लाने पर विचाार करेगी।**

(vii) **प्रधानमंत्री मुद्रा योजना (PMMY) के अन्तर्गत** वित्तमंत्री ने 2016–17 के दौरान ऋण के दिए जाने वाले लक्ष्य को 180000 करोड़ रूपये रखा है।

सरकार ने अगले तीन वर्षो में डाकघरों में एटीएम तथा माइक्रो एटीएम फैलाने का निर्णय लिया है।

8.4..7 प्रशासन तथा व्यवसाय करने की सुगमता

न्यूनतम सरकार तथा अधिकतम प्रशासन को लक्ष्य में रखते हुए सरकार ने अनेक कदमो की घोषणा बजट 2016–17 में की । ये हैं–

(i) विभिन्न मंत्रलाओं में मानव संसाधनों के विवेकीकरण के उद्देश्य से एक कार्यदल का गठन किया गया है।

(ii) सरकार ने वित्तीय तथा अन्य सब्सिडीज को लक्षित व्यक्ति तक पहुंचाने को सुनिश्चित करने के लिए **टारगेटेड डेलिवरी ऑफ फाइनेन्सियल एण्ड अदर सबिसडीज बेनफिट्स एण्ड सर्विसेज वाई यूजिंग द आधार फ्रेमवर्क** बजट सत्र में पेश कीं सरकार ने यह भी निर्णय लिया है कि परीक्षण के तौर पर एलपीजी के ही तर्ज पर उर्वरक के भी सम्बन्ध में डीबीटी प्रयोग में लाया जायेगा।

(iii) ''व्यवसाय में सहूलियत'' में आने वाली कठिनाइयों तथा अवरोधों को दूर करने के लए सरकार 2016 –17 बजट में ही कम्पनी अधिनियम 2013 में संशोधन संबंधी बिल लायेगी। बिल में स्टार्ट्स अप को और अधिक सहायता पहुंचाने के लिए व्यवस्था की जायेगी।

(iv) सरकार न्यूनतम समर्थ मूल्य पर कय के द्वारा तथा बाजार मूल्य पर मुख्य स्थिरीकरण कोष के द्वारा दालों का बफर स्टाक सृजित करेर्गी। बाजार हस्तक्षेप की सहायता के लिए 900 करोड़ रूपये व्यय का एक फण्ड बनाया गया है।

8.4.8 राजकोषीय अनुशासन

(i) **2015–16 के लिए संशोधित राजकोषीय घाटाा जीडीपी का 3.9 प्रतिशत रहा तथा 2016–17 में अनुमानित राजकोषीय घाटा जीडीपी का 3.5 प्रतिशत होगा।**

(ii) 2016–17 वर्ष के लिए अनुमानित कुल सार्वजनिक व्यय 19.78 लाख करोड़ (योजनागत व्यय 5.50 लाख करोड़ रूपया गैर योजनागत व्यय 14.28 लाख करोड़ रूपया) चालू वर्ष में बजट योजनागत व्यय में 15.3 प्रतिशत की वृद्धि।

(iii) राज्यों को 2016–17 में हस्तान्तरण 99681 करोड़ रूपया था, जो 2015–16 में हस्तान्नतरण से अधिक रही।

(iv) वित्तमंत्री ने यह घोषणा की कि 2017–18 से योजनागत तथा गैर योजनागत वर्गीकरण समाप्त कर दिया जायेगा तथा आगे वर्गीकरण राजस्व व्यय तथा पूंजीगत व्यय के रूप में होगां

(v) 2015–16 के लिए संशोधित राजस्व घाटा जीडी पी का 2.5 प्रतिशत रहा जबकि बजट अनुमान के अनुसार 2.8 प्रतिशत था। 2016–17 के लिए अनुमानित राजस्व घाटा जी डी पी का 2.3 प्रतिशत होगा।

(vi) वित्तमंत्री ने FRBM की समीक्षा के लिए विशेष रूप अनिश्चताओं तथा उग्रताओं के सन्दर्भ में एक विशेष समिति के गठन का प्रस्ताव रखा।

(vii) वित्तमंत्री ने यह स्पष्ठ किया कि 1500 केन्द्रीय योजना स्कीमों के विवेकीकरण के बाद उन्हें 300 केन्द्रीय क्षेत्रीय तथा 30 केन्द्र समर्थित स्कीमों में लाया गया है। इसके कारण अतिक्रमिक व्ययों में कमी होगी।

(viii) पं0 दीन दयाल उपाध्याय की 100 वीं तथा गुरूगोविन्द सिंह की 350 बीं जन्मतिथि को मनाने के लए प्रत्येक के लिए 100 करोड़ रूपया आबंटित किया गया है।

8.4.9 कर सुधार

(i) वित्तमंत्री के अनुसार बजट में प्रस्तावित कर सुधारों को निम्नांकित नौ वर्गो में रखा जा सकता है–

(1) छोटे कर दाताओं को कर राहत।

(2) रोजगार तथा आर्थिक वृद्धि को प्रोत्साहित करने वाले उपाय।

(3) मेक इन इण्डिया की सहायता के लिए घरेलू मूल्य वर्धन को प्रोत्साहक देना।

(4) पेंशन समाज की ओर बढ़ना।

(5) वहनीय आवास प्रवर्तित करने वाले उपाय।

(6) कृर्षि, गामीण अर्थव्यवस्था तथा स्वच्छ पर्यावरण के लिए अतिरिक्त संसाधनों का गतिशीलन

(7) मुकदमेबाजी में कमी लाना तथा करारोपण में निश्चितता सुनिश्चित करना।

(8) करारोपण तथा कर ढांचे का सरलीकरण तथा विवेकीकरण।

(9) जवाबदेही के सृजन के लिए टेक्नोलाजी का प्रयोग।

(ii) 87 A के तहत दी जाने वाली राहत को रू0 2000 से बढ़ाकर रू0 5000 कर दिया गया है, इस प्रकार अब 5 लाख रूपये से कम अर्जित करने वाले लोगों को जहां पहले 2000 रूपया आयकर राहत थी, अब वह 5000 रूपया होगीं। अर्थात

(iii) ऐसे लोगों के सम्बन्ध में जिनका कोई अपना मकान नहीं है तथा जिन्हें नियोक्ता से कोई मकान किराया भत्ता नहीं प्राप्त होता उनके लिए किराया भत्ता

के रूप में अनुमन्य कटौती को 24000 रूपये से बढ़ाकर 60000 रूपये प्रतिवर्ष कर दिया गया है।

(iv) 44 AD के अन्तर्गत दी गयी परिकल्पित कर स्कीम जो ऐसे गैर निगमीय व्यापारियों क लिए अनुमन्य रही जिनकी सकल बिक्री एक करोड़ रूपये थी, के संबंघ में सकल बिक्री सीमा को एक करोड़ रूपये से बढ़ाकर दो करोड़ रूपया कर दिया गया है। उल्लेखनीय है कि इसके तहत सकल बिक्री के 8 प्रतिशत की राशि के कर देय आय के रूप में लिया जाता है, इसमें से कोई और देय अनुमन्य नहीं होता है।

वित्तमंत्री ने इस स्कीम का विस्तार करते हुए यह कहा कि ऐसे प्रोफेसनल्स के संबंध में जिनकी वार्षिक सकल प्रतियां 50 लाख रूपये से कम हो, वे इसके 50 प्रतिशत को परिकल्पित लाभ के रूप में ले सकते हैं।

कर राहत, आर्थिक वृद्धि तथा रोजगार सृजन

(v) पिछले बजट में वित्तमंत्री नेय यह घोषणा की थी कि निगम कर को क्रमिक रूप से 30 प्रतिशत से घटाकर 25 प्रतिशत लाया जायेगा तथा निगमों को इस संबंध में दी जाने वाली कर छूटें तथा सब्सिडीज समाप्त कर दी जायेगी। 2016–17 बजट में राहतों को क्रमिक रूप से घटााने के संबंध में योजना दी गयी है।

निगम कर के सम्बन्ध में बजट में निम्नांकित दो व्यवस्थायें दी गयी हैं–

(क) 1.3.2016 के बाद से समामेलित नयी विनिर्माण से जुड़ी कम्पनियों को यह विकल्प होगा कि वे (25 प्रतिशत +अधिभार+उपकार) के साथ करारोपित हो पर वे लाभ से जुड़ी या निवेश से जुड़ी छूट या कटौती नहीं लें, या पुरानी व्यवस्था क अन्तर्गत करारोपित हों।

(ख) अगले वित्तीय वर्ष से ऐसी छोटी कम्पनियों जिनकी बिक्री (टर्नओवर) 2015 वित्तीय वर्ष में 5 करोड़ रूपये से कम हो, उन पर निगम कर की दर (29 प्रतिशत +अधिभार+उपकार) होगी।

(vi) ″स्टार्ट्स अप″ की रोजगार सृजन की क्षमता को ध्यान में रखते हुए वित्तमंत्री ने यह व्यवस्था दी कि अप्रैल 2016–19 मार्च के बीच पहले 5 वर्षों में से प्रथम 3 वर्ष का लाभ करारोपित नहीं होगा पर उनके ऊपर मैट लागू होगा। यदि उनके द्वारा अर्जित पूंजी लाभ नोटीफाइड फण्ड में निवेशित हो ता वह करारोपित नहीं होगा।

(vii) असूचीबद्ध कम्पनियों के संबंध में दीर्घकालीन पूंजीलाभ के संबध में लाभ प्राप्त करने की अवधि 3 वर्ष से बढ़ाकर 5 वर्ष कर दिया गया है।

(viii) वित्तमंत्री ने बजट में यह घोषणा की कि GAAR की व्यवस्थाएं 1.4.2017 से लागू होंगी।

(ix) दीन दयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल्य योजना तथा स्किल डेवेलपमेंट एण्ड आन्ट्रेप्रेन्योरशिप मंत्रालय द्वारा दी जाने वाली सेवाओं को सेवाकर से मुक्त करना ।

(x) निरामय हैल्थ इंशयोरेन्स स्कीम के अन्तर्गत आने वाली बीमा स्कीमों को सेवाकर से मुक्त करना तथा एकल प्रीमियम वार्षिकी बीमा पालिसीज पर सेवाकर को 3.5 प्रतिशत से घटाकर 1.4 प्रतिशत करना।

(xi) रिफ्रीजरेटेड कान्टेनर्स पर बेसिक कस्टम डयूटी को घटाकर 5 प्रतिशत तथा उत्पाद शुल्क को घटाकर 6 प्रतिशत करना।

(xii) **ब्रेली पेपर** पर बेसिक कस्टम **डयूटी घटाकर शून्य** करना।

(xiii) नेशनल पेंशन स्कीम (NPS) के सम्बन्ध में अवकाश प्राप्त के समय इससे 40 प्रतिशत निकासी को कर मुक्त करना अन्य प्रावीडेन्ट फण्ड जिसमें ई पी एफ भी शामिल है, के संबंध में 40 प्रतिशत की यह व्यवस्था 1.4.2016 के बाद के अंशदान के संबंध में लागू होगी । उल्लेखनीय है ई पी एफ से निकासी पर करारोपण की व्यवस्था वित्तमंत्री ने बजट में दी थी जिसे चौतरफा दबाव में वापिस लेना पड़ा।

(xiv) **हाउसिंग सेक्टर** को प्रोत्साहित करने के लिए वित्तमंत्री ने घोषणा की कि किसी फर्म का वह लाभ जो उसे चार मेट्रो शहरों में 30 वर्गमीटर फ्लैट तथा अन्य शहरों मे 60 वर्गमीटर फ्लैट मुहैया कराने से प्राप्त होगा, वह करारोपित नहीं होगा।

(xv) किसी भी स्कीम में पी पी पी माडल के अनतर्गत 60 वर्गमीटर पर बनाये गये आवासों के संबंध में होने वाली सेवाओं को सेवाकर से मुक्त रखा गया है।

(xvi) 10 लाख रूपये से एक वर्ष में अधिक लाभांश अर्जित करने वाली फर्म को सकल मूल्य पर 10 प्रतिशत की दर डिवीडेन्ड डिसट्रीब्यूशन टैक्स (**DDT**) देय होगा।

(xvii) कम्पनियों को छोड़कर अन्य लोगों द्वारा एक करोड़ रूपये से अधिक आय पर 15 प्रतिशत अधिभार देय होगा जो पहले 12 प्रतिशत था।

(xviii) 10 लाख से अधिक मूल्य वाली कार के क्रय पर तथा 2 लाख रूपये से अधिक नकद के द्वारा क्रय व्यवहार पर 1 प्रतिशत की दर से श्रोत पर कर देय होगा।

(xix) "आप्शन" के संबंध में सिक्योरिटीज ट्रैन्जेक्शन टैक्स (STT) की दर को 0. 17 प्रतिशत से बढ़ाकर 0.5 प्रतिशत कर दिया गया है।

(xx) कोई भी व्यक्ति या फर्म किसी ऐसी फर्म को जिसका भारत में स्थायी इस्टैब्लिसमेंट नहीं है, एक वर्ष में एक लाख रूपये से अधिक आन लाइन विज्ञापन व्यय देता है, सकल भुगतान राशि का वह 6 प्रतिशत कर के रूप में इक्वलाइजेशन लेवी के रूप में रोक लेगा, ऐसा B2B व्यवहार के ही संबंध मे लागू होगा।

(xxi) **सभी कर देय सेवाओं पर .5 प्रतिशत की दर से** कृर्षि कल्याण उपकर लागू होगा जो जून 2016 से प्रभावी होगा। इस भुगतान के लिए करदाता को इनपुट क्रेडिट प्राप्त होगी।

(xxii) पेट्रोल, एल पी जी, सी एन जी कार 1 प्रतिशत तथा कुछ निर्दिष्ट क्षमता की डीजल कार पर 2.5 प्रतिशत तथा और अधिक क्षमता की डीजल गाड़ियों तथा SUV पर 4 प्रतिशत की दर से अवसंरचना उपकर होगा।

(xxiii) अनेक तम्बाकू उत्पाद पर, बीड़ी को छोड़कर 10 से 15 प्रतिशत की उत्पाद शुल्क में वृद्धि।

(xxiv) **क्लीन एनर्जी सेस को क्लीन एनवायरमेंट सेस कहा जायेगा जो कोल, लिगनाइट तथा पीट पर लागू होगा जिसकी दर को 200 रूपया प्रति टन से बढ़ाकर 400 रूपया प्रति टन कर दिया गया है।**

(xxv) 1000 रूपये से अधिक मूल्य के ब्रैन्डेट रेडीमेंट गार्मेन्टे पर 2 प्रतिशत बिना इनपुट के तथा 12.5 प्रतिशत इनपुट क्रेडिट के साथ उत्पाद शुल्क देय होगा।

(xvi) **इनकम डिसक्लोजर स्कीम (जून 1 से सितम्बर 30, 2016)** – वित्तमंत्री ने इस स्कीम की घोषणा अघोषित आय या ब्लैकमनी को बाहर लेने के लिए किया। इसके अन्तर्गत कोई भी व्यक्ति 30 प्रतिशत कर दर 7.5 प्रतिशत पेनाल्टी जिसे वित्तमंत्री ने कृषि कल्याण अधिभार कहा अर्थात कुल 45 प्रतिशत देकर अपनी अघोषित आय घोषित कर सकता है, इसके सम्बन्ध में कोई जांच नहीं होगी ओर न ही इसे दण्डनीय अपराध माना जायेगा।

(xvii) **डिस्पयूट रिजाल्यूशन स्कीम (DRS)**– कर संबंधी मुकदमों में कमी तथा जल्दी समाधान लाने के उद्देश्य से वित्तमंत्री ने DRS की घोषणा कीं। कोई भी अपने चल रहे मुकदमों को डिस्पयूट कर तथा कर निर्धारण के समय तक उस पर ब्याज देकर मुकदमा खत्म कर सकता है। इसके साथ कोई पेनाल्टी नहीं देय होगीं यदि कोई मुकदमा पेनाल्टी के संबंध में चल रहा है तो पेनाल्टी राशि का 25 प्रतिशत देकर मुकदमा खत्म किया जा सकता है।

(xviii) वित्तमंत्री ने यह सपष्ट किया कि जैसा पिछली बजट में कहा गया है किसी स्थिति मे नयी पूर्वगामी प्रभाव से कर दायित्व सृजित नहीं होगा। इसके संबंध में शीघ्र एक विशेषज्ञ समिति गठित की जायेगी जो विभिन्न अधिनियमों में परिवर्तन के संबंध में सुझाव देगी जिससे करों के पूर्वगामी प्रभाव को समाप्त करने में उत्पन्न कठिनाइयों को दूर किया जा सकें वित्तमंत्री ने यह भी कहा कि यदि इस सन्दर्भ में कोई मुकदमा फिलहाल न्यायालय में चल रहा हो तो घोषित "डिस्पयूट रिजाल्यूशन" की एक बरगी स्कीम के अन्तर्गत, केवल कर बकाया देकर (बिना पेनाल्टी तथा ब्याज के) समाप्त किया जा सकता है।

वित्तमंत्री ने पेनाल्टी को अधिक सरल तथा वहनीय बनाने के लिए एक नया पेनाल्टी ढांचा घोषित किया जिसके अनुसार आय की सही मात्रा से कम मात्रा घोषित करने की स्थिति में पेनाल्टी की दर 50 प्रतिशत तथा तथ्यों के छिपाने तथा गलत रिपोर्टिंग की स्थिति में इसकी दर 200 प्रतिशत होगी, जबकि पहले यह 100 प्रतिशत से 300 प्रतिशत तक था। वित्तमंत्री के अनुसार पेनाल्टी तथा बयाज को खत्म करने के संबंध में वह एक वर्ष के भीतर तय किया जायेगा। वितमत्री ने कर प्रक्रिया के सरलीकरण के निए अनेक अन्य व्यवस्थाओं की धोषणा कीं।

वित्तमंत्री ने यह स्पष्ट किया कि बजट में दिए गये उनके प्रत्यक्ष कर प्रसतावों के कारण 1060 करोड़ रूपये की राजस्व हानि होगी जबकि परोक्ष कर प्रस्तावों से 20670 करोड़ रूपये प्रत्याशित प्राप्ति होगी। इस प्रकार सभी कर प्रस्तावों के कारण निवल प्राप्ति 19610 करोड़ रूपये की होगी।

8.5 बजट–एक झलक में

बजट के समीक्षात्मक अध्ययन के पूर्व हम सबसे पहले आपके अवलोकनार्थ एक झलक में प्रस्तुत कर रहे हैं–

बजट का सार (करोड़ में)

क्रम0 सं0		2014–15 वास्तविक	2015–16 बजट अनुमान	2015–16 संशोधित अनुमान	2016–17 बजट अनुमान
1	**राजस्व प्राप्तियां**	**1101472**	**1141575**	**1206084**	**1377022**
2	कर राजस्व(केन्द्र को निवल)	903615	919842	947508	1054101
3	कर–भिन्न राजस्व	197857	221733	258576	322921
4	**पूंजी प्राप्तिया**	**562201**	**635902**	**579307**	**601038**
5	ऋणों की वसूली	13738	10753	18905	10634
6	अन्य प्राप्तियां	37737	69500	25312	56500
7	उधार और अन्य देयताएं	510725	555649	535090	533904
8	**कुल प्राप्तियां**	**1663673**	**1777477**	**1785391**	**1978060**
9	**आयोजना भिन्न व्यय**	**1201029**	**1312200**	**1308194**	**1428050**
10	राजस्व खाते पर जिसमें से	1109394	1206027	1212669	1327408
11	ब्याज भुगतान	402444	456145	442620	492670
12	पूंजी खाते पर	91635	106173	95525	100642
13	**आयोजना व्यय**	**462644**	**465277**	**477197**	**550010**
14	राजस्व खाते पर	357597	330020	335004	403628
15	पूंजी खाते पर	105047	135257	142193	146382
16	कुल व्यय	1663673	1777477	1785391	1978060
17	राजस्व व्यय	1466992	1536047	1547673	1731037
18	जिसमें, पूंजी परिसंपत्तियों क सृजन हेतु अनुदान	130760	132472	132004	166840
19	पूंजी व्यय	196681	241430	237778	247023
20	राजस्व घाटा	365519 (2.9)	394472 (2.8)	341589 (2.5)	354015 (2.3)
21	प्रभावी राजस्व	234759 (1.9)	268000 (2.0)	209585 (1.5)	187175 (1.2)
22	राजकोषीय घाटा	510725 (4.1)	555649 (3.9)	565090 (3.9)	533904 (3.5)

23	प्राथमिक घाटा	108281 (0.9)	99504 (0.7)	92469 (0.7)	41234 (0.3)

टिप्पणी– 2016–17 के लिए प्रक्षेपित जी डी पी रू0 15065010 करड़ो रूपये रही, जो सी एस ओ द्वारा 2015–16 के प्रत्याशित जी डी पी रू0 13567192 करोड़ रूपये पर 11 प्रतिशत वृद्धि दर्शाती है।

राजकोषीय पथ चित्र

कुछ महत्वपूर्ण तथ्य जी0 डी0 पी0, %

	2015–16 (संशोधित)	**2016–17(बजट)**	**2017–18**	**2017–18**
राजकोषीय घाटा	3.9	3.5	3.0	3.0
राजस्व घाटा	2.5	2.3	1.8	1.3
कर जी डी पी अनुपात	10.8	10.8	10.9	11.1
बकाया दायित्व (वर्ष के अन्त में)	47.6	47.1	46.8	44.4

केन्द्र सरकार की राजस्व प्राप्तियां

करोड़ रूपये में

	2014–15	**2015–16(संशोधित)**	**2016–17**
कर राजस्व	**1244885**	**1459611**	**1630888**
निगम कर	428925	452969	493923
आय पर कर	265733	327367	353173
सम्पत्ति कर	1066	–	–
सीमा शुल्क	188016	208336	230000
उत्पाद शुल्क	189952	229809	318669
सेवा कर	1877969	209774	231000
सार्वजनिक व्यय			
गैर योजन व्यय	**1201029**	**1308194**	**1428050**
ब्याज भुगतान	402444	442620	492670
रक्षा व्यय	218694	424636	249099
सब्सिडीज़	258258	257801	250433
राज्य सरकारों को ग्राँट	77125	108233	118356
पेंशन	93611	95731	123368
पुलिस	47467	52681	59796

8.6 समीक्षात्मक विश्लेषण

ग्लोबल आर्थिक माहौल बहुत अधिक खराब था, विश्व आर्थिक संवृद्धि दर जो 2014–15 में 3.4 प्रतिशत रही 2015–16 में घट कर 3.1 प्रतिशत रह गयी, भारत के लगभग सभी व्यापार में भागीदार देशों की अर्थव्यवस्था मन्दी की स्थिति से गुजर रहीं, इसीलिए पिछले 16 महीनों में भारतीय निर्यात मे ऋणात्मक वृद्धि दर देखी गयी, फिलहाल तो भारतीय अर्थव्यवस्था सुदृढ़ आधार वाली लग रही है, जैसा वित्तमंत्री ने कहा भी, पर ग्लोबल आर्थिक मंदी की स्थिति में थोड़ी और वृद्धि के भारतीय अर्थव्यवस्था में उग्रता लाने वाले प्रभाव वित्तमंत्री को ज्यादा परेशान कर रहे थे, इसीलिए ग्लोबल स्तर पर कमजोर मांग की पूर्ति के लिए उन्होंने घरेलू मांग के विस्तार का सहारा लिया। घरेलू स्तर पर पिछले दो वर्षो से कृर्षि क्षेत्र सूखे से जूझ रहा था तथा उसी के साथ विनिर्माण क्षेत्र में भी रेंग रहा था। यद्यपि सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर 7 प्रतिशत से ऊपर, इधर के वर्षों में बहुत प्रभावी रही है यद्यपि लोगों की सामान्य रूप से धारणा रही है जैसा रघुराम राजन ने भी उठाया कि इस उंची दर को पुष्ट करने वाले धनात्मक संकेत अर्थव्यवस्था से मिलते नहीं तथा यह भी मानते हैं कि इतनी अच्छी आर्थिक वृद्धि दर के बावजूद भी अर्थव्यवस्था बहुत ही डवांडोल अवस्था में है और छोटा आघात भी अर्थव्यवस्था को नीचे ढकेल देगा, ऐसी स्थिति में वित्तमंत्री के सामने दो विकल्प थे– विस्तारक वित्तीय नीति जिससे समग्र मांग मे वृद्धि हो भले ही राजकोषीय घाटा जी डी पी के प्रतिशत के रूप में बढ़ जाए,दूसरा रास्ता राजकोषीय समेकन का था। प्रसंशनीय है कि विस्तारक प्रत्यागम के बावजूद भी जैसा बजट मे कृषि, ग्रामीण क्षेत्र, सामाजिक क्षेत्र तथा अवसंरचना पर बहुत अधिक मात्रा में बजट आबंटन से स्पष्ट होता है और यह आवश्यक भी था, वित्तमंत्री ने राजकोषीय समेकन के उद्देश्य तथा प्रत्यागम को वरीयता दी । केन्द्रीय बजट के कुछ गुणात्मक पहलू प्रशंसनीय है। ग्रामीण क्षेत्र तथा अवसंरचना क्षेत्र में विशेष रूप से सड़कों के निर्माण में निवेश में वृद्धि और यह आशा करना कि ये निवेश श्रम गहन होंगें, आवश्यक रूप से उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि लायेगी, वित्तमंत्री का राजकोषीय घाटे को जी डी पी के 3.5 प्रतिशत तक सीमित रखना, वह भी पिछली बजट में संशोधित अनुमान से योजनागत व्यय के 15 प्रतिशत की वृद्धि के साथ निश्चित रूप से प्रसंशनीय है। पर आकलन में वित्तमंत्री द्वारा सार्वजनिक व्यय के अल्पानुमान तथा राजस्व प्राप्तियों के अधि अनुमान की आशंका आधारहीन नहीं है। वित्तमंत्री ने मोद्रिक जी डी पी के 11 प्रतिशत से बढ़ने की मान्यता पर राजस्व में 11.7 प्रतिशत की वृद्धि की आशा की हैं यह उचित मान्यता है पर 2016–17 के लिए विनिवेश से 56500 करोड़ रूपये की संकल्पना जब कि पिछले वर्ष की प्राप्ति 25300 करोड़ रूपये ही रही, बहुत अधिक महत्वाकांक्षी लगती हैं 2015–16 की पृष्ठभूमि में स्पेक्ट्रम विक्रय से 99000 करोड़ रूपये प्राप्ति की प्रतयाशा, बहुत अधिक हैं पर यह एक बात का धनात्मक संकेत अवश्य देती है जो अधिक राजनेतिक है, वह यह है कि वित्तमंत्री राजकोषीय समेकन के संबंध में बहुत अधिक संवेदनशील हैं। वित्तमंत्री ने जैसा हम लोग जगह जगह पर स्पष्ट कर चुके हैं, अनेक प्रयास किए हैं जैसे स्टार्टसअप को दिए गये प्रोत्साहक, कृषि तथा सिचाई को बढाने के लिए 36000 करोड़ रूपये का आबंटन , 87765 करोड़ रूप्ये का ग्रामीण क्षेत्र पर आबंटन (35500 करोड़ रूपये केवल मनरेगा पर आबंटन बीपीएल परिवारों के लिए शुरू की गयी कुछ योजनाएं आदि जिससे अर्थव्यवस्था

में उत्पादन, रोजगार तथा ही समग्र मांग में वृद्धि हो, पर बजट में अर्थव्यवसथा में निवेश माहोल में सुधार के लिए, क्योंकि इधर हाल में निजी क्षेत्र के निवेश में कमी आयी है, प्रयास नहीं किए गये हैं। मध्यम आय वर्गीय लोगों के लिए आयकर में कोई राहत नहीं दी गयी जैसा वे आशा करते थे, वैसे इसके लिए गुंजाइश नहीं थी पर प्रभावी सेवाकर में वृद्धि निश्चित रूप से उपभोग वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि लायेगी। **पर वित्तमंत्री की यह घोषणा कि सरकार कृषि आय को पांच वर्षो में दुगुना कर देगी , एक स्वप्न तथा राजनेतिक जुमला से अधिक नहीं लगता क्योंकि इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कृर्षि क्षेत्र में 12 प्रतिशत से 14 प्रतिशत की वार्षिक दर चाहिए।** पर हमारा यह आशय नहीं है कि बजट आर्थिक विकास में सहायक नहीं सिद्ध होगी। कृषि क्षेत्र तथा ग्रामीण क्षेत्र पर बहुत अधिक मात्रा में आबंटन न केवल कृषि क्षेत्र के उत्पादन को प्रोत्साहित करेगा बल्कि साथ ही मांग में वृद्धि के द्वारा विनिर्माण क्षेत्र में भी निवेश तथा उत्पादन को प्रोत्साहित करेगा। अधोसंरचना पर भारी मात्रा में व्यय, निजी क्षेत्र के निवेशों को आकृष्ट करेगा पर इसे अलावा बजट में निजी निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए कुछ भी प्रयास नहीं किया गया है। आर्थिक विकास को गति देने के लए आर्थिक सुधारों को गति देने की आवश्कता हैं जी एस टी का लागू होना, इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण कदम होगा।

8.7 सारांश

वर्तमान सरकार की यह तीसरा बजट है जिसे वित्तमंत्री अरूण जेटली ने सदन में प्रस्तुत किया। यदि आप पहली दो बजटों की निरन्तरता में तीसरी बजट का अवलोकन करे तो आप पायेंगें कि इस बजट में सरकार की सोच तथा प्रत्यागम में स्पष्ट भिन्नता हैं विकासधूत तो यहां तक कहते हैं कि वित्तमंत्री ने रास्ते को ही परिवर्तित करने का प्रयास किया है जिससे सरकार की छवि को ऊपर उठाया जा सके, पर यदि आप दाहिनी लेन में गाड़ी चला रहे हों तो बायीं लेन में मुड़ने के लिए तेज मोड़ लेना होगा। सम्भवतः ऐसा नहीं वित्तमंत्री की सोच ओर उनके आर्थिक दर्शन में कोई बदलाव नहीं आया है, घरेलू तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिबन्धों ने उन्हें दूसरे रास्ते पर चलने के लिए बाध्य किया है। वित्तमंत्री द्वारा लिया गया नया रास्ता वर्तमान घरेलू तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश में जहां आवश्यकता अर्थव्यवस्था को रेशेसन से बाहर निकालना हो या उससे सम्भावित खतरे से प्रतिरक्षित करना हो, अधिक उचित तथा सही प्रतीत होता है, उन्होंने अपनी बजट को मांग सृजन को दृष्टि में रखकर तैयार किया। वे स्वयं सवेकार करते हैं इसे सुनिश्चित करने के लिए आर्थिक वृद्धि में धीमापन नहीं आये हमें घरेलू मांग पर निर्भर करना होगा। इसीलिए हम यह देख सकते हैं कि बजट में चाहे गरीबों के पक्ष में बल हो या चाहे सामाजिक क्षेत्र तथा ग्रामीण क्षेत्र पर भारी मात्रा मे बल हो या बजेटरी आबंटन में अवसंरचना विकास की ओर बहुत अधिक झुकाव हो सभी अन्तिम रूप में घरेलू मांग को मजबूत बनायेंगें।

8.8 शब्दावली

MSP –नयूनतम समर्थित मूल्य

DISHA: नेशनल डिज़ीटल लिटरेसी मिशन तथा डिज़िटल साक्षरता अभियान

NHAI : नेशनल हाईवे अथारिटी ऑफ इण्डिया

NHM : नेशनल हेल्थ मिशन

GST: गुड्स एण्ड सर्विस टैक्स

8.9 बोध प्रश्न

सही विकल्प चुनिए

1— सी0पी0 आई0 स्फीति की दी है:

(अ) 5.0 (ब) 6.0

(स) 5.4 (द) 7.0।

2— हायर एजूकेशन फाइनेंसिंग एजेन्सी की मूल पूँजी होगी —

(अ) 500 करोड़ (ब) 1000 करोड़

(स) 700 करोड़ (द) 1200 करोड़।

3— 2016—17 मेंअनुमानित राजकोषीय घाटा जी डी पी का होगा—

(अ) 3.5 प्रतिशत (ब) 3.0 प्रतिशत

(स) 4.0 प्रतिशत (द) 4.5 प्रतिशत ।

4— आर्गेनिक फार्मिंग हेतु कितनी योजनायें चालू की जायेगी —

(अ) एक (ब) तीन

(स) चार (स) दो।

5— मोदी सरकार का यह कौन सा बजट है—

(अ) प्रथम (ब) द्वितीय

(स) तृतीय (स) चतुर्थ।

8.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (स) 2. (ब) 3. (अ) 4. (द) 5. (स)।

8.11 स्वपरख प्रश्न

1. केन्द्रीय बजट 2016—17 का समीक्षात्मक अध्ययन कीजिए।
2. कर सुधारों का वर्णन कीजिए।
3. नौ स्तम्भ तकनीकों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

8.12 सन्दर्भ पुस्तकें

1. भाटिया, एच0 एल0, लोक वित्त विकास पब्लिशिंग हाउस लि0, नोएडा।
2. www.indiabudget.nic.in
3. www.finmin.nic.in

इकाई 9 संघीय वित्त (Federal Finance)

इकाई की रुपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 एकक शासन व्यवस्था एवं संघीय शासन व्यवस्था में अन्तर
9.3 संघीय वित्त व्यवस्थाः आशय एवं अवधारणा
9.3.1 स्वतंत्रता से पूर्व संघीय वित्त
9.3.2 स्वतन्त्रता के पश्चात संघीय वित्त
9.4 संघीय वित्त व्यवस्था की विशेषताएं
9.5 संघीय वित्त के सिद्धान्त
9.6 संघ और राज्यों में मध्य सम्बन्ध
9.6.1 वैधानिक सम्बन्ध
9.6.2 प्रशासनिक सम्बन्ध
9.6.3 वित्तीय सम्बन्ध
9.7 केन्द्र राज्य वित्त संबंध
9.7.1 केंन्द्र सूची– प्रथम अनुसूची (केंद्रीय सरकार का आय स्रोत)
9.7.2 राज्य सूची– द्वितीय अनुसूची (राज्य सरकार का आय स्रोत)
9.8 वित्त आयोग के कार्यकरण
9.8.1 वित्त आयोग के गठन की प्रक्रिया
9.8.2 वित्त आयोग के कार्य
9.8.3 वित्त आयोग का महत्त्व
9.9 भारत के विभिन्न वित्त आयोगों का कार्यकाल
9.10 राज्य वित्त आयोग
9.10.1 राज्य वित्त आयोग के कार्य
9.10.2 राज्य वित्त आयोग द्वारा अनुदानित विभिन्न क्षेत्र
9.11 स्थानीय शासन व्यवस्था
9.11.1 प्राचीन विचार
9.11.2 आधुनिक विचार
9.11.3 स्थानीय संस्थाओं के रूप
9.12 स्थानीय सत्ताओं वित्त व्यवस्था
9.13 स्थानीय वित्त के सिद्धान्त
9.14 स्थानीय वित्त की समस्याएँ
9.15 सारांश
9.16 शब्दावली
9.17 बोध प्रश्न
9.18 बोध प्रश्नों के उत्तर
9.19 स्वपरख प्रश्न
9.20 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- संघीय शासन व्यवस्था से अवगत हो जायेंगे एवं एकक शासन व्यवस्था तथा संघीय शासन व्यवस्था में स्पष्ट अंतर जान सके।
- राजकोषीय संघवाद की अवधारणा से परिचित होकर उसकी विशेषतायें तथा संघीय वित्त के सिद्धान्तों से परिचित हो सके।
- केन्द्र तथा राज्यों के मध्य संबंध के आलोक में वित्तीय संबंधों को समझ सके।
- वित्त आयोग के कार्यकरण, गठन की प्रक्रिया, आयोग के सदस्यों की योग्यता व पात्रता से अवगत हो सके।
- स्थानीय सरकारों की वित्त व्यवस्था, सिद्धान्त तथा समस्याओं का ज्ञान भी प्राप्त कर सके।

9.1 प्रस्तावना

राज्यों का संघ भारत एक लोकतांत्रिक राष्ट्र है जिसमें संसदीय प्रणाली की सरकार है। 26 जनवरी 1950 से लागू संविधान की व्यवस्थाओं से अनुशासित यह राष्ट्र एकात्मक और संघात्मक दोनों की विशेषताओं से युक्त है। भारत के राष्ट्रपति संघ की कार्यपालिका के संवैधानिक प्रमुख होते हैं। संविधान में विधायी शक्तियाँ संसद और विधान सभाओं में विभाजित की गयी हैं। न्याय पालिका, भारत के नियंत्रक एवं महा लेखा परीक्षक, लोक सेवा आयोग तथा मुख्य निर्वाचन आयोग की स्वायत्ता एंव स्वतंत्रता बनाये रखने के प्रावधान संविधान में वर्णित है।

भारत में 29 राज्य तथा 7 केन्द्र शासित प्रदेश हैं तथा संविधान के सम्पूर्ण भारत के लिये एक समान नागरिकता की व्यवस्था की गयी है।

संविधान में राज्य में नीति.निदेशक सिद्धान्त भी वर्णित किये गये हैं। यद्यपि इन्हें न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराया जा सकता तथापि ये राष्ट्र के प्रशासन का मूल आधार हैं और सरकार का यह कर्तव्य है कि वह कानून बनाते समय इन सिद्धान्तों का पालन करे क्योंकि ये सिद्धान्त नीति निदेशक हैं।

राष्ट्र के आर्थिक-सामाजिक पर्यावरण को जनता के अनुकूल बनाये रखने में इस सिद्धान्तों की प्रमुख भूमिका है। सरकार को अपनी नीति इस प्रकार से लागू करना चाहिये कि समाज के भौतिक संसाधनों पर अधिकार और इस पर नियंत्रण का लोगों के बीच इस प्रकार से वितरित हो कि वह समाज के सभी लोगों के कल्याण के लिये उपयोगी सिद्ध हो तथा यह सुनिश्चित हो कि आर्थिक व्यवस्था को लागू करने के परिणाम स्वरूप जन साधारण के हितों के विरूद्ध धन और उत्पादन के साधन कुछ ही लोगों के हाथों में केन्द्रित न हो जाये।

किसी भी देश में शासन व्यवस्था दो प्रकार की हो सकती है I) एकक शासन व्यवस्था तथा II) संघीय शासन व्यवस्था। संघीय व्यवस्था होने के कारण राष्ट्र में त्रिस्तरीय सरकार व्यवस्था है जिसमें 1) केन्द्र सरकार 2) राज्य सरकार तथा केन्द्र शासित प्रदेशों की स्वतंत्र सरकार 3) स्थानीय सरकार शामिल हैं।

इस त्रिस्तरीय शासन व्यवस्था में केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय सरकारों के पारस्परिक संबंध उनके पृथक पृथक अधिकार और दायित्व पूरी तरह परिभाषित हैं। उनके वित्तीय अधिकार भी स्पष्ट कर दिये गये हैं। उनके आय–व्यय की मदें भी स्पष्ट निर्धारित हैं।

स्वतंत्रता से पूर्व भारत की प्रशासनिक व्यवस्था की दृष्टि से देश दो भागों में विभाजित था। एक भाग देशी रियासतों का था जिनके अपने राजा महाराजा नवाब आदि शासक थे जिन्हें आंतरिक राजकोषीय स्वायत्ता प्राप्त थी पर ये सारी रियासतें वायसराय के अधिपत्य में कार्य करती थीं अर्थात अंततः शासन ब्रिटिश सरकार का ही था। शेष भाग पूरी तरह ब्रिटिश सरकार के अधिपत्य में था और यह भाग अनेक प्रांतो में विभाजित था। वायसराय तथा गवर्नर जनरल नामधारी ब्रिटिश अधिकारी पूरे देश का भाग्य विधाता कहलाता था।

इस दिशा में भारत सरकार अधिनियम 1935 (Government of India Act 1935) लागू हुआ जोकि एक क्रांतिकारी कदम सिद्ध हुआ क्योंकि इसमें केन्द्र राज्य संबंधो को विस्तार से परिभाषित किया गया। वर्तमान भारतीय संविधान इसी अधिनियम के प्रकाश में बनाया गया है।

9.2 एकक अथवा एकात्मक शासन व्यवस्था तथा संघीय शासन व्यवस्था में अंतर(Difference between Unitary and Federal System of Governance)

I) **एकक शासन व्यवस्था**– जब संपूर्ण राष्ट्र में केवल एक सरकार होती है तो इसे एकक या एकल शासन व्यवस्था कहते हैं। एकक व्यवस्था में सारे अधिकार केन्द्रीय सत्ता में निहित होते हैं। कर और गैर–कर माध्यमों से आय प्राप्त करना तथा प्राप्त आय का जन कल्याण के कार्यो में व्यय करने का काम एकक सरकार करती है।

डॉ गार्नर के अनुसार, ''जब संविधान द्वारा सरकार की समस्त शक्तियाँ एक केन्द्रीय अंग अथवा अंगों को प्रदान की जायें तथा स्थानीय सरकारें अपनी शक्तियाँ स्वयात्तता तथा अस्तित्व भी प्राप्त करें, वह एकात्मक सरकार होती हैं।''

II) **संघीय शासन व्यवस्था**–. जब राष्ट्र में एक से अधिक सरकारें होती हैं तो यह शासन प्रणाली की संघीय व्यवस्था कही जाती है। संघीय सरकार में केन्द्र और प्रांतीय सरकारों के बीच आय–व्यय की सीमायें निर्धारित रहती हैं। सन्घीय शासन व्यवस्था के अंग्रेजी पर्ययवाची फेडरेशन की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द 'फ़ोयडस' (Foedus) से हुयी है, इसका अर्थ है सन्धि अथवा समझौता।

सर रोबेर्ट गेस के अनुसार– ''संघ एक प्रकार की सरकार है जिसमें सर्वोत्तम सत्ता या राजनैतिक शक्ति का विभाजन केन्द्रीय तथा स्थानीय सरकारों में इस प्रकार होता है जिसमें प्रत्येक राज्य अपने क्षेत्र में दूसरे से प्रथक एवं स्वतंत्र होता है।'' संघीय शासन व्यवस्था एक प्रकार का राजनैतिक संघ है, जिसके अन्तर्गत दो अथवा दो से अधिक राज्य मिलकर एक सरकार बनाते हैं किन्तु ये सदस्य राज्य अपनी स्वायत्तता बरकरार रखते हैं। यह समझौता संघ स्थापित करने के इच्छुक विभिन्न राज्यों तथा केन्द्र सरकार के मध्य किया जाता है ।

अध्ययन की दृष्टि से एकक शासन व्यवस्था एवं संघीय शासन व्यवस्था में अंतर निम्नवत है:–

अंतर का आधार	एकक शासन व्यवस्था	संघीय शासन व्यवस्था
1- तानाशाही का भय	एकक शासन व्यवस्था में सरकार सर्वोच्च संस्था होती है अतः उसके तानाशाह होने	संघीय शासन व्यवस्था में केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों के समन्वय से

	का भय बना रहता है।	कार्य करती है अतः उसके स्वेच्छाचारी होने की आशंका कम होती है।
2- स्वायत्तता	एकक शासन प्रणाली में सम्पूर्ण सत्ता एक जगह ही केन्द्रित होती है अतः किसी को स्वायत्ता और स्वतंत्रता उपलब्ध नही होती	संघीय शासन व्यवस्था में विभिन्न प्रांतो एवं केन्द्रशासित क्षेत्रों की सरकारें स्वतंत्र रूप से कार्य करती है और कुछ मामलों में वे स्वायत्तशासी होती हैं।
3- लोकहित के प्रयासों का केन्द्रीकरण	एकक शासन व्यवस्था में आय और व्यय सभी एक ही सरकार के हाथों में केन्द्रित होते है।	संघीय शासन व्यवस्था में आय–व्यय की मदें केन्द्र तथा राज्य सरकारों के बीच स्पष्ट रूप से विभाजित हैं अतः लोक कल्याण के कार्यो में केन्द्र और राज्य सरकार के संयुक्त और पृथक पृथक प्रयास किये जाते है।
4- समन्वय	एकात्मक शासन व्यवस्था में क्योंकि एक ही सरकार होती है अतः समन्वय जैसी अवधारणा की वहाँ कोई जगह नहीं है।	संघात्मक शासन व्यवस्था केन्द्र और राज्य सरकार तथा राज्य सरकार एवं स्थानीय सरकारों के बीच समन्वय की सतत आवश्यकता रहती है।
5- अन्तर्राष्ट्रीय संबंध	एकात्मक शासन व्यवस्था में केन्द्रीय सरकार विभिन्न मुद्दों पर अंतर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त भी करती है और प्रदान भी करती है। विश्वसनीयता की दृष्टि से एकात्मक सरकार अंतराष्ट्रीय पटल पर अधिक सम्मान की अधिकारी होती है।	संघात्मक शासन व्यवस्था में केन्द्रीय सरकार के अतिरिक्त विभिन्न प्रान्तीय सरकारें अपने बूते भारत के बाहर से राष्ट्रों से विनियोग पर संबंध स्थापित करती रहती हैं।

9.3 संघीय वित्त व्यवस्था अथवा राजकोषीय संघवाद : आशय एवं अवधारणा (Federal Finance or Fiscal Federalism : Meaning and Concept)

राजकोषीय संघवाद को एक संघीय सरकार प्रणाली में सरकार की इकाईयों के बीच वित्तीय सम्बन्धों के रूप में परिभाषित किया गया है। राजकोषीय संघवाद व्यापक सार्वजनिक वित्तीय अनुशासन का हिस्सा है। इस शब्द की उत्पत्ति का श्रेय जर्मनी मूल के अमेरिकी अर्थशास्त्री रिचर्ड मुस्ग्रेव को 1959 में दिया जाता है। राजकोषीय संघवाद सरकारी कार्यो के विभाजन और सरकार के विभिन्न संघवाद सरकारी कार्यो के विभाजन, अंतर–सरकारी हस्तांतरण की व्यवस्था और सरकार के विभिन्न स्तरों के बीच वित्तीय सम्बन्धों के बारे में होता हैं। संघीय वित्त का अर्थ संघ अथवा राज्य सरकारों के वित्त एवं दोनों के बीच सम्बन्ध हैं। राजकोषीय संघवाद को वित्तीय संघवाद अथवा संघीय वित्त के रूप में भी स्वीकार किया जाता है।

भारतीय संविधान संघात्मक है जिसमें संघ सरकार तथा संघ की विभिन्न इकाईयों अर्थात् राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन इस प्रकार होता है कि प्रत्येक इकाई स्वयं में स्वतंत्र हो और साथ ही साथ एक दूसरे के सहयोगी हो।

संघीय वित्त व्यवस्था वह व्यवस्था है जिसमें आय व्यय की मदें केन्द्र, राज्य और स्थानीय सरकारों के बीच बांट दी जाती हैं। तीनों सरकारें स्वतंत्र रूप से आय प्राप्त करती हैं और प्राप्त आय को अपने दायित्वों का निर्वाह करने में खर्च कर देती हैं। तीनों सरकारों में समन्वय रहता है, वित्तीय अनुशासन बना रहता है। सार्वजनिक आय के मद दो प्रकार के होते हैं और कर तथा गैर–कर। सरकारों को अपने अपने क्षेत्र में कर लगाने का संवैधानिक अधिकार है पर संघीय वित्त व्यवस्था में यह स्पष्ट व्यवस्था रहती है कि किन मदों पर किस सरकार को कर लगाने का अधिकार रहेगा जिससे एक मद पर एक सरकार ही कर लगाये इसी प्रकार व्यय के क्षेत्र भी सुपरिभाषित कर दिये जाते हैं ताकि अपने क्षेत्र और अधिकार के आधार पर सरकारें जन कल्याण के कार्यो पर निरन्तर व्यय करते हुये अपने दायित्व के निर्वाह कर सकें।

अध्ययन की दृष्टि से सन्धीय वित्त को दो भागों में बांटा जा सकता है

1) स्वतंत्रता से पूर्व संघीय वित्त
2) स्वतन्त्रता के पश्चात संघीय वित्त

9.3.1 स्वतंत्रता से पूर्व संघीय वित्त (Federal Finance- Pre Indepence Era)

अति प्राचीन काल में भारत में राजा महाराजा की सत्ता हुआ करती थी और प्रत्येक राजा अपने राज्य में स्वतन्त्र मुद्रा एवं वित्तीय व्यवस्था थी। बाद में मुगल शासन काल में भी ऐसा ही हुआ। भारत में ब्रिटिश शासन काल (ईस्ट इन्डिया कम्पनी द्वारा) से ही एकात्मक शासन व्यवस्था रही और क्रमशः कार्य संचालन की कुशलता के लिये एवं साधनों के वित्तीयकरण एवं स्वायत्त शासन की मांग पूर्ण करने के लिये संघ शासन प्रणाली प्रारम्भ हुई । भारत में संघीय वित्त का आरम्भ 17वीं शताब्दी में ही हो गया था।

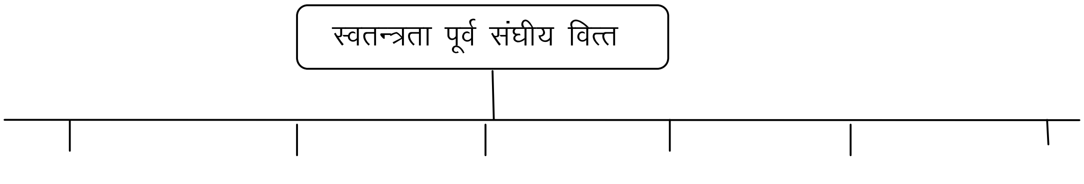

विकेन्द्रीकरण का आरम्भ	संघीय सत्ता का विकेन्द्रीकरण	विकेन्द्रीकरण का दूसरा चरण	भारत सरकार अधिनियम 1919	भारत सरकार अधिनियम 1935	ऑटो निमियर रिपोर्ट

1) **विकेन्द्रीयकरण का आरम्भ (1833-1871)** – सन 1833 के चार्टर अधिनियम से पूर्व बम्बई, मद्रास एवम बंगाल के गवर्नर वित्तीय मामलों में पूर्ण स्वतन्त्र थे लेकिन इंग्लैंड की सरकार ने चार्टर अधिनियम पारित करके बंगाल के गवर्नर को सम्पूर्ण भारत के लिये नियम बनाने के पूर्ण अधिकार दे दिये लेकिन चार्टर द्वारा 1871 तक ब्रिटिश राज्य की समस्त आय भारत सरकार के नाम से जमा तथा व्यय की जाने लगी।

2) संघीय सत्ता का **विकेन्द्रीयकरण (1871-1882)** – नई पद्धति की आलोचना के कारण सन् 1860-61 में वित्तमंत्री जेम्स विल्सन ने विकेन्द्रीकरण की दिशा में प्रयत्न शुरू किये किन्तु श्रेय लॉर्ड मेयो को जाता है जिन्होंने 1871 में आंशिक रूप से स्थानीय कार्य जैसे जेल, पुलिस, शिक्षा, चिकित्सा, सड़कें आदि को प्रांतीय शासनों को दे दिया। तत्पश्चात लॉर्ड लिटिन ने 1877 में वित्तीय विकेन्द्रीयकरण की नयी योजना के माध्यम से राज्यों को उत्पादन कर, स्टाम्प ड्यूटी, भूमि कर, प्रशासकीय व्यय राज्यों को सौंप दिये।

3) विकेन्द्रीयकरण का दूसरा चरण (1882-1904)– लॉर्ड रिपन द्वारा 1882 में प्रारंभ यह दौर लॉर्ड कर्जन द्वारा 1904 में 5 वर्षों के लिये शुरू की गयी 'पंचवर्षीय बंदोबस्त' के नाम से जाना जाता है जिसमें आय के स्रोत को तीन भागों में विभक्त किया गया :

1. इम्पीरियल मदः भू राजस्व, कस्टम, आय कर
2. प्रादेशिक मद : कानून एवं न्याय शिक्षा, पुलिस, रेल, सार्वजनिक कार्य से आय
3. भू राजस्व, वन, उत्पादन कर, स्टाम्प, रजिस्ट्रेशन जिसका विभाजन केन्द्र और प्रान्त के मध्य किया जाना था।

विकेन्द्रीयकरण की प्रक्रिया 1904 में लॉर्ड कर्जन ने इसे अर्द्धस्थायी बना दिया पिछड़े प्रान्तों को विभाजित आय से 1/2 तथा विकसित राज्यों को 1/4 भाग देने क प्रावधान रखा गया।

अर्द्धस्थायी व्यवस्था 1909 तक रही। बाद में लॉर्ड हर्डिंग ने इसे 1912 में स्थायी घोषित कर दिया व वनों से प्राप्त आय जो केन्द्र व प्रान्त सरकार में विभक्त होनी थी प्रदेशों के अधिकार में आ गयी। यह व्यवस्था 1919 तक चली।

4) **भारत सरकार अधिनियम 1919 Government of India Act 1919**

भारतीय वित्त व्यवस्था में मांटेग्यु चेम्सफोर्ड समिति की संस्तुति एक विशेष स्थान रखती है जिसने विशेषकर केंद्र तथा प्रान्त के मध्य वित्तीय संबंधों को लेकर भारत सरकार अधिनियम 1919 पारित किया जिससे दोहरी शासन प्रणाली का आरंभ हुआ। इस के तहत केंद्र को आय कर एवं सामान्य स्टाम्प, सीमा कर, डाकतार से आय आदि, जबकि राज्यों को आबकारी शुल्क, न्यायाधीश स्टाम्प, भूमि, नहर कर सौपें गये। यह भी व्यवस्था की गयी कि यदि केंद्र सरकार को घाटा हो तो इसकी पूर्ति उन प्रान्तों द्वारा की जाएगी जिन्हें बचत होती है। परन्तु इस

दौरान मेस्टन अवार्ड योजना अत्यधिक आलोचना का शिकार हुयी क्योंकि केंद्र के अधीन लोचदार व राज्यों के अधीन बेलोचदार कर होने कारण राज्यों की वित्तीय स्थिति पर प्रतिकूल असर पड़ा, अतः 1928-29 में प्रदेशों द्वारा दिया जाने वाले अंशदान को समाप्त कर दिया गया। राज्यों व केंद्र सरकार में सामंजस्य की कमी के कारण वित्तीय समस्याएं उत्पन्न हो गयीं जिसके निदान के लिए विभिन्न समितियाँ गठित की गयी अंततः उन सबका सम्मिलित रूप भारत सरकार अधिनियम 1935 के रूप में पारित हुआ।

5) भारत सरकार अधिनियम 1935 (Government of India Act 1935)

भारत सरकार अधिनियम 1935 में साइमन आयोग रिपोर्ट, नेहरू समिति की रिपोर्ट तथा ब्रिटेन में सम्पन्न तीन गोलमेज सम्मेलनों में हुये कुछ विचार–विमर्शों से सहायता ली गयी। तत्पश्चात कुछ प्रस्ताव श्वेत पत्र नाम से प्रकाशित हुए, जिन पर बहस के लिए ब्रिटेन के दोनों सदनों एवं कुछ ने रिपोर्ट प्रस्तुत । अन्ततः भारतीय प्रतिनिधियों की रिपोर्ट के आधार पर 1935 ई. का अधिनियम पारित हुआ जोकि काफ़ी लम्बा एवं जटिल था। इसे 3 जुलाई, 1936 को आंशिक रूप से लागू किया गया, किन्तु पूर्णरूप से चुनावों के बाद अप्रैल, 1937 में यह लागू हो पाया। इसके द्वारा बर्मा को भारत से अलग कर दिया गया, अदन को इंग्लैंड के औपनिवेशिक कार्यालय के अधीन कर दिया गया और बरार को मध्य प्रांत में शामिल कर लिया गया। इसमें केन्द्र राज्य संबंधो को विस्तार से परिभाषित किया गया। भारत सरकार अधिनियम 1935 देश की वर्तमान संघीय वित्त प्रणाली का प्रमुख आधार है। इसके अंतर्गत विभिन्न स्त्रोतों को तीन भागों में बांटा गया है–

i) **केन्द्रीय स्रोत** – आयात–निर्यात कर, निगम आय कर (कृषि को छोड़कर), उत्तराधिकारी कर, उत्पादन कर (नशीली वस्तुओं को छोड़कर), स्टाम्प ड्यूटी मुद्रा एवं सिक्का ढ़लाई, रेल, डाक–तार विभाग से आय व सीमा कर आदि।

ii) **प्रान्तीय स्रोत** – मालगुजारी, कृषि आय कर, भूमि–मकानों पर कर, कृषि भूमि कर, उत्तराधिकारी कर, विज्ञापन पर कर, चुंगी, स्टाम्प रजिस्ट्रेशन, मनोरंजन कर।

iii) **समवर्ती सूची**– इसमें दो प्रकार के कर थे–

प्रथम– ऐसे कर, जो केन्द्र द्वारा लगाये जायें, और वसूली से प्राप्त आय प्रांतों को हस्तांतरित हो,

जैसे– संपत्ति कर, उत्तराधिकारी कर, रेल, वायु, जल मार्ग द्वारा ले जाये गये सामान व यात्री पर कर, रेलवे। अति प्राचीन काल में भारत में राजा महाराजा की सत्ता थी और प्रत्येक राजा की अपने राज्य में स्वतंत्र मुद्रा एवं वित्तीय व्यवस्था थी। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अनेक रियासतों पर कब्जा कर अंग्रेजी राज्य की जड़े मजबूत करके 1935 में भारत सरकार अधिनियम 1935 लागू किया किराया व यात्री पर टर्मिनल कर साख पत्रों पर स्टाम्प कर।

द्वितीय– कुछ ऐसे कर थे जो केंद्र द्वारा लगाये जायेंगे व उनकी आय केंद्र व प्रांतों के मध्य वितरित कर दी जायेगी, जैसे– आय कर (कृषि आय छोड़कर), नमक कर, उत्पादन कर व निर्यात कर आदि।

6) **आटोनिमियर रिपोर्ट** – भारत सरकार अधिनियम 1935 के अन्तर्गत वित्तीय जांच के लिए सर आटोनिमियर रिपोर्ट की नियुक्ति की, जिसकी रिपोर्ट 1936 में प्रकशित हुई। इसमें दो बातों पर विशेष जोर दिया गया :

i) भारत सरकार की आर्थिक स्थिति को क्षति न पहुंचे

ii) राज्यों को ऐसी सहायता दें कि वे स्वशासन स्थापना के समय वित्तीय मामलों में आत्म निर्भर रहें।

महत्तवपूर्ण सुझाव (Important Suggestions)

समिति द्वारा सुझाये गये उपायों में से स्वीकारे गए महत्त्वपूर्ण सुझाव निम्नवत् हैं :

i) **आय का वितरण** (Distribution of Income)– राज्यों की जनसंख्या व वहां से प्राप्त आयकर की मात्र को बनाकर सुझााव दिया कि केंद्र सरकार कुल प्राप्ति का 50 प्रतिशत अपने पास रखकर शेष उक्त आधार पर प्रान्तों को वितरित कर दें। साथ ही सुझाव यह भी में शामिल था कि जब तक केंद्र सरकार का आय कर तथा रेल को प्राप्त आय का भाग मिलकर 13 करोड़ न हो, तब तक वह अपने भाग के साथ प्रान्तों का भी कुछ भाग रखें।

ii) **आर्थिक सहायता** (Grant-in-Aid)– राज्यों को दिया जाने वाला अनुदान वार्षिक बजट के पुनरावलोकन के पश्चात् तय किया जाये। अनुदान की राशि को 25 लाख से बढ़ाकर 1 करोड़ 10 लाख करने की अनुशंसा की गई।

iii) **जूट का निर्यात** (Export of Jute)– जूट पैदावार कराने वाले राज्यों को जूट निर्यात कर का भााग 50 प्रतिशत से बढ़ाकर 62½% अनुदान के रूप में दिया जाये। इसमें असम, बिहार, बंगाल और उड़ीसा को अधिक अनुदान प्राप्त हुआ।

iv) **ऋण समाप्त** (Loan Waiver Scheme)– 1 अप्रैल 1936 से पूर्व बंगाल, बिहार, उड़ीसा, असम व उत्तर प्रदेश सीमा प्रान्त के समस्त ऋण समाप्त किये जायें व मध्य प्रान्त के ऋण र्प्याप्त मात्रा में घटा दिये जायेंगे।

9.3.2 स्वतन्त्रता के पश्चात संघीय वित्त (Federal Finance- Post Indepence Era)

15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ व पाकिस्तान के रूप में देश का विभाजन हुआ। अतः केन्द्र व राज्यों के मध्य वित्तीय संबंधों में परिवर्तन अनिवार्य था। यह परिवर्तन निम्नवत परिलक्षित है :–

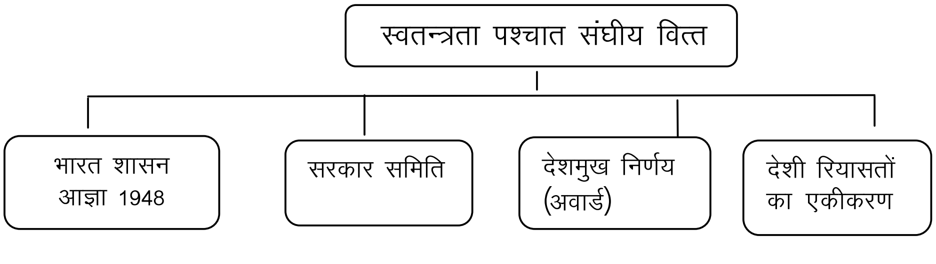

1) भारत शासन आज्ञा, 1948

7 मार्च, 1948 को भारत शासन आज्ञा, 1948 के नाम से नयी योजना की घोषणा की गई, जिसके अनुसार–

1. नीमियर अवार्ड के अंतर्गत विभिन्न राज्यों को दिये जाने वाले आय कर के अंशों में परिवर्तन हुआ। इसमें कुछ वृद्धि भी की गई।

2. जूट उत्पादक प्रांतों को केन्द्र से प्राप्त अनुदान 62½% से घटाकर 20% कर दी गयी।
3. आर्थिक सहायता उड़ीसा व आसाम को दो वर्षो, के लिये दिया गया। 1947-48 में 20 लाख से 30 लाख का प्रावधान, 1948-49 में 30 लाख से 25 लाख का प्रावधान किया गया ।

2) सरकार समिति

मार्च 1948 की योजना केवल दो वर्ष हेतु थी इसलिये प्रान्तीय भाग के वितरण का आधार निर्धारित करने के उद्देश्य से श्री एन. आर. सरकार की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गयी, जिसने प्रान्तों के हितों में अपने सुझाव दिये सुझाव दिये, परन्तु केन्द्र सरकार द्वारा उन्हें अस्वीकार कर दिया गया तत्पश्चात केन्द्र सरकार ने श्री देशमुख की अध्यक्षता में नयी समिति गठित की ।

3) **देशमुख निर्णय (अवार्ड)**

नया संविधान 26 जनवरी सन् 1950 में लागू हुआ और उसके अंतर्गत राज्य एवं केन्द्र सरकार को दिये जाने वाले आय के भाग व अनुदान के लिये वित्त आयोग का गठन 1952 में किया जाना था अतः 1950 में अगले दो वर्ष हेतु अर्थात 1952 तक के लिये यह कार्य श्री चिन्तामणि देशमुख को सौंपा गया। उनका निर्णय 'देशमुख अवार्ड' के नाम से प्रसिद्व है। इसकी अनुशंसाओं के अनुसार महाराष्ट्र (21%) मद्रास एवं तमिलनाडु (17.5%), पश्चिम बंगाल (13.5%) उत्तर प्रदेश (18.5%) पंजाब (5.5%) बिहार (2.5%) बिहार (2.5%) मध्यप्रदेश (6%) आसाम (3%), उड़ीसा (3%) भाग निर्धारित किया गया।

4) देशी रियासतों का एकीकरण

उपर्युक्त सुझावों की भी प्रान्तों द्वारा कटु अलोचना की जाने लगी। बाद में देश की 600 रियासतों का विलय किया गया, जिससे देश में अनेक प्रकार की वित्तीय उथल पुथल हो गयी। वित्तीय प्रशासन को फिर से पुनर्स्थापित करना एक बड़ी चुनौती थी। भारतीय संविधान के अनुसार भारत के लिये एक वित्त आयोग की स्थापना करनी थी।

सन् 1948 मे श्री टी क्रष्णामचारी की अध्यक्षता मे वित्तीय जाँच समिति ने निम्न सिद्धान्तों को बताया :

1. **प्रशासनिक यन्त्र**– केन्द्र अपने प्रशासनिक यन्त्र का उपयोग प्रान्तों की भांति ही करेगा इन रियासतों को प्रान्तों में मिला दिया गया और इन्हें प्रान्तों की ही भान्ति सहायता प्राप्त होने लगी।
2. **नियन्त्रण**– इन रियासतों में नियन्त्रण केवल उन्हीं विषयों पर होगा जिन विषयों पर वह प्रान्त में था प्रथक से नियन्त्रण करने की व्यवस्था पर कोई जोर नहीं दिया गया था।
3. **सहयोग**– केन्द्र व रियासतें विभिन्न प्रकार की भांति ही आपस में सहयोग करेंगे।

स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय संविधान में अनुशासित संघीय वित्त व्यवस्था प्रारंम्भ में दो स्तरों पर स्वीकार की गयी।

1- अखिल भारतीय स्तर पर केन्द्र सरकार

2- क्षेत्रीय स्तर पर तीन वर्गो की प्रांतीय सरकारों का उल्लेख मिलता है :-

i) भाग (क) राज्य (Part A State) जो स्वतंत्रता से पूर्व ब्रिटिश सरकार के शासन के आधीन प्रांत थे,

ii) भाग (ख) राज्य (Part B State) जिनका जन्म विभिन्न देशी रियासतों के विलय के परिणामस्वरूप हुआ

iii) भाग (ग) राज्य (Part C State) जो भूतपूर्व चीफ कमिश्नरों के प्रांत थे। 1956 के संशोधन के पश्चात क्षेत्रीय स्तर पर दो प्रकार की सरकारें

अस्तित्व में आयी - भाग 'क' और 'ख' के लिये प्रांतीय सरकारें और भाग 'ग' के लिये केन्द्र शासित क्षेत्र कार्य।

स्थानीय शासन इकाइयों को अधिक मजबूत आधार प्रदान करने हेतु कालान्तर में संविधान के 73वें एवं 74वें संशोधनों के माध्यम से पंचायती राज संस्थाओं के लिये सरकार की तिहरी परत बनायी गयी । ऐसा होने से स्थानीय निकायों का गठन अनिवार्य हो गया और अब त्रिस्तरीय सरकार हो गयी है :–

1) केन्द्रीय सरकार

2) राज्य सरकार– सभी राज्यों की पृथक राज्य सरकार तथा केन्द्र शासित प्रदेशों की अपनी अपनी स्वतंत्र सरकार

3) स्थानीय सरकार– जिला स्तर पर जिला पंचायत, महानगरों के निगम, नगरों की नगर पालिकायें, छोटे नगरों की क्षेत्र समितियाँ तथा गाँव गाँव में पृथक पृथक ग्राम पंचायतें

उक्त बदलाव ने वस्तुतः एक बहुस्तरीय सार्वजनिक वित्त के साथ भारतीय महासंघ को एक बहुस्तरीय संघीय प्रणाली में बदल दिया। इन संशोधनों को पारित हुए बीस वर्ष से भी ज्यादा हो चुके हैं, इससे सम्बन्धी अनुपूरक कानून सभी राज्यों द्वारा 1994 में अधिनियमित किया जा चुका है। वास्तव में अत्याधुनिक स्तर पर स्थानीय लोकतान्त्रिक प्रशासन की ओर से लोगों की भागीदारी के लिये लोकतान्त्रिक जगह बनाते हुए विकेन्द्रीकरण की ओर यह एक बड़ा प्रयास था।

9.4 संधीय वित्त व्यवस्था की विशेषतायें (Features of Federal Finance)

संधीय वित्त व्यवस्था में निम्नलिखित लक्षण एवं विशेषताये पायी जाती है–

1- **बहुस्तरीय शासन पद्धति (Multi-tier System)**– संघीय वित्त व्यवस्था का महत्व पूर्ण लक्षण यह है कि इसमें बहुस्तरीय शासन व्यवस्था होती है अर्थात् केन्द्र सरकार, प्रांतीय सरकार तथा स्थानीय सरकार।

2- **समन्वय एवं सहयोग (Coordination and Cooperation)**– संघीय वित्त व्यवस्था में केन्द्र, राज्य व स्थानीय सरकारों के बीच पूरा समन्वय रहता हैं तथा वे एक दूसरे के सहयोग से कार्य करती हैं ।

3- **जनकल्याण का भाव (Social Benefit Concept)**– सरकार का प्रमुख दायित्व अपनी जनता का अधिकतम कल्याण करना है समन्वित भाव से सरकारें अपने उद्देश्य का पालन करती हैं।

4- **सार्वजनिक कार्यो के क्षेत्रों का स्पष्ट निर्धारण (Divison of Work for Social Welfare)**– यद्यपि विभिन्न सरकारों के बीच किये जाने वाले कार्यो का

स्पष्ट विभाजन रहता है और सार्वजनिक वस्तुओं व सेवाओं को उपलब्ध कराने का दायित्व सरकार का ही होता है। पर त्रिस्तरीय सरकारों के मध्य सेवा के क्षेत्र स्पष्ट निर्धारित होते हैं कि कौन सा व्यय किस सरकार द्वारा किया जाना है। इससे न तो किसी क्षेत्र के छूटने का भय रहता है और न किसी क्षेत्र में कार्य के दोहराव की स्थिति बनती है।

5- **आय की मदों का स्पष्ट विभाजन (Demarcation of Items of Income)** – व्यय की तरह आय की मदें भी पूर्व निर्धारित और स्पष्ट होती है किन मदों पर कर लगाने का अधिकार किस सरकार का है यह पहले से ही तय रहता है।

6- **अनुदान की व्यवस्था (Coordination in Grants)**– केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को तथा राज्य सरकारें स्थानीय सरकारों को अनुदान देती हैं इससे सरकारो में समन्वय और सहयोग बना रहता है।

9.5 संघीय वित्त के सिद्धान्त (Principles of Federal Finance)

राष्ट्र की त्रिस्तरीय सरकारों के मध्य सहयोग और समन्वय बना रहे इस हेतु संघीय वित्त कुछ सिद्धान्तों पर आधारित होता है। प्रमुख सिद्धान्त निम्नवत हैं–

1- **हित लाभ प्रावधान सिद्धान्त (Benefit Provision Principle)**– धनवान अपने धन के माध्यम से, बलवान अपने वाहुबल से और बुद्धिमान अपने बुद्धि कौशल से अपने हित की वस्तुयें प्राप्त करने की सामर्थ्य रखता है पर जिनके पास यह सामर्थ्य नहीं है उनके हितों की रक्षा करने का दायित्व सरकार का है। राजकोषीय संघवाद का पहला सिद्धान्त जनहित लाभ प्रावधान (Benefit Provision Theory) है।

2- **स्वतंत्रता का सिद्धान्त (Principle of Freedom & Autonomy)**– संघात्मक व्यवस्था में सरकार के विभिन्न अंगउपांग स्वतंत्र और स्वायत्तशासी है। संघ के अंतर्गत आने वाली राज्य सरकारें और राज्य के अंतर्गत कार्यरत विभिन्न स्थानीय सत्तायें स्वतंत्र हैं। प्रत्येक राज्य स्वतन्त्र रूप से कर लगा सकें, ऋण ले सकें तथ इच्छानुसार व्यय कर सकें, परन्तु ऐसे अधिकार ना हों जो राष्ट्रीय एकता को क्षति पहुंचाते हों ।

3- **एक रूपता का सिद्धान्त (Theory of Uniformity)**– संघ सरकार का दायित्व है कि वह सभी राज्य सरकारों को बिना किसी भेदभाव के एक नजर से देखे। संघ सरकार द्वारा राज्यों की ओर से लगाये जाने वाले करों व व्ययों के प्रभाव समान रूप से पडें। संभव है कि केन्द्र में किसी एक दल की सरकार हो तथा राज्य में किसी दूसरे दल की पर केन्द्र सरकार के बिना किसी पक्षपात के सभी राज्य सरकारों को आवश्यकतानुसार समान महत्व देकर एक रूपता का परिचय देना चाहिये यह परिचय धनी राज्य की अपेक्षा निर्धन राज्यों को अधिक अनुदान दे कर भी दिया जा सकता है।

4- **मितव्ययता का सिद्धान्त (Theory of Economy and Austerity)**– सार्वजनिक क्षेत्र में मितव्यता का विशेष महत्व है। जहाँ एक पैसा लगना है एक ही लगे न कम न ज्यादा इसलिए सार्वजनिक कार्यो में टेण्डर कुटेशन की व्यवस्था रहती है। वित्तीय योजना इस प्रकार कि होनी चाहिये जिसमें धोखे और कर चोरी की सम्भावना न हो।

5- दक्षता अथवा कार्य कुशलता का सिद्धान्त (Theory of Efficiency and Effectiveness)– राजकोषीय नीति दक्षता एवं कार्य कुशलता से प्रेरित होना चाहिये। व्यय किये गये पैसे का पूरा परिणाम पाने के लिये यह अति आवश्यक है।

6- साधनों के वितरण का सिद्धान्त (Theory of Distribution of Resource)– विभिन्न सरकारों के बीच सहयोग और समन्वय बना रहे इसके लिये साधनों का वितरण सुनिश्चित सिद्धान्तों से प्रेरित होना चाहिये। मनमाने ढंग से किया गया वितरण राज्यों में असंतोष को जन्म देता है। इसके अनुसार धनी राज्यों से निर्धन राज्यों की ओर साधनों का अन्तरण किया जाना चहिये जिससे राज्यों के आर्थिक स्तर में समानता आ सकती है।

7- संघीय प्रबन्धन एवं प्रशासन का सिद्धान्त (Theory of Federal Supervision)– केन्द्रीय, प्रांतीय तथा स्थानीय सरकारों के मध्य समन्वय और सहयोग के लिये यह आवश्यक है कि राजकोषीय व्यवस्था संघीय प्रबन्धन और प्रशासन के सिद्धान्तो पर आधारित हो। राज्य सरकारों की नीतियाँ केन्द्र सरकार के व्यापक दर्शन के प्रकाश में ही बनायी जानी चाहिये। देश की आर्थिक नीति तभी सफल हो सकती है जब राज्य सरकारें अपने बजट बनाने में केन्द्र की आर्थिक नीति का अनुपालन करें।

9.6 संघ और राज्यों में मध्य सम्बन्ध (Relations between Centre and States)

संघात्मक शासन प्रणाली के अन्तर्गत केन्द्र और राज्यों के मध्य सम्बन्धों को मुख्यतः तीन श्रेणियों मे बांट सकते हैं 1) वैधानिक सम्बन्ध, 2) प्रशासनिक सम्बन्ध, 3) वित्तीय सम्बन्ध

9.6.1 संवैधानिक सम्बन्ध (Legislative Relations)

– संविधान के भाग 11 (Part XI) के अनुच्छेद 245-255 के अन्तर्गत केन्द्र और राज्यों के मध्य वैधानिक सम्बन्धों की व्याख्या की गयी है। अनुच्छेद 245 में तीन अनुसूचियाँ रखी गयी हैं विषयों और साधनों के वितरण में व्यवस्था तीन स्तरों पर रखी गयी :

i) संघ सूची (Union List)– अखिल भारतीय महत्व के विषय केन्द्र सरकार के सौपे गये इन्हें संघ सूची में रखा गया।

ii) राज्य सूची (State List)– क्षेत्रीय और स्थानीय महत्व के विषय राज्य सूची में रखे गये ।

iii) सहवर्ती सूची (Concurrent List)– जिसमें केन्द्र और राज्य सरकार मिलकर कार्य कर सकेंगे।

iv) अवशिष्ट विषय (Residuary Subjects)– ऐसे विषय जिनका वर्णन कहीं और नहीं है, के सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार संघीय संसद को है।

9.6.2 प्रशासनिक सम्बन्ध (Administartive Relations)

संविधान के अनुच्छेद 245-255 के अन्तर्गत केन्द्र और राज्यों के मध्य प्रशासनिक सम्बन्धों की व्यवस्था की गयी है।

9.6.3 वित्तीय सम्बन्ध (Financial Relations) - केन्द्र व राज्य के मध्य वित्तीय सम्बन्धों की व्याख्या निम्नानुसार **9.7** में की गयी है।

9.7 केन्द्र राज्य वित्त संबंध (Centre-State Financial Relations)

भारतीय संविधान में केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों के वित्तीय संबंध स्पष्टतः परिभाषित हैं, आय स्रोत के वितरण की व्यवस्था निम्नवत हैः–

9.7.1 केंन्द्र सूची– प्रथम अनुसूची (केंद्रीय सरकार का आय स्रोत)

i) श्रेणी I : वे कर जिन्हें केंद्र आरोपित करेगा व उसकी समस्त आय स्वयं अपने पास रखेगा जैसे– सीमा कर, निगम कर, कंपनी पूंजी कर, सम्पत्ति के उत्तराधिकार पर कर, कृषि भूमि के अतिरिक्त भूमि पर कर, तम्बाकू तथा अन्य नशीले पदार्थ पर कर ।

ii) श्रेणी II : अनुसूची 270 के अनुसार वे कर जो केंद्र सरकार द्वारा आरोपित होंगे एवं आय को राज्य सरकारों के मध्य वितरित किया जायेगा। उदाहरण– सामान्य आय कर (कृषि आय को छोड़कर) एवं उत्पादन कर (नशीले पदार्थ को छोड़कर)।

iii) श्रेणी III : वे कर जो केंद्र द्वारा आरोपित होंगे, परंतु प्राप्त आय, राज्यों को हस्तांतरित होगी। जैसे– समाचार पत्रों के क्रय विक्रय, विज्ञापन पर कर, बिक्री कर, प्रतिभूति विनिमय पर कर आदि।

iv) श्रेणी IV : वे कर जो केंद्र सरकार द्वारा लगाये जायेंगे, परंतु वसूल करने व आय का अधिकार राज्यों को होगा। उदाहरण– स्टाम्प ड्यूटी, नशीली वस्तु व श्रृंगार की वस्तु, औषधियों पर उत्पादन कर शामिल हैं ।

9.7.2 राज्य सूची– द्वितीय अनुसूची (राज्य सरकार का आय स्रोत)

राज्य सरकार के आय स्रोत निम्नवत हैं :

1 राज्य द्वारा आरोपित कर (Taxes levied by State)– इसमें वे कर शामिल हैं जो राज्य द्वारा आरोपित किये जायेंगे व उनकी आय राज्यों में ही व्यय की जायेगी। इन करों में शामिल हैं– भू राजस्व, बिजली कर, मादक वस्तुओं पर उत्पादन कर, बिक्री कर, स्टाम्प व रजिस्ट्रेशन शुल्क, वाहन कर, मनोरंजन कर, कृषि आय कर, भूमि संपत्ति पर उत्तराधिकारी कर, भूमि एवं गृह कर, चुंगी एवं विज्ञापन (समाचार पत्र को छोड़कर) पर कर आदि।

2 सहायता एवं अनुदान (Aids & Grants)– संविधान की धारा 273 के प्रावधान के अनुसार केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को विशेष कार्यो एवं परिस्थितियों में सहायता एवं अनुदान प्रदान करती है।

3 ऋण (Debt)–राज्य सरकारें आवश्यकता पड़ने पर केन्द्र सरकार से ऋण ले सकती है और राज्य सरकारों द्वारा लिये गये ऋण की गारण्टी भी देती हैं। राज्य सरकारें केन्द्र की अनुमति से ही बाजार से ऋण प्राप्त कर सकती हैं परन्तु भारत से बाहर अर्थात विदेशों से ऋण नहीं ले सकती हैं।

9.8 वित्त आयोग की भूमिका/कार्यकरण (Role of Finance Commission)

केन्द्र राज्य वित्तीय संबंधो को मधुर और सुदृढ़ बनाने की दृष्टि से भारत के महामहिम राष्ट्रपति नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (Comptroller &

Auditor General i.e. CAG) की नियुक्ति करते हैं जिससे वित्तीय अनुशासन बना रहता है।

भारतीय संविधान में यह भी प्रावधान है कि संसाधनों के आवंटन को न्यायपूर्ण और पारदर्शी बनाये रखने के लिये राष्ट्रपति पांच वर्ष अथवा इससे कम समय की अवधि के लिए वित्त आयोग का गठन कर सकते हैं। वित्त आयोग विभिन्न राज्यों की आवश्यकताओं का बदलती हुयी परिस्थितियों के प्रकाश में आंकलन कर अपनी सिफारिश देगा।

वित्त आयोग एक संवैधानिक स्वायत्तशासी संस्था है जिसका केन्द्र व राज्य के मध्य वित्तीय सम्बन्ध मधुर बनाये रखने में महत्वपूर्ण योगदान है। संघीय वित्त व्यवस्था के नियमन और नियंत्रण में वित्त आयोग की महत्वपूर्ण भूमिका है ।

वित्त आयोग की परिभाषा देते हुए अशोक चंदा ने लिखा है कि ''वित्त आयोग के गठन के प्रावधान का मुख्य उद्देश्य यह आश्वस्त करना है कि संसाधनो के वितरण की योजना केन्द्र सरकार द्वारा स्वेच्छा से नही बनायी जायेगी वरन एक स्वतंत्र आयोग की सिफारिश में आधार पर बनायी जायेगी जो राज्यों की बदलती हुयी आवश्यकताओं का आंकलन करेगा।''

9.8.1 वित्त आयोग के गठन की प्रक्रिया (Process of Formation of Finance Commission)

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 280 में केन्द्रीय वित्त आयोग (Central Finance Commission) के गठन का प्रावधान है । जिसके अनुसार देश के राष्ट्रपति संविधान की तिथि के दो वर्ष के भीतर अथवा प्रत्येक 5 वर्ष के पश्चात और यदि आवश्यकता पड़ी तो उससे पूर्व भी वित्त आयोग का गठन कर सकते हैं।

इसमें एक अध्यक्ष और सामान्यतः चार अन्य सदस्य होंगे। आयोग का कार्यकाल राष्ट्रपति महोदय के आदेश द्वारा तय किया जायेगा। इनकी पुनर्नियुक्ति भी हो सकती हैं।

योग्यता–आयोग के सदस्यों की योग्यता का निर्धारण संसद द्वारा किया जाता है।

अध्यक्ष–सार्वजनिक मामलों का अनुभवी होना चाहिये। चार अन्य सदस्य निम्नलिखित क्षेत्रों से चुने जायेगें:–

1) उच्च न्यायालय का न्यायाधीश/इस पद के योग्य व्यक्ति
2) भारत का लेखा तथा वित्त मामलों का विषेषज्ञ
3) प्रशासन व वित्तीय मामलों का विशेषज्ञ
4) जो अर्थशास्त्र का विशेष ज्ञाता हो।

9.8.2 वित्त आयोग के कार्य (Functions of Finance Commission)

वित्त आयोग केवल करों से प्राप्त आय के वितरण का ही नहीं अपितु अंश एवं ऋण संबंधी दोंनों प्रकार के प्रावधानों का भी सुझाव देता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 280(3) के अन्तर्गत वित्त आयोग के कार्यो का विवरण है जिसके अनुसार वित्त आयोग निम्नलिखित विषयों के संबंध मे राष्ट्रपति महोदय को निम्न मदों पर अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करेगाः

(क) संघ और राज्यों के बीच करों के शुद्ध आगमों के, जो इस अध्याय के अधीन उनमें विभाजित किये जाने हैं या किये जाएं, वितरण के बारे में और राज्यों के बीच ऐसे आगमों के तत्संबंधी भाग के आबंटन के बारे में,

(ख) भारत की संचित निधि (Consolidated Fund of India) में से राज्यों के राजस्व में सहायता अनुदान को शासित करने वाले सिद्धान्तों के बारे में

(खख) राज्य के वित्त आयोग द्वारा की गयी सिफारिशों के आधार पर राज्य में पंचायतों के संसाधनों की अनुपूर्ति के लिए किसी राज्य की संचित निधि के संवर्धन के लिए आवश्यक अध्युपायों के बारे में,

(ग) राज्य के वित्त आयोग द्वारा की गयी सिफारिशों के आधार पर राज्य में नगरपालिकाओं के संसाधनों की अनुपूर्ति के लिए किसी राज्य की संचित निधि के संवर्धन के लिए आवश्यक अध्युपायों के बारे में,

(घ) सुदृढ़ वित्त के हित में राष्ट्रपति द्वारा आयोग के निर्दिष्ट किये गए किसी अन्य विषय के बारे में

9.8.3 वित्त आयोग का महत्त्व (Imporatnace of Finance Commission)

मूलतः वित्त आयोग के गठन के उद्देश्य अनुच्छेद 269, 272, 275 और 282 के तहत उल्लिखित संघ और राज्यों के मध्य के सभी वित्तीय मामलों पर सिफारिश करने के लिये था, लेकिन योजना आयोग (अब नीति आयोग) के गठन ने वित्त आयोग के इस कार्य को दो शाखाओं में बाँट दिया और वित्त आयोग की भूमिका गैर–योजना व्यय तक ही सीमित हो कर रह गयी है।

9.9 भारत के विभिन्न वित्त आयोगों का कार्यकाल (Duration of Various Finance Commission)

भारत में अब तक 14 वित्त आयोग गठित हुये हैं। प्रथम वित्त आयोग का गठन 1951 में श्री के0सी0 नियोगी की **अध्यक्ष**ता में तथा चौदहवें आयोग का गठन अध्यक्ष डॉ वाई0वी0 रेड्डी की **अध्यक्ष**ता में जनवरी 2013 में किया गया। वित्त आयोग के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण रूप से इकाई 10 में उपलब्ध है ।

9.10 राज्य वित्त आयोग (State Finance Commission)

देश के विभिन्न राज्यों में भारत के संविधान में निर्धारित अनुच्छेद 243 (आई) 243 (वाई) के दिशा निर्देशों के अनुसार महामहिम श्री राज्यपाल द्वारा पंचायती राज एवं स्थानीय निकाय हेतु एक राज्य आयोग गठित करने का अधिकार है।

संविधान में 73वें संशोधन के माध्यम से ग्रामीण पंचायती व्यवस्था से सम्बंधित विधेयक जोकि 24 अप्रैल 1993 से लागू हुआ (और 11वीं अनुसूची में शामिल है) जबकि 74वें संविधान संशोधन के माध्यम से शहरी निकायों, नगर पालिकाओं तथा नगर निगम से सम्बन्धित विधेयक प्रस्तुत किया जो 1 जून 1993 को लागू हुआ और 12वीं अनुसूची में शामिल हैं के माध्यम से प्रत्येक राज्य में वित्त आयोग के गठन और उसके अधिकारों की व्याख्या की है। राज्य वित्त आयोग में साधारणतः अध्यक्ष, सचिव तथा अन्य सदस्य शामिल होते हैं। राज्य वित्त आयोग को केन्द्रीय सरकार से अनुदान प्राप्त होता है।

9.10.1 राज्य वित्त आयोग के कार्य (Functions of State Finance Commission)

राज्य वित्त आयोग द्वारा किये गये कार्यों की सूची निम्नवत है :

1) राज्य की विभिन्न पंचायती राज संस्थाओं और नगर निकायों की आर्थिक समीक्षा करना

2) राज्य आयोग की राज्य में पंचायती राज संस्था एवं स्थानीय निकायों को धन आबन्टन

3) वित्तीय मुद्दों के सम्बन्ध में में केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों के बीच एक मध्यस्थ की भूमिका निभाना

4) राज्य सरकारों द्वारा कर, फीस, टोल के रूप में ली गयी निधि को राज्य के विभिन्न नगर निकायों तथा पंचायती राज संस्था के बीच वितरित करना

9.10.2 राज्य वित्त आयोग द्वारा अनुदानित विभिन्न क्षेत्र (Work Areas of State Finance Commission)

राज्य वित्त आयोग द्वारा अनुदानित विभिन्न क्षेत्र निम्नवत हैं :

1) जिलों का प्रशासन (District Administration)
2) जेल प्रशासन (Jail Administration)
3) स्वास्थ्य देखभाल सेवाएं (Health Care Services)
4) सर्वजनिक पुस्तकालयों की उचित देखभाल (Upkeeping of Public Library)
5) पुलिस प्रशासन (Police Administration)
6) प्रारम्भिक शिक्षा (Elementary Education)
7) अग्निशमन सेवाएं (Fire Services)
8) अधोसंरचना विकास (Development of Physical Infrastructure)
9) राजकोषीय प्रशासन (Fiscal Administration)
10) विरासत संरक्षण (Heritage Conservation)

9.11 स्थानीय शासन व्यवस्था (Local Self Government)

ऐसी शासन व्यवस्था जो स्थान विशेष में कार्यशील रहती है, उसे स्थानीय शासन कहते हैं। स्थानीय शासन व्यवस्था प्रजातंत्र का प्रमुख आधार है। यह शासन व्यवस्था राजनैतिक चेतना को जागृत करने तथा प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। स्थानीय संस्थाओं का आकार व व्यय का रूप तथा आय की तीव्रता भले ही कम होती है, परंतु उसके उत्तरदायित्व बहुत अधिक होते हैं। स्थानीय संस्थाओं का प्रमुख उद्देश्य अधिकतम सामाजिक लाभ प्राप्त करना होता है। श्री जवाहर लाल नेहरू का कहना था– स्थानीय प्रशासन प्रजातंत्र की प्रकृति का सच्चा आधार है। स्थानीय शासन व्यवस्था पर समझने कि द्रष्टि से हमने इनको दो भागों में विभक्त किया है– प्राचीन विचार एवं आधुनिक विचार।

1 प्राचीन विचार (Classical Thoughts)

भारत में प्रारंभ से ही स्थानीय शासन की परंपरा रही है मुगलकाल तक ये स्थानीय संस्थाएं फलती फूलती रहीं। लोग साम्राज्यों, राज्यों के उत्थान पतन में भाग नहीं लेते थे। राजा और सम्राट आते थे और चले जाते थे, लोग अपने ग्राम और नगर की राजनीति में भाग लेते थे। इसलिये गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामायण में लिखा है कोऊ नृप होय, हमें का हानि ।

राधामुकुंद मुकर्जी ने अपनी पुस्तक में इन ग्रामीण तथा नगरीय संस्था की कार्य शैली पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि इनके कारण प्राचीन भारत में एक

प्रकार की निरंतरता रही और शासन धीरे–धीरे विकसित होता रहा। ये संस्थाएँ, नियमित रूप से केंद्रीय सरकार को कर देती रही हैं।

अलेक्सिस ही टाक्यूविले ने स्थानीय शासन के महत्व को दर्शाते हुये लिखा है कि ''स्थानीय स्वशासन की संस्थाएँ स्वतंत्र राष्ट्रो की नींव है, उनकी प्राण शक्ति है। कोई राष्ट्र एक स्वतंत्र प्रशासन व्यवस्था की स्थापना कर सकता है। शक्तिशाली केंद्रीय और राज्य सरकारों की स्थापना कर सकता है, किंतु जब तक उस राष्ट्र में स्वतंत्र स्वायत्त संस्थाओं की स्थापना नहीं होती, तब तक वहाँ के नागरिक स्वतंत्रता का उपभोग नहीं कर सकते हैं।''

2 आधुनिक विचार (Modern Thoughts)

लॉर्ड ब्राइस के अनुसार ''स्थानीय शासन की संस्थाएँ नागरिकता की प्रथम पाठशाला है। ये नागरिकों को राजनैतिक प्रशिक्षण देता है। नागरिक इसी स्तर पर विविध राजनैतिक दलों और दबाव समूहों का सदस्य बनता है या इनके कार्यो में रूचि लेता है, और इन्हीं के माध्यम से वह राष्ट्रीय राजनीति में प्रवेश करता है। नगर–निगमों में पार्षदों के पद पर कार्य करते हुए वह जो अनुभव और प्रशिक्षण प्राप्त होता है उससे विधायक और सांसद बनने की पथ प्रशस्त होता है।''

जी.डी.एच. कोल के अनुसार ''स्थानीय स्वशासन का तात्पर्य हम शासन के ऐसे स्वरूप से लेते हैं, जो एक समिति क्षेत्र के लिय कार्य करता है तथा प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग करता है।''

फ्रांस के विपरीत, जहाँ ऊपर से नीचे तक केन्द्रीयकरण है ब्रिटेन में स्थानीय सरकारों का बहुत विकास ही चुका है। ब्रिटिश लोकतंत्र को भारत को विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र संस्था बनाने में बहुत अधिक योगदान रहा है। क्लार्क, जन्क्स, एडवर्ड रॉबसन, फिनेर इत्यादि लेखकों ने इस पर प्रकाश डाला है।

प्रजातंत्र का सबसे बड़ा शिक्षालय लोकमत है जिसका निर्माण स्थानीय सरकारों के माध्यम से ही किया जा सकता है क्योंकि ये सरकारें जनता के सबसे ज्यादा निकट होती हैं इसी लिये कहा जाता है कि प्रजातंत्र की सफलता की सबसे बडी गारण्टी स्थानीय सरकारें ही सुनिश्चित करती हैं।

3 स्थानीय सन्स्थाओं के रूप (Forms of Local Self Government)

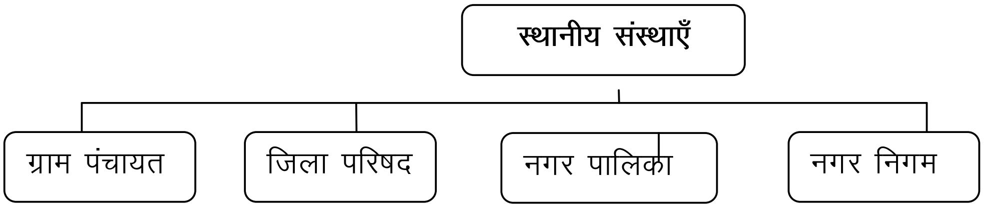

9.12 स्थानीय सत्ताओं की वित्त व्यवस्था (Financial System of Local Self Government)

भारतीय संविधान में दो वर्गो के स्थानीय निकायों के गठन का प्रावधान हैं– ग्रामीण तथा शहरी। क्षेत्रीय जनसंख्या के आधार पर ग्रामीण क्षेत्रों में ग्राम सभा, ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत, मध्यवर्ती निकाय तथा जिला पंचायत गठन करते है तो शहरी क्षेत्रों में नगर पालिका तथा नगर निगम गठित किये जाते हैं।

स्थानीय निकायों का यह कर्तव्य है कि वह अपने नागरिकों की प्राथमिक सुख सुविधाओं का ध्यान रखे। क्षेत्र में बिजली, पानी, सड़क, सफाई सीवर आदि की व्यवस्था ठीक रहे। लोगों को जन्म मरण आदि के प्रमाण पत्र समय से मिल सकें। असहायों को सहायता मिले। जाड़ा गर्मी वरसात में आने वाले कष्टों से निजात मिले। वृद्धावस्था पेंशन, रैन बसेरे, वृद्धाश्रम, शिक्षा, चिकित्सा आदि की व्यवस्था करना स्थानीय सरकार का कार्य है। इन कार्यो पर व्यय करने के लिये स्थानीय सरकारों को आय प्राप्त करने का अधिकार है जिसके मद निम्नवत हैं:–

- चुंगी कर विज्ञापन कर भूमि भवन कर
- वाहनों पर कर पशुओं पर कर व्यवसायों पर कर
- फीस, जुर्माने अनुदान ऋण

संविधान की वर्तमान व्यवस्थानुसार प्रत्येक राज्य के लिये प्रति पांचवें वर्ष एक राज्य वित्त आयोग गठित करना अनिवार्य है जो स्थानीय सरकारों की वित्तीय स्थिति सुधारने के सुझाव देगा।

9.13 स्थानीय वित्त के सिद्धान्त (Principles of Local Finance)

स्थानीय वित्त के मार्गदर्शक सिद्धान्त निम्न प्रकार हैं–

1) **प्रतिष्ठित सिद्धान्त (Classical Theory)**– प्राचीन काल से चला आ रहा यह सिद्धान्त इस लिये महत्वपूर्ण है क्योंकि ये सार्वजनिक वित्त का आधारभूत सिद्धान्त है जो यह मानता है कि सरकार को कर कम से कम लगाना चाहिये और कम से कम सार्वजनिक व्यय करना चाहिये। यह Let Alone का युग था। प्राचीन अर्थशास्त्री जैसे ऐडम स्मिथ, जे.बी.क्लार्क आदि शासन द्वारा व्यक्ति के कार्यो में कम से कम हस्तक्षेप के सिद्धान्त का समर्थक थे।
2) **अधिकतम सार्वजनिक हित (कल्याण) का सिद्धान्त (Principle of Maximum Social Advantage)**– स्थानीय सरकार को आय व्यय के माध्यम से अपनी जनता का अधिकतम कल्याण करना चाहिये। करों के माध्यम से प्राप्त आय का जनकल्याण और जनसुविधाओं से प्राप्त आय का जन कल्याण और जनसुविधाओं में उपयोग होना चाहिये। 20वीं सदी के अर्थशास्त्री प्रो. डॉल्टन के अनुसार सरकार को इस तरह व्यय करना चाहिये कि उससे प्राप्त लाभ, करों (अर्थात कर, फीस, फाइन इत्यादि) को लगाने से व्यक्ति को जो त्याग करना पड़ता है, उसके बराबर हो जायें। प्रो. पीगू द्वारा इस सिद्धांत को और आगे बढ़ाया गया, उन्होंने इसको अधिकतम सकल कल्याण सिद्धांत (Principle of Maximum Aggregate Welfare) का नाम दिया ।
3) **कार्यात्मक वित्त का सिद्धान्त (Principle of Functional Finance)**– यह सरकार के द्वारा अर्थव्यवस्था में किये जाने वाले कुल व्यय का इसलिए समायोजन करता है कि जिससे बेरोजगारी तथा मुद्रास्फीति को दूर किया जा सके। दूसरे यह सार्वजनिक उधार अथवा ऋण की वापसी के द्वारा धन के सार्वजनिक संग्रह का इसलिए समायोजन करता है जिससे ब्याज

की एक आदर्श दर प्राप्त की जा सके। इस सिद्धांत का प्रतिपादन प्रो.ए. पी. लर्नर द्वारा किया गया था।

4) **पूर्व–स्वीकृति का सिद्धान्त (Principle of Pre-Sanctions)**– स्थानीय सरकार अपने सदन से पूर्व अनुमति लेकर ही आय व्यय के मदों पर विचार करती हो। विना बजट पारित कराये न कोई कर लगाया जाना चाहिये और न कोई व्यय करना चाहिये। ऋण को उचित समय पर लौटाने हेतु शोधन कोष अथवा अन्य उचित प्रबंध करने चाहिये।

5) **उत्पादकता का सिद्धान्त (Principle of Productivity)**– एक अच्छी कर प्रणाली के इस सिद्धान्त के अनुसार किसी स्थानीय स्वशासन में व्यय इस प्रकार किया जाये कि उद्‌योग, व्यापार, वाणिज्य को प्रोत्साहन मिले, रोजगार के अवसर बढ़ें शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं और जीवर स्तर का विकास हो।

6) **औचित्य का सिद्धान्त (Principle of Rationality)**– स्थानीय सरकारों को आय व्यय की मदों को औचित्य के सिद्धान्तों के प्रकाश में देखना चाहिये। कर तभी लगे जब कर लगाना उचित हो और व्यय भी तभी हो जब व्यय करने का कोई औचित्य हो।

9.14 स्थानीय वित्त की समस्याएँ (Problems of Local Self Government)

स्थानीय वित्त संबंधी सिद्धांत की विवेचना करते हुए यह कहा जा सकता है कि स्थानीय सेवाओं के इस विभाजन से दो समस्याएँ उत्पत्र होती हैं, जो राज्य तथा स्थानीय सरकारों के वित्तीय संबंधों को निश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण हैं। ये समस्याएँ हैं **:**

1) कर एवं कर दरों में अन्तर
2) राज्य एव स्थानीय सरकार में समन्वय की कमी
3) समानता का अभाव
4) आय के अपर्याप्त साधन

स्थानीय वित्त और राष्ट्रीय वित्त में केवल इतना अंतर है कि पहले में कर राशि और उससे प्राप्त होने वाले प्रत्यक्ष लाभों के बीच संबंध स्थापित करना सरल होता है जबकि दूसरे में नहीं होता, यद्यपि हर कर की आय को करदाता पर ही खर्च किया जाता है। स्थानीय वित्त में पारदर्शिता बहुत आवश्यक है क्योंकि यहाँ सरकार और जनता का सम्बन्ध अति निकट का सम्बन्ध है स्थानीय सुदृढ़ता राष्ट्रीय एकता और शक्ति की दृष्टि से भी अति महत्वपूर्ण है।

स्थानीय शासन लोकतंत्र की आधार शिला है। विकास की दृष्टि से संस्थाएं व्यक्ति और सरकार के मध्य सेतु का काम करती हैं। यह सत्ता के विक्रेन्द्रीकरण का माध्यम है। ग्राम पंचायतों तथा नगर पालिकाओं के अपने संसाधन नाम मात्र के होते हैं। स्थानीय निकायों को संबंधित कानूनों के अनुसार अपने क्षेत्रों में कई मूलभूत सेवाएं प्रदान करनी पड़ती हैं। इसके अलावा ग्राम पंचायतों और नगर पालिकाओं को संघ एवं राज्य सरकारों द्वारा अनेक एजेंसी कार्य भी सौंपे जाते हैं। हालांकि, मूलभूत सेवाओं को प्रदान करने के लिए ये राज्य सरकार से मिलने वाले हस्तांतरण और राज्य तथा संघ सरकारों से मिलने वाले अनुदानों पर निर्भर हैं। मूल अनुदान का उद्‌देश्य ग्राम पंचायतों एवं नगर

पालिकाओं को बिना किसी शर्त के सहयोग प्रदान करना है ताकि वे संबंधित कानून के अंतर्गत उन्हें सौंपे गए मूलभूत कार्य कर सके। प्रदान दिए गए अनुदान का उपयोग मूलभूत नागरिक सुविधाओं के स्तर को सुधारने में किया जाएगा। किसी ने यह उचित ही कहा है कि स्थानीय शासन नागरिकों के जन्म से लेकर मृत्यु तक के सारे कार्य करता है। मनुष्य नगर में जन्म लेता है, बढ़ता, पढ़ता और कार्य करता है और अंत में नगर में ही दम तोड़ देता है। अतः स्कूल, अस्पताल, सड़क, पानी, फुटपाथों एवं स्ट्रीट लाइट, सीवरेज तथा ठोस अपशिष्ट प्रबंधन, सेप्टैज प्रबंधन सहित स्वच्छता, सामुदायिक परिसंपत्तियों का रख–रखाव, यहाँ तक कि श्मशान और कब्रिस्तान सभी कुछ नागरिक सुविधाऐं उपलब्ध कराना स्थानीय प्रशासन का ही दायित्व है। गर्भ से कब्र तक व्यक्ति नागरिक सेवाओं का उपभोक्ता रहता है।

स्थानीय सरकारें नागरिकता की प्रथम पाठशाला हैं यहीं व्यक्ति राजनीति सीखता है और सीख कर पार्षद से प्रधानमंत्री पद की यात्रा का टिकिट पा जाता है। नगरीय राजनीति राष्ट्रीय नेताओं की प्रशिक्षण स्थली है। अधिकांश राष्ट्रीय स्तर के नेताओं की यात्रा ग्राम पंचायत से ही राष्ट्रीय पंचायत तक होती है।

स्थानीय शासन जनसमस्याओं का तत्काल समाधान सुलभ कराता है और इसलिये इन संस्थाओं को लोक शासन की नींव माना जाता है।

9.15 सारांश

भारत को राज्यों के संघ के रूप में संविधान की व्यवस्थाओं से अनुशासित संसदीय कार्यप्रणाली का अनुसरण करने वाला लोकतांत्रिक राष्ट्र के रूप में जाना जाता है। संघीय सरकार होने के कारण भारत त्रिस्तरीय व्यवस्था के तहत केन्द्र सरकार, राज्य सरकार अथवा केन्द्र शासित प्रदेश की स्वतन्त्र सरकार एवं स्थानीय सरकार के वित्तीय अधिकार एवं उनके आय.व्यय की मदें स्पष्ट रूप से निर्धारित हैं। केन्द्र राज्य के सम्बन्धों को भारत सरकार अधिनियम 1935 में परिभाषित किया गया है। वर्तमान भारतीय संविधान इसी कानून के प्रकाश में बनाया गया है।

एकक शासन तथा संघीय व्यवस्था में मुख्य अन्तरों को स्पष्ट करते हुए संघीय वित्त व्यवस्था के स्तरों को संविधान के 73वें तथा 74वें संशोधन के बारे में बताया गया है । संघीय वित्त व्यवस्था की मुख्य विशेषताऐं बहुस्तरीय शासन पद्धति, समन्वय एवं सहयोग, जनकल्याण का भाव, सार्वजनिक कार्यो के क्षेत्रों का स्पष्ट निर्धारण, आय की मदों का स्पष्ट विभाजन एवं अनुदान की व्यवस्था हैं। संघवाद के प्रमुख सिद्धान्त हितलाभ प्रावधान, स्वायत्ता, एक रूपता, मितव्ययता, दक्षता, अथवा कार्यकुशलता, साधनों का वितरण एवं संघीय प्रबन्ध तथा प्रशासन का सिद्धान्त शामिल हैं।

भारतीय संविधान के तहत केन्द्र तथा राज्य सरकार की आय के स्रोत जिसमें केन्द्र की प्रथम अनुसूची की विभिन्न श्रेणियां I, II, III एवं IV के अनुसार विभाजित है तथा राज्य सरकार की द्वितीय अनुसूची के अतिरिक्त धारा–273 के प्रावधान के अनुसार सहायता एवं अनुदान शामिल हैं।

वित्तीय अनुशासन बनाये रखने हेतु राष्ट्रपति द्वारा नियंत्रक एवं महालेखाकार की नियुक्ति की जाती है। केन्द्र तथा राज्य सरकारों के मध्य संसाधनों के आवंटन को न्यायपूर्ण और पारदर्शी बनाये रखने हेतु भारतीय संविधान

की धारा 280 के तहत वित्त आयोग का गठन राष्ट्रपति द्वारा 5 वर्ष अथवा इससे कम अवधि के लिए किया जाता है जोकि विभिन्न मदों पर अपनी संस्तुति देता है। धारा 280(3) के अन्तर्गत वित्त आयोग राष्ट्रपति को अपनी संस्तुति प्रस्तुत करता है जिसमें केन्द्र तथा राज्य सरकारों के मध्य कर व प्रशुल्क के बटँवारे, भारतीय संचित निधि में राज्य सरकारों को दी जाने वाली सहायता एंव अनुदान तथा सुदृढ़ वित्त के हित में अन्य विषय जिस पर राष्ट्रपति केन्द्रीय वित्त आयोग की सिफारिशें जानना चाहते हैं, पर अपनी संस्तुति देगा। इसके अतिरिक्त आयोग का कार्य राज्यों के संसाधनों को बढ़ाने हेतु उपाय और पंचायतों एवं नगर पालिकाओं के संसाधनों हेतु पूरक उपाय सुझाना भी होता है। स्वतन्त्रता के पश्चात से अब तक चौदह वित्त आयोग गठित हो चुके हैं जिनमें प्रथम आयोग वर्ष 1951 में तथा 14वाँ आयोग जनवरी 2013 में गठित हुआ।

सामान्यतः स्थानीय शासन व्यवस्था को जनसंख्या के आधार पर दो भागों में विभक्त किया गया है– ग्रामीण तथा शहरी। क्षेत्रीय जनसंख्या के आधार पर ग्रामीण क्षेत्रों में ग्राम सभा, ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत, मध्यवर्ती निकाय तथा जिला पंचायत गठन करते है तो शहरी क्षेत्रों में नगर पालिका तथा नगर निगम गठित किये जाते हैं। स्थानीय निकायों का यह कर्तव्य है कि वह अपने नागरिकों की सुख सुविधाओं का समग्र रूप से ध्यान रखे सभी कार्यो पर व्यय करने के लिए स्थानीय सरकारों को आय प्राप्त करने का अधिकार है जिसमें चुंगी कर, विज्ञापन कर, भूमि भवन कर, वाहन कर, पशुओं पर कर, व्यवसायों पर कर, फीस जुर्माना एवं अनुदान शामिल हैं।

स्थानीय वित्त के मार्गदर्शक सिद्धान्तों में प्रतिष्ठित सिद्धान्त अधिकतम सार्वजनिक हित, स्वीकृति तथा औचित्य का सिद्धान्त शामिल है। स्थानीय तथा राज्य सरकारों के वित्तीय संबन्धों में दो प्रकार की समस्याएँ प्रमुखतः जन्म लेती है–स्थानीय करों की न्यायशीलता या समानता एवं स्थानीय सेवाओं का वित्तीय सम्बन्ध।

विकास की दृष्टि से स्थानीय संस्थाएँ व्यक्ति और सरकार के मध्य सेतु का काम करती है तथा विकेन्द्रीकरण का माध्यम हैं। किसी ने उचित ही कहा है कि स्थानीय शासन जन्म से लेकर मृत्यु तक के सारे कार्य करता है अतः वह गर्भ से कब्र तक नागरिक सेवाओं का उपभोक्ता रहता है चूँकि स्थानीय शासन जनसमस्याओं का समाधान सुलभ कराता है इसलिये इन संस्थाओं को लोक शासन की नींव माना जाता है।

9.16 शब्दावली

एकक शासन व्यवस्था– एक राष्ट्र मे पूरी तरह एक सरकार का होना एकक शासन व्यवस्था कहलाता है। यहाँ कानून बनाने, लागू करने और अनुशासन व्यवस्था बनाये रखने का दायित्व और अधिक केन्द्रीय सरकार के हाथों मे केन्द्रित होता है।

संघीय शासन व्यवस्था– इस व्यवस्था में केन्द्रीय सरकार के अतिरिक्त प्रान्तीय, क्षेत्रीय तथा स्थानीय सरकारें होती हैं जिनमें अधिकार और दायित्त्वों का विभाजन हो जाता है। यह सभी सरकारों के समन्वय से कार्य करती हैं अतः उसके स्वेच्छाचारी होने की आशंका कम होती है।

संघवाद– संघवाद केन्द्र राज्य और स्थानीय सरकारों के वित्तीय सम्बन्धों का तथा राजकोषीय सीमाओं का निर्धारण करता है। राजकोषीय संघवाद को वित्तीय संघवाद अथवा संघीय वित्त के रूप में भी जाना जाता है।

भारत सरकार अधिनियम 1935 – भारत सरकार अधिनियम 1935 में भारतीय प्रतिनिधियों की रिपोर्ट तथा तीन गोलमेज सम्मेलनों में हुये कुछ विचार–विमर्श के आधार पर 1935 ई. का अधिनियम पारित हुआ जोकि काफ़ी लम्बा एवं जटिल था। इसे 3 जुलाई, 1936 को आंशिक रूप से लागू किया गया, किन्तु पूर्णरूप से चुनावों के बाद अप्रैल, 1937 में यह लागू हो पाया। इसमें केन्द्र राज्य संबंधो को विस्तार से परिभाषित किया गया। वर्तमान भारतीय संविधान इसी अधिनियम के प्रकाश में बनाया गया है।

देशमुख अवार्ड– सन 1952 में श्री चिन्तामणि देशमुख की अध्यक्षता में केन्द्र एवं राज्य सरकार को दिये जाने वाले आय के भाग व अनुदान के लिये आयोग का गठन किया गया । आयोग की अनुशंसाओं को देशमुख अवार्ड के नाम से जाना जाता है।

वित्त आयोग– संघ एवं राज्य के मध्य वित्तीय सम्बन्धों को अनुशासित करने हेतु भारतीय संविधान के अनुच्छेद 280 में केन्द्रीय वित्त आयोग (Central Finance Commission) के गठन का प्रावधान है जिसके अनुसार देश के राष्ट्रपति प्रत्येक 5 वर्ष के पश्चात और यदि आवश्यकता पड़ी तो उससे पहले भी वित्त आयोग का गठन कर सकते हैं। वित्त आयोग एक संवैधानिक संस्था है। वित्त आयोग की संरचना में सामन्यतः अध्यक्ष, सदस्यों तथा सचिव की महत्त्पूर्ण भूमिका रहती है।

राज्य वित्त आयोग– देश के विभिन्न राज्यों में भारत के संविधान में निर्धारित अनुच्छेद 243 (आई) 243 (वाई) के दिशा निर्देशों के अनुसार महामहिम श्री राज्यपाल द्वारा पंचायती राज एवं स्थानीय निकाय हेतु एक राज्य आयोग गठन उत्तर प्रदेश पंचायती राज अधिनियम 1947 की धारा 32 (क) के तहत पांच वर्ष के अन्तराल पर किया जाता है। राज्य वित्त आयोग को संघ सरकार से अनुदान प्राप्त होता है।

स्थानीय सरकार– गाँव, कस्बे, शहर, जनपद स्तर पर कार्यरत पंचायत, नगर पालिका, नगर निगम एवम जिला पंचायत आदि को स्थानीय सरकार की सन्ज्ञा दी जाती है।

9.17 बोध प्रश्न

I) **वैकल्पिक प्रश्न**

1) संघीय व्यवस्था होने के कारण राष्ट्र में किस प्रकार की व्यवस्था है :–

i) एकक शासन व्यवस्था

ii) त्रिस्तरीय सरकार

iii) उपर्युक्त सभी

iv) उक्त में से कोई नहीं

2) वित्त आयोग के सम्बन्ध में कौन सा कथन सत्य है ?

i) यह एक संवैधानिक संस्था है।

ii) इसका गठन संविधान की धारा 280 के तहत किया जाता है।

iii) 14वें वित्त आयोग के अध्यक्ष डॉ वाई0वी0 रेड्डी हैं ।

iv) उपर्युक्त सभी

3) लोक वित्त का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है :

i) अधिकतम कल्याण

ii) बेरोजगारी

iii) पूर्ण रोजगार

iv) अधिकतम आय

4) केंन्द्र सूची की प्रथम अनुसूची के अनुसार केंद्रीय सरकार के आय स्रोत में सम्मिलित नही है :

i) वे कर जिन्हें केंद्र आरोपित करेगा व उसकी समस्त आय स्वयं अपने पास रखेगा

ii) वे कर जो केंद्र सरकार द्वारा आरोपित होंगे एवं आय को राज्य सरकारों के मध्य वितरित किया जायेगा

iii) वे कर जो केंद्र द्वारा आरोपित होंगे, परंतु प्राप्त आय, राज्यों को हस्तांतरित होगी

iv) उक्त मे से कोई नहीं

5) निम्न मे से कौन सा सिद्धान्त संघवाद के सिद्धान्त मे शामिल है :

i) हित लाभ प्रावधान सिद्धान्त

ii) एक रूपता का सिद्धान्त

iii) उपर्युक्त (i) एवम (ii) दोनों

iv) उक्त मे से कोई नहीं

II) निम्न लिखित मे ंसे कौन सा कथन सत्य है और कौन सा असत्यः

6) संघीय वित्त व्यवस्था वह व्यवस्था है जिसमें आय व्यय की मदें केन्द्र, राज्य और स्थानीय सरकारों के बीच बांट दी जाती हैं । (सत्य/असत्य)

7) भारत सरकार अधिनियम 1935 के अनुसार भारतीय संविधान में केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों के वित्तीय संबंध स्पष्टतः परिभाषित हैं । (सत्य/असत्य)

8) प्रथम वित्त आयोग के अध्यक्ष दादा भाई नैरोजी थे। (सत्य/असत्य)

9) सार्वजनिक आय के मद दो प्रकार के होते हैं और कर तथा गैर–कर। (सत्य/असत्य)

10) स्थानीय वित्त का आधारभूत सिद्धान्त अर्थात प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अनुसार सरकार को अधिक से अधिक लगाना चाहिये और कम से कम सार्वजनिक व्यय करना चाहिये। । (सत्य/असत्य)

9.18 बोध प्रश्नों के उत्तर

I) वैकल्पिक प्रश्न

1) ii 2) iv 3) i 4) iv 5) iii

II) सत्य/असत्य

6) सत्य 7) सत्य 8) असत्य 9) सत्य 10) असत्य

9.19 स्वपरख प्रश्न

1) संघीय वित्त व्यवस्था से आप क्या समझते है स्वतन्त्रता के पश्चात संघीय वित्त के क्रमिक विकास को समझाकर लिखिये ?
2) संघीय वित्त व्यवस्था राजस्व की सर्वश्रेष्ठ प्रणाली है इस कथन की व्याख्या कीजिये तथा संघीय वित्त के सिद्धान्तों को स्पष्ट समझाइये ?
3) ''वित्त आयोग एक संवैधानिक स्वायत्तशासी संस्था है जिसका केन्द्र व राज्य के मध्य वित्तीय सम्बन्ध मधुर बनाये रखने में महत्वपूर्ण योगदान है।'' उक्त कथन पर टिप्पणी करते हुए वित्त आयोग के कार्यकरण पर प्रकाश डालिये ।
4) निम्नलिखित मे अन्तर स्पष्ट करिये :–
   i) एकक शासन व्यवस्था एवं संघीय शासन व्यवस्था
   ii) केन्द्रीय वित्त आयोग एव राज्य वित्त आयोग
   iii) संघीय वित्त एव स्थानीय वित्त
5) स्थानीय वित्त व्यवस्था की विभिन्न मदों को बताइये । स्थानीय वित्त के सिद्धान्तों पर टिप्पणी लिखिये।

9.20 सन्दर्भ पुस्तकें

1. राजस्व : डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय
2. लोकवित्त : डॉ0 एस0 के0 सिंह
3. राजस्व : डॉ0 आर0 एस0 कौशिक
4. राजस्व सिद्धान्त एवं व्यवहार : के0 एल0 माहेश्वरी
5. Delton, H : Principles of public Finance
6. Public Finance Theory and Practice : Mehta and Agrawal
7. Shirras, Findley : The Science of Public Finance
8. Hicks, Ursula : Public Finance
9. A.C. Pigou : A Study of Public Finance
10. Taylor P.E. : Economics of Public Finance
11. Raja J Chhelliah : Fiscal Policy in under developed Countries.

इकाई 10 नवीनतम वित्त आयोग की संस्तुतियाँ (Recommendations of the Latest Finance Commission)

इकाई की रुपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 नियुक्त वित्त आयोगों का विवरण
10.3 पूर्ववर्ती वित्त आयोगों की संस्तुतियाँ
10.3.1 राजस्व तथा कुल व्यय में संघ और राज्यों का परस्पर अंश
10.3.2 अंतर–सरकारी अंतरण तथा समेकित लोक वित्त की समीक्षा
10.4 संघ और राज्य वित्त व्यवस्था का सार
10.5 चौदहवां वित्त आयोग –महत्त्वपूर्ण विषयक
10.5.1 चौदहवें वित्त आयोग का गठन
10.5.2 मुद्दे एवं दृष्टिकोण
10.6 चौदहवें वित्त आयोग की संस्तुतियाँ
10.6.1 संघीय कर राजस्वों की हिस्सेदारी
10.6.2 स्थानीय सरकारें
10.6.3 आपदा प्रबंधन
10.6.4 सहायता अनुदान
10.6.5 सहयोगात्मक संघवाद की दिशा में
10.6.6 वस्तु और सेवा कर
10.6.7 राजकोषीय परिवेश एवं राजकोषीय समेकन रोडमैप
10.6.8 लोकपयोगी सेवाओं का मूल्य निर्धारण
10.6.9 सार्वजनिक क्षेत्र उद्यम
10.6.10 सार्वजनिक व्यय प्रबन्धन
10.7 चौदहवें वित्त आयोग द्वारा सिफारिश किए गए अंतरण
10.7.1 विभिन्न राज्यों को आवंटित राशि
10.7.2 सकल कर राजस्व, राजस्व प्राप्तियां और जीडीपी की प्रतिशतता के रूप में कुल अंतरण
10.8 सारांश
10.9 शब्दावली
10.10 बोध प्रश्न
10.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
10.12 स्वपरख प्रश्न
10.13 सन्दर्भ पुस्तकें

उददेश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- स्वतंत्रता के पश्चात नियुक्त वित्त आयोगों का विवरण जान सकें ।
- पूर्ववर्ती वित्त आयोगों की संस्तुतियों की जानकारी प्राप्त कर सकें ।

- 14वें वित्त आयोग की प्रमुख सिफारिशों और उनके प्रभावों से भी परिचित हो सकें।

10.1 प्रस्तावना

केन्द्र राज्य वित्त सम्बन्ध मधुर रहें इस हेतु संविधान के अनुच्छेद 280 केन्द्रीय के तहत वित्त आयोग के गठन का प्रावधान है। भारत के राष्ट्रपति महोदय प्रति 5 वर्ष पश्चात् एक वित्त आयोग का गठन करते हैं। आवश्यकता पड़ने पर पांच वर्ष से कम की अवधि में भी वित्त आयोग का गठन किया जा सकता है। वित्त आयोग नीति निदेशक सिद्धान्तों के माध्यम से केन्द्र सरकार द्वारा संग्रहित करों का राज्यों में वितरण किस प्रकार हो, भारतीय संचित निधि में से राज्यो को किस प्रकार सहायता प्रदान की जाये तथा केन्द्र किस आधार पर राज्यों को अनुदान एवं सहायता सुलभ कराये, सुदृढ़ वित्त के हित में राष्ट्रपति द्वारा आयोग के निर्दिष्ट किये गए किसी अन्य विषय के बारे में जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर अपनी आख्या प्रस्तुत करता है। वित्त आयोग की भूमिका और महत्वपूर्ण हो जाती है जब केन्द्र व विभिन्न राज्यों में भिन्न राजनीतिक दल की सरकार हो क्योंकि भिन्न-भिन्न राजनीतिक दलों की प्राथमिकताएं भिन्न होती है और उसका समायोजन एक कठिन कार्य है।

भारत के सन्दर्भ में कुछ बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है जो कि इस प्रकार हैं– i) राज्यों की वित्तीय स्थिति ii) प्राकृतिक सन्साधन iii)जलवायु एवम कृषि व्यवस्था iv)जनसंख्या व सामाजिक रीतियां तथा v) राज्यों के आर्थिक विकास की स्थिति । संघ सरकार ने समय के बदलते स्वरूप के अनुसार नीति निर्धारण में इन बातों को ध्यान में रखा है और अब पहले की तुलना में काफी बदलाव भी आया है ।

14वें वित्त आयोग में सहयोगपूर्ण संघवाद, जी.एस.टी. आदि तमाम उपायों के माध्यम से बदलाव लाने के प्रयास जारी हैं उदाहरण के तौर पर यदि देखा जाये तो संविधान में परिकल्पित संघीय ढांचे के तहत् ज्यादातर कराधान शक्तियाँ केन्द्र के अधीन होती हैं लेकिन थोक खर्चे राज्यों द्वारा व्यय किये जाते हैं। जी.एस.टी. के लागू होने से पूर्व ऐसे संघीय संरचना में केंद्र जो आयकर और उत्पाद शुल्क एवं सीमा शुल्क जैसे अप्रत्यक्ष करों को वसूलता था, जिसकी वजह से संसाधनों के राज्यों को हस्तांतरित करने की आवश्यकता महसूस होती थी। इसलिए राज्य की आबादी, राज्य की राजकोषीय स्थिति, राज्य का वन क्षेत्र, आमदनी का अंतर और क्षेत्रफल के आधार पर विभिन्न राज्यों के बीच उचित आबंटन आवश्यक हो गया था। परन्तु जी.एस.टी. के लागू हो जाने के पश्चात् केंद्र और राज्य सरकारों के मध्य संबंधो की नयी इबारत लिखने की तैयारी शुरू हो चुकी है जिसमें केन्द्र और राज्य सरकार के मध्य वित्तीय राशि के उचित आबंटन द्वारा वित्त आयोग की एक बड़ी भूमिका की उम्मीद है।

10.2 नियुक्त वित्त आयोगों का विवरण (List of Appointed Finance Commission)

संविधान लागू होने के पश्चात से अब तक 14 वित्त आयोगों का गठन हो चुका है जिनके गठन का वर्ष, अध्यक्ष का नाम, क्रियान्वन वर्ष तथा रिपोर्ट देने के वर्ष की सूचना निम्नवत है–

भारत के वित्त आयोग

क्रमांक	गठन का वर्ष	अध्यक्ष का नाम	क्रियान्वयन वर्ष	रिपोर्ट देने का वर्ष
प्रथम वित्त आयोग	22 नवम्बर 1951	के0सी0 नियोगी	1952-57	31 दिसम्बर 1952
द्वितीय वित्त आयोग	जून 1956	के0 सन्थानम	1957-62	सितम्बर 1957
तृतीय वित्त आयोग	2 दिसम्बर 1960	ए0के0 चन्दा	1962-66	6 दिसम्बर 1961
चतुर्थ वित्त आयोग	5 मई 1964	डॉ0 पी0वी0 राजमन्नार	1966-69	अगस्त 1965
पांचवाँ वित्त आयोग	15 मार्च 1968	महावीर त्यागी	1969-74	31 जुलाई 1969
छठा वित्त आयोग	28 जून 1972	ब्रह्मानन्द रेड्डी	1974-79	8-9 दिसम्बर 1973
सातवाँ वित्त आयोग	23 जून 1977	जे0एम0 शेलेट	1979-84	31 अक्टूबर 1978
आठवाँ वित्त आयोग	20 जून 1982	वाई0बी0 चव्हाण	1984-89	30 अप्रैल 1984
नौवाँ वित्त आयोग	17 जून 1987	एन0के0पी0 साल्वे	1990-95	1 मार्च 1990
दसवाँ वित्त आयोग	26 नवम्बर 1994	के0सी0 पन्त	1995-2000	26 नवम्बर 1994
ग्यारहवाँ वित्त आयोग	3 जुलाई 1998	ए0एम0 खुसरो	2000-05	31 अगस्त, 2000
बारहवाँ वित्त आयोग	1 नवम्बर 2002	सी0 रंगराजन	2005-10	30 नवम्बर, 2004
तेरहवाँ वित्त आयोग	नवम्बर 2007	विजय केलकर	2010-15	30 दिसम्बर, 2009
चौदहवाँ वित्त आयोग	2 जनवरी 2013	वाई0वी0 रेड्डी	2015-2020	15 दिसम्बर 2014

10.3 पूर्ववर्ती वित्त आयोगों की संस्तुतियाँ (Recommendations of Previous Finance Commission(s)

विभिन्न वित्त आयोगों की संस्तुतियों को सार रूप में निम्नलिखित ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि 80वें संशोधन से पूर्व वित्त आयोग का करारोपण और उगाही संबंधी सिफारिश करने का अधिकार नही था और न ही सकल विभाज्य पूंजी (Divisible Pool) की अनुमान विधि में परिवर्तन की सिफारिश करने की अधिकार था। जून 2000 में हुये 80वें संशोधन के पश्चात भारत सरकार द्वारा लगाये और वसूले गये सभी कर अनिवार्य रूप से केन्द्र राज्य के बीच विभाज्य हो गये है।

यद्यपि अब तक चौदह वित्त आयोग अपनी संस्तुतियाँ प्रस्तुत कर चुके हैं अध्ययन की दृष्टि से पुराने आयोगों की संस्तुतियों का केवल ऐतिहासिक महत्व है अतः इस इकाई में पूर्ववर्ती वित्त आयोग की संस्तुतियों का सारांश तथा उसके बाद 14वें आयोग की संस्तुतियों को विस्तृत रूप में सम्मिलित किया गया है।

10.3.1 राजस्व तथा कुल व्यय में संघ और राज्यों का परस्पर अंश

प्रस्तुत तालिका 10.1 में प्रथम से तेरहवें आयोग तक राजस्व तथा कुल व्यय में संघ और राज्यों के परस्पर अंश का विवरण निम्नवत है–

तालिका **10.1** : **राजस्व तथा कुल व्यय में संघ और राज्यों का परस्पर अंश**

(परस्पर अंश)

वित्त आयोग	कुल व्यय		राजस्व व्यय	
	संघ	राज्य	संघ	राज्य
पहला वित्त आयोग	43.83	56.17	40.77	59.23
दूसरा वित्त आयोग	49.47	50.53	41.83	58.17
तीसरा वित्त आयोग	50.51	49.49	46.1	53.9
चौथा वित्त आयोग	47.69	52.31	41.77	58.23
पांचवा वित्त आयोग	43.14	56.86	40	60
छठा वित्त आयोग	47.35	52.65	44.19	55.81
सातवां वित्त आयोग	44.79	55.21	41.98	58.02
आठवां वित्त आयोग	47.86	52.14	44.22	55.78
नौवां वित्त आयोग	45.58	54.42	43.45	56.55
दसवां वित्त आयोग	43.35	56.65	43.18	56.82
ग्यारहवां वित्त आयोग	43.77	56.23	44.03	55.97
बारहवां वित्त आयोग	46.08	53.92	47.59	52.41
तेरहवां वित्त आयोग	46.64	53.36	47.16	52.84
समग्र औसत	**46.16**	**53.84**	**43.56**	**56.44**

टिप्पणी: तीन वर्षो का औसत (वर्ष 2010-11 से 2012-13) सीधे अंतरण पर व्यय को राज्यों में शामिल नहीं किया गया है।

स्रोत : भारतीय लोक वित्त सांख्यिकी

10.3.2 अंतर–सरकारी अंतरण तथा समेकित लोक वित्त की समीक्षा

वित्त आयोग के अंतरणों के सापेक्ष हिस्से तथा राज्य सरकारों को राजस्व अंतरण के अन्य माध्यमों को तालिका 10.2 में प्रस्तुत किया गया है। रुझान दिखाते हैं कि वित्त आयोग के अंतरण में कर अंतरण तथा राज्यों के अनुदान शामिल हैं जो राज्यों के अंतरण के मुख्य स्रोत्र रहे हैं। ये अंतरण आठवें वित्त आयोग की संबंधित अवधि के 60.1 प्रतिशत कुल अंतरण से बढ़कर दसवें वित्त आयोग की निर्धारित अवधि में 68.6 प्रतिशत हो गए तथा बारहवें वित्त आयोग की अवधि तक यह स्थिर बने रहे। वर्ष 2014-15 में अंतरणों में महत्वपूर्ण संघटनात्मक बदलाव हुआ है। वर्ष 2014-15 के दौरान सीधे अंतरणों को राज्य सरकारों के गैर–सांविधिक योजना अंतरण के अंदर लाया गया है।

तालिका 10.2 : **संघ से राज्यों को राजस्व अंतरण**

राजस्व अंतरणों का प्रतिशत

आयोग	वित्त आयोग अंतरण			अन्य अंतरण			कुल अंतरण (4+7)	जीडीपी प्रतिशतता के रूप में कुल अंतरण
	संघ करों में अंश	अनुदान	कुल योग	योजना आयोग	गैर योजना अनुदान	कुल अन्य अंतरण		
1	**2**	**3**	**4**	**5**	**6**	**7**	**8**	**9**
आठवां वित्त आयोग	53.48	6.65	60.13	35.80	4.07	39.87	100	4.83
नौवां वित्त आयोग	52.98	8.48	61.46	35.91	2.63	38.54	100	4.89

दसवां वित्त आयोग	62.06	6.55	68.61	29.52	1.87	31.39	100	4.09
ग्यारहवां वित्त आयोग	58.38	11.00	69.38	28.65	1.97	30.62	100	4.16
बारहवां वित्त आयोग	56.79	12.12	68.91	28.34	2.75	31.09	100	4.86
तेरहवां वित्त आयोग	57.94	9.51	67.44	31.14	1.42	32.56	100	4.95
2010–11	58.6	8.42	67.02	28.32	4.66	32.98	100	4.81
2011–12	59.29	10.21	69.05	28.96	1.54	30.5	100	4.78
2012–13	6.46	9.7	72.16	27.44	0.4	27.84	100	4.62
2013–14 (संशोधित अनुमान)	61.91	10.76	72.67	26.27	1.06	27.33	100	4.53
2014–15 (बजट अनुमान)	51.25	8.67	59.92	39.49	0.59	40.08	100	5.79

टिप्पणीः यह राजस्व लेखा अंतरण हैं (राज्य कार्यान्वयन एजेंसियों को सीधे अंतरण के अलावा)। बारहवें वित्त आयोग से पहले योजना सहायता में ऋण घटक था, जो सामान्य श्रेणी राज्यों के लिए 70 प्रतिशत से विशेष श्रेणी वाले राज्यों के लिए 10 प्रतिशत की कुल सहायता के अंश के रूप में अलग–अलग है। वर्ष 1999–2000 से पहले संघ द्वारा राज्यों को लघु बचत योजनाओं में निवल प्राप्ति की आन–लेंडिंग की जाती थी।

** इसमें सभी अंतरण शामिल हैं, वह भी जो संघ सरकार द्वारा सीधे कार्यान्वयन एजेंसियों को वर्ष 2014–15 से पहले भेजे गए थे।

(स्रोतः) भारतीय लोक वित्त सांख्यिकी और संघ वित्त तथा लेखा और संघ बजट दस्तावेज के मूल आंकड़े

वित्त आयोग के अंतरण सर्वाधिक कर अंतरण और कुछ सीमा तक अनुदानों के रूप में हैं। अनुदानों में गैर–योजना राजस्व घाटा अनुदान, स्थानीय निकायों को अनुदान, आपदा प्रबंधन के लिए अनुदान, क्षेत्र विशिष्ट अनुदान तथा राज्य विशिष्ट अनुदान शामिल हैं। ग्यारहवें वित्त आयोग की अवधि में राजस्व अंतरण का 11 प्रतिशत वित्त आयोग अनुदान हेतु घोषित किया गया था और बारहवें वित्त आयोग ने इसे 12 प्रतिशत तक बढ़ा दिया। यद्यपि तेरहवें वित्त आयोग की निर्धारित अवधि में इस अंश में गिरावट आई और यह 9.5 प्रतिशत हो गया।

10.4 संघ और राज्य वित्त व्यवस्था का सार (Essence of Union & State Finances)

आयोग को संघ और राज्य की वित्तीय व्यवस्था के अनेक पहलुओं पर गहन विचार की तरफ ले जाता है। ध्यान देने योग्य बिंदु निम्नवत हैं :

i) सबसे **पहले** यह जरूरी है कि संघ के वित्त साधनों पर समग्र रूप से विचार किया जाए, जिसका करों का विभाज्य पूल एक मुख्य घटक है।

ii) **द्वितीय,** संघ सरकार से राज्यों के कुल अंतरण पर विचार किया जाना चाहिए जिसके लिए वित्त आयोग द्वारा किए जाने वाले अंतरण एक घटक है।

iii) **तृतीय,** संघ तथा राज्य के राजस्व व्यय पर समग्र रूप में विचार किया जाए जिससे गैर–योजना के तहत राजस्व व्यय एक मुख्य घटक है।

iv) **चौथे** राजकोषीय परिवेश पर विचार करते समय संघ और राज्यों के समेकित सार्वजनिक ऋण पर भी विचार करना चाहिए। परिणामतः राज्यों के कुल ऋण और राजकोषीय नियमों को एक घटक के रूप में और संघ सरकार के ऋण

तथा उसके लिए उत्तरदायी राजकोषीय प्रबंधन को अन्य घटक के रूप में देखना चाहिए।

v) **पांचवां** संघ और राज्य दोनों को ही जरूरत के समय काउंटर साइक्लीकल पॉलिसीज को लागू करने तथा वैश्विक अनिश्चिताओं और अनिश्चित मानूसन स्थिति से पड़ने वाले प्रभाव के प्रबंधन हेतु उपयुक्त राजकोषीय समेकन उपाय करने होंगे। इस संदर्भ में संघ के वित्तीय साधन महत्वपूर्ण हैं।

vi) **छठा** यद्यपि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए संघ और राज्यों दोनो में ही अनुकूल राजकोषीय वातावरण बनाए रखना महत्वपूर्ण है, संघ सरकार की राजकोषीय नीतियां सभी कारणों के संदर्भ में अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती हैं। वास्तव में संघ वित्त साधनों में राजकोषीय दबावों की वर्तमान स्थिति को ध्यान में रखते हुए अर्थव्यवस्था के बेहतर परिवेश को सुनिश्चित करने के क्रम में आयोग की अवधि के दौरान जिम्मेवार तथा विश्वसनीय राजकोषीय नीतियां बनाए जाने की जरूरत है।

vi) **अंततः** समीक्षा अवधि के दौरान विश्वसनीयता की दृष्टि से चिंता होने के कारण राजकोषीय नीतियों के आयोजन में अनिश्चिताएं उत्पन्न हो गईं। यह ऐसे संस्थागत प्रक्रिया तंत्र की आवश्यकता का द्योतक हैं जिससे सुनिश्चित रूप से राजकोषीय नीति में अधिक विश्वसनीयता बढ़ाई जा सके. जो कि सामान्य रूप में लोक नीति की साख के लिए महत्वपूर्ण है।

10.5 चौदहवां वित्त आयोग –महत्त्वपूर्ण विषयक (14th Finance Commission- Important Aspects)

इकाई के इस भाग में चौदहवें वित्त आयोग के महत्त्वपूर्ण घटकों का विवरण दिया हुआ है जिससे छात्र वर्तमान आयोग के गठन, मुद्दे एवं दृष्टिकोण, विचारार्थ विषय, आयोग के दृष्टिकोण, सममिति, व्यापकता एवं विश्वास इत्यादि के बारे में जानकारी हासिल कर सकेंगे।

10.5.1 चौदहवें वित्त आयोग का गठन

राष्ट्रपति द्वारा 14वें वित्त आयोग (एफसी–XIV) की स्थापना संविधान के अनुच्छेद 280 के अधीन दिनांक 2 जनवरी, 2013 को वर्ष 2015-20 की समयावधि हेतु सिफारिशें प्रदान करने के लिए की गई थी। 14वें वित्त आयोग का गठन 2 फरवरी 2013 को रिजर्व बैंक के पूर्व गवर्नर श्री वाई0वी0 रेड्डी की अध्यक्षता में 14वें वित्त आयोग का गठन किया गया। इस आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों का विवरण निम्नवत है –

14वें वित्त आयोग के सदस्यों की सूची

क्र0सं0	नाम	पदनाम	सम्बद्ध संस्था
1	डॉ.वाई.वी.रेड्डी	अध्यक्ष	पूर्व गवर्नर, रिजर्व बैंक
2	प्रो. अभिजीत सेन	सदस्य	योजना आयोग (अंशकालिक)
3	सुषमा नाथ	सदस्य	पूर्व केन्द्रीय वित्त सचिव
4	डॉ. एम. गोविन्द राव	सदस्य	निदेशक, राष्ट्रीय लोक वित्त एवं नीति संस्थान
	डॉ0 सुदीप्त मंडल	सदस्य	पूर्व कार्यवाहक अध्यक्ष, राष्ट्रीय सांख्यिकी

			आयोग
6	श्री अजय नारायण झा	सचिव	

10.5.2 मुद्दे एवं दृष्टिकोण

सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों, सरकार और सार्वजनिक उद्यमों, घरेलू एवं वैश्विक अर्थव्यवस्था तथा सरकार के राजकोषीय एवं गैर–राजकोषीय संघटकों के बीच संतुलन में गत वर्षों में काफी ज्यादा परिवर्तन हुआ है, जिसका संघ–राज्य राजकोषीय संबंधों पर बड़ा प्रभाव होना ही है। इन मूलभूत मुद्दों में से अनेक मुद्दों को आयोग के विचारार्थ विषय (टीओआर) में सम्मिलित किया गया है, हालांकि उन्हें संघ–राज्य राजकोषीय संबंधों की संकीर्ण परिभाषा से कवर नहीं किया जा सकता है। यह विचारार्थ विषय विनिवेश, सब्सिडियों, विनियामक नीतियों, पर्यावरणीय चिंताओं इत्यादि से संबंधित हैं। अतः आयोग को बृहत आर्थिक प्रबंधन की नई वास्तविकताओं को ध्यान में रखना है। आयोग को सौंपे गए अधिदेश की पूर्ति हेतु आयोग को राजकोषीय स्थिति तथा संघ और राज्यों के बीच संबंधों को इस व्यापक वर्तमान संदर्भ में रखना पड़ेगा।

10.6 चौदहवें वित्त आयोग की संस्तुतियाँ (Recommendations of 14th Finance Commission)

जैसा कि आपको विदित है कि 14वें वित्त आयोग का गठन रिजर्व बैंक के पूर्व गवर्नर डॉ0 वाई0वी0 रेड्डी की अध्यक्षता में 2 जनवरी 2013 को किया था और आयोग ने 15 दिसम्बर 2014 को अपनी अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की। यह रिपोर्ट अठ्ठारह अध्याय की है जिसमें विचारार्थ विषय में (टीओआर) से सम्बन्धित 10 अध्यायों में वर्णित परिद्रश्य एवं सिफारिशें टिप्पणी योग्य हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 281 में दी गयी व्यवस्था का परिपालन करते हुए केन्द्रीय वित्त मन्त्री श्री अरुण जेटली द्वारा यह रिपोर्ट 25 फरवरी 2015 को संसद में प्रस्तुत की गयी थी। संसद द्वारा को अनुमोदन के पश्चात सिफारिशों को सदैव की तरह पांच साल के लिए लागू किया गया है, जिसकी क्रियान्वयन अवधि 1 अप्रैल 2015 से 31मार्च 2020 होगी।

संविधान की व्यवस्था के आलोक में सहयोगी संधवाद को वित्तीय अभिशासन का आधार माना गया है केन्द्र और राज्य इसी के अनुपालन में राष्ट्रीय लक्ष्य प्राप्त करने के लिये अपने संसाधनों का समायोजन करते हैं। इन राष्ट्रीय लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि तथा ग्रामीण विकास के अनेकानेक कार्यक्रम केन्द्र और राज्य सरकार के सहयोग से लागू किये जाते हैं, 14वें आयोग ने इन कार्यक्रमों की विशेष ध्यान दिया है।

वित्त आयोग ने केंद्रीय करों में राज्यों की हिस्सेदारी के विस्तार व स्थानीय निकायों को ज्यादा संसाधनों के हस्तांतरण सहित सहयोगपूर्ण संघवाद को बढ़ावा देने, वस्तु एंव सेवा कर के क्रियान्वयन, राजकोषीय मजबूती, सार्वजनिक सेवाओं और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की मूल्य नीति आदि के संबंध में सिफारिशें दी है जो निम्नवत हैं:–

10.6.1 संघीय कर राजस्वों की हिस्सेदारी (Sharing of Union Tax Revenue)

आयोग ने संघीय करों के वितरण संबंधी अपना दृष्टिकोण बनाते समय 6 कारकों पर विचार किया है, जो इस प्रकार हैं: (i) संवैधानिक प्रावधान एवं आशय; (ii) पूर्व वित्त आयोगों का दृष्टिकोण, (iii) यथासंभव निरंतरता बनाए रखने की जरूरत; (iv) सम्यक राजकोषीय संबंधों के परिदृष्य में जरूरी संसाधनों की हिस्सेदारी में पुनःसंतुलन की जरूरत; (v) संस्तुति अवधि के दौरान अपेक्षित बृहत–आर्थिक वातावरण; तथा (vi) संस्तुति अवधि के बृहत–आर्थिक परिदृश्य में संघ तथा राज्य सरकारों के विचार। आयोग के समक्ष संघ और राज्यों द्वारा दिए गए तर्कों को तौलना और उभरते हालातों से निपटने हेतु उचित सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न करने की चुनौती थी।

1) संघीय करो में राज्यों का हिस्सा 32 प्रतिशत से बढ़ाकर 42 प्रतिशत– आयोग ने संघीय करो में राज्यों का हिस्सा 32 प्रतिशत से बढ़ाकर 42 प्रतिशत तक अर्थात 10 प्रतिशत तक की कर अंतरण की हिस्सेदारी में वृद्धि का सुझाव दिया है। ऐसा करने से राज्यों को बिना शर्त हस्तांतरणों के प्रवाह को बढ़ाने और साथ ही राज्यों को विशिष्ट प्रयोजन वाला हस्तांतरण करने के लिए संघ के पास पर्याप्त राजकोषीय व्यवस्था रखने के दोनों उद्देश्य पूरे हो जायेंगे। 14वें वित्त आयोग की रिपोर्ट में बढ़ाई गई हिस्सेदारी के मुताबिक, राज्यों को 2014-15 में 3,48,000 करोड़ रूपये और 2015-16 में 5,26,000 करोड़ रूपये दिए जाएंगे। आयोग की सिफारिशों के अनुसार वर्ष 2019-20 तक की पांच साल की अवधि में राज्यों को कुल मिलाकर 39.48 लाख करोड़ रूपये की राशि मिलेगी। केंद्र सरकार की ओर से योजना और अनुदान आधारित मदद के स्थान पर अब हिस्सेदारी आधारित मदद का प्रावधान किया जा रहा हैं।

2) न्यूनतम गारंटी अंतरण पर राज्यों के विचारों पर असहमति– आयोग ने न्यूनतम गारंटी अंतरण पर राज्यों के विचारों पर सहमति नहीं दी है।

3) करों की हिस्सेदारी के पारस्परिक निर्धारण हेतु आवंटित मानदंड एवं भारिता– निम्न सारणी 10.3 में राज्यों को करों की हिस्सेदारी के पारस्परिक निर्धारण हेतु आवंटित मानदंड एवं भारिता को दर्शाया गया है।

सारणी 10.3 : मानदंड एवं भारिता

मानदंड	भारिता (प्रतिशत)
जनसंख्या	17.5
जनसांख्यिकीय परिवर्तन	10
आय अंतर	50
क्षेत्रफल	15
वन क्षेत्र	7.5
योग	100

4) करों की राज्य विशिष्ट हिस्सेदारी– करों की राज्य विशिष्ट हिस्सेदारी को सारणी 10.4 में दर्शाया गया है।

राज्य	राज्यों में हिस्सेदारी

आंध्र प्रदेश	4.305
अरूणाचल प्रदेश	1.370
असम	3.311
बिहार	9.665
छत्तीसगढ़	3.080
गोवा	0.378
गुजरात	3.084
हरियाणा	1.084
हिमाचल प्रदेश	0.713
जम्मू-कश्मीर	1.854
झारखंड	3.139
कर्नाटक	4.713
केरल	2.500
मध्य प्रदेश	7.548
महाराष्ट्र	5.521
मणिपुर	0.617
मेघालय	0.642
मिजोरम	0.460
नागालैंड	0.498
ओडिशा	4.642
पंजाब	1.577
राजस्थान	5.495
सिक्किम	0.367
तमिलनाडु	4.023
तेलंगाना	2.437
त्रिपुरा	0.642
उत्तर प्रदेश	17.959
उत्तराखण्ड	1.052
पश्चिम बंगाल	7.324
कुल	100.000

10.6.2 स्थानीय सरकारें (Local Governments)

वित्त आयोग के विचारार्थ विषयों में "राज्य के वित्त आयोग द्वारा की गई सिफारिशों के आधार पर राज्यों में पंचायतों और नगरपालिकाओं के संसाधनों की अनुपूर्ति के लिए किसी राज्य की संचित निधि के संवर्धन के लिए आवश्यक अध्युपायों" की सिफारिश करना है। इस सन्दर्भ में आयोग की सिफारिशें निम्नवत हैं :—

1) **जनसंख्या तथा क्षेत्रफल के आधार पर भरिता का निर्धारण**— आयोग ने स्थानीय निकायों को अधिक संसाधन देने की सिफारिश की है। राज्यों को 90 प्रतिशत भरिता के साथ वर्ष 2011 के जनसंख्या के आँकड़ों और 10 प्रतिशत के साथ साथ क्षेत्रफल के आँकड़ों का उपयोग करते हुए अनुदानों का वितरण होगा । इसे दो भागों में विभक्त किया गया है — एक भाग

विधिवत गठित ग्राम पंचायतों के लिये तथा दूसरा विधिवत गठित नगर पालिकाओं के लिये।

2) **स्थानीय निकायों को 2,87,436 करोड़ रूपये का अनुदान**– आयोग ने पंचायतों और नगर पालिकाओ सहित सभी स्थानीय निकायों को 31मार्च, 2020 को समाप्त होने वाले पांच वर्ष की अवधि के लिए कुल 2,87,436 करोड़ रूपये के अनुदान का प्रावधान किया गया है जो कि एक समुच्चय स्तर (एग्रीगेट लेवल) पर रुपये 488 प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष बनती है। जिसमें पंचायतों एवं नगर पालिकाओं के लिए क्रमशः रु. 2,00,292.2 करोड़ एवं 87,143.8 करोड़ दिया जाना है।

3) **मूल अनुदान तथा कार्य निष्पादन का अनुपात**– अनुदान को दो हिस्सों में प्रदान किया है – एक मूल अनुदान और दूसरा कार्य निष्पादन अनुदान। जहाँ पंचायतों के मूल अनुदान तथा कार्य निष्पादन का अनुपात 90:10 का होगा वहीं नगर पालिकाओं में इसे 80:20 करने की संस्तुति की है।

4) **मूल अनुदान का बंटवारा राज्य वित्त आयोग द्वारा निर्धारित सूत्र के माध्यम से**– ग्राम पंचायतों के लिए चिन्हित मूलभूत अनुदानों का वितरण संसाधनों के वितरण हेतु संबंधित राज्य वित्त आयोग द्वारा निर्धारित सूत्र का उपयोग कर किया जाएगा। इसी प्रकार शहरी स्थानीय निकायों के लिए मूल अनुदान का बंटवारा त्रिस्तरीय हिस्सेदारी में किया जाएगा और उसका वितरण संबंधित राज्य वित्त आयोग द्वारा निर्धारित सूत्र का उपयोग करते हुए प्रत्येक स्तर नामतः नगर निगम, नगर पालिका (टियर 2 शहरी स्थानीय निकायों) तथा नगर पंचायत (टियर 3 स्थानीय निकाय) के बीच किया जाएगा। राज्य सरकार द्वारा नवीनतम राज्य वित्त आयोग जिसकी सिफारिशें स्वीकार कर ली गईं हैं, के वितरण सूत्र का उपयोग किया जाए।

5) **अनुदान का समयबद्ध निर्गमन**– आयोग द्वारा सिफारिश किए गए अनुदान का निर्गमन प्रत्येक वर्ष जून तथा अक्तूबर में दो किस्तों में किया जाए जिसमें से मूल अनुदान का 50 प्रतिशत राज्यों को वर्ष की पहली किश्त तथा शेष पूरे कार्य निष्पादन के पश्चात जारी की जाए जिसे अपने खाते में प्राप्त होने पर पन्द्रह दिनों के भीतर ही राज्यों द्वारा अनुदानों को ग्राम पंचायतों और नगर पालिकाओं को जारी कर दिया जाना चाहिए। इससे वर्ष के दौरान स्थानीय निकायों तक समय से अनुदान का प्रवाह सुनिश्चित हो सकेगा। जिससे वे अपने कार्यों का योजना और क्रियान्वयन बेहतर तरीके से कर सकेंगे।

6) **राज्य वित्त आयोगों को सुद्ढ़ बनाना**– आयोग की यह सिफारिश है कि राज्य सरकारें राज्य वित्त आयोगों को सुद्ढ़ बनाएं। इसमें राज्य वित्त आयोग का उचित समय पर गठन, समुचित प्रशासनिक सहयोग और निर्बाध प्रकार्यात्मकता हेतु पर्याप्त साधन उपलब्ध करना तथा राज्य विधान मंडल के समक्ष राज्य वित्त आयोग की रिपोर्ट तथा उस पर कार्रवाई रिपोर्ट (एटीएन) समय से प्रस्तुत करना शामिल है।

7) **शहरी स्थानीय निकायों द्वारा स्व–निर्धारण प्रणाली लागू करना**– आयोग सुझाव देता है कि संपत्ति कर को लगाने संबंधी प्रक्रिया को सहज बनाने

के लिए वर्तमान नियमों की समीक्षा एवं संशोधन किया जाना चाहिए तथा छूटों को न्यूनतम किया जाना चाहिए। संपत्तियों का निर्धारण प्रत्येक चार या पांच वर्षों में किया जाना चाहिए और शहरी स्थानीय निकायों को स्व–निर्धारण प्रणाली लागू करना चाहिए। आयोग यह सिफारिश करता है कि राज्यों द्वारा नगर पालिकाओं, राज्य और संघ सरकारों के मध्य संपत्ति कर से संबंधित सूचना साझा करने के लिए कार्रवाई की जाए।

8) **पंचायतों द्वारा खाली भूमि पर कर–** आयोग यह सुझाव देता है कि शहरों की परिधि पर स्थित पंचायतों द्वारा खाली भूमि पर कर लगाने पर विचार किया जाना चाहिए। इसके अलावा, राज्य सरकारों द्वारा नगर पालिकाओं और पंचायतों के साथ भूमि परिवर्तन प्रभारों के एक भाग की हिस्सेदारी की जा सकती है।

9) **मनोरंजन कर की परिधि को बढ़ाना–** आयोग यह सिफारिश करता है कि राज्यों को मनोरंजन कर की समीक्षा करनी चाहिए और नए–नए मनोरंजन माध्यमों को कवर करने के लिए मनोरंजन कर की परिधि को बढ़ाना चाहिए।

10) **व्यावसायिक कर की सीमा रुपये 2,500 से बढ़ा कर रुपये 12,000 रुपये प्रतिवर्ष–** व्यावसायिक कर की उच्चतम सीमा रुपये 2,500 से बढ़ा कर रुपये 12,000 रुपये प्रतिवर्ष करने की सिफारिश आयोग द्वारा की गयी है। आयोग द्वारा यह भी सिफारिश की गयी है कि राज्यों द्वारा व्यवसाय कर के अधिरोपण की सीमाओं में बढ़ोत्तरी करने हेतु संविधान के अनुच्छेद 276(2) का संशोधन किया जाना चाहिए।

11) **वित्त साधन के रूप में नगर बंधपत्र जारी करना–** आयोग यह सिफारिश करता है कि स्थानीय निकायों और राज्यों को संघ सरकार की उपयुक्त सहायता से, वित्त साधन के रूप में नगर बंधपत्र जारी करने की संभावनाएं तलाशनी चाहिए। राज्य बड़े नगर निगमों को बाजारों में सीधे प्रवेश करने के लिए अनुमति दे सकते हैं, जबकि एक मध्यस्थ (इंटरमिडियरी) के जरिये वे माध्यमिक एवं छोटी नगर पालिकाओं, जिनके पास प्रत्यक्ष रूप से बाजार में प्रवेश करने की क्षमता नहीं है, को सहायता दे सकते हैं।

12) **खनन से प्राप्त रॉयल्टी में स्थानीय निकाय की हिस्सेदारी–** आयोग का मत है कि खनन स्थानीय पर्यावरण और अवसंरचना पर बोझ डालता है और इसलिए यह उपयुक्त है कि रॉयल्टियों से प्राप्त कुछ आय में स्थानीय निकाय, जिसके अधिकार क्षेत्र के अंदर खनन किया जा रहा है, से हिस्सेदारी की जाए। इससे स्थानीय निकाय द्वारा स्थानीय जनसंख्या पर खनन के प्रभावों को सुधारने में सहायता मिलेगी।

13) **प्रशासन के अपग्रेडेशन तथा विकास हेतु व्यापक, स्थायी और प्रभावकारी प्रत्यक्ष मध्यस्थता–** आयोग संघ सरकार से संविधान के अनुच्छेद 275 (1) के परन्तुक के अधीन कवर किए गए क्षेत्रों के प्रशासन के अपग्रेडेशन तथा विकास के लिए (जिन्हें वित्त आयोग के विचारार्थ विषय के बाहर रखा गया है) व्यापक, स्थायी और प्रभावकारी प्रत्यक्ष मध्यस्थता करने पर विचार करने का आग्रह करता है ताकि ऐसे क्षेत्रों को अन्य क्षेत्रों के बराबर लाया जा सके।

10.6.3 आपदा प्रबंधन (Disaster Management)

1) **एनडीआरएफ को वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए सुनिश्चित स्रोतों पर विचार–** एनडीआरएफ को वित्तीय सहायता अभी तक अधिकांशतः चयनित मदों पर उपकर लगाकर दी जाती है, लेकिन यदि भविष्य में उपकर को हटा दिया जाता है अथवा उसे वस्तु एवं सेवाकर (जीएसटी) के तहत सम्मिलित कर दिया जाता है तब हमारी यह सिफारिश है कि संघीय सरकार द्वारा एनडीआरएफ को वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए सुनिश्चित स्रोतों पर विचार किया जाए।

2) **राज्यों को निधियों की समय पर उपलब्धता और निर्गमन सुनिश्चित करना–** एनडीआरएफ में विनियोजन करते हुए आयोग यह सिफारिश करता है कि इसके पिछले आउटफ्लो की प्रवृति को ध्यान में रखते हुए संघीय सरकार को राज्यों को निधियों की समय पर उपलब्धता और निर्गमन सुनिश्चित करे।

3) **कॉरपोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व नीति का अनुपालन–** इस बात को स्वीकार करते हुए कि एनडीआरएफ को वित्तीय सहायता प्रदान करने में अन्य स्रोतों के रूप में योगदान किया जाना महत्वपूर्ण हो सकता है, हमारी यह सिफारिश है कि एनडीआरएफ में निजी योगदान के लिए करों में छूट प्रदान करने पर निर्णय करने में तेजी लाई जाए तथा संघीय सरकार द्वारा एनडीआरएफ को वित्तीय सहायता के लिए इस प्रकार के प्रावधान बनाए जाने में कंपनी (कॉरपोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व नीति i.e. Corporate Social Responsibility Policy) नियम, 2014 की अनुसूची 7 का उपयोग करने पर विचार करें।

4) **आपदा सहायता की प्रतिपूर्ति हेतु वर्तमान प्रबंधों की समीक्षा–** रक्षा बलों की प्रचालन प्रभावशीलता पर प्रतिकूल प्रभाव पडने की संभावना की जरूरत पर विचार करते हुए आपदा सहायता पर व्यय किए गए खर्च की प्रतिपूर्ति हेतु वर्तमान प्रबंधों की समीक्षा की जाए।

5) **आपदा संवेदनशीलता जोखिम प्रोफाइल का वैज्ञानिक प्रमाणन–** आपदा की प्रवृति, आवर्ती एवं उग्रता को मापने में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रमाणित जोखिम संवेदनशीलता सकेतकों की उपयोगिता पर और संविघि द्वारा विभिन्न स्तरों पर सरकार के वृहद् उत्तरदायित्वों पर विचार करते हुए हमारी यह सिफारिश है कि संघीय सरकार द्वारा राज्यों की आपदा संवेदनशीलता जोखिम प्रोफाइल के विकास एवं वैज्ञानिक प्रमाणन के कार्य में तेजी लाई जाए।

6) **एसडीआरएफ के लिए 61,219 करोड़ रु. आबंटित–** आयोग ने पिछले आयोगों की प्रैक्टिस को अपनाया और प्रत्येक राज्य के लिए एसडीआरएफ कोष (State Disaster Response Fund i.e SDRF अर्थात राज्य आपदा प्रतिक्रिया निधि) का निर्धारण करने हेतु वर्ष 2006-07 से 2012-13 की अवधि के लिए आपदा सहायता पर पिछले व्यय का उपयोग किया। इसके अलावा, अपनी अवार्ड अवधि (अनुबंध–1) के लिए 61,219 करोड़ रु. के सभी एसडीआरएफ के लिए एक समुच्चय कोष तक पहुंचने के लिए आयोग ने तेरहवें वित्त आयोग द्वारा अपनाई गई कार्य पद्वति का पालन

किया। अतः आयोग की यह सिफारिश है राज्य द्वारा इस पंचाट अवधि के दौरान राज्य आपदा राहत निधि में 10 प्रतिशत (6,122 करोड़ रूपए) का अंशदान तथा शेष 90 प्रतिशत (55,097 करोड़ रूपए) संघीय सरकार द्वारा की जाए ।

7) **डीडीआरएफ की स्थापना का निर्णय राज्य सरकारों पर–** आयोग 13वें वित्त आयोग के विचारों से सहमत है कि डीडीआरएफ (District Disaster Response Fund i.e DDRF अर्थात जिला आपदा प्रतिक्रिया निधि) की स्थापना का निर्णय राज्य सरकारों पर ही छोड़ना सर्वश्रेष्ठ होगा अतः आयोग ने यह सिफारिश नहीं की है कि डीडीआरएफ की वित्तीय सहायता के लिए अलग से अनुदान का प्रावधान किया जाए।

8) **राज्य विशेष आपदाओं के संबंध में लचीलेपन की जरूरत–** राज्य विशेष आपदाओं के संबंध में लचीलेपन की जरूरत पर विचार करते हुए हमारा यह मत है कि एसडीआरएफ के तहत उपलब्ध 10 प्रतिशत राशि का इस्तेमाल राज्यों द्वारा ऐसी आपदाओं के लिए किया जा सकता है जिन्हें राज्यों के स्थानीय संदर्भों में ''आपदा'' माना जाता है और जिन्हें गृह मंत्रालय द्वारा आपदा की अधिसूचित सूची में शामिल नहीं किया गया है।

9) **उग्र आपदाओं के दौरान एसडीआरएफ में किए गए योगदान का समायोजन–** उग्र आपदाओं के दौरान एनडीआरएफ से निधि की आवश्यकताओं की संगणना करते समय आयोग ने सिफारिश की है कि संघीय सरकार द्वारा एसडीआरएफ में किए गए योगदान को समायोजित करने की वर्तमान प्रैक्टिस को जारी रखा जाना चाहिए ।

10.6.4 सहायता अनुदान (Grants-in-Aid)

1) **राजस्व घाटे वाले 11 राज्यों को अनुदान दिया जाना–** आयोग की रिपोर्ट में राजस्व घाटे वाले 11 राज्यों को वर्ष 2015-16 के दौरान 48,906 करोड़ रूपये का राजस्व घाटा अनुदान दिये जाने की भी सिफारिश की गई है। 2015-20 के दौरान की अवधि में राज्यों के राजस्व और खर्चो का आंकलन करने के बाद वित्त आयोग ने इन राज्यों के घाटे की क्षतिपूर्ति के लिए 1,94,821 करोड़ रूपये की सहायता देने का सुझाव दिया है। आयोग की सिफारिशों के अनुसार जिन राज्यों को यह अनुदान मिलेगा, उनमें आंध्र प्रदेश, असम, हिमाचल प्रदेश, जम्मू–कश्मीर, केरल, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, त्रिपुरा और पश्चिम बंगाल शामिल हैं।

2) **अंतरण सहयोगपरक संघीय व्यवस्था के अनुरूप पृथक संस्थागत व्यवस्था के माध्यम से किया जाना–** प्रत्येक राज्य में खर्चो का वांछित न्यूनतम स्तर सुनिश्चित करने के उद्देश्य से बहुत अधिक एक्सटरनेलिटी वाले विशिष्ट क्षेत्रों से जुड़े राज्यों को, व्यय वृद्धि हेतु संघीय सरकार द्वारा अंतरण किए जाने का मामला बनता है। तथापि, पिछला अनुभव दर्शाता है कि वित्त आयोग के अनुदान के माध्यम से यह कार्य करना उपयुक्त नहीं होगा। अतः इस सम्बन्ध में आयोग का निश्कर्ष है कि जिस किसी क्षेत्र में ऐसे अंतरण आवश्यक हों, उन क्षेत्रों में ऐसे सभी अंतरण सहयोगपरक संघीय व्यवस्था के अनुरूप दर्शायी गई पृथक संस्थागत व्यवस्था के माध्यम से किया जाना चाहिए।

3) **कर अंतरण में उपलब्ध कराये गये अतिरिक्त राजकोषीय संसाधनों का उपयोग**– राज्यों में न्यायिक प्रणालियों को मजबूत बनाने के न्याय विभाग के इस प्रस्ताव का आयोग द्वारा समर्थन किया गया है और राज्य सरकारों से अनुरोध भी करा है कि ऐसी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आयोग द्वारा कर अंतरण में उपलब्ध कराये गये अतिरिक्त राजकोषीय संसाधनों का उपयोग करें।

4) **प्रशासन तथा पुलिस दोनों के लिए व्यय के उच्च आधार (हाई बेस)**– राज्यों की व्यय संबंधी आवश्यकताओं के निर्धारण में सामान्य प्रशासन तथा पुलिस दोनों के लिए व्यय के उच्च आधार (हाई बेस) को ध्यान में रखा गया है। अतः आयोग की राय में राज्यों के पास अपनी आवश्यकताओं के अनुसार अतिरिक्त व्यय संबंधी जरूरतों के लिए प्रावधान करने हेतु उपयुक्त राजकोषीय संसाधन होते हैं। इससे उन्हें इस समस्या का समाधान करने में मदद मिलेगी और सामान्य प्रशासन तथा पुलिस से संबंधित वर्तमान कमियों को दूर करने में सहायता प्राप्त होगी।

5) **फिस्कल स्पेस संसाधन उपलब्धता**– आयोग ने रख–रखाव खर्चों के उपयुक्त फिस्कल स्पेस संसाधन उपलब्ध कराये हैं और इनसे राज्यों को अपनी आवश्यकताओं के अनुसार अतिरिक्त व्यय संबंधी जरूरतों की पूर्ति करने में मदद मिलनी चाहिए। आयोग ने राज्यों से आग्रह किया है कि वे पूंजीगत परिसंपत्तियों के रख–रखाव से संबंधित खर्च को उपयुक्त स्तर तक बनाए रखने के लिए खर्च को बढ़ाएं।

6) **स्वास्थ्य, शिक्षा, पेयजल और सफाई को राष्ट्रीय महत्व की सार्वजनिक सेवा**– आयोग द्वारा स्वास्थ्य, शिक्षा, पेयजल और सफाई को राष्ट्रीय महत्व की सार्वजनिक सेवा माना गया है जिनकी महत्वपूर्ण इंटरस्टेट एक्सटरनेलिटी हैं। तथापि, आयोग के विचार में इन क्षेत्रों के लिए अनुदानों की रूपरेखा ध्यानपूर्वक तैयार और कार्यान्वित की जानी चाहिए तथा संघीय, राज्य सरकारों एवं विषेशज्ञों के सहयोग से प्रभावी निगरानी तंत्र स्थापित किए जाने चाहिए। इसीलिए आयोग ने विशिष्ट प्रयोजनों हेतु अनुदानों की सिफारिश नहीं की है और सुझाव दिया है कि इस प्रयोजनार्थ अलग से संस्थागत व्यवस्था की जाये।

7) **राज्यों के राजस्व के सहायता अनुदान**– 2015-20 की अवधि के लिए आयोग की सिफारिशों के अनुसार राज्यों के राजस्व के सहायता अनुदानों का सार सारणी 10.5 में दर्शाया गया हैः

सारणी 10.5 : राज्यों को सहायता अनुदान

(रु. करोड़ में)

1	स्थानीय सरकार	2,87,436
2	आपदा प्रबंधन	55,097
3	अंतरणोपरांत राजस्व घाटा	1,94,821
	योग	**5,37,354**

10.6.5 सहयोगात्मक संघवाद की दिशा में (Towards Cooperative Federalism)

पिछले वित्त आयोगों की सिफारिशों में उर्ध्वाकर एवं क्षैतिज अंतरण दोनों को शामिल किए जाने के साथ–साथ गैर–योजना राजस्व घाटा अनुदानों, स्थानीय निकायों को अनुदान, आपदा सहायता के लिए अनुदान सहित अनुदान सहायता और सेक्टर–विशिष्ट एवं राज्य–विशिष्ट अनुदानों को शामिल किया गया था। "अन्य हस्तांतरणों" का प्रवाह मुख्यतः योजना अनुदानों के रूप में होता है जबकि शेष का प्रवाह गैर–योजना अनुदानों के रूप में होता है।

आयोग ने यह विश्वास जताया है कि सहयोगात्मक संघवाद के सुदृढ़ीकरण की दिशा में एक नई संस्थागत व्यवस्था का प्रस्ताव करते समय आयोग इस विषय पर राज्य सरकारों एवं संघ सरकार के विचारों, राष्ट्रीय विकास परिषद (एनडीसी) में हुई चर्चाओं, आयोगों एवं समितियों के विचारों, तथा पिछले वित्त आयोगों के विचारों को ध्यान में रखेगा।

1) राजकोषीय अंतरणों की मौजूदा प्रणाली प्रणाली की समीक्षा– आयोग का यह निष्कर्ष है कि संघ से राज्यों को राजकोषीय अंतरणों की मौजूदा प्रणाली में व्यापक सुधार किया जाना अति आवश्यक है। आयोग की यह सिफारिश है कि आवश्यक संस्थागत बदलाव लाने के उद्देश्य से मौजूदा प्रणाली की समीक्षा की जाए।

2) अंतरणों से भिन्न अन्य अंतरणों की मौजूदा व्यवस्था की समीक्षा– जहां तक वित्त आयोग की सिफारिशों से किए जाने वाले अंतरणों से भिन्न अन्य अंतरणों की आवश्यकता का संबंध है, आयोग का यह मानना है कि विवेकाधिकार को न्यूनतम करने, अंतरणों की रूपरेखा में सुधार करने, दोहराव से बचने और सहयोगपरक संघीय व्यवस्था को बढ़ावा देने के उद्देश्य से संघ और राज्यों के बीच अंतरणों की मौजूदा व्यवस्था की समीक्षा किए जाने की जरूरत है।

3) राजकोषीय अंतरणों की मौजूदा प्रणाली में व्यापक सुधार के बिंदु– वित्त आयोग द्वारा सहयोगपरक संघीय व्यवस्था को मजबूत बनाने के व्यापक उद्देश्य के अनुरूप एक नई संस्थागत व्यवस्था तैयार करने पर विचार किया जाये। इस हेतु संघ से राज्यों को राजकोषीय अंतरणों की मौजूदा प्रणाली में व्यापक सुधार किये जायें जो कि : (i) राज्यों में उन सेक्टरों की पहचान करे जो संघ से राज्यों को अंतरणों के लिए पात्र हों (ii) राज्यों के बीच वितरण का मानदंड दर्शाये (iii) ऐसी योजनाएं तैयार करने में मदद करे जो कि राज्यों को कार्यान्वयन में उपयुक्त लचीलापन प्रदान करें (iv) क्षेत्र– विशिष्ट अनुदानों का निर्धारण और प्रावधान करे।

4) पूर्वोत्तर राज्यों में अंतरराज्यीय अवसंरचना योजनाओं से संबंधित मुद्दे– आयोग ने इस बात पर भी जोर दिया है कि सुझाई गई नई संस्थागत व्यवस्था में पूर्वोत्तर राज्यों में अंतरराज्यीय अवसंरचना योजनाओं के लिए संसाधनों के निर्धारण और उनकी सिफारिश करने से संबंधित मुद्दे उठाने पर भी विचार किया जाए।

5) आर्थिक और पर्यावरण संबंधी सरोकारों के समेकन का मंच– आयोग आग्रह करता है कि नई संस्थागत व्यवस्था निर्णय निर्माण प्रक्रिया में आर्थिक और पर्यावरण संबंधी सरोकारों के समेकन का मंच भी बनना चाहिए।

6) **अंतरराज्यीय परिषद की मौजूदा भूमिका का विस्तार–** वित्त आयोग का सुझाव है कि अंतरराज्यीय परिषद की मौजूदा भूमिका का विस्तार किया जाए और उपर्युक्त परिकल्पित कार्य इसकी भूमिका में शामिल किये जायें।

7) **समेकित राजस्व प्राप्तियों का 49 प्रतिशत सुनिश्चित करना–** आयोग आशा करता है कि संघीय सरकार उपलब्ध राजकोषीय गुंजाइश का उपयोग करेगी ताकि वह राज्यों की जरूरतों और अपेक्षाओं को पूरा कर सके और अधिनिर्णय अवधि के दौरान, राज्यों को अंतरण का विद्यमान स्तर, जो समेकित राजस्व प्राप्तियों का 49 प्रतिशत है, को सुनिश्चित कर सके।

10.6.6 वस्तु और सेवा कर (Goods and Services Tax)

आयोग के विचारार्थ विषय 6 (xi) में के अनुसार ''केन्द्र और राज्यों के वित्तीय साधनों पर प्रस्तावित वस्तु और सेवा कर का प्रभाव तथा किसी प्रकार के राजस्व की हानि की स्थिति में क्षतिपूर्ति हेतु कार्यतंत्र'' पर विचार करने की आवश्यकता है। वित्त वर्ष 2004-05 में मूल्यवर्धित कर (वैट) की शुरुआत के पश्चात वर्ष 2007 से अपरोक्ष करों में एक व्यापक वस्तु और सेवा कर (Goods and Service Tax i.e GST) संबंधी अतिरिक्त सुधार एक महत्त्वपूर्ण कर सुधार साबित होगा।

1) **राजस्व हानि के मामले में क्षतिपूर्ति की राशि का मात्रात्मक रूप से पता लगाने में असमर्थता–** कई चुनौतियां और अनसुलझे मामले हैं। जीएसटी की अभिकल्पना तथा अंतिम दर संरचना के संबंध में स्पष्टता के अभाव में आयोग राजस्व निहितार्थों का आकलन करने तथा जीएसटी की शुरुआत के कारण राज्यों को हुई राजस्व हानि के मामले में क्षतिपूर्ति की राशि का मात्रात्मक रूप से पता लगाने में अक्षम है।

2) **समग्र राजकोषीय व्यवस्था में समायोजन–** शुरू में, संघ को जीएसटी क्षतिपूर्ति देने के कारण उत्पन्न अतिरिक्त राजकोषीय बोझ का वहन करना होगा। इस राजकोषीय बोझ को निवेश के तौर पर समझा जाना चाहिए जिससे राष्ट्र को निश्चित रूप से मध्यावधि एवं दीर्घावधि में भारी लाभ प्राप्त होगा। आयोग को यह भी विश्वास है कि जीएसटी क्षतिपूर्ति को संघ सरकार में उपलब्ध समग्र राजकोषीय व्यवस्था (फिस्कल स्पेस) में समायोजित किया जा सकता है।

3) **जीएसटी हेतु राज्यों को मुआवजा देने के लिए अलग से फंड–** मूल्य वर्धित कर (Value Added Tax i.e VAT) के मामले में तीन वर्षों के लिए क्षतिपूर्ति का प्रावधान किया गया जोकि प्रथम वर्ष में 100 प्रतिशत, द्वितीय वर्ष में 75 प्रतिशत तथा तृतीय वर्ष में 50 प्रतिशत था। आयोग के मत में जीएसटी के लिए भी क्षतिपूर्ति प्रदान करने हेतु आधार के रूप में यह पूर्वोदाहरण यथोचित होगा। आयोग ने जीएसटी से राज्यों को होने वाले नुकसान की भरपाई के प्रावधान की बात कही है इसके तहत जीएसटी लागू होने के पहले दूसरे और तीसरे साल में 100 प्रतिशत, चौथे साल में 75 प्रतिशत और पांचवे साल में 50 प्रतिशत मुआवजा दिया जाएगा। जीएसटी लागू होने पर राज्यों को मुआवजा देने के लिए अलग से फंड बनाने की भी सिफारिश आयोग ने की है।

इसलिए, आयोग एक ऐसी प्रक्रिया में विधायी कार्रवाहियों के माध्यम से एक स्वायत्तशासी एवं स्वतंत्र जीएसटी क्षतिपूर्ति निधि की स्थापना करने की सिफारिश

करता है जिससे राज्यों को उपयुक्त सहजता प्राप्त हो और जिसके कार्यकरण की अवधि सीमित हो।

4) सहज परिवर्तन के लिए आवश्यक प्रावधान– आयोग यह सिफारिश करता है कि अस्थायी व्यवस्थाओं के माध्यम से सहज परिवर्तन के लिए आवश्यक प्रावधान करते हुए मध्यावधि से दीर्घावधि में जीएसटी के सार्वभौमिक अनुप्रयोग की दिशा में जीएसटी के संवैधानिक विधायी एवं संरचनात्मक पहलू परिवर्तन करने में सहजता प्रदान करते हों।

10.6.7 राजकोषीय परिवेश एवं राजकोषीय समेकन रोडमैप (Fiscal Environment and Fiscal Consolidation Roadmap)

आयोग को संघ और राज्य वित्त साधनों की समीक्षा के आधार पर एक राजकोषीय परिवेश के सृजन हेतु एक दृष्टिकोण विकसित करने का कार्य सौंपा गया है, जो कि न केवल स्थायी हो अपितु न्यायसंगत विकास को भी बढ़ावा देता हो। अपनी सिफारिशें देते हुए आयोग को राज्य सरकारों के संसाधनों तथा इन संसाधनों पर की गई मांगों पर विचार करना होगा, विशेष रूप से ऋण किस प्रकार से ऋणग्रस्त राज्यों के संसाधनों को प्रभावित करता है।

1) **बजट दस्तावेज के संपूरक के रूप में टेम्पलेट लागू करना–** राज्यों को ऋण स्थिति का निर्धारण करते समय अयोग ने संघ तथा राज्य सरकारों के लिए अपने सम्बंधित बजटों में बजट दस्तावेज के संपूरक के रूप में प्रस्तावित सार्वजनिक ऋण के संकलन, विश्लेषण और वार्षिक रिपोर्टिंग के लिए टेम्पलेट लागू करने की सिफारिश की है।
2) **पूंजीगत कार्यों हेतु सांविधिक उच्चतम सीमा का प्रावधान–** आयोग यह सिफारिश करता है कि संघ और राज्य सरकारें वार्षिक बजट प्रावधान के उपयुक्त गुणांक के अनुसार नए पूंजीगत कार्यों की स्वीकृति पर एक सांविधिक उच्चतम सीमा का प्रावधान करें।
3) **राजकोषीय समेकन एवं आयोग संघ एवं राज्यों के लिए नियम–** राजकोषीय समेकन के प्रति आयोग के दृष्टिकोण तथा संघ और राज्य सरकारों के संबंध में आयोग द्वारा किए निर्धारण के माध्यम से विकसित राजकोषीय रोडमैप के आधार पर, आयोग संघ एवं राज्यों के लिए नियमों की सिफारिश करता है।
4) **जीएसटी से राजस्व घाटा पूर्ण रूप से समाप्ति की उम्मीद–** संघ सरकार के लिए राजकोषीय घाटे पर उच्चतम सीमा वर्ष 2016-17 से आयोग की अवार्ड अवधि के अंत तक जीडीपी का 3 प्रतिशत होगी। आयोग यह उम्मीद करता है कि बृहत आर्थिक परिस्थितियों में सुधार और संवृद्धि में पुनः मजबूती तथा कर सुधारों प्रत्यक्ष करों के संबंध में कर ढ़ांचे का युक्तिकरण और अप्रत्यक्ष करों के संबंध में वस्तु एवं सेवाकर (जीएसटी को लागू कराना) से संघ सरकार के कुल कर राजस्वों में वृद्धि होगी जिसके फलस्वरूप संघ सरकार वर्ष 2019-20 से काफी समय पहले ही राजस्व घाटा पूर्ण रूप से समाप्त करने में सक्षम होगी।
5) **सीएसएफ की स्थापना की आवश्यकता–** आयोग सिफारिश करता है कि दिनांक 01 अप्रैल, 2015 से राष्ट्रीय लघु बचत निधि अर्थात एनएसएसएफ योजना में राज्यों की भूमिका को ऐसे ऋण बाध्यताओं के निर्वहन तक

सीमित रखा जाना चाहिए जिन्हें उनके द्वारा उक्त तिथि तक लिया गया है। इस संबंध में राज्यों के अनुभव को ध्यान में रखते हुए आयोग सिफारिश करता है कि संघ सरकार को इस समय सीएसएफ की स्थापना की आवश्यकता के बारे में विचार करना चाहिए।

6) **राजकोषीय प्रबंधन की गुणवत्ता में सुधार लाने का प्रयास–** इस बात को स्वीकारते हुए कि राजकोषीय परिवेश न्यायसंगत संवृद्धि के अनुरूप होना चाहिए, आयोग यह सिफारिश करता है कि संघ और सभी राज्यों को, हमारे द्वारा निर्धारित किए गए रोडमैप का अनुकरण करते हुए प्राप्तियों एवं व्ययों सहित राजकोषीय प्रबंधन की गुणवत्ता में सुधार लाने का प्रयास करना चाहिए।

7) **राजकोषीय परिवेश को अनुकूल बनाने हेतु संघ और राज्य सरकारों का संयुक्त उत्तरदायित्व–** संघ और राज्य सरकारों से आयोग आग्रह करता है कि उनके लिए निर्धारित किए गए रोडमैप पर विचार करते हुए राजकोषीय प्रबंधन में संघ की प्रमुख भूमिका को पहचानें, जिसमें राजकोषीय परिवेश को अनुकूल बनाने के लिए दोनों की संयुक्त उत्तरदायिता का उल्लेख किया गया है।

8) **सार्वजनिक ऋण पर द्वि–वर्षीय रिपोर्ट का प्रकाशन–** संघ और राज्य सरकारों के लिए सहायक राजकोषीय वातावरण को अनुकूल बनाने हेतु अपनाई जाने वाली साझी उत्तरदायिता की प्रक्रिया के व्यापक प्रसार के लिए आयोग सिफारिश करता है कि संघ सरकार और आरबीआई द्वारा नियमित रूप से तथा तुलनात्मक आधार पर संघ और राज्य सरकारों के सार्वजनिक ऋण पर एक द्वि–वर्षीय रिपोर्ट प्रकाशित की जाए और उसे सार्वजनिक किया जाए।

9) **सशक्त प्रक्रियाविधियों तथा राजकोषीय समायोजन की गुणवत्ता बढाना–** आयोग अब तक के अनुभव के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि संघ और राज्य सरकारों के लिए आपस में सहमत राजकोषीय लक्ष्यों पर एक दूसरे को उत्तरदायी ठहराने हेतु एक मूलभूत प्रोत्साहन– अनुकूलनीय फ्रेमवर्क निर्मित करने की चुनौती है। तदनुसार आयोग राजकोषीय लक्ष्यों का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए सशक्त प्रक्रियाविधियों तथा राजकोषीय समायोजन की गुणवत्ता बढ़ाने, (विशेष रूप से संघ सरकार के संदर्भ में), पर जोर देता है।

10) **एफआरबीएम अधिनियम में संशोधन–** आयोग की सिफारिश है कि संघ सरकार को दिनांक 1 अप्रैल, 2015 से प्रभावी राजस्व घाटे की परिभाषा को हटाने के लिए एफआरबीएम अधिनियम में संशोधन करने पर विचार करना चाहिए। आयोग यह भी सिफारिश करता है कि एफआरबीएम अधिनियमों में निर्दिष्ट राजस्व एवं व्यय को संतुलित करने के उद्देश्य का अनुपालन करना चाहिए।

11) **एफआरबीएम अधिनियम की धारा 7क को लागू करने के लिए शीघ्र कार्रवाई–** आयोग राजकोषीय उत्तरदायिता बजट प्रबंधन अधिनियम 2003, (फिस्कल रिस्पांसिबिलिटी एंड बजट मैनेजमेंट एक्ट 2003 अर्थात एफआरबीएम अधिनियम 2003) में संशोधन कर एक नई धारा जोड़ने की

सिफारिश करता है जिसमें बजट प्रस्तावों के राजकोषीय नीतिगत निहितार्थों तथा राजकोषीय नीति एवं नियमों के साथ उनकी सुसंगतता का, कार्य पूर्व मूल्यांकन करने के लिए एक स्वतंत्र राजकोषीय परिषद की स्थापना के अधिदेश का प्रावधान किया गया हो। इसके अलावा, आयोग यह आग्रह करता है कि संघ सरकार कार्योत्तर मूल्यांकन के प्रयोजनों के लिए एफआरबीएम अधिनियम की धारा 7क को लागू करने के लिए शीघ्र कार्रवाई करे।

12) **राजस्व घाटे की संकल्पना को समाप्त करना–** आयोग ने प्रभावी राजस्व घाटे की संकल्पना को समाप्त करने के लिए एफआरबीएम अधिनियम 2003 कानून में संशोधन का सुझाव दिया है।

13) **राजकोषीय समेकन रोडमैप के अनुरूप राजकोषीय नियमों को लागू करना–** आयोग संघ सरकार से अनुच्छेद 293(3) के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग प्रभावी एवं पारदर्शी तथा उचित प्रक्रिया के अनुरूप जारी रखने का आग्रह करता है ताकि वह आयोग द्वारा अवार्ड अवधि के लिए सुझाए गए राजकोषीय समेकन रोडमैप के अनुरूप राजकोषीय नियमों को लागू हो सके।

14) **एफआरबीएम अधिनियम के स्थान पर उच्चतम ऋण सीमा एवं राजकोषीय उत्तरदायिता विधान लागू करना–** राजकोषीय प्रबन्धन विधान को उच्च शुद्धता और वैधता प्रदान करने के लिए आयोग संघ सरकार से एफआरबीएम अधिनियम के स्थान पर उच्चतम ऋण सीमा एवं राजकोषीय उत्तरदायिता विधान, संविधान के अनुच्छेद 292 को उसके आमुख को लागू करने का आग्रह करता है। यह आयोग द्वारा प्रस्तावित वर्तमान एफआरबीएम अधिनियम का संशोधन करने की सिफारिशों के लिए एक विकल्प हो सकता है। आयोग राज्यों से भी अनुच्छेद 293 (1) के अधीन सदश अधिनियमनों को लागू करने पर विचार करने का आग्रह करता है।

10.6.8 लोकपयोगी सेवाओं का मूल्य निर्धारण (Pricing of Public Utilities)

आयोग ने यह सिफारिश की है कि सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र द्वारा प्रदान की जाने वाली लोकोपयोगी सेवाओं का मूल्य निर्धारित करने की स्पष्ट नीति होना चाहिये।

1) **100 प्रतिशत मीटरिंग–** आयोग यह सिफारिश करता है कि सभी उपभोक्ताओं के लिए समयबद्ध रूप से 100 प्रतिशत मीटरिंग को पूरा किया जाए जैसा सांविधिक रूप से पहले ही विनिर्धारित कर दिया गया है।

2) **शास्तियों का प्रावधान–** वर्तमान में विद्युत अधिनियम, 2003 में राज्य सरकारों द्वारा सब्सिडियों के भुगतान में विलंब के लिए शास्तियों का कोई प्रावधान नहीं है। आयोग, इसलिए यह सिफारिश करता है कि अधिनियम में समुचित रूप से संशोधन किया जाना चाहिए ताकि ऐसी शास्तियों को लगाया जा सके।

3) **राज्य विद्युत विनियामक आयोग कोष की स्थापना–** एसईआरसी को वित्तीय स्वायत्तता प्रदान करने के उद्देश्य से विद्युत अधिनियम, 2003 की

धारा 103 में राज्य सरकारों द्वारा राज्य विद्युत विनियामक आयोग कोष की स्थापना करने का प्रावधान है ताकि एसईआरसी अधिनियम के अंतर्गत यथा परिकल्पित अपनी जिम्मेदारियों को पूरा कर सके। आयोग एसईआरसी की वित्तीय स्वतंत्रता की महत्ता पर जोर देता है और सभी राज्यों से यह आग्रह करता है कि वे सांविधिक रूप से यथा उपबंधित एसईआरसी कोष की स्थापना करे।

4) **रेल प्रशुल्क प्राधिकरण की स्थापना–** आयोग रेल प्रशुल्क प्राधिकरण की स्थापना करने संबंधी पहल पर जोर देता है और रेल अधिनियम, 1989 में आवश्यक संशोधनों के जरिए सलाहकारी निकाय को सांविधिक निकाय से शीघ्र प्रतिस्थापित करने पर बल देता है।

5) **यात्री सड़क क्षेत्र के लिये स्वतंत्र विनियामक की स्थापना–** आयोग यात्री सड़क क्षेत्र के लिये स्वतंत्र विनियामकों की स्थापना करने की सिफारिश की है।

6) **डब्ल्यूआरए की स्थापना–** आयोग तेरहवें वित्त आयोग की सिफारिशों पर जोर देता है और अन्य राज्यों, जिन्होंने डब्ल्यूआरए (WRA) स्थापित नहीं किए हैं, से एक सांविधिक डब्ल्यूआरए स्थापित करने पर विचार करने का आग्रह करता है ताकि घरेलू, सिंचाई तथा अन्य उपयोग हेतु जल का मूल्य–निर्धारण स्वतंत्र और न्यायसंगत रूप से किया जा सके। तथापि, यह पूर्वोत्तर राज्यों में उनके सिंचाई क्षेत्र के छोटे आकार के कारण संभवतः व्यवहारिक नहीं होगा। आयोग यह भी सिफारिश करता है कि पहले से स्थापित डब्ल्यूआरए को शीघ्रतिशीघ्र कार्यशील बनाया जाए।

7) **100 प्रतिशत पेयजल कनेक्शन की मीटरिंग–** इन सभी कारकों पर विचार करते हुए आयोग यह सिफारिश करता है कि राज्यों (और शहरी एवं ग्रामीण निकाय) को घरों, व्यावसायिक प्रतिश्ठानों तथा संस्थानों में वैयक्तिक पेयजल कनेक्शन की दिशा में प्रगतिशीलता से 100 प्रतिशत कनेक्शन की मीटरिंग की ओर आगे बढ़ना चाहिए जिनकी मीटरिंग मार्च, 2017 तक कर ली जानी चाहिए और इसकी लागत उपभोक्ता द्वारा वहन की जानी चाहिए। यद्यपि, सामुदायिक नलकों के जरिए, जनसंख्या के गरीब वर्ग को सुरक्षित जलापूर्ति की जानी अपरिहार्य है परंतु ऐसे मामलों में उपभोग किए गए जल की मीटरिंग भी प्रभावी आपूर्ति सुनिश्चित करेगी।

10.6.9 सार्वजनिक क्षेत्र उद्यम (Public Sector Enterprises)

1) **समग्र सार्वजनिक क्षेत्र उद्यम संबंधी नीति–** आयोग सिफारिश करता है कि वर्तमान परिवेश में सीमांकित नई वास्तविकताओं को राजकोषीय लागतों और लाभों पर पर्याप्त फोकस के साथ एक समग्र सार्वजनिक क्षेत्र उद्यम संबंधी नीति को आकार देने और उसका विकास करने हेतु स्वीकार किया जाए। आयोग आगे यह भी सिफारिश करता है कि केंद्रीय सार्वजनिक उद्यमों के संपूर्ण पोर्टफोलियो में प्रत्येक सार्वजनिक उद्यम के भविष्य का मूल्यांकन करते समय नई वास्तविकताओं पर विचार किया जाए।

2) **वित्तीय निहितार्थों को कारक–** अवसर लागतों के रूप में निवेशों के मौजूदा स्तर के वित्तीय निहितार्थों और मौजूदा सार्वजनिक क्षेत्र उद्यम के

प्रचालन का मूल्यांकन विश्वसनीय राजकोषीय समेकन का एक अनिवार्य घटक है। इसलिए, आयोग सिफारिश करता है कि प्रत्येक केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम के लिए सरकारी स्वामित्व के वांछित स्तर का मूल्यांकन करते समय इन वित्तीय निहितार्थों को कारकों के रूप में देखा जाए।

3) **रोजगार के नए अवसरों का सृजन–** आयोग सिफारिश करता है कि वैयक्तिक उद्यमों के विनिवेश या उनके अधित्याग की सुचारू प्रक्रिया सुनिश्चित करते समय कर्मचारियों के मूलभूत हितों की युक्तियुक्त राजकोषीय लागतों पर रक्षा की जानी चाहिए। आयोग आगे यह सिफारिश करता है कि सार्वजनिक क्षेत्र उद्यमों के केवल कर्मचारियों के सीमित परिप्रेक्ष्य में नहीं, अपितु रोजगार के नए अवसरों के सृजन के परिप्रेक्ष्य में भी विचार किया जाना चाहिए।

4) **वरीयता के रूप में श्रेणीगत करना–** आयोग यह सिफारिश करता है कि केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उद्यम को नीति निर्माताओं द्वारा (i) समन्वित अनुवर्ती कार्रवाई को सुविधाजनक बनाने के उद्देश्य से और (ii) सार्वजनिक क्षेत्र उद्यमों को उनके अपने भविष्य के संबंध में और उनके लिए आगे आने वाले अवसरों के संबंध में वित्तीय बाजारों से संबंधित स्पष्टता प्रदान करने के लिए 'उच्च वरीयता', 'वरीयता', 'अल्प वरीयता' और 'गैर–वरीयता' के रूप में श्रेणीगत किया जाए।

5) **गैर–वरीयता वाले सार्वजनिक क्षेत्र उद्यमों के अधित्याग हेतु पारदर्शी नीलामी–** आयोग यह सिफारिश करता है कि गैर–वरीयता वाले सार्वजनिक क्षेत्र उद्यमों की श्रेणी में गैर–सूचीबद्ध रुग्ण उद्यमों के अधित्याग के लिए पारदर्शी नीलामी प्रक्रिया अपनाई जाए।

6) **विनिवेश के स्तर का निर्धारण–** आयोग यह सिफारिश करता है कि किसी केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उद्यम में विनिवेश के स्तर का निर्धारण निवेश के स्तर के आधार पर किया जाना चाहिए जिसका वरीयताकरण आयोग द्वारा सुझाए गए सिद्धांतों के आधार पर प्रत्येक उद्यम में मध्यावधि से दीर्घावधि में किया जाए, जबकि विनिवेश की प्रक्रिया वर्ष–दर–वर्ष आधार पर बाजार की परिस्थितियों और बजटीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

7) **शेयरों की खरीद के सम्बन्ध में निवेश नीति–** आयोग यह सिफारिश करता है कि सरकार सार्वजनिक क्षेत्र में किए जाने वाले निवेशों के नए क्षेत्रों से संबंधित एक नीति बनाए। जहां 'उच्च वरीयता' और 'वरीयता' वाले सार्वजनिक क्षेत्र उद्यमों में मौजूदा पोर्टफोलियो धारिता सरकार के स्वामित्व के वांछित स्तर से कम है वहां आयोग शेयरों की खरीद की भी सिफारिश करता है।

8) **राष्ट्रीय निवेश निधि की समाप्ति–** आयोग ने राष्ट्रीय निवेश निधि को सीजीए तथा सी एंड एजी के साथ परामर्श करके समाप्त करने की सिफारिश की है। जिससे सरकार के लिए पीएसयू से होने वाली कमाई को तुरंत खर्च करना आसान होगा, साथ ही राजस्व में बढ़ोतरी होगी।

आयोग सभी विनिवेश प्राप्तियों को पूंजीगत व्यय पर उपयोग हेतु समेकित निधि में रखे जाने की 13वें वित्त आयोग की सिफारिशों पर बल देता है।

9) **विनिवेश हेतु अंश का वितरण**– आयोग संघ सरकार द्वारा राज्यों को विनिवेश से प्राप्त लाभों का एक छोटा अंश वितरित करने काफी योग्य पाया। बहुसंख्यक इकाइयों के साथ विभिन्न राज्यों में अवस्थित केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उद्यम के मामले में इस अंश का वितरण ऐसे सभी राज्यों, जहां वे इकाइयां अवस्थित हैं, एकरूप हो सकता है। ऐसे मामलों में जहां केवल उर्ध्वाधर इकाई–वार विनिवेश किया जाता है वहां यह अंश/राशि ऐसे राज्यों को दी जा सकती है जहां विनिवेश की जा रही इकाइयां अवस्थित हों।

10) **मॉनीटरिंग और मूल्यांकन में संस्थागत बाध्यताओं का ध्यान**– आयोग केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उद्यमों को प्रभावी और प्रतिस्पर्धी बनाने की महत्ता को स्वीकार करता है परंतु यह सुझाव देता है कि इन उद्यमों की मॉनीटरिंग और उनके मूल्यांकन में ऐसी संस्थागत बाध्यताओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए जिनके भीतर उनकी प्रबंधन व्यवस्थाएं कार्य करती है।

11) **पारदर्शी बजटीय प्रणाली**– यदि केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उद्यमों पर सरकार के सामाजिक लक्ष्यों के कार्यान्वयन का बोझ डाला जाता है तो पारदर्शी बजटीय प्रणाली के जरिए उसकी पर्याप्त रूप से प्रतिपूर्ति की जानी चाहिए। इसी प्रकार, प्रशासित मूल्य तंत्रों के कारण हुई हानियों को भी परिगणित किया जाना चाहिए और उनकी पूर्णतः क्षतिपूर्ति की जानी चाहिए।

12) **अभिशासन व्यवस्थाओं की समीक्षा**– आयोग यह सिफारिश करता है कि केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उद्यमों की अभिशासन व्यवस्थाओं की विशेषकर स्वामित्व से विनियामक कार्यों के पृथकीकरण, नामिनी तथा स्वतंत्र निदेशकों की भूमिका, अभिशासन ढ़ांचे के संबंध में अभिशासन संबंधी व्यवस्थाओं और प्रबंधों की समीक्षा की जानी चाहिए।

13) **सार्वजनिक क्षेत्र उद्यमों की वित्तीय नीति**– आयोग यह सिफारिश करता है कि उसके द्वारा प्रस्तावित सार्वजनिक क्षेत्र उद्यमों की व्यापक समीक्षा के भाग के रूप में उद्यमों के उधार, लाभांशों के भुगतान और अतिरिक्त जमा राशि के अंतरण से संबंधित नीतियों और क्रियाविधियों को प्रतिपादित किया जाए और उन्हें लागू किया जाए।

14) **आनुषंगिक इकाइयों के लिए सुस्पष्ट और प्रभावी नीति**– निवेश आयोग यह सिफारिश करता है कि केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उद्यमों द्वारा उनकी आनुषंगिक इकाइयों में निवेशों के लिए महत्वपूर्ण वित्तीय निहितार्थों के मद्देनजर, इस दिशा में एक सुस्पष्ट और प्रभावी नीति अपनाई जाए।

15) **वित्तीय क्षेत्र की समिति का गठन**– आयोग यह सिफारिश करता है कि विनियामक आवश्यकताओं, प्रत्येक गतिविधि में इकाइयों की बहुलता और विकासपरक वित्तीय संस्थानों के कार्य–निष्पादन और उनकी कार्य प्रणाली को स्वीकार करते हुए वित्तीय क्षेत्र के सार्वजनिक उद्यमों को समुचित भावी राजकोषीय सहायता प्रदान करने के लिए वित्तीय क्षेत्र की सार्वजनिक उद्यमों से संबंधित एक समिति गठित की जाए।

16) **राज्य स्तर के सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम**– आयोग यह सिफारिश करता है कि राज्य स्तर के उद्यमों पर 13वें वित्त आयोग की सिफारिशों के संबंध में कार्रवाई करने के अतिरिक्त जहां तक संभव हो आयोग की सिफारिशों का तर्क सामान्य रूप से सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के संबंध में अपनाए जाएं।

10.6.10 सार्वजनिक व्यय प्रबन्धन (Public Expenditure Management)

1) **उपचय लेखांकन आधारित पद्धति**– यह आयोग 12वें वित्त आयोग की इस टिप्पणी का समर्थन करता है कि संघ और राज्य सरकारों को उपचय आधारित लेखांकन पद्धति में परिवर्तन करना चाहिए। आयोग इस बात को भी स्वीकार करता है कि लेखांकन पद्धति में परिवर्तन चरणबद्ध रूप से ही किया जा सकता है क्योंकि इसके लिए काफी ज्यादा तैयारी कार्य और लेखांकन कर्मियों का क्षमता निर्माण करने की आवश्यकता होती है। अतः आयोग 12वें वित्त आयोग की उस सिफारिश पर पुनः जोर देता है कि उपचय लेखांकन प्रणाली की ओर कदम बढ़ाने के उद्देश्य से संघ और राज्य सरकारें आयोग द्वारा अधिसूचित विवरणों में वित्तीय लेखों को संलग्न करें। यह आयोग 12वें वित्त आयोग की सिफारिश को दोहराना चाहता है कि उपचय लेखांकन आधारित पद्धति के लिए एकाउंटिंग प्रोफेशनलों की क्षमता निर्माण करने के लिए कार्रवाई की जानी चाहिए।

2) **सी एवं एजी द्वारा निर्दिष्ट समय सीमा का अनुपालन**– आयोग सी एवं एजी (Comptroller & Auditor General i.e C&AG) की टिप्पणियों, अर्थात लेखाओं को तैयार करने, संसद एवं राज्य विधायिकाओं के समक्ष लेखाओं को प्रस्तुत करने हेतु निर्दिष्ट समय सीमा का अनुपालन करने के लिए अतिशीघ्र एवं प्रभावकारी अनुवर्तन करने की महत्ता को दोहराता है।

3) **एलएमएमएचए समिति की सिफारिशों पर निर्णय**– आयोग एलएमएमएचए समिति (List of Major and Minor Heads of Accounts Committee i.e. LMMHA Committee) द्वारा व्यय प्रबन्धन पर वर्ष 2012 में दी गयी रिपोर्ट की सभी सिफारिशों पर जल्द से जल्द निर्णय लेने की सिफारिश करता है।

4) **ऑब्जेक्ट शीर्ष के लिए लचीलापन**– सार्वजनिक आयोग ऐसा मानता है कि ऑब्जेक्ट शीर्ष स्तर पर संघ तथा राज्यों में वेतन, अनुरक्षण, सब्सिडी और सहायता अनुदान जैसे कुछ समान ऑब्जेक्ट शीर्ष पर्याप्त हैं। अन्य ऑब्जेक्ट शीर्षों के संबंध में, आयोग यह सिफारिश करता है कि राज्यों को उनके कार्यात्मक आवश्यकताओं के अनुसार नए ऑब्जेक्ट शीर्षों को खोलने के लिए लचीलेपन को बरकरार रखा जाना चाहिए।

5) **परिव्ययों को परिणामों के साथ लिंक करना**– आयोग परिव्ययों को परिणामों के साथ लिंक करने की महत्ता पर पुनः जोर देता है। यद्यपि आयोग ने इस बात पर जोर दिया है कि इनकी आउटपुट और निगरानी के लिए मुख्य संकेतक संरचित करना जरूरी है जो पहले से सुस्पष्ट जवाबदेही व उत्तरदायिता के ढांचे के तहत होंगे।

6) **उत्तरदायिता व जवाबदेही फ्रेमवर्क के लिए उपयुक्त संसूचक**– आयोग आउटपुटों को मापने, मानकों और लागतों के विनिर्देषन तथा एक उपयुक्त

उत्तरदायिता व जवाबदेही फ्रेमवर्क के लिए उपयुक्त संसूचकों को बनाए जाने की सिफारिश करता है।

7) **एंड टू एंड लिंकेज–** आयोग प्रौद्योगिकी प्लेटफोर्म का निर्माण करने के लिए संघ सरकार और राज्य सरकारों के प्रयासों के बीच एक तालमेल व सहक्रियता की सिफारिश करता है, जिसमें संघ सरकार और राज्य सरकारों की प्रणालियां एक दूसरे से इंटरफेस कर सकती हैं ताकि अपेक्षित सूचना को साझा किया जा सके। ऐसी व्यवस्था से एंड टू एंड लिंकेज (End to End Linkage) की सुनिश्चितता होगी। विशेष रूप से संघ सरकार द्वारा राज्यों को दिए जाने वाले क्षेत्र – विशिष्ट अनुदानों कें संबंध में।

8) **प्रशासानिक सुधार आयोग की सिफारिशों पर निर्णय** – आयोग संघ और राज्य सरकारों को आंतरिक लेखा परीक्षा और आंतरिक नियंत्रण प्रणालियों पर द्वितीय प्रशासानिक सुधार आयोग (2009 में प्रस्तुत) की सिफारिशों पर विचार करने तथा प्रत्येक सिफारिश पर शीघ्र निर्णय लेने की सिफारिश करता है।

9) **अंतर–राज्य परिषद का गठन–** आयोग वेतन एवं परिलब्धियों के लिए एक राष्ट्रीय नीति बनाने हेतु अंतर–राज्य परिषद जैसे मंच के माध्यम से संघ और राज्यों के बीच एक परामर्शीय प्रक्रिया के लिए 11वें वित्तीय आयोग की टिप्पणियों व विचारों का पूर्ण रूप से समर्थन करता है।

10) **वेतन एवं उत्पादकता को लिंक करना–** आयोग प्रौद्योगिकी, कौशल और प्रोत्साहनों पर ध्यान रखने के साथ–साथ वेतन एवं उत्पादकता को लिंक करने की सिफारिश करता है। आयोग यह भी सिफारिश करता है कि वेतन आयोगों को 'वेतन एवं उत्पादकता आयोगों' के रूप में पदनामित किया जाना चाहिए और उन्हें वेतन वृद्धियों के साथ–साथ "कर्मचारी की उत्पादकता" बढ़ाने के लिए उपायों की सिफारिश करने का स्पष्ट अधिदेश दिया जाना चाहिए। आयोग यह अनुरोध करता है कि भविष्य में अतिरिक्त पारिश्रमिक व मेहनताने को उत्पादकता में वृद्धि से जोड़ा जाना चाहिए।

11) **नयी पेंशन योजना–** आयोग उन राज्यों से जिन्होंने अब तक नयी पेंशन योजना (New Pension Scheme i.e NPS) को लागू नहीं किया है अनुरोध करता है कि वह अपने भावी बोझ को कम करने हेतु अपने राज्य में नई नियुक्तियों के लिए नई पेंशन योजना को लागू करने पर अतिशीघ्र विचार करें।

12) **पूर्वानुमानों में सुधार हेतु वैज्ञानिक दृष्टिकोण–** आयोग संघ और राज्य दोनों सरकारों के लिए अपने पूर्वानुमानों में सुधार लाने की सिफारिश करता है जिसके लिए वह एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपना सकते हैं। इसी प्रकार से, राजकोषीय उत्तरदायिता विधायन और एमटीएफपी में आकलनों को सुस्पष्ट औचित्यों का आधार दिया जाना चाहिए ताकि पूर्वानुमानों को सही ठहराया जा सके। जब पूर्वानुमान पिछली प्रवृतियों के अनुरूप नहीं होते हैं तो ऐसे में राजस्व उत्पादकता में बढ़ोतरी करने और व्यय परिवर्धन हेतु अपेक्षित परिपूर्ण सुधारों पर एक विस्तृत विवरण दिया जाना चाहिए। आयोग यह भी सिफारिश करता है कि संघ और राज्य सरकारों को अपने

नकदी प्रबंधन कार्य प्रणालियों में सुधार लाने के लिए उचित उपाय करने चाहिए।

10.7 चौदहवें वित्त आयोग द्वारा सिफारिश किए गए अंतरण (Transfers Recommended by the 14th Finance Commssion)

चौदहवें वित्त आयोग द्वारा सिफारिश किए गए अंतरण निम्नवत हैं :–

10.7.1 विभिन्न राज्यों को आवंटित राशि (Distribution of Grants in Aid to Various States)

वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुपालन में आयोग हस्तांतरण की पहली किश्त के तौर पर सभी राज्यों को वित्त वर्ष 2015-16 के लिए केन्द्र सरकार ने 37,420 करोड़ रूपये से अधिक राशि जारी कर दिए गए हैं। उत्तर प्रदेश को सार्वजनिक 6,735.81 करोड़ रूपये मिले। उसके बाद बिहार को 3,624.37 करोड़ रूपये मध्य प्रदेश को 2,835.75 करोड़ रूपये, पश्चिम बंगाल की 2,746.91 करोड़ रूपये और महाराष्ट्र को 2,075.59 करोड़ रूपये मिले।

सबसे कम राशि पाने वाले राज्यों में रहे सिक्किम को 137.46 करोड़ रूपये, गोवा को 141.51 करोड़ रूपये मिजोरम को 172.40 करोड़ रूपये और नागालैंड को 186.68 करोड़ रूपये मिले।

14वें वित्त आयोग ने विभाजन योग्य कर वसूली में राज्यों की हिस्सेदारी 10 फीसदी बढ़ाकर 42 फीसदी कर दी है। इसके कारण 2015-16 में राज्यों को 1,78,000 करोड़ रूपये अतिरिक्त मिलेंगे। आयोग ने 2015-16 के लिए 11 राजस्व घाटा वाले राज्यों को आर्थिक मदद के तौर पर 48,906 करोड़ रूपये देने की भी सिफारिश की है। 2015-16 में राज्यों को कुल हस्तांतरण 5,26,000 करोड़ रूपये होगा, जो 2014-15 के मुकाबले 1,78,000 करोड़ रूपये ज्यादा है।

तालिका 10.6 विभिन्न राज्यों को आवंटित राशि

क्र0सं0	राज्य	राशि (करोड़ रू में)
1	आंध्र प्रदेश	1,616.78
2	अरूणाचल प्रदेश	516.48
3	असम	1,242.76
4	बहार	3,624.37
5	छत्तीसगढ़	1,157.94
6	गोवा	141.51
7	गुजरात	1,159.56
8	हरियाणा	406.10
9	हिमाचल प्रदेश	267.38
10	जम्मू-कश्मीर	577.63
11	झारखंड	1,178.33
12	कर्नाटक	1,770.46
13	केरल	937.15
14	मध्य प्रदेश	2,835.75
15	महाराष्ट्र	2,075.59

16	मणिपुर	231.27
17	मेघालय	240.75
18	मिजोरम	172.40
19	नागालैंड	186.68
20	ओडिशा	1,743.46
21	पंजाब	590.88
22	राजस्थान	2,065.79
23	सिक्किम	137.46
24	तमिलनाडु	1,510.51
25	तेलंगाना	915.85
26	त्रिपुरा	240.62
27	उत्तर प्रदेश	6,735.81
28	उत्तराखण्ड	394.68
29	पश्चिम बंगाल	2,746.91
	कुल	**37,420.86**

10.7. सकल कर राजस्व, राजस्व प्राप्तियां और जीडीपी की प्रतिशतता के रूप में कुल अंतरण

निम्न तालिका 10.7 के माध्यम से 14वें वित्त आयोग द्वारा सिफारिश किए गए अंतरण का विश्लेषण किया गया है :—

तालिका 10.7 14वें वित्त आयोग द्वारा सिफारिश किए गए अंतरण

(रुपये करोड़ में)

		2014-15 (ब.अ.)	2015-16	2016-17	2017-18	2018-19	2019-20	कुल (2015-20)
1	राज्यों को कर अंतरण	382216	579282	668425	772304	893430	1034745	3948187
2	वित्त आयोग से राज्यों को कुल अनुदान (क+ख+ग)	64675*	88865	100646	103101	111063	133678	537354
क	राज्यों को अंतरण पश्चात राजस्व घाटा अनुदान	7550	48906	41308	35820	34581	34206	194821
ख	राज्यों को आपदा राहत अनुदान	5791	9971	10470	10993	11543	12120	55097
ग	राज्यों के स्थानीय निकायों को अनुदान	22494	29988	48868	56288	64939	87352	287436
3	वित्त आयोग से राज्यों को कुल अंतरण (1+2)	446891	668146	769071	875406	1004494	1168424	4485541
4	विभाज्य पूल **	1211663	1379243	1591488	1838820	2127215	2463679	9400444
5	संघ सरकार के	764772	711096	822416	963414	1122721	1295256	4914904

	पास उपलब्ध फिस्कल स्पेस (4-3)							
6	राज्यों को किए जाने वाले अन्य अंतरणों के लिए प्रावधान (7-2) (अनुमानित)		197350	235004	290263	349665	405662	1477943
7	संघ से राज्यों को कुल अनुदान	367529	286214	335650	393364	460729	539340	2015297
8	राज्यों को कुल अंतरण (1+7)	749745	865496	1004075	1165669	1354159	1574085	5963484
विभाज्य पूल की प्रतिशतता के रूप में								
1	राज्यों को कर अंतरण	31.54	42.00	42.00	42.00	42.00	42.00	42.00
2	वित्त आयोग से राज्यों को अनुदान	5.34	6.44	6.32	5.61	5.22	5.43	5.72
3	राज्यों को कर अंतरण और वित्त आयोग अनुदान	36.88	48.44	48.32	47.61	47.22	47.43	47.72
4	संघ के पास उपलब्ध फिस्कल स्पेस	63.12	51.56	51.68	52.39	52.78	52.57	52.28
5	राज्यों को किए जाने वाले अन्य अंतरणों के लिए प्रावधान (अनुमानित)		14.31	14.77	15.79	16.44	16.47	15.72
6	राज्यों को कुल अंतरण	61.88	62.75	63.09	63.39	63.66	63.89	63.44

टिप्पणी : *राज्य सरकारों को वर्ष 2014–15 के लिए वित्त आयोग द्वारा दिए जाने वाले अनुदानों में वित्त आयोग 13 द्वारा अनुशंसित अनुदान भी शामिल है। **विभाज्य पूल के वर्ष 2014–15 के लिए (ब.अ.) के आंकड़े वित्त मंत्रालय भारत सरकार से लिए गए

स्रोत : वर्ष 2014–15 (बजट अनुमान) के आंकड़े संघ बजट दस्तावेज वर्ष 2014–15 से लिए गए हैं।

10.8 सारांश

1951 से अब तक कुल 14 वित्त आयोगों का गठन हो चुका है। 14वाँ आयोग जनवरी 2013 में डॉ0 वाई0वी0 रेड्डी की अध्यक्षता में गठित हुआ जिसने क्रियान्वन वर्ष 2015-20 के लिये जनवरी 2015 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की ।

अध्ययन की दृष्टि से पुराने आयोगों की संस्तुतियों का केवल ऐतिहासिक महत्व है । 10वें आयोग से लेकर 13वें आयोग तक की गई संस्तुतियाँ महत्त्वपूर्ण हैं जिससें हमें वर्ष 1992 से 2014 व 15 तक के बीच हुए बदलावों का एक सिंहावलोकन करने को मिलता है। ज्ञातव्य है कि जून 2000 में 80वें संशोधन के पश्चात भारत सरकार द्वारा लगाये और वसूले गये सभी कर अनिवार्य रूप से केन्द्र व राज्य के बीच विभाज्य हो सके जो कि पहले सम्भव नहीं था।

संविधान की दृष्टि से वित्त आयोग वित्तीय संघवाद का संतुलनकारी उपकरण और अधिकरण है पर वित्त आयोग की स्थिति परामर्शदाता वाली है। आयोग की

संस्तुतियो को मानने के लिए केन्द्र सरकार बाध्य नहीं है । योजना आयोग (अब नीति आयोग) ने भी वित्त आयोग के अधिकार क्षेत्र और कार्यकरण वित्त आयोग की सिफारिशों के चलते केन्द्र से राज्यों को अंतरित किए जाने वाले स्वरूप में भारी परिवर्तन होगा, जिसका प्रभाव राज्यों में अनेक विभागों में चल रही केन्द्र प्रायोजित योजनाओं (Centrally Sponsored Schemes- CSSs) पर आएगा। राज्यों की वित्तीय स्थिति मजबूत करने के लिए 14वें वित्त आयोग ने केन्द्र प्रायोजित योजनाओं के लिए धन के आवंटन में कटौती कर केन्द्रीय करों में से राज्यों को दिए जाने वाले अंश में भारी वृद्धि की संस्तुति की है । जीएसटी लागू होने पर राज्यों को होने वाली किसी वित्तीय हानि की क्षति पूर्ति के लिए एक विशेष कोष के गठन का सुझाव आयोग की सिफारिशों में शामिल है।

14वें वित्त आयोग द्वारा संस्तुतियों पर क्रियान्वयन के प्रमुख तथ्य जैसे केन्द्रीय करों में राज्यों की हिस्सेदारी में वृद्धि, राज्यों को अधिक स्वायत्ता, राज्यों को अनुदान, जी एस टी हेतु फंड की सिफारिश, स्थानीय निकायों को अधिक संसाधन, अन्तर्राष्ट्रीय परिषद को मजबूत करने की आवश्यकता, वित्तीय समेकन के लिये रोडमैप, राष्ट्रीय निवेश फंड की समाप्ति, आपदा राहत कोष इत्यादि हैं । इसी सन्दर्भ में केन्द्र सरकार द्वारा राज्यों को आबंटित राशि की वजह से राज्यों में विकास की धारा बही है जिसके कारण आगामी वर्षो मे काफी बदलाव देखने को मिलने की आशा है ।

10.9 शब्दावली

वित्त आयोग –केन्द्र में राष्ट्रपति महोदय तथा राज्यों में राज्यपाल महोदय द्वारा गठित आयोग जो वित्तीय मुद्दों का विश्लेषण कर सुझाव देता है। केन्द्रीय वित्त आयोग केन्द्र एवं राज्य सरकारों तथा राज्य वित्त आयोग राज्य सरकार एवं स्थानीय सरकारों के मध्य वित्तीय संबंधों की संरचना और विवेचना करता है।

14वां वित्त आयोग– 14वें वित्त आयोग का गठन 2 फरवरी 2013 को रिजर्व बैंक के पूर्व गवर्नर श्री वाई0वी0 रेड्डी की अध्यक्षता में किया गया। आयोग ने 15 दिसम्बर 2014 को अपनी अठ्ठारह अध्याय की अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की। जिसमें विचारार्थ विषय में (टीओआर) से सम्बन्धित 10 अध्यायों में वर्णित परिद्रश्य एवं सिफारिशें टिप्पणी योग्य हैं। 14वें वित्त आयोग की क्रियान्वयन अवधि 1 अप्रैल 2015 से 31मार्च 2020 होगी।

अनुदान –सरकार द्वारा व्यक्तियों व संस्थाओं को किसी कार्य विशेष की पूर्ति हेतु प्रदान की गयी सरकारी सहायता अनुदान कहलाती है। यह सार्वजनिक उद्देश्य की पूर्ति हेतु प्रदान की जाती है। इसका उद्देश्य सहायता करना होता है।

अनुग्रह राशि –अनुग्रह सभी सरकार द्वारा प्रदत्त सहायता राशि होती है। जो स्नेह अनुग्रह या कृपापूर्वक प्रदान की जाती है। इसका उद्देश्य दया या दान भाव से प्रेरित होता है।

स्थानीय सरकारें– स्थानीय सरकारें किसी स्थान विशेष से संबंधित होती है। ग्राम पंचायत, जिला पंचायत नगर पालिका, नगर निगम, कैंटोनमेंट बोर्ड आदि स्थानीय सरकारों के उदाहरण हैं।

सार्वजनिक क्षेत्र उद्योग– जिन उद्योगों का स्वामित्व और प्रबंधन सरकार के हाथ में होता है सार्वजनिक क्षेत्र के उधम कहलाते हैं। इसके लिये उथले केन्द्र सरकार,

अकेले राज्य सरकार या दोनों के मिलाकर आधे से अधिक अंश होना आवश्यक हैं तभी सरकार को स्वामित्व व नियंत्रण प्राप्त होता है।

10.10 बोध प्रश्न

I) **वैकल्पिक प्रश्न**

1) 13वें वित्त आयोग के अध्यक्ष निम्न से कौन थे :

i) के सी. नियोगी
ii) सी. रंगराजन
iii) वाई. वी. रेड्डी
iv) विजय केलकर

2) जीएसटी से राज्यों को होने वाले नुकसान की भरपाई के प्रावधान हेतु जीएसटी लागू होने के पहले दूसरे और तीसरे साल में कितना मुआवज़ा देना होगा :

i) 100 प्रतिशत
ii) 75 प्रतिशत
iii) 50 प्रतिशत
iv) उक्त में से कोई नही

3) राजस्व घाटे वाले 11 राज्यों को अनुदान दिया जाने वाली सूची में निम्न में से कौनसा राज्य शामिल नहीं है :

i) असम
ii) हिमाचल प्रदेश
iii) उत्तराखंड
iv) जम्मू–कश्मीर

4) समेकित राजस्व प्राप्तियों का 49 प्रतिशत सुनिश्चित करना निम्न में आयोग के किस सुझाव के अंतर्गत आता है :

i) संघीय कर राजस्वों की हिस्सेदारी
ii) सहयोगात्मक संघवाद
iii) वस्तु और सेवा कर
iv) उक्त में से कोई नहीं

5) आयोग द्वारा सुझाव देते समय सार्वजनिक क्षेत्र उद्यम के बारे में कौनसा कथन लागू नहीं होता है ?

i) आयोग ने राष्ट्रीय निवेश निधि को को सीजीए तथा सी एंड एजी के साथ परामर्श करके समाप्त करने की सिफारिश की है
ii) वित्तीय बाजारों से संबंधित स्पष्टता प्रदान करने के लिए 'उच्च वरीयता', 'वरीयता', 'अल्प वरीयता' और 'गैर–वरीयता' के रूप में श्रेणीगत किया जाए
iii) आयोग एलएमएमएचए समिति द्वारा व्यय प्रबन्धन पर वर्ष 2012 में दी गयी रिपोर्ट की सभी सिफारिशों पर जल्द से जल्द निर्णय लेने की सिफारिश करता है।

iv) उक्त में से कोई नहीं

II) निम्नलिखित मे ंसे कौन सा कथन सत्य है और कौन सा असत्यः

6) वित्त आयोग के अध्यक्ष की नियुक्ति प्रधानमंत्री द्‌वारा की जाती है। (सत्य/असत्य)

7) व्यावसायिक कर की सीमा रुपये 2,500 से बढ़ा कर रुपये 12,000 रुपये प्रतिवर्ष कर दी गयी है। (सत्य/असत्य)

8) सभी स्थानीय निकायों को 14वीं योजना के अंतर्गत कुल 2,87,436 करोड़ रूपये के अनुदान का प्रावधान किया गया है। (सत्य/असत्य)

9) आयोग 13वें वित्त आयोग के विचारों से सहमत होते हुए राज्य सरकारों से डीडीआरएफ स्थापना की सिफारिश की है। (सत्य/असत्य)

10) 14वें वित्त आयोग ने केन्द्रीय कर राजस्व का 32 प्रतिशत भाग राज्यो ंको हस्तांतरित करने की संस्तुति दी है। (सत्य/असत्य)

10.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

I) वैकल्पिक प्रश्न

1) iv 2) i 3) iii 4) ii 5) iii

II) सत्य/असत्य

6) असत्य 7) सत्य 8) सत्य 9) असत्य 10) सत्य

10.12 स्वपरख प्रश्न

1) वित्त आयोग से क्या आशय है? वित्त आयोग की नियुक्ति किसके द्वारा की जाती है।
2) वित्त आयोग का गठन किन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किया जाता है। विस्तृत विवरण दीजिये ?
3) सहयोगात्मक संघवाद से आप क्या समझते हैं।
4) चौदहवें वित्त अयोग 14वें वित्त आयोग की सिफारिशों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिये।
5) राज्य वित्त आयोग का गठन क्यों और किसके द्वारा किया जाता है। बताइये ?
6) राज्य वित्त आयोग के गठन के प्रमुख उद्देश्यों का वर्णन कीजिये।
7) वित्त आयोग तथा नीति आयोग में भेद कीजिये ।

10.13 सन्दर्भ पुस्तकें

1. राजस्व : डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय
2. लोकवित्त : डॉ0 एस0 के0 सिंह
3. राजस्व : डॉ0 आर0 एस0 कौशिक
4. राजस्व सिद्धान्त एवं व्यवहार : के0 एल0 माहेश्वरी
5. Delton, H : Principles of public Finance
6. Public Finance Theory and Practice : Mehta and Agrawal
7. Shirras, Findley : The Science of Public Finance
8. Hicks, Ursula : Public Finance
9. A.C. Pigou : A Study of Public Finance
10. Taylor P.E. : Economics of Public Finance
11. Raja J Chhelliah : Fiscal Policy in under developed Countries.

इकाई 11 पंचवर्षीय योजना (Five Year Plans)

इकाई की रुपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 आर्थिक नियोजनः आशय एवं अवधारणा
11.3 भारत में आर्थिक नियोजन का ऐतिहासिक विवेचन
11.3.1 स्वतंत्रता से पूर्व
11.3.2 स्वतंत्रता के पश्चात
11.4 आर्थिक नियोजन का महत्व एवं भूमिका
11.5 आर्थिक नियोजन का उद्देश्य
11.6 आर्थिक नियोजन की सफलता के पूर्व आवश्यक तत्व
11.7 ंभारत में आर्थिक नियोजन हेतु संस्थाएँ
11.7.1 नीति आयोग (पूर्ववर्ती योजना आयोग)
11.7.2 राष्ट्रीय विकास परिषद
11.8.3 वित्त आयोग
11.8 आर्थिक नियोजन की समस्याऐं
11.9 पंचवर्षीय (अथवा राष्ट्रीय) योजना – आवश्यक तत्व
11.10 पंचवर्षीय योजनाओं की व्यूह रचना अथवा रणनीति
11.11 पूर्ववर्ती योजनाओं का इति वृत्तात्मक वितरण
11.12 बारहवी पंचवर्षीय योजना
11.13 बारहवीं योजना के लक्ष्य
11.14 पंचवर्षीय योजनाओं का वित्त प्रबन्धन व वित्तपोषण
11.14.1 नियोजन का आर्थिक परिप्रेक्ष्य
11.14.2 वित्तपोषण के स्रोत
11.15 बारहवीं योजना में सार्वजनिक क्षेत्र के संसाधन
11.15.1 केन्द्र के संसाधन
11.15.2 राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों के संसाधन
11.16 सार्वजनिक क्षेत्रक के संसाधनों का आवंटन
11.17 योजना वित्तपोषण संबंधी मुद्दे
11.17.1 एचएलईसी की सिफारिशें
11.17.2 अवसंरचना वित्तपोषणः पीपीपी की ओर परिवर्तन
11.17.3 बारहवीं योजना हेतु कार्यनीति
11.17.4 बारहवीं योजना में अवसंरचना निवेश का वित्तपोषण
11.18 सारांश
11.19 शब्दावली
11.20 बोध प्रश्न
11.21 बोध प्रश्नों के उत्तर
11.22 स्वपरख प्रश्न
11.23 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- आर्थिक नियोजन के आशय व अवधारणा समझ सकें।
- राष्ट्रीय विकास में आर्थिक नियोजन का महत्व और योगदान जान पाऐं।
- योजना आयोग की स्थापना, संरचना और नियोजन की प्रक्रिया से अवगत हो सकें।
- पूर्ववर्ती योजनाओं का इति वृत्तात्मक विवरण जान सकें।
- बारहवीं पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य एवं उपलब्धियों का ज्ञान प्राप्त कर सकें।
- योजना आयोग का समाप्त कर नीति आयोग के गठन की प्रक्रिया और उदेश्य से परिचित हों सकें।
- योजनाओं के वित्त संभरण की प्रक्रिया विशेषतः बारहवीं पंच वर्षीय योजना की वित्त व्यवस्था व वित्त पोषण के बारे में जान सकें।

11.1 प्रस्तावना

लम्बे समय विदेशी शासकों के आधीन रहने के पाश्चात 15 अगस्त 1947 को भारत वर्ष ने स्वतंत्रता प्राप्त की। पर राष्ट्र के तत्कालीन कर्णधारों ने यह अनुभव किया कि अकेली राजनीतिक स्वतंत्रता अधूरी और लंगड़ी है। राष्ट्र के नागरिकों को सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता भी चाहिये। सुविचारित अर्थ सामाजिक उत्थान के लिये आर्थिक नियोजन की आवश्यकता अनुभव लिये आर्थिक नियोजन की आवश्यकता की गयी। यह कहा गया कि राजनीतिक स्वतंत्रता के रूप में जो चैक हमें प्राप्त हुआ था उसे समृद्धि की नकदी में भुनाने के लिये योजनाओं की आवश्यकता थी।

11.2 आर्थिक नियोजनः आशय एवं अवधारणा (Economic Planning - Meaning & Concept)

नियोजन भविष्य के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर बनायी गयी कार्य योजना है जो वर्तमान में लागू की जाती है पर उसका परिणाम दूरगामी होता है। क्या किया जाना है? क्यों किया जाना है? कब किया जाना है? कैसे किया जाना है? और किसके द्वारा किया जाना है, इन सब आधार भूत प्रश्नों का उत्तर नियोजन है। उपलब्ध संसाधनों को कार्य सिद्धि के लिये कैसे नियोजित प्राप्त किये जा सके यही नियोजन है। नियोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा भविष्य में प्राप्त होने वाले उद्देश्यों व किये जाने वाले कार्यो का पूर्वानुमान किया जाता है।

आर्थिक नियोजन राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने का प्रयास है। आर्थिक नियोजन आर्थिक संसाधनों और आर्थिक गति विधियों का समन्वित और केन्द्रीकृत प्रयास है। सारे संसाधनो का सुविचारित मदों पर प्रयोग किया जाता है। केन्द्रीय सत्ता ही लक्ष्य निर्धारित करती है और वही सत्ता उन साधनों का आवण्टन कर आर्थिक क्रियायों को संचालित करती है।

डाल्टन के अनुसार, आर्थिक नियोजन अपने विस्तृत अर्थ में विशाल साधनों के सरंक्षक व्यक्तियों के द्वारा निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आर्थिक क्रियाओं का इच्छित निर्देशन है।

गुन्नार मिर्डल के अनुसार, आर्थिक नियोजन राष्ट्रीय सरकार की व्यूह–रचना का एक कार्यक्रम है, जिसमें बाजार की शक्तियों के साथ–साथ सरकारी हस्तक्षेप द्वारा सामाजिक क्रिया को ऊपर ले जाने के प्रयास किये जाते हैं।

आर्थिक नियोजन को सामान्यतया आर्थिक गतिविधियों का समन्वय (Coordination of Economic Activities) कर इसे नियंत्रण के अंतर्गत संचालित करने की पद्धति कहा जाता है।

11.3 भारत में आर्थिक नियोजन का ऐतिहासिक विवेचन (Historical Perspectives of Economic Planning)

आर्थिक नियोजन मूल रूप से बीसवीं शताब्दी में प्रारंभ हुए आन्दोलन समाजवादी पद्धति की देन है जहां सभी आर्थिक संसाधन सरकार के स्वामित्व में रहते हैं। यूरोपीय देशों में आद्यौगिक क्रांति के फलस्वरूप उत्पादन की नयी प्रणाली का जन्म हुआ जिसे पूंजीवाद के नाम से जाना गया। क्या उत्पादित होना और कब, उत्पादन कौन करेगा और कैसे ये सारे मूलभूत प्रश्न बाजार की माँग और पूर्ति से अनुशासित होते हैं। जो बिक सकता है जिसकी मांग है वही उत्पादित होगा यह बाजार वादी व्यवस्था का प्रावधान है। आर्थिक नियोजन बाजार आधारित व्यवस्था को अस्वीकृत करती है क्योंकि बाजार वादी व्यवस्था में आर्थिक प्रश्नों का समाधान बाजार से प्रेरित होता है। जबकि आर्थिक नियोजन में भौतिक के साथ मानवीय राष्ट्रीय और सांस्कृतिक मूल्य की निर्णायक होते है।

नियोजन को आर्थिक विकास के साधन के रूप में सर्वप्रथम 1928 में सोवियत नेता जोसेफ स्टालिन द्वारा सोवियत संघ (वर्तमान में रूस) में आरंभ किया गया था। वहां की पिछड़ी हुई कृषि तथा औद्योगिक व्यवस्था को आधुनिक औद्योगिक शक्ति में परिवर्तित करने के उद्देश्य से योजना आरम्भ की गयी जोकि सफल रही। इसका भारत पर भी गहरा प्रभाव पड़ा और देश में आर्थिक नियोजन की नींव पड़ी और इस प्रकार आर्थिक नियोजन का विचार बढ़ता गया।

भारत में आर्थिक नियोजन के इतिहास को दो भागो में समझा जा सकता है :

i) स्वतंत्रता से पूर्व

ii) स्वतंत्रता के पश्चात

11.3.1 स्वतंत्रता से पूर्व

भारत में आर्थिक नियोजन की आवश्यकता स्वतंत्रता से काफी पहले से ही महसूस की जाने लगी थी। भारत में आर्थिक नियोजन की शुरुआत 1934 में विख्यात इंजीनियर विश्वैसरैय्या द्वारा लिखित पुस्तक प्लांड इकोनॉमी फार इण्डिया (Planned Economy for India) से मानी जाती है। 1938 में श्री मेघनाद साहा द्वारा योजना का एक प्रारूप (Draft) तैयार किया गया जिसमें आर्थिक नियोजन की आधारभूत बातें रखी गयी थीं एवं पं. जवाहर लाल नेहरू अध्यक्षता में राष्ट्रीय नियोजन समिति का गठन हुआ। गांधीवादी बम्बई योजना के नाम से भी आर्थिक नियोजन का एक मसौदा तैयार किया गया था। 1944 में बम्बई के 8 उद्योगपतियों ने भारत के आर्थिक विकास की योजना की रुपरेखा (A Brief Memorandum Outline Plan for Economic Development of India) तैयार की

जिसके अंतर्गत बाम्बे प्लान (Bombay Plan) प्रस्तुत किया गया। इस योजना को पूर्णतः पूंजीवादी घोषित कर दिया गया अतः यह योजना लागू न हो सकी। इसे टाटा–बिड़ला योजना के नाम से भी जाना जाता है। 1944 में ही श्री एम.एन.राय ने जन योजना प्रस्तुत की जो पूर्णतः साम्यवादी होने के कारण नकार दी गयी। 1944 में गांधीजी के आर्थिक विचारों से प्रेरित होकर श्री मन्नारायण द्वारा गांधीवादी योजना प्रस्तुत की गयी जो आत्म अनुशासन के सिद्धांत पर आधारित होने कारण अव्यवहारिक थी और वित्तीय संसाधनों की अनुपलब्धता के कारण इसका भी क्रियान्वयन संभव न हो सका।

11.3.2 स्वतंत्रता के पश्चात

स्वतंत्रता के पश्चात 30 जनवरी 1950 को श्री जयप्रकाश नारायण द्वारा सर्वोदय योजना प्रस्तुत की गयी हालांकि यह योजना पूर्ण रूप से तो नहीं अपनाई गयी किन्तु उक्त योजना के कुछ उद्देश्यों को अपना लिया गया। उपरोक्त सभी योजनाएं किसी न किसी कारण से मूर्त रूप नहीं ले पायी लेकिन उक्त योजनाओं के माध्यम से एक माहौल बना जिसके कारण भारत में योजना आयोग का गठन संभव हुआ।

भारत में व्यवस्थित रूप से नियोजित विकास कार्यक्रम को लागू करने का श्रेय प्रो. महोलनवीस तथा भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू को प्राप्त है। आर्थिक विकास का यह सूत्र नेहरू महोलनवीस माडल के रूप में विख्यात है।

भारत में योजनाओं के निर्माण एव क्रियान्वन हेतु 15 मार्च 1950 को योजना आयोग का गठन एक गैर संवैधानिक एवं परामर्शदात्री निकाय के रूप में किया गया। यह आयोग प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में कार्य करता है। यद्यपि यह केवल परामर्शदाता समिति है तथापि प्रधानमंत्री की अध्यक्षता होने के कारण योजना के प्रति सरकार की प्रतिबद्धता स्वतः स्वीकार्य हो जाती है।

11.4 आर्थिक नियोजन का महत्व एवं भूमिका (Role and Importance of Economic Planning)

नियोजन आर्थिक विकास का एक व्यवस्थित प्रयास है क्योंकि आर्थिक नियोजन में राष्ट्र की आवश्यकताओं का आकलन कर व्यय की मदें निर्धारित की जाती हैं और फिर उन मदों पर कितनी राशि किस प्रकार और कैसे खर्च की जायेगी इसका निश्चिय किया जाता है।

भारत में अर्थ व्यवस्था के तीन प्रमुख अंग है–

1. कृषि (प्राथमिक क्षेत्र) (Primary Sector)
2. व्यापार एवं उद्योग (द्वितीयक क्षेत्र) (Secondary Sector)
3. सेवा क्षेत्र (तृतीयक क्षेत्र) (Tertiary Sector)

क्रमशः कृषि, व्यापार एवं उद्योग तथा सेवा क्षेत्र में विभाजित अर्थव्यवस्था के विकास के लिये आर्थिक नियोजन की आवश्यकता है। भारतीय अर्थव्यवस्था मिश्रित अर्थ व्यवस्था है जिसमें सार्वजनिक और निजी दोनों अंगों का समन्वित सहयोग रहता है। अतः आर्थिक नियोजन में इन दोनों क्षेत्रों का अलग–अलग प्रावधान किया जाता है।

आर्थिक नियोजन को आर्थिक समस्याओं की रामबाण दवा कहा जाता है अर्थात् आर्थिक नियोजन सभी प्रकार की आर्थिक समस्याओं को दूर करने वाली अचूक

दवा है। समस्या कृषि विकास की हो या कृषकों के उत्थान की, गरीबी उन्मूलन की हो या शिक्षा के प्रसार की, लघु उद्योगों के विकास की बात हो या बड़े उद्योगों के विस्तार की, ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में आवासीय समस्या के समाधान का प्रश्न हो या बिजली पानी सड़क की बात हो, चिकित्सा सुविधाओं के विस्तार का प्रश्न हो या नदियों के जल को निर्मल बनाने की बात हो, नियोजन की सभी कार्यो में महत्वपूर्ण भूमिका है। नियोजन का महत्व निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट है :

1. भावी लक्ष्यों का निर्धारण (Estimation of Future Goals)–नियोजन भविष्य में प्राप्त करने वाले लक्ष्यों का पूर्वानुमान कर भविष्य का भार प्रशस्त करता है।

2. कार्य पथ का निर्धारण (Planning of Roadmap) – नियोजन केवल लक्ष्य ही निर्धारित नहीं करता उन लक्ष्यो को प्राप्त करने वाले मार्ग का भी निर्धारण करता है।

3. केन्द्र राज्यों में समन्वय (Coordination between Centre & State) – राष्ट्रीय विकास परिषद के द्वारा निर्धारित पंचवर्षीय योजनाऐं केन्द्र और राज्यों के मध्य समन्वय का कार्य करती है।

4. व्यवस्थित विकास (Planned Development)– आर्थिक नियोजन के माध्यम से विकास की गति व्यवस्थित रहती है क्योंकि नियोजन में दक्षता, नियंत्रण, निर्देशन और समन्वय के माध्यम से लक्ष्य प्राप्त करने की व्यवस्था होती है।

5. क्षेत्रीय संतुलन सम्भव (Regional Balance) – केन्द्र राज्य समन्वय पर आधारित आर्थिक योजनाओं के माध्यम से सम्पूर्ण राष्ट्र में सन्तुलित विकास सम्भव हो जाता है। सम्पूर्ण राष्ट्र एक इकाई के रूप में विकसित होता है।

6. समन्वित विकास (Integrated Development)– अर्थ व्यवस्था के सभी अवयव कृषि, उद्यान और सेवा क्षेत्र समन्वय के साथ कार्य करते है अतः विकास की प्रक्रिया समन्वित होती है।

7. साधनो का सर्वोत्तम उपयोग (Best Utilisation of Resources) – सुविचारित आर्थिक नियोजन में राष्ट्र में उपलब्ध और बाहर से प्राप्त संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग सम्भव हो जाता है।

11.5 आर्थिक नियोजन का उद्देश्य (Objects of Economic Planning)

नियोजन स्थति और अभीष्ट के मध्य एक पुल है। हम जहाँ है और हम जहाँ होना चाहते है इनके मध्य एक पुल (Bridge) का कार्य करने वाली व्यवस्था का नाम नियोजन है। दूसरे शब्दों में हमारे वर्तमान और भविष्य के बीच का एक पुल है जिस पर चलकर हम वहाँ पहुँच सकते हैं जहाँ हम पहुँचना चाहते हैं। आर्थिक नियोजन में राष्ट्र के पास उपलब्ध प्राकृतिक भौतिक, मानवीय और तकनीकी संसाधनों का पूरा आंकलन किया जाता है तथा इन संसाधनों की बुद्धिमत्ता पूर्ण उपयोग के माध्यम से प्राप्त हो सकने वाले आर्थिक लक्ष्यों का निर्धारण किया जाता है और फिर इन लक्ष्यों का प्राप्त करने वाला मार्ग तैयार किया जाता है।

आर्थिक नियोजन का उद्देश्य राष्ट्र को आर्थिक रूप से समृद्ध, आत्मनिर्भर व सशक्त बनाना है। नियोजन ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में यातायात की समुचित सेवाओं की उपलब्धता, शिक्षा व चिकित्सा सुविधाओं का विस्तार पेयजल की व्यवस्था, बिजली व ऊर्जा के अन्यान्य श्रोतों का प्रबन्धन कर एक सशक्त राष्ट्र का

निर्माण करता है। आर्थिक नियोजन के उद्श्यों को संक्षेप में निम्न प्रकार कहा जा सकता है :

1. राष्ट्र की आवश्यकताओं का अनुमान (Estimation of Country's Needs) –नियोजन का प्रथम उद्देश्य राष्ट्र की आवश्यकताओं का आकलन करना है। अर्थ व्यवस्थाओं के तीनों अंगों – कृषि, उद्योग, सेवा क्षेत्र की आवश्यकताओं का पृथक–पृथक आंकलन किया जाता है और फिर सम्पूर्ण राष्ट्र की आर्थिक आवश्कताओं का अनुमान लगा लिया जाता है।

2. प्राथमिकताओं का निर्धारण (Estimation of Preferences)– आर्थिक आवश्यकताओं के सम्पूर्ण आकलन के पश्चात यह तय किया जाता है कि किन आवश्यकतााओं की तीव्रता आर्थिक है। किस कार्य को प्राथमिकता के आधार पर पहले किया जाना चाहिये इसका निर्णय भी अधिक नियोजन का एक महत्वपूर्ण कार्य है।

3. रणनीति एवं व्यूह रचना का निर्माण (Formation of Strategy) – आर्थिक नियोजन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये एक स्वस्थ व्यूह रचना एवं रणनीति की आवश्यकता होती है। और इस रणनीति का निर्माण और क्रियान्वत नियोजन की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है अतः रणनीति का निर्माण आर्थिक नियोजन का प्रमुख उद्देश्य है उपलब्ध संसाधनों के सर्वोत्तम उपयोग की दृष्टि से रण्नीति अति उपयोगी उपकरण है।

4. समन्वय स्थापित करना (Coordination between Centre & State) – भारत में संघीय वित्त व्यवस्था है और सम्पूर्ण राष्ट्र केन्द्र सरकार, राज्य सरकार एवं स्थानीय सरकार के निर्देशन से अनुशासित होता है। आर्थिक नियोजन का उद्देश्य इन सरकारों के बीच समन्वय स्थापित करना है ताकि समन्वित और संतुलित विकास हो सके।

5. संसाधनों के उपयोग के सर्वोत्तम विकल्प का निर्धारण (Optimum Utilsation of Resource) – राष्ट्र के प्राकृतिक, भौतिक, मानवीय तथा तकनीकी संसाधनों के उपयोग का ऐसाा कार्यक्रम बनाया जाता है कि संसाधनों का सर्वश्रेष्ठ उपयोग हो सके तथा न्यूनतम लागत से आधुनिकतम आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति का पथ प्रशस्त हो सके।

6. शोषण विहीन समाज की स्थापना (Establishmenet of Society without Exploitmnet) – नियोजन का अंतिम उद्देश्य आर्थिक विषमताओं से मुक्त एक ऐसे समाज की रचना करना है जहां कोई व्यक्ति किसी का शोषण न कर सके। सब परम्पर सहयोग, सद्भाव और परस्परता से प्रेरित हों। समतामूल के समाज लोकतंत्र की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

7. कृषि का विकास (Agricultural Development)– योजना के माध्यम का विकास करना आर्थिक नियोजन का महत्वपूर्ण उद्देश्य है। भारत कृषि प्रधान राष्ट्र है अतः कृषि का विकास ग्रामीण विकास और ग्रामीण विकास देश के विकास का माध्यम सिद्ध होगा।

8. लघु एवं मध्यम उद्यम का विकास (Growth of Small & Medium Enterprise) – देश की अधिसंख्य जनता को रोजगार और स्वरोजगार का पथ

लघु एवं मध्यम उद्यमों के माध्मय से ही प्रशस्त होता है। अतः नियोजित विकास द्वारा लघु एवं मध्यम उद्यमों का विकास किया जायेगा।

9. देश में आधारभूत संरचना के निर्माण को बढ़ावा (Encouragement to Infrastructural Development) – भारत की सबसे बड़ी जरूरत मजबूत आधारभूत संरचना का निर्माण करना है। योजनाओं के माध्यम से देश भर में सड़क बिजली पानी आदि की समुचित व्यवस्था करना नियोजन का उद्देश्य है।

10. अर्थ-सामाजिक कायाकल्प करना (Rejuvenation of Soci-Economic Structures)– आर्थिक नियोजन का उद्देश्य राष्ट्र की अर्थ-सामाजिक संरचना का कायाकल्प करना है। पिछड़ेपन और गरीबी के दलदल से निकल कर सुदृढ़ आर्थिक विकास के माध्यम से एक नये समाज की रचना करना नियोजन का आधारभूत उद्देश्य है।

11.6 आर्थिक नियोजन की सफलता के पूर्व आवश्यक तत्व (Essentials or Prerequsites of Effective Economic Planning)

आर्थिक नियोजन राष्ट्र के आर्थिक–सामाजिक कायाकल्प का महायज्ञ है इसकी सफलता निम्न तत्वों पर आधारित होती है :

1. विश्वसनीय आवश्यक समंकों की उपलब्धि (Availability of Trustworthy Data)
2. राजनैतिक स्थिरता (Political Stability)
3. जन सहयोग (People Cooperation)
4. प्रभावशाली सरकार एवं प्रभावशाली नेतृत्व (Efficient Governance and Effective Leadership)
5. योजना बनाने एवं लागू करने के लिए स्थायी संगठन (Permanent body to make and implement Plan)
6. योजना निर्माण में कुशल, योग्य, अनुभवी और विशेषज्ञों का योगदान (Contribution of most efficient qualified, experciueced and expert people)
7. रचनात्मक समाज में परिवर्तन की इच्छा करने वाले दृष्टिकोण वाली युवाशक्ति (Youth with Will to change the Society)
8. पर्याप्त एवं अनुकूल अवसंरचना (Sufficient Infrastructure)

11.7 भारत में आर्थिक नियोजन हेतु संस्थाएँ (Institutions for Economic Planning in India)

भारत में आर्थिक नियोजन की संरचना की दृष्टि महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली तीन संस्थाएँ हैं :-

i) नीति आयोग (पूर्ववर्ती योजना आयोग)
ii) राष्ट्रीय विकास परिषद
iii) वित्त आयोग

11.7.1 नीति आयोग (पूर्ववर्ती योजना आयोग) NITI Ayog (Formerly Planning Commisson)

वर्तमान में संघ सरकार ने योजना आयोग के स्थान पर नीति आयोग की स्थापना कर दी गयी है । नये भारत की इस भावना और परिवर्तित गतिशील शक्तियों को परिलक्षित करते हुए, शासन तथा नीतिगत संस्थाओ को नयी चुनौतियों के अनुकूल होना है । भारत के संविधान के निर्माणकारी सिद्धान्तों हमारे सभ्यात्मक इतिहास तथा वर्तमान में हमारे सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ से प्राप्त ज्ञान की संपदा के आधार पर निर्मित होना चाहिये। उक्त भावना के साथ मन्त्रिपरिषद द्वारा नीति आयोग (NITI i.e. National Institute for Transforming India) की स्थापना 1 जनवरी 2015 को हुई। इसे राष्ट्रीय भारतीय परिवर्तन संस्था भी कहा जाता है। योजना आयोग की तरह प्रधानमंत्री ही इसके पदेन अध्यक्ष होते हैं। नीति आयोग के माध्यम से टीम इंडिया एवं सहकारी संघवाद की योजना पर विशेष जोर रहेगा। औपचारिक रूप से योजनाऐं बनाने और लागू करने के दृष्टि से 23 मार्च 1950 को भारतीय योजना आयोग का गठन किया गया। भारत के प्रधानमंत्री योजना आयोग के पदेन अध्यक्ष जबकि आयोग के समस्त कार्यो को देखने के लिए एक उपाध्यक्ष की नियुक्ति की जाती थी। इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न विषयों के विशेषज्ञों को योजना आयोग का सदस्य नियुक्त किया जाता था। सभी पंचवर्षीय योजनाएं योजना आयोग के माध्यम से ही बनायी जाती थीं।

यह महत्वपूर्ण है कि योजना आयोग कोई संवैधानिक संस्था नहीं था क्योंकि योजना आयोग के गठन के सम्बन्ध में संविधान में कोई व्यवस्था नहीं थी पर योजना आयोग की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के नियम और नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। यद्यपि योजना आयोग एक परामर्श दाता संगठन था।

11.7.2 राष्ट्रीय विकास परिषद् (National Development Council)

राष्ट्रीय विकास परिषद देश के आर्थिक नियोजन के सम्बन्ध में निर्णय लेने वाली महत्वपूर्ण संस्था है। राष्ट्रीय विकास परिषद योजनाओं के वित्त संभरण तथा आवंटन और कार्यक्रमों के निर्माण में भाग लेकर आर्थिक विकास का पथ प्रशस्त करती है।

राष्ट्रीय विकास परिषद की सभाओं में प्रधानमंत्री अध्यक्षता करते हैं। प्रधानमंत्री के अतिरिक्त केन्द्रीय मंत्री सभी राज्यों के मुख्यमंत्री, केन्द्र शासित प्रदेशों के प्रशासक तथा योजना आयोग के सभी सदस्य राष्ट्रीय विकास परिषद की मीटिंग में भाग लेते हैं। राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थापना 6 अगस्त 1952 को हुई थी तथा राष्ट्रीय विकास परिषद की पहली बैठक नवम्बर 8-9,1952 को सम्पन्न हुई। देश के आर्थिक विकास के लिए बनाई गयी पंचवर्षीय योजना के स्वरूप को अन्तिम स्वीकृति राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा ही प्रदान की जाती है।

11.7.3 वित्त आयोग (Finance Commission)

संघ एवं राज्य वित्तीय सम्बन्धों को अनुशासित करने हेतु भारतीय संविधान के अनुच्छेद 280 में वित्त आयोग (Finance Commission) के गठन का प्रावधान है जिसके अनुसार देश के राष्ट्रपति प्रत्येक 5 वर्ष के पश्चात और यदि आवश्यकता पड़ी तो उससे पहले भी वित्त आयोग का गठन कर सकते हैं। वित्त आयोग एक संवैधानिक संस्था है। वित्त आयोग की संरचना में सामन्यतः अध्यक्ष, सदस्यों तथा

सचिव की महत्त्पूर्ण भूमिका रहती है। वित्त आयोग के बारे में आप इकाई 10 में विस्तृत रूप में पढ़ चुके हैं जिसका सन्दर्भ वहां से लिया जा सकता है।

11.8 भारत में नियोजन की समस्याऐं (Problems of Planning in India)

नियोजन एक प्रक्रिया है जो व्यवस्था की अविकसित से अतिविकसित में परिवर्तित करने की अद्‌भुत क्षमता रखती है पर यह प्रक्रिया समस्याविहीन नहीं है। भारतीय सन्दर्भ में नियोजन की समस्याऐं निम्न स्तर पर अनुभव की जाती है।

1. योजनाओं के निर्माण की समस्याऐं
2. योजना के क्रियान्वयन की समस्याऐं
3. योजनाओं के मूल्यांकन की समस्याऐं

1. योजनाओं के निर्माण की समस्याऐं (Problem in Creation of Policies) – योजना केन्द्रीय सरकार द्वारा पूरे राष्ट्र के लिये बनायी जाती है। राष्ट्रीय विकास परिषद में राज्यों के मुख्यमंत्री विषय विशेषज्ञ और प्रधानमंत्री सहित अनके केन्द्रीय मंत्री होते है हर राज्य और क्षेत्र की प्राथमिकताओं को दृष्टि में रखकर योजना बनाना एक कठिन कार्य है। यह कठिनाई तब और बढ़ जाती है जब केन्द्र और राज्य में भिन्न–भिन्न दलों की सरकारे हो   योजना में कृषि को प्राथमिकता दी जाये या उद्योग को, गांवों पर अधिक ध्यान दिया जाये या शहरों परियोजना, योजना श्रम प्रधान हो या तकनीकी प्रधान आदि सभी समस्याऐं योजना के निर्माण की प्रक्रिया को वाछित करती है। योजनाओं के निर्माण की एक बड़ी बाधा उचित व विश्वस्नीय समंको का अभाव है।

2. योजना के क्रियान्वयन की समस्याऐं (Problem in Execution of Policies)– केन्द्र व राज्य सरकारों के मध्य समन्वय और सहयोग के अभाव में योजनाओं का क्रियान्वयन एक चुनौती भरा कार्य सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त अत्याधिक जन संख्या पूंजी निर्माण की नीची दर, अशिक्षा, अकुशल, श्रम उन्नत और उत्तम तकनीक का अभाव, जन सहयोग की कमी, मुद्रा स्फीति की आशंका, प्रशासनिक शिथिलता और प्रवल इच्छा शक्ति के अभाव में योजनाओं का लागू करना कठिन हो जाता है।

3. योजना के परिणामों के मूल्यांकन की समस्याऐं (Problem in Evaluation of Policies)– योजनाओं की सफलता के लिए यह भी आवश्यक है कि योजनाओं का फल उन सब तक पहुँचे जिनके लिए योजना बनाई और लागू की जाती है। इसके लिए योजनाओं के सतत निरीक्षण (Monitoring) और नियंत्रण और मूल्यांकन की आवश्यकता है। उचित मूल्यांकन के अभाव में योजनाऐं वांछित परिणाम देने में असफल रहती है।

11.9 पंचवर्षीय (अथवा राष्ट्रीय) योजना–आवश्यक तत्व (Salient Features of Five Year Plans)

पंचवर्षीय योजना अर्थात राष्ट्रीय योजना एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके तहत लक्ष्यों का निर्धारण किया जाता है और इस प्रकार के कार्यक्रमों तथा नीतियों का निर्धारण किया जाता है जो निर्धारित लक्ष्यों को निर्धारित अवधि में प्राप्त करने में सहायक हो सकें। ये नीतियाँ एवं कार्यक्रम न केवल एक दूसरे के अनुरूप होने चाहिए बल्कि वित्तीय एवं वास्तविक दोनों ही तरह के राष्ट्रीय संसाधनों के अनुकूलतम

उपयोग को सुनिश्चित करने वाले होने चाहिए तथा अर्थव्यवस्था की प्रतिक्रिया की समझ पर आधारित होने चाहिए। यह प्रक्रिया समय के साथ विभिन्न कारणों से अधिक जटिल हो गई है। भारत में यह अवधि पांच वर्ष निर्धारित की गयी है इसीलये यह योजना भारत में पंचवर्षीय योजना कही जाती है।

योजना की प्रक्रिया को समझने के लिये तीन प्रमुख बातों पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है जो कि इस प्रकार हैंः **पहला**, यदि देखा जाये तो लक्ष्यों का निर्धारण मात्र एक तकनीकी प्रक्रिया नहीं है। वरन इसे वर्तमान युग की जागरूक होती जनता एवं मुखर सिविल सोसायटी की भावनाओं को परिलक्षित करना चाहिए ताकि यथासंभव, सामाजिक और राजनैतिक समर्थन हासिल किया जा सके। **दूसरा**, योजना में उल्लिखित कार्यनीतियों को अर्थव्यवस्था की बढ़ती जटिलता और परिपक्वता के साथ–साथ, शेष दुनिया के साथ बढ़ते एकीकरण तथा सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रकों की बदलती भूमिका को भी परिलक्षित करना चाहिए। **अंततः**, योजना कार्यनीतियां उतनी ही अच्छी होती हैं जितनी उन्हें कार्यन्वित करने की सरकार की क्षमता होती है इसलिए कार्यान्वयन क्षमता की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है। उक्त कारकों को ध्यान में रखकर ही पंचवर्षीय योजना तैयार जाती हैं।

11.10 पंचवर्षीय योजनाओं की व्यूहरचना अथवा रणनीति (Strategies of Five Year Plans)

पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये योजना की नीति रणनीति और व्यूह रचना बहुत आवश्यक है। नियोजन की नीति व रणनीति निम्नवत बनायी जाती है :–

1. भारतीय अर्थव्यवस्था में संस्थागत सुधार और संरचनात्मक विकास सुनिश्चित करना
2. कृषि क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के साथ खाद्यान्नों व फल सब्जियों का निर्यात करने की तैयारी
3. मुद्रा स्थिति को नियंत्रित कर स्थिर अर्थव्यवस्था के माध्यम से प्रगति और विकास की दर में वृद्धि
4. सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र में रोजगार के अवसर का विस्तार करना
5. ग्रामीण क्षेत्र में लघु एवं मध्यम आय वर्ग के लोगों के लिये लघु उद्योग का विकास करना
6. खाने के लिए खाद्य के साथ शुद्ध पेयजल की व्यवस्था
7. शिक्षा की समुचित सुविधाओं का विस्तार
8. भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष विद्यमान चुनौतियों का समाधान एवं सामना करना
9. निर्यात बढ़ाकर विदेशी मुद्राकोष को बढ़ाना
10. संसाधनों की युक्ति युक्त उपयोग कर आर्थिक विकास को बढ़ाना
11. सड़क, बिजली, रेल मार्ग तथा संवाद सम्प्रेषण की अत्याधुनिक तकनीक का विकास
12. सामाजिक रूप से पिछड़े दलितों व निर्धनों का उत्थान करना।

11.11 पूर्ववर्ती योजनाओं का इति वृत्तात्मक वितरण (Historical Perspectives of Previous Plans)

निम्न तालिका 11.1 में पूर्ववर्ती योजनाओं का इति वृत्तात्मक विवरण दिया हुआ है :

भारत : विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में निवेश, वृद्धि दर (2004-05 की कीमतों पर) और प्राथमिकता के क्षेत्र

योजना एवं योजना अवधि	प्रस्तावित निवेश (करोड़ रु. में)	वास्तविक निवेश (करोड़ रु. में)	लक्षित विकास दर (प्रतिशत में)	प्राप्त विकास दर (प्रतिशत में)	प्राथमिकता का क्षेत्र	# प्रमुख तथ्य
पहली योजना (1951-1956)	2,070	1,960	2.1	3.7	कृषि. सिंचाई, विद्युत, भारी उद्योग चिकित्सा एवं स्वास्थ्य	विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, 5 आई.आई.टी., भाखड़ा, हीराकुंड बांध, बड़े इस्पात संयत्रों की स्थापना
दूसरी योजना (1956-1961)	4,800	4,672	4.5	4.2	खाद्यान्न, उद्योग	सार्वजनिक क्षेत्र में भिलाई, दुर्गापुर, राउरकेला, बोकारो के इस्पात कारखाने, चितरंजन लोकोमोटिव और ऊर्जा के क्षेत्र में परमाणु ऊर्जा आयोग की स्थापना
तीसरी योजना (1961-1966)	7,500	8,577	5.6	2.8	कृषि, सिचांई	जय जवान जय किसान के नारे और कृषि उत्पादकता बढ़ाने के प्रयास से हरित क्रांति का प्रादुर्भाव, सड़क परिवहन के राष्ट्रीयकरण से सड़कों का विकास, राज्यों को माध्यमिक और उच्च शिक्षा का दायित्व
योजनावकाश (1966-1969)	पं. नेहरू और श्री लाल बहादुर शास्त्री के निधन तथा चीन और पाकिस्तान के युद्ध के कारण देश में कुछ समय के लिए निराशा और चिन्ता व्याप्त हो गयी थी। पंचवर्षीय योजनाओं का चक्रीयक्रम (एक के बाद दूसरी) भंग हुआ और 1966-67, 1967-68 और 1968-69 के दौरान तीन वार्षिकी योजनाएं लागू की गयीं। योजनाकाल के इतिहास में इस काल को योजनावकाश (Plan Holiday) कहा जाता है।					
चौथी योजना (1969-1974)	15,900	15,799	5.7	3.4	जन स्वास्थ्य, समाज कल्याण	गाडगिल प्लान के नाम से प्रसिद्द, 14 वड़े व्यापारिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण, प्रिवी पर्स बन्द कर दिये जाने तथा देश में समाजवादी समाज की स्थापना, कृषि और उद्योग के क्षेत्र में

						समन्वित विकास,
पाँचवीं योजना (1974-1979)	37,250	39,426	4.4	4.9	कृषि, उद्योग, ऊर्जा	गरीबी उन्मूलन, आर्थिक निर्भरता और रोजगार के अवसरों की वृद्धि, परिवार नियोजन
योजनावकाश (1979-1980)	इस अवधि में सरकारों की अस्थिरता के कारण पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण नहीं हो सका अतः एक वर्ष की तदर्थ योजना बना कर काम चलाया गया					
छटवीं योजना (1980-1985)	95,500	1,09,292	5.2	5.4	गरीबी उन्मूलन, ऊर्जा, खाद्यान्न	नेहरू मॉडल – विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था में गरीबी की समस्या पर सीधा प्रहार, IRDP, NREP, RLEGP आदि रोजगार कार्यक्रम। यह 'रोलिंग प्लान' यह नाम से भी प्रसिद्द है
सातवीं योजना (1985-1990)	1,80,000	2,18,730	5.0	5.6	मानव संसाधन शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार विकास सामाजिक, ऊर्जा–सुधार तथा सामाजिक अवसंरचना का विकास	भोजन, काम और उत्पादकता का नारा
योजनावकाश 1990-91 व 1991-92	वर्ष 1990-91 व 1991-92 के लिए नयी सरकार वार्षिक योजना लाई।					
आठवीं योजना (1992-1997)	4,34,000	4,95,670	5.6	6.6	तीव्रतर विकास के साथ अधिक समावेश सहित (Inclusive) संवृद्धि की दुतरफा रणनीति, एवं मानव विकास	प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिकीकरण तथा 15 से 35 वर्ष के आयु समूह मे निरक्षरता उन्मूलन
नौवीं योजना (1997-2002)	8,59,200	9,41,041	6.5	5.7	स्वास्थ्य, सम्पोषण एवं अधिक समावेश सवृंद्धि	सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र एक दूसरे के पूरक हैं निर्धन के लिए खाद्यान्न एवं पोषक सुरक्षा प्रदान करना
दसवीं योजना (2002-2007)	15,92,300	16,53,065	7.9	7.6	रोजगार, ऊर्जा	सर्वाधिक बल कृषि विकास पर और सर्वाधिक व्यय उर्जा पर

गयारवीं योजना (2007-2012)	36,44,718	37,50,978	9.0	8.0	समावेशी विकास	आधारभूत संरचना का विकास
वारहवीं योजना (2012-2017)	76,69,807	-----	8.0	---	तीव्र, सुदृढ़ समावेशी और धारणीय विकास	

स्रोतः –आर्थिक समीक्षा 2012-13

प्रमुख तथ्य

11.12 बारहवी पंचवर्षीय योजना (Twelfth Five year Plans) (योजनाकाल 2012-2017)

बारहवीं योजना में द्वि–उद्देश्यीय कार्यनीति का प्रस्ताव किया गया है, जिसमें शुरूआत में अर्थिक असंतुलनों को नियंत्रण में लाने और मंदी के दौर के उबरने की जरूरत पर ध्यान दिया गया है। इसके साथ ही कई क्षेत्रों में संरचनात्मक सुधारों पर जोर दिया गया है, जो मध्यम अवधि में विकास को बनाए रखनें के लिए आवश्यक है।

इस दिशा में सरकार ने आर्थिक संतुलन फिर से बनाने की प्रक्रिया शुरू की है। 2008 की वैश्विक मंदी और आर्थिक संकट को ध्यान में रखते हुये 12वीं योजना के लक्ष्य जमीनी हकीकत को ध्यान में रखकर निर्धारित किये गये हैं। बारहवीं योजना में इस बात पर जोर दिया गया है कि सरकार की पहली प्राथमिकता यह होनी चाहिए कि अर्थव्यवस्था की विकास दर को फिर से तीव्र किया जाए और साथ में यह भी सुनिश्चित हो कि सरकार की विकास प्रक्रियाएं समावेशी और धारणीय रहें।

11.13 बारहवीं योजना के लक्ष्य

सरकार से देश के हितधारकों की बहुत आशाएं होती हैं ऐसे समय में यह वांछित हो जाता ही कि सरकार समाज के सभी वर्गों के हितों का ध्यान रखे। यद्यपि देश की विशालता को देखते हुए यह एक जटिल प्रक्रिया है और सभी को सिर्फ बारहवीं योजना में समाहित कर पाना संभव नहीं है तथापि, ऐसे कुछ मुख्य संकेतक हैं जो सभी विकास मानकों पर लागू हो सकते हैं जिनमें न सिर्फ केंद्रीय और राज्य सरकारें, बल्कि स्थानीय सरकारें, सिविल सोसायटी तथा अंतरराष्ट्रीय एजेंसियां भी शामिल हैं। बारहवीं पंचवर्षीय योजना में सरकार ने इस बार **तीव्र, अधिक समावेशी और धारणीय विकास** के लक्ष्य घोषित किये हैं। बारहवीं योजना में 25 निगरानी–योग्य लक्ष्यों में से प्रमुख लक्ष्य जीडीपी का विकास करना है।

बॉक्स 1 तीव्र, संधारणीय तथा अधिक समावेशी विकास के पच्चीस मुख्य संकेतक

I) आर्थिक विकास

1- सकल घरेलू उत्पाद का 8 प्रतिशत की दर से वास्तविक विकास।

2- 4.0 प्रतिशत की दर से कृषि विकास।

3- 10.0 प्रतिशत की दर से विनिर्माण विकास।

4- प्रत्येक राज्य द्वारा ग्यारहवीं योजना की तुलना में बारहवीं योजना में अधिमानितः उच्चतर औसत विकास दर हासिल की जानी चाहिए।

II) गरीबी और रोजगार

5- बारहवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक, पूर्ववर्ती आकलनों की तुलना में, प्रति व्यक्ति उपभोग गरीबी में 10 प्रतिशत अंकों की कमी।

6- बारहवीं पंचवर्षीय योजना में, गैर–कृषि क्षेत्रक में 5 करोड़ नए कार्य अवसरों का सृजन तथा इतनी ही संख्या में कौशल

राज्यों को उक्त के संबंध में, शुरूआती स्थिति के अनुपात में हुई प्रगति को ध्यान में रखते हुए, अपनी विशिष्ट ज़रूरतों के अनुरूप लक्ष्य निर्धारित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।इन सभी लक्ष्यों को विभिन्न प्राथमिक क्षेत्रकों के माध्यम

बॉक्स 2 बारहवीं पंचवर्षीय योजनाओं के प्राथमिक क्षेत्रक

1) वृहत रोजगार करने सृजन वाले

- टेक्सटाइल्स एवं सिले सिलाये वस्त्र — चमड़ा एवं फुटवियर
- रत्न और आभूषण — खाद्य प्रसंस्करण उद्योग
- हैंडलूम एवं हस्तकला उद्योग

2) विनिर्माण क्षेत्रक में प्रौद्योगिकी क्षमताओं को अधिकतम करने वाले क्षेत्रक :

- मशीन औजार — सूचना प्रौद्योगिकी, हार्डवेयर एवं इलेक्ट्रॉनिक्स

3) ऐसे क्षेत्रक जो रण नीतिक सुरक्षा प्रदान करेंगे

- दूरसंचार उपकरण — एयरोस्पेस
- जहाजरानी — रक्षा उपकरण

4) ऊर्जा क्षेत्रक हेतु विनिर्माण प्रौद्योगिकी क्षेत्रक

- सौर ऊर्जा — स्वच्छ कोयला प्रौद्योगिकी
- नाभिकीय विद्युत उत्पादन

5) भारत की अधोरचना संवृद्धि हेतु पूंजीगत उपकरण

- भारी मशीनरी उपकरण — भारी परिवहन, अर्थ मूविंग एवं खनन उपकरण

6) ऐसे क्षेत्रक जहां भारत को अन्य देशों के सापेक्ष प्रतिस्पार्धमकता हासिल है

- ऑटोमोटिव क्षेत्रक — ऑटोमोटिव क्षेत्रक
- फार्मास्युटिकल्स एवं चिकित्सा उपकरण

7) सूक्ष्म लघु एवं माध्यम उद्योग

- विनिर्माण क्षेत्रक के लिये आधार – रोजगार एवम उद्यमिता सृजन

11.14 पंचवर्षीय योजनाओं का वित्त प्रबन्धन व वित्तपोषण (Financial Aspects & Financing of Five Year Plans)

11.14.1 नियोजन का आर्थिक परिप्रेक्ष्य

नियोजन के आर्थिक परिपेक्ष्य का आशय योजना के वित्त संभरण तथा उपलब्ध वित्तीय संसाधनों का विभिन्न लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु धन के उपयोग से सम्बंधित है अर्थात नियोजन हेतु धन कहाँ–कहाँ और किन–किन क्षेत्रों में और किस प्रकार उपयोग होगा। आर्थिक नियोजन अपनी सम्पूर्णता में लोक कल्याण की ऐसी योजनाओं के क्रियान्वयन से है जिसके द्वारा लोगों के आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त हो और कृषि, उद्योग, व्यापार और सेवा क्षेत्र के विकास के साथ–साथ शिक्षा, सड़क, बिजली, अवसंरचना का विकास हो आर्थिक और सामाजिक विषमता मे कमी आये तथा तकनीकी कौशल में वृद्धि हो और पूरा राष्ट्र आर्थिक रूप से समृद्ध हो विदेशी व्यापार में भारत का हिस्सा बढ़े रोजगार के अवसरों में वृद्धि हो तथा संपोषि और समावेशी विकास के साथ समाज के पिछड़े और अति पिछड़े वर्ग का भौतिक कल्याण सुनिश्चित हो सके।

11.14.2 वित्तपोषण के स्रोत

पंचवर्षीय योजनाओं में भारी वित्त निवेश की आवश्यता होती है और वित्त की यह व्यवस्था सरकार द्वारा विभिन्न मदों से की जाती है। वित्तीय संसाधनों के प्रमुख मद निम्नवत है :

1- करारोपण (Taxation)

2. सार्वजनिक क्षेत्र के उद्‌यमों से प्राप्त लाभ और बचत (Surplus from Public Sector Undertaking)

3. सार्वजनिक ऋण (Public Debt)

4. अल्प बचतें (Small Savings)

5. घाटे की वित्त व्यवस्था (Deficit Financing)

6. विदेशी सहायता एवं ऋण (Aid from Foreign Countries and Foreign Debts)

प्रत्येक योजना में इतना भारी वित्त निवेश किया जाता है कि किसी एक स्रोत से इतनी अधिक राशि प्राप्त करना सम्भव नहीं होता। अतः सरकार विभिन्न **स्रोतों** का प्रयोग करके धन प्राप्त करती है।

11.15 बारहवीं योजना में सार्वजनिक क्षेत्र के संसाधन (Public Sector Resources in the Twelfth Plan)

बारहवीं योजना के अंतर्गत सार्वजनिक क्षेत्र के संसाधनों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है :

1) केन्द्र के संसाधन
2) राज्यों व संघ राज्यों के संसाधन

11.15.1 केन्द्र के संसाधन

ग्यारहवीं योजना के दौरान ऐसे अनेक महत्वपूर्ण बदलाव हुए, जिनका सम्बन्ध प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से बारहवीं योजना के वित्तपोषण से रहा। भारतीय अर्थव्यवस्था ने 2008 के वैश्विक वित्तीय संकट का डंटकर सामना किया। फिर भी अर्थव्यवस्था के विभिन्न घटकों तथा केंद्र के संसाधनों, विशेषकर करों, करों के संग्रहण की दर में निश्चित तौर पर कमी आयी है जिस के कारण विकास की दर पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। सरकार द्वारा सातवें केन्द्रीय वेतन आयोग के निर्णय को लागू कर दिया गया है। 2011-15 के लिए तेरहवें वित्त आयोग के निर्णय को राजकोषीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबंधन फ्रेमवर्क लक्ष्यों में कुछ परिवर्तनों के साथ लागू किया जा रहा है। राजस्व के एक बड़े स्रोत के रूप में सेवा कर का योगदान रहा है। एकीकृत वस्तु और सेवा कर (जीएसटी) लागू करने हेतु राज्यों से परामर्श के सफल प्रयासों के फलस्वरूप 1 जुलाई 2017 से जीएसटी लागू हो गया है जो अप्रत्यक्ष कर प्रणाली का यह एक महत्त्वपूर्ण सुधार साबित होगा।

तालिका 11.2 जीडीपी एवं कर राजस्व

(प्रतिशत में)

	2012-13 जीडीपी में	2016-17 जीडीपी में हिस्सेदारी	औसत

	हिस्सेदारी		
सकल कर राजस्व	10.62	2007-08 के स्तरों तक	--
कर राजस्व (राज्यों के हिस्से को घटाकर)	7.60	8.79	8.27
कारपोरेट कर संग्रहण	4.25	4.83	4.57

सब्सिडियों का स्तर

बारहवीं योजना के पहले वर्ष में सब्सिडियों का स्तर 2012-13 के बजट अनुमान के अनुसार रखा गया है। सुधारों के चलते, जीडीपी के अनुपात के रूप में कुल सब्सिडियां, 2016-17 तक कम हो कर 1.5 प्रतिशत हो जाने का अनुमान है। तेल की वैश्विक कीमतों में वृद्धि को उपभोक्ताओं पर डालने में असमर्थता की स्थिति का यदि तुरंत समाधान नहीं किया जाता है तो इसका योजना के लिए संसाधनों पर व्यापक प्रभाव पड़ेगा।

बारहवीं योजना के लिए केंद्र के संसाधनों का अनुमान

केन्द्र के लिए बारहवीं योजना संबंधी संसाधनों और इसके वित्तपोषण का सार नीचे तालिका 11.3 में दिया गया है। योजना के लिए उपलब्ध जीबीएस, वर्तमान कीमतों पर 35,68,626 करोड़ रू. अनुमानित की गई है। राज्यों और संघ राज्य–क्षेत्रों को योजनागत केन्द्रीय सहायता 8,57,786 करोड़ रू. परिकलित की गई है। केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्रक उद्यम (सीपीएसई) की आईईबीआर 16,22,899 करोड़ रू. अनुमानित की गई है। अतः केन्द्रीय योजना के लिए कुल संसाधन उपलब्धता 43,33,739 करोड़ रू. अनुमानित की गई है। यह केवल सूचक परिव्यय है। वर्ष–दर–वर्ष संसाधनों की स्थिति के आधार पर वास्तविक प्राप्ति में परिवर्तन हो सकता है। मध्यावधि मूल्यांकन के समय वित्तीय स्थिति की समीक्षा की जाएगी।

तालिका 11.3 **बारहवीं योजना के लिए केंद्र के संसाधनों का अनुमान**

(वर्तमान मूल्यों पर करोड़ रूपए में)

वित्तपोषण के स्रोत	**अनुमान (प्रतिशत)**
1 वर्तमान राजस्वों से शेष	13,87,371 (38.88)
2 निवल एमसीआर सहित लेनदारी	21,81,255 (61.12)
3 योजना को सकल बजटीय समर्थन (जीबीएस) (1+2)	35,68,626 (100)
4 राज्यों तथा संघ शासित प्रदेशों की योजना को केंद्रीय सहायता	8,57,786 (24.04)
5 केंद्रीय योजना हेतु कुल जीबीएस (3-4)	27,10,840 (75.96)
6उधार लिए गए संसाधन सहित, सार्वजनिक क्षेत्र उद्यम के संसाधन	16,22,899 (45.48)
7 **केंद्रीय योजना हेतु कुल संसाधन** (5+6)	**43,33,739**

स्रोतः योजना आयोग।

नोटः कोष्ठक में दिखाए गए आंकड़े योजना में जीबीएस के प्रतिशत हैं (क्र. सं. 3)।

11.15.2 राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों के संसाधन

राज्यों व संघ राज्य क्षेत्रों की बारहवीं योजना के वित्तपोषण के स्रोत निम्नवत हैं :–

तालिका 11.4 राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों के बारहवीं योजना संसाधन

(वर्तमान मूल्यों पर करोड़ रू. में)

वित्तपोषण के स्रोत	अनुमान		
	राज्य	संघ राज्य क्षेत्र	कुल
1 वर्तमान राजस्वों से शेष	8,85,939 (24.80)	74,040(51.39)	9,59,979(25.83)
2 सार्वजनिक क्षेत्र उद्यमों के संसाधन	3,76,043 (10.53)	4,276 (2.97)	3,80,319(10.23)
3 लेनदारी	14,94,258 (41.83)	24,043 (16.69)	1,518,301 (40.85)
4 राज्यों के अपने संसाधन (1 से 3)	**27,56,240** (77.16)	**1,02,359** (71.05)	**28,58,599** (76.92)
5 राज्यों तथा संघ शासित प्रदेशों की योजना को केंद्रीय सहायता	8,16,083 (22.84)	41,703 (28.95)	8,57,786 (23.08)
6 कुल योजना संसाधन (4 + 5)	**35,72,323** (100.00)	**1,44,062** (100.00)	**37,16,385** (100.00)

स्रोतः योजना आयोग।
नोटः कुल का प्रतिशत कोष्ठक में दिया गया है।

तालिका 11.5

समग्र वित्तपोषण पद्धतिः ग्यारहवीं तथा बारहवीं योजनाएं

(वर्तमान मूल्यों पर करोड़ रूपए में)

वित्तपोषण स्रोत	ग्यारहवीं योजना की प्राप्ति			बारहवीं योजना के अनुमान		
	केंद्र	राज्य तथा संघ राज्य क्षेत्र	कुल	केंद्र	राज्य तथा संघ राज्य क्षेत्र	कुल
1 वर्तमान राजस्वों से शेष	-242,390 (-11.97)	3,81,536 (22.11)	1,39,146 (3.71)	13,87,371 (32.01)	9,59,979 (25.83)	23,47,350 (29.16)
2 निवल एमसीआर सहित लेनदारी	1,75,1691 (86.50)	7,52,815 (43.62)	2,504,506 (66.77)	21,81,255 (50.33)	15,18,301 (40.85)	36,99,556 (45.96)
3 विदेश से निवल आगम	80,043 (3.95)	0.00	80,043 (2.13)	–	–	–
4 केंद्र का जीबीएस (1 + 2 + 3)	15,89,344 (78.48)	– –	15,89,344 (42.37)	35,68,626 (82.35)	– –	35,68,626 (44.33)
5 सार्वजनिक क्षेत्र उद्यमों / स्थानीय निकायों के संसाधन	8,57,244 (42.33)	1,70,039 (9.85)	10,27,283 (27.39)	16,22,899 (37.45)	3,80,319 (10.23)	20,03,218 (24.88)
6 श्राजय के अपने संसाधन (1 + 2 + 5)		1,304,390 (75.58)	13,04,390 (34.77)	– –	28,58,599 (76.92)	28,58,599 (35.51)
7 राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों की योजना को केंद्रीय सहायता	-4,21,458 (-20.81)	4,21,458 (24.42)	4,21,458 (11.24)	-8,57,786 (-19.79)	8,57,786 (23.08)	8,57,786 (10.66)
8 सार्वजनिक क्षेत्रक योजना के संसाधन (1 + 2 + 3 + 5 + 7)	20,25,130	17,25,848	37,50,978	43,33,739	37,16,385	80,50,123

स्रोतः योजना आयोग।
नोटः कोष्ठक में दिए गए आंकड़े सार्वजनिक क्षेत्रक योजना के संसाधनों के प्रतिशत हैं।

11.16 सार्वजनिक क्षेत्रक के संसाधनों का आवंटन (Allocation of Public Sector Resources)

निम्न तालिकाओं में बारहवीं योजना में केंद्र तथा राज्यों व संघ राज्य क्षेत्रों के बीच सार्वजनिक क्षेत्रक संसाधनों के आबंटन तथा प्रस्तावित क्षेत्रकवार संसाधन वितरण प्रस्तुत किया गया है जोकि त्वरित और समावेशी विकास का लक्ष्य हासिल करने के बारे में है ।

बारहवीं योजना में, सार्वजनिक क्षेत्रक संसाधन वर्तमान मूल्यों पर 80,50,123 करोड़ का रूपए रहने का अनुमान है जिसमें केंद्र की हिस्सेदारी 43,33,739 करोड़ रूपए

तथा राज्यों व संघ राज्य क्षेत्रों की हिस्सेदारी 37,16,385 करोड़ रूपए रहने की संभावना है। केंद्रीय योजना के लिए संसाधन में जीबीएस घटक का 27,10,840 करोड़ रूपए तथा आईईबीआर घटक का 16,22,899 करोड़ रूपए शामिल हैं जो वर्तमान मूल्यों पर है।

तालिका 11.6

बारहवीं योजना के लिए सार्वजनिक क्षेत्रक आवंटन

(वर्तमान मूल्यों पर करोड़ रू. में)

	केन्द्र	
	वित्तपोषण के स्रोत	आवंटन
1	बजटीय समर्थन	27,10,840
2	आईईबीआर	16,22,899
3	कुल केंद्र (1 + 2)	43,33,739
	राज्य तथा संघ राज्य क्षेत्र	
	वित्तपोषण के स्रोत	आवंटन
4	राज्य के अपने संसाधन	28,58,599
5	राज्य/संघ राज्य क्षेत्र योजना को केंद्रीय सहायता	8,57,786
6	कुल राज्य तथा संघ राज्य क्षेत्र (4 + 5)	37,16,385
	कुल सार्वजनिक क्षेत्रक परिव्यय	
7	सकल योग (3 + 6)	80,50,123

स्रोत: योजना आयोग।

जैसा की निम्न तालिका 11.7 से स्पष्ट है बड़े क्षेत्रकों में केंद्र के जीबीएस का आवंटन बारहवीं योजना हेतु निर्धारित मुख्य लक्ष्य तीव्र, अधिक समावेषी और धारणीय विकास से प्रेरित है। बारहवीं योजना का परम ध्येय गरीबी कम करना, बुनियादी भौतिक अवसंरचना, एवं सभी को स्वास्थ्य तथा शिक्षा सुविधाएं प्रदान करना है । इसी के तहत केंद्र द्वारा जी बी एस आबंटन में स्वास्थ्य तथा बाल विकास शहरी विकास एवं शिक्षा के क्षेत्र में सर्वाधिक वृद्धि हुई है।

तालिका 11.7 बड़े क्षेत्रकों में केंद्र के जीबीएस का आवंटन–ग्यारहवीं योजना की प्राप्ति तथा बारहवीं योजना के अनुमान

(वर्तमान मूल्यों पर करोड़ रू. में)

क्रम सं.	प्रमुख क्षेत्र	ग्यारहवीं योजना		बारहवीं योजना		ग्यारहवीं योजना की तुलना में प्रतिशत वृद्धि
		प्राप्ति	हिस्सेदारी प्रतिशत	अनुमान	हिस्सेदारी प्रतिशत	
1	कृषि तथा जल संसाधन	1,16,554	7.33	2,84,030	7.96	143.69
2	ग्रामीण विकास तथा पंचायती राज	3,97,524	25.01	673034	18.86	69.31
3	वैज्ञानिक विभाग	58,690	3.69	1,42,167	3.98	142.23
4	परिवहन तथा ऊर्जा	2,04,076	12.84	4,48,736	12.57	119.89
5	शिक्षा	1,77,538	11.17	4,53,728	2.71	155.57
6	स्वास्थ्य तथा बाल विकास	1,12,646	7.09	4,08,521	11.45	262.66

7	शहरी विकास	63,465	3.99	1,64,078	4.60	158.53
8	अन्य	4,58,849	28.87	9,94,333	27.86	116.70
	कुल योजना आवंटन	15,89,342	100.00	35,68,626	100.00	124.53

बारहवीं योजना के अंतर्गतं, राज्य व संघ राज्य क्षेत्र योजनाओं को केंद्रीय सहायता के रूप में, वर्तमान मूल्यों पर 8,57,786 करोड़ रूपए उपलब्ध कराना प्रस्तावित है। राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों के संसाधनों में क्षेत्रकवार केंद्रीय सहायता घटक को तालिका 11.8 में दर्शाया गया है। राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों को वर्तमान मूल्यों पर 8,57,786 करोड़ रूपए की कुल केंद्रीय सहायता में से 20.84 प्रतिशत (अर्थात् 1,78,739 करोड़ रूपए) गाडगिल फार्मूले वाले एनसीए के लिए निर्धारित किए गए हैं। कुल केंद्रीय सहायता में से 14.31 प्रतिशत राशि, विशेष श्रेणी राज्य के लिए विशेष योजना सहायता तथा सीमा क्षेत्र विकास कार्यक्रम/पर्वतीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम/पूर्वोत्तर परिषद् हेतु विशेष केंद्रीय सहायता के लिए है। बारहवीं योजना के लिए राज्यों को दी जाने वाली शेष 64.85 प्रतिशत सहायता निर्धारित प्राथमिकताओं के अनुरूप, विभिन्न फ्लैगशिप कार्यक्रमों तथा अन्य स्कीमों के लिए अतिरिक्त केंद्रीय सहायता के तौर पर है, जैसे—एआईबीपी, राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम, बीआरजीएफ, आरकेवीवाई तथा सांसद स्थानीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम सहित जेएनएनयूआरएम।

तालिका 11.8

राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों की योजना को बारहवीं योजना में प्रस्तावित केंद्रीय सहायता

(वर्तमान मूल्यों पर करोड़ रूपए में)

क्षेत्रक	कार्यक्रम	आवंटन
राज्य विकास योजना	सामान्य केंद्रीय सहायता	1,78,739
विशेष श्रेणी राज्य	विशेष योजना सहायता	36,436
	विशेष केंद्रीय सहायता (पूर्वोत्तर तथा सिक्किम के लिए किसी भी पूल के साथ एकीकृत	63,858
		6,218
कृषि	राष्ट्रीय कृषि विकास योजना	63,246
	सीमा क्षेत्र विकास कार्यक्रम/पर्वतीय क्षेत्र कार्यक्रम/पूर्वोत्तर परिषद्	10,122
		6,108
सिंचाई	त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम	91,435
शहरी/स्थानीय क्षेत्र विकास	जवाहरलाल नेहरू शहरी नवीकरण मिशन	1,01,917
	सांसद स्थानीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम	19,775
संतुलित क्षेत्रीय विकास	पिछड़ा क्षेत्र अनुदान निधि	76,677
	बोडोलैंड प्रादेशिक परिषद्	340
बुजुर्ग तथा कमज़ोर वर्ग	राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम	48,642
अवसंरचना	सड़कें तथा पुलें	12,410
बाह्य सहाय्यित परियोजनाएं	विभिन्न बाह्य सहाय्यित परियोजनाएं	81,912
ई–गवर्नेंस	राष्ट्रीय ई–गवर्नेंस कार्य योजना	3,537
जनजातीय विकास	जनजातीय उप–योजना	7,787
	अनुच्छेद 275 (1) के अंतर्गत अनुदान सहायता	6,924
संघ राज्य क्षेत्र योजनाएं		41,073
कुल		8,57,786

11.17 योजना वित्तपोषण संबंधी मुद्दे (Issues in Plan Financing)

11.17.1 एचएलईसी की सिफारिशें

ग्यारहवीं योजना दस्तावेज में, ऐसे कई अवधारणात्मक मुद्दों पर चर्चा की गई थी जिनका योजना वित्तपोषण ढांचे तथा सार्वजनिक व्यय प्रबंधन पर असर पड़ता है। योजना आयोग ने विभिन्न मुद्दों की पड़ताल तथा सार्वजनिक व्यय के कुषल प्रबंधन हेतु सुझाव देने के लिए डॉ. सी. रंगराजन की अध्यक्षता में एक उच्च–स्तरीय कुशल सार्वजनिक व्यय प्रबंधन (एचएलईसी) समिति का गठन किया था इस समिति ने पांच विचारार्थ विषयों पर 25 सिफारिशें की हैं। एचएलईसी की कुछ सिफारिशों को स्वीकार कर लिया गया है।

1) चालू केन्द्रीय योजना स्कीम मॉनीटरिंग प्रणाली (सीपीएसएमएस) का निधियों के बेहतर ट्रैकिंग व उपयोगिता हेतु विस्तार किया जाना चाहिए।
2) प्रभावी राजस्व 'घाटा' की अवधारणा को सांविधिक पहचान देने तथा एफआरबीएम अधिनियम के अंतर्गत परिकल्पित अन्य तीन विवरणों सहित मध्यावधिक व्यय ढांचा विवरण प्रस्तुत करने के लिए केन्द्र की एफआरबीएम अधिनियम में संषोधन कर लिया गया है। इससे मंत्रालयों/विभागों को प्राथमिकता स्कीमों हेतु संसाधनों का पुनःआबंटन करने तथा अनुपयोगी स्कीमों को हटाने में सहायता मिलेगी।
3) केन्द्र व राज्यों की लेखा शीर्ष की सूची की समीक्षा करने के लिए गठित समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी है। केवल समेकित निधि (ट्रैजरी) के माध्यम से राज्यों को योजना संसाधनों के अंतरण संबंधी सिफारिश को संसाधनों की जवाबदेही में सुधार हेतु अन्य सिफारिशों के साथ कार्यान्वित किया जाएगा।

योजना और गैर–योजना वर्गीकरण को समाप्त करने के संबंध में एचएलईसी की सिफारिशें विचाराधीन है जिससे कि इसकी संभाव्यता; विषेशकर राज्यों के साथ इसके परस्पर क्रिया का निर्धारण किया जा सके।

11.17.2 अवसंरचना वित्तपोषणः पीपीपी की ओर परिवर्तन

व्यापक रूप में सभी की मान्यता है कि विकास अवसंरचना में उच्च विकास के लिए पर्याप्त निवेश पूर्वापेक्षा है। इस परिप्रेक्ष्य में, सरकार द्वारा अवसंरचना में निवेश को बढ़ावा देने के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करने हेतु उपाय किए गए हैं जो बारहवीं योजना हेतु कार्यनीति के माध्यम से परिलक्षित हैं।

11.17.3 बारहवीं योजना हेतु कार्यनीति

बारहवीं योजना की कार्यनीति में निजी क्षेत्रकों की भागीदारी को प्रत्यक्ष तथा पीपीपी के विभिन्न प्रारूपों, जहां वांछनीय और संभाव्य हो, के माध्यम से बढ़ावा देना है। अवसंरचना निवेश में निजी क्षेत्रक के शेयर में ग्यारहवीं योजना में अनुमानित लगभग 36.61 प्रतिशत में पर्याप्त बढ़ोतरी करते हुए बारहवीं योजना में लगभग 48 प्रतिशत करनी होगी। यह अपेक्षा की जाती है कि प्रतिस्पर्धा व निजी निवेश से न केवल क्षमता का विस्तार होगा बल्कि अवसंरचना परियोजनाओं के कार्यान्वयन में लागत एवं अधिक समय को कम करने के अलावा सेवा गुणवत्ता में सुधार भी होगा।

समग्र अवसंरचना निवेश के केन्द्रीय शेयर में ग्यारहवीं योजना में 35.34 प्रतिशत से बारहवीं योजना में 28.72 प्रतिशत तक गिरावट आने तथा राज्यों के शेयर में ग्यारहवीं योजना के 28.05 प्रतिशत की तुलना में 23.13 प्रतिशत तक की गिरावट

आने की संभावना है। निजी क्षेत्रक के शेयर में ग्यारहवीं योजना में 36.61 प्रतिशत से बारहवीं योजना में 48.14 प्रतिशत तक वृद्धि होने की संभावना है।

11.17.4 बारहवीं योजना में अवसंरचना निवेश का वित्तपोषण

बारहवीं योजना में अवसंरचना निवेश का वित्तपोषण निम्न तालिकाओं से स्पष्ट है :–

तालिका 11.9

स्रोत-वार अनुमानित निवेश

(वर्तमान मूल्यों पर करोड़ रूपये में)

	2012-13	2013-14	2014-15	2015-16	2016-17	कुल XIIवीं योजना
केन्द्र	250,758	280,662	315,217	354,296	400,129	1,601,061
केन्द्रीय बजट	107,664	117,805	129,245	142,220	157,044	653,978
आंतरिक सृजन	68,200	75,519	83,919	93,145	103,931	424,713
ऋण	74,894	87,338	102,052	118,931	139,154	522,370
राज्य	206,944	230,045	255,645	283,201	313,928	1,289,762
राज्य बजट	127,290	136,027	145,413	155,499	166,340	730,569
आंतरिक सृजन	23,429	27,652	32,422	37,560	43,409	164,472
ऋण	56,225	66,365	77,810	90,142	104,179	394,722
निजी	293,310	376,747	490,455	648,077	875,251	2,683,840
आंतरिक प्राप्तियां/ इक्विटी	87,992	113,024	152,042	200,904	271,328	825,291
ऋण	205,318	263,723	338,413	447,172	603,923	1,858,549
कुल अनुमानित निवेश	751,012	887,454	1,061,316	1,285,573	1,589,308	5,574,663
गैर-ऋण	414,575	470,027	543,041	629,328	742,052	2,799,022
ऋण	336,437	417,426	518,275	656,246	847,256	2,775,641

तालिका 11.10

ऋण के संभावित स्रोत

(वर्तमान मूल्यों पर करोड़ रूपये)

	2012-13	2013-14	2014-15	2015-16	2016-17	कुल बारहवीं योजना
घरेलू बैंक क्रेडिट	119,066	162,663	216,015	285,513	381,389	1,164,646
एनबीएफसी	56,973	81,027	112,014	154,124	214,325	618,462
पेंशन/बीमा निधि	21,681	25,694	29,602	33,941	39,331	150,248
ईसीबी	46,799	56,020	65,182	75,484	88,349	331,834
संभावित कुल ऋण संसाधन	244,519	325,231	422,590	549,007	723,823	2,265,171
अनुमानित ऋण अपेक्षा	336,437	417,426	518,275	656,246	847,256	2,775,641
अनुमानित एवं संभावित आवश्यकताओं के बीच अंतर	91,918	92,195	95,685	107,239	123,433	510,470

अवसंरचना ऋण कोष

अवसंरचना परियोजनाएं पूंजी सघन है तथा इसमें लम्बी चुकता (पे बैंक) अवधि रहती है तथा इस प्रकार अपेक्षाकृत कम लागत पर दीर्घावधिक निधियों की आवश्यकता होती हैं। भारत में अवसंरचना परियोजनाएं मुख्यतया वाणिज्यिक बैंकों द्वारा वित्तपोषित की जाती है क्योंकि बीमा और पेंशन निधि आम तौर पर नई परियोजनाओं के लिए ऋण नहीं देते हैं। दीर्घावधिक ऋण की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वर्तमान बॉण्ड बाजार में अभी क्षमता नहीं है। इन कमियों को दूर करने की दृष्टि से अवसंरचना विकास निधि (आईडीएफ) की स्थापना की जा रही है जिससे कि घरेलू और विदेशी पेंशन व बीमा निधि तथा अन्य स्रोतों से दीर्घावधिक ऋण को सुचारु बनाया जा सके। ये आईडीएफ ऋण के पुनर्भुगतान हेतु अप्रत्यक्ष सरकारी गारंटी के रूप में पर्याप्त क्रेडिट वृद्धि भी कर सकेंगे। भारतीय रिजर्व बैंक और सेबी ने पहले ही आईडीएफ के लिए नियामक ढांचा तैयार कर लिया है।

आर्थिक योजनाएं किसी राष्ट्र के सामजिक उत्थान का पथ प्रशस्त करती हैं अर्थ तंत्र को मजबूत करती हैं और स्वस्थ राजनीतिक वातावरण का निर्माण करती हैं जिससे देश में अच्छे नागरिकों का निर्माण होता है।

11.18 सारांश

आर्थिक नियोजन सामाजिक आर्थिक विकास का अनिवार्य और एक मात्र मार्ग है। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत ने चक्रीय नियोजन का आश्रय लिया है जिसमें एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी तथा इसी प्रकार क्रमिक रूप से योजनायें आती रहेंगी और राष्ट्र की आवश्यकताओं के अनुरूप लक्ष्यों का निर्धारण कर विकास यात्रा के मील के पत्थर बनती रहेगी।

भारत में 11 पंचवर्षीय योजनाएं लागू हो चुकी हैं। 12वीं योजना चल रही है। जो अब अपने अंतिम चरण में है।

मार्च 1950 को योजना आयोग का गठन हुआ था जो राष्ट्र में योजनाओं का कार्यभार देखता था। प्रधानमंत्री योजना आयोग के पदेन अध्यक्ष होते है। जनवरी 2015 को योजना आयोग के स्थान पर नीति आयोग (NITI i.e. **N**ational **I**nstitute for **T**ransforming **I**ndia) की स्थापना कर दी गयी यह नीति आयोग राष्ट्र के कायाकल्प का शिल्पकार है। योजना आयोग की भांति प्रधानमंत्री इस आयोग के अध्यक्ष हैं तथा विशेष क्रियाकलापों के तकनीकी विशेषज्ञ अर्थशास्त्री व समाजशास्त्री इस आयोग के सदस्य हैं। यह टीम इंडिया सहकारी संघवाद की अवधारणा के प्रकाश में योजनाओं का निर्माण व क्रियान्वयन कर एक नये भारत की कल्पना को साकार करेगी जिसमें प्रत्येक व्यक्ति सुखी सम्पन्न और संतुष्ट रहेगा।

योजनाओं के वित्त संमरण की विधिवत् व्यवस्था रहती है। सरकार प्राप्त आय को जनहित के कार्यों में इस प्रकार नियोजित करती है कि अधिकतम लोक कल्याण सुनिश्चित हो सके।

11.19 शब्दावली

चक्रीय नियोजन – चक्रीय नियोजन नियोजन की वो प्रक्रिया है जिसमें एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी और इसी प्रकार अन्य योजनाएं चक्रवार तब तक आती रहेंगी जब तक राष्ट्र अपने आर्थिक–सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर लेता।

योजना अवकाश– योजना अवकाश वह कालखंड है जब विधिवत चक्रीय योजनाओं का क्रम भंग हो जाता है अर्थात कोई क्रमिक योजना उन दिनों लागू नहीं होती।

समावेशी विकास : समावेशी विकास से आशय क्रमिक और सतत विकास से है जिसमें विकास की प्रक्रिया अनवरत और अबाध गति से चलती रहती है। प्रत्येक पीढ़ी के नागरिकों का यह दायित्त्व है कि वे अपने उपयोग के लिए प्राकृतिक संसाधनों का इस प्रकार विदोहन करे कि सारे संसाधन लुप्त प्राय न हो जाएँ। पर्यावरण संरक्षण करना आवश्यक है ताकि पर्यावरणीय संतुलन और जैव विविधता बनी रहे और हर युग का विकास आगामी युग के विकास का आधार सिद्ध हो।

हिन्दू वृद्धि दर : भारत में नियोजन काल का प्रारंभ वर्ष 1951 से आरंभ हुआ (प्रथम पंचवर्षीय योजना 1951-1956 तक) वर्ष 1981 में ;छठी पंचवर्षीय योजना

(1980-85) नियोजन की प्रक्रिया को प्रारंभ हुए 30 वर्ष हो गये। जब इन 30 वर्षों में भारत की वृद्धि दर का औसत निकाला गया, तो वह मात्र 3.5 प्रतिशत था जो कि बहुत कम था। देश की इतनी धीमी विकास रफ्तार को अर्थशास्त्री प्रो. कृष्णा राव ने हिन्दू वृद्धि दर का नाम दिया। इसके पीछे तर्क यह दिया गया कि 'हिन्दू धर्म' समाज में अनेक परिवर्तन आने के बाद भी रूढ़िवादी प्रवृत्तियों से सर्वाधिक ग्रस्त धर्म है। अतः हिन्दू धर्म की विकास की धीमी गति को भारत की अर्थव्यवस्था की धीमी गति से जोड़कर देखा गया।

नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) की समाप्ति तक अर्थात 2001-02 में देश की विकास दर 7 प्रतिशत आंकी गई जो 30 वर्ष की औसत संवृद्धि दर से दोगुनी थी। अतः इस वृद्धि को व्यंग्यात्मक रूप से कहा गया।

11.20 बोध प्रश्न

I) वैकल्पिक प्रश्न

1) भारत में योजना अयोग का गठन किस वर्ष में किया गया –
   i) 1947
   ii) 1950
   iii) 1952
   iv) 1955

2) निम्न में से किस पंचवर्षीय योजना की अवधि सही नहीं दर्शायी गयी है –
   i) पहली योजना (1951-1956)
   ii) चौथी योजना (1969-1974)
   iii) दसवीं योजना (2000-2005)
   iv) वारहवीं योजना (2012-2017)

3) राष्ट्रीय विकास परिषद का गठन किस तिथि को हुआ था?
   i) 16 अगस्त 1950
   ii) 16 अप्रैल 1951
   iii) 6 अगस्त, 1951
   iv) 6 अगस्त 1952

4) बारहवी पंचवर्षीय योजना के लक्ष्यों में शामिल हैं
   i) विकास दर 8% के लगभग रखना
   ii) कृषि क्षेत्र में कम से कम 4% विकास की दर प्राप्त करना
   iii) उक्त में से कोई नहीं
   iv) उक्त सभी

5) बारहवीं योजना के अंतर्गत सार्वजनिक क्षेत्र के संसाधनों में सम्मिलित हैः
   i) केन्द्र तथा राज्यों व संघ राज्यों के संसाधन
   ii) केवल केन्द्र के संसाधन
   iii) केवल राज्यों व संघ राज्यों के संसाधन
   iv) उक्त में से कोई नहीं

II) निम्न लिखित मे से कौन सा कथन सत्य है और कौन सा असत्यः

6) आर्थिक नियोजन का उद्देश्य अर्थ.सामाजिक कायाकल्प करना है। (सत्य/असत्य)

7) प्रसिद्ध नारा गरीबी हटाओ ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के तहत दिया गया था। (सत्य/असत्य)

8) बारहवीं पंचवर्षीय योजना में सरकार ने इस बार तीव्र, अधिक समावेशी और धारणीय विकास के लक्ष्य घोषित किये हैं। (सत्य/असत्य)

9) नीति आयोग को राष्ट्रीय भारतीय परिवर्तन संस्था भी कहा जाता है। (सत्य/असत्य)

10) बारहवीं योजना के अंतर्गतं, राज्य व संघ राज्य क्षेत्र योजनाओं को केंद्रीय सहायता के रूप में 9,75,786 करोड़ रूपए मिलेंगे। (सत्य/असत्य)

11.21 बोध प्रश्नों के उत्तर

वैकल्पिक प्रश्न

1) ii 2) iii 3) iv 4) iv 5) i

सत्य/असत्य

6) सत्य 7) असत्य 8) सत्य 9) सत्य 10) असत्य

11.22 स्वपरख प्रश्न

1) आर्थिक नियोजन की अवधारणा को स्पष्ट कीजिये तथा आर्थिक नियोजन के लक्ष्य बताइये।
2) योजना आयोग के स्थान पर नीति आयोग की स्थापना कब और क्यों की गयी।
3) बारहवीं पंचवर्षीय योजना के भौतिक लक्ष्यों का वर्णन कीजिये।
4) योजना अवकाश से आप क्या समझते हैं?
5) बारहवीं पंचवर्षीय योजना के वित्त संभरण का वर्णन कीजिये।
6) भारत में आर्थिक नियोजन से संबंधित विभिन्न संस्थाओं का परिचय प्रस्तुत कीजिये।

11.23 सन्दर्भ पुस्तकें

1. राजस्व : डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय
2. लोकवित्त : डॉ0 एस0 के0 सिंह
3. राजस्व : डॉ0 आर0 एस0 कौशिक
4. राजस्व सिद्धान्त एवं व्यवहार : के0 एल0 माहेश्वरी
5. Delton, H : Principles of public Finance
6. Public Finance Theory and Practice : Mehta and Agrawal
7. Shirras, Findley : The Science of Public Finance
8. Hicks, Ursula : Public Finance
9. A.C. Pigou : A Study of Public Finance
10. Taylor P.E. : Economics of Public Finance
11. Raja J Chhelliah : Fiscal Policy in under developed Countries.

इकाई 12 राष्ट्रीय आय एवं निर्धनता (National Income Concepts and Poverty)

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 राष्ट्रीय आय– आशय
12.3 राष्ट्रीय आय की अवधारणा
12.3.1 सकल घरेलू उत्पाद
12.3.2 शुद्ध घरेलू उत्पाद
12.3.3 सकल राष्ट्रीय उत्पाद
12.3.4 शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद
12.4 आय के कुछ अन्य प्रकार
12.4.1 प्रति व्यक्ति आय
12.4.2 वैयक्तिक आय
12.4.3 व्यय योग्य आय
12.5 राष्ट्रीय आय की गणना के आधार
12.5.1 बाजार मूल्य
12.5.2 साधन कीमत
12.5.3 स्थिर मूल्य
12.5.4 चालू ;वर्तमानद्ध मूल्य
12.6 राष्ट्रीय आय की गणना की विधियाँ
12.6.1 उत्पादन गणना विधि
12.6.2 आय गणना विधि
12.6.3 व्यय विधि
12.7 राष्ट्रीय आय की गणना एवं महत्वपूर्ण बिन्दु
12.7.1 महत्वपूर्ण बिन्दु
12.7.2 बाजार कीमत तथा साधन कीमत में अन्तर
12.7.3 आर्थिक विकास दर तथा आर्थिक संवृद्धि दर में अन्तर
12.8 राष्ट्रीय आय की गणना करते समय बरतने वाली सावधानियां
12.9 राष्ट्रीय आय की गणना में शामिल न की जाने वाली मदें
12.10 राष्ट्रीय आय का महत्व
12.11 निर्धनता
12.12 निर्धनता रेखा से आशय
12.13 भारत में निर्धनता का आंकलन
12.14 भारत में निर्धनता के कारण
12.14.1 ऐतिहासिक कारण
12.14.2 राजनीतिक कारण
12.14.3 सामाजिक कारण
12.14.4 आर्थिक कारण
12.15 निर्धनता के प्रकार
12.15.1 क्षेत्र के आधार पर
12.15.2 तुलना के आधार पर

12.15.3 भाव के आधार पर
12.16 गरीबी के दुष्परिणाम अथवा दुष्प्रभाव
12.17 निर्धनता उन्मूलन की आवश्यकता
12.18 निर्धनता उन्मूलन के उपाय
12.19 देश में कार्यान्वित गरीबी उन्मूलन तथा रोजगार सृजन के मुख्य कार्यक्रम
12.20 वर्तमान सरकार के विशेष कार्यक्रम
12.20.1 शहरी और ग्रामीण गरीबों के लिए दीनदयाल उपाध्याय योजना
12.20.2 दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना
12.20.3 दीनदयाल उपाध्याय अंत्योदय योजना
12.20.4 पंडित दीनदयाल उपाध्य्ाय श्रमेव जयते कार्यक्रम
12.20.5 महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियम
12.21 सारांश
12.22 शब्दावली
12.23 बोध प्रश्न
12.24 बोध प्रश्नों के उत्तर
12.25 स्वपरख प्रश्न
12.26 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- राष्ट्रीय आय की अवधारणा से अवगत हो सके।
- राष्ट्रीय आय की गणना और आंकलन की विधियाँ जान सके।
- राष्ट्रीय आय के महत्त्व से परिचित हो सके।
- निर्धनता तथा गरीबी रेखा को समझ सकें।
- निर्धनता के कारणों का ज्ञान प्राप्त कर सकें।
- निर्धनता उन्मूलन के उपायों से अवगत हो सकें।

12.1 प्रस्तावना

सार्वजनिक अर्थ शास्त्र का सबसे लोक प्रिय और सबसे अधिक प्रयोग में आने वाला शब्द है– राष्ट्रीय आय जैसे किसी व्यक्ति की आय सामान्यतः उसकी आथिक स्थिति का परिचय देती है वैसे ही राष्ट्रीय आय किसी राष्ट्र की आर्थिक स्थिति का परिचायक होती है।

अध्ययन की दृष्टि से राष्ट्रीय आय इसलिये अति महत्वपूर्ण है कि इसी से राष्ट्र की प्रगति का स्तर निर्धारित होता है। प्रति व्यक्ति आय ज्ञात होती है तथा राष्ट्र में विकास की समुचित योजनाऐं बनाने का आधार प्राप्त होता है।

राष्ट्र में निर्धनता का स्तर निर्धारित करने तथा निर्धनता उन्मूलन के विभिन्न कार्यक्रमों को चालू करने के लिये राष्ट्रीय आय ही एक मात्र आधार है। प्रस्तुत अध्याय में राष्ट्रीय आय की अवधारणा निर्धनता के विविध आयाम तथा

गरीबी, गरीबी रेखा गरीबी उन्मूलन के कारण तथा उपायों का मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है।

12.2 राष्ट्रीय आय – आशय

राष्ट्रीय आय किसी राष्ट्र में एक निशिचित काल अवधि में उत्पन्न समस्त वस्तुओं तथा सेवा और की शुद्ध मौद्रिक मूल्य है। वस्तुओं और सेवाओं को एकल गणना के आधार पर केवल एक बार ही गिना जाता है। साधारणतः शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद को ही राष्ट्रीय आय कहा जाता है। संक्षेप में साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद को राष्ट्रीय आय कहते है।

राष्ट्रीय आय की परिभाषाएं दो प्रकार से की जाती है एक तो पांरपरिक तरीके से और दूसरे आधुनिक तरीके से पारम्परिक परिभाषाऐं प्राचीन अर्थ शास्त्रियों मार्शल पीगू, फिशर आदि पुराने अर्थ शास्त्रियों द्वारा प्रस्तावित की गयी है तथा आधुनिक परिभाषायें नये और समकालीन अर्थ शास्त्रियों ने प्रदान की है।

राष्ट्रीय आय शब्द को अर्थशास्त्र में बड़े लचीले ढंग से प्रयोग किया गया है। राष्ट्रीय आय को राष्ट्रीय लाभांश, राष्ट्रीय उत्पाद, राष्ट्रीय व्यय आदि के रूप में भी प्रयोग किया गया है। साधारण तौर पर किसी एक वर्ष में आर्थिक क्रियाओं के फलस्वरूप राष्ट्र को प्राप्त आय को राष्ट्रीय आय कहा जाता है। राष्ट्रीय आय से आशय किसी निश्चित अवधि में एक राष्ट्र के निवासियों द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का शुद्ध मूल्य है जो मजदूरी, लाभ, लगान, किराया, ब्याज और पेंशन आदि के भुगतान में परिलक्षित होता है।

भारत के केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन के अनुसार देश के नागरिकों द्वारा वेतन, किराया, ब्याज तथा लाभ के रूप में अर्जित आय को राष्ट्रीय आय कहते है।

प्रो0 फिशर के अनुसार– राष्ट्रीय लाभांश एवं आय में केवल वे ही सेवायें सम्मिलित की जाती है जो अंतिम रूप से उपभोक्ताओं को प्राप्त होती है। भले ही वे वस्तुएं भौतिक अथवा मानवीय वातावरण से प्राप्त हुई हो।

राष्ट्रीय आय समिति के अनुसार– एक निश्चित अवधि में किसी देश में उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं का बिना दोहरी गणना के मौद्रिक माप राष्ट्रीय आय कहलाता है।

प्रो0 साईमन कूजनेट्स के अनुसार– देश की उत्पादन प्रणाली से वर्ष भर प्रभावित होकर अंतिम उपभोक्ता के हाथों में पहुँचने वाली वस्तुओं तथा सेवाओं अथवा देश की पूंजीगत वस्तुओं के स्टाक में हुयी वृद्धि राष्ट्रीय आय कहलाती है। संक्षेप में राष्ट्रीय आय किसी राष्ट्र के एक वित्तीय वर्ष में हुये कुल उत्पादन का योग है।

12.3 राष्ट्रीय आय की अवधारणा (Concept of National Income)

राष्ट्रीय आय को निम्न प्रकार समझा जा सकता है :

राष्ट्रीय आय (National Income)

साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद को राष्ट्रीय आय कहते हैं।प्रचलित कीमतों पर शुद्ध राष्ट्रीय में से अप्रत्यक्ष कर को घटा दिया जायें और उपादान को जोड दिया जाये तो राष्ट्रीय आय प्राप्त होती है।

राष्ट्रीय आय (N.I.) = प्रचलित कीमतों पर शुद्ध राष्ट्रीय आय– अप्रत्यक्ष कर+उपादान

वास्तविक राष्ट्रीय आय (Real National Income - R.N.I)

किसी भी देश की मुद्रा की क्रय शक्ति में निरंतर परिवर्तन होता रहता है इसलिऐ वास्तविक राष्ट्रीय आय की जानकारी के लिए किसी आधार वर्ष के सापेक्ष शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद की गणना की जाती है इसे वास्तविक राष्ट्रीय आय कहा जाता है।

प्रमुख रूप से राष्ट्रीय आय की चार अवधारणायें प्रचलित हैः–

1) सकल घरेलू उत्पाद Gross Domestic Product (GDP)

2) शुद्ध घरेलू उत्पाद Net Domestic Product (NDP)

3) सकल राष्ट्रीय उत्पाद Gross National Product (GNP)

4) शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद Net National Product (NNP)

12.3.1 **सकल घरेलू उत्पाद** Gross Domestic Product (GDP)

किसी राष्ट्र में एक वित्तीय वर्ष में उत्पादित वस्तुओं व सेवाओं के कुल मौद्रिक मूल्य का योग सकल घरेलू उत्पाद (GDP) कहलाता है।

12.3.2 **शुद्ध घरेलू उत्पाद** Net Domestic Product (NDP)

किसी राष्ट्र के सकल घरेलू उत्पाद में से मूल्य ह्रास घटाने के पश्चात बचे शेष को शुद्ध घरेलू उत्पाद कहते हैं।

शुद्ध घरेलू उत्पाद = सकल घरेलू उत्पाद –मूल्य ह्रास

12.3.3 **सकल राष्ट्रीय उत्पाद** Gross National Product (GNP)

किसी राष्ट्र में एक वित्तीय वर्ष में देश में रहने वाले निवासियों द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का कुल मौद्रिक योग सकल राष्ट्रीय उत्पाद कहलाता है। सूत्र रूप में यह कहा जा सकता है :-

GNP = GDP + X- M

GNP- सकल राष्ट्रीय आय Gross National Product

GDP- सकल घरेलू उत्पाद Gross Domestic Product

X = देश वासियों द्वारा विदेशों में अर्जित आय

M= विदेशियों द्वारा देश में अर्जित आय

12.3.4 **शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद Net National Product (NNP)**

किसी राष्ट्र मैं एक वित्तीय वर्ष के सकल राष्ट्रीय उत्पाद में से मूल्य ह्रास को घटाने के पश्चात बचे शेष को शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद कहा जाता है।

शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद = सकल राष्ट्रीय उत्पाद– मूल्य ह्रास

12.4 आय के कुछ अन्य प्रकार (Various Types of Income)

12.4.1 प्रति व्यक्ति आय (Per Capita Income)

प्रति व्यक्ति आय किसी राष्ट्र के नागरिकों की आर्थिक स्थिति का मापदण्ड है। इसमें व्यक्तियो के जीवन स्तर और नागरिकों के जीवन की गुणवत्ता का परिचय मिलता है।

जब कुल राष्ट्रीय आय में से कुछ जनसंख्या को भाग देते हैं तो प्रति व्यक्ति आय प्राप्त होती है। प्रति व्यक्ति आय दो तरह से प्राप्त की जा सकती है:–

(1) प्रचलित कीमतों पर प्रति व्यक्ति आय

प्रचलित कीमतों पर राष्ट्रीय आय/वर्तमान जनसंख्या

(2) स्थिर कीमतों पर प्रति व्यक्ति आय

स्थिर कीमतों पर राष्ट्रीय आय/वर्तमान जनसंख्या

12.4.2 वैयक्तिक आय (Personal Income)

एक वर्ष में राष्ट्र के निवासियों को प्राप्त होने वाली वास्तविक आय वैयक्ति सुरक्षा आय कही जाती है

वैयक्तिक आय = राष्ट्रीय आय + अंतरण भुगतान–निगम कर अवतरित लाभ–सामाजिक सुरक्षा अनुदान

12.4.3 व्यय योग्य आय (Disposable income)

प्रत्येक व्यक्ति एक वर्ष में प्राप्त आय को पूर्णतः व्यय नहीं कर पाता बल्कि सरकार द्वारा प्रत्यक्ष कर के रूप में कुछ राशि ले ली जाती है शेष बची राशि को व्यय योग्य राशि कहते हैं इस आय को व्यक्ति अपने काम में व्यय कर सकता है।

व्यय योग्य आय = वैयक्तिक आय–प्रत्यक्ष कर

12.5 राष्ट्रीय आय की गणना के आधार (Basis of Calculation of National Income)

राष्ट्रीय आय की गणना के प्रमुख आधार निम्नवत हैं :–

1) बाजार मूल्य पर (Market cost)
2) साधन मूल्य पर (Factor cost)
3) स्थिर मूल्य पर (Constant Price)
4) चालू (वर्तमान) मूल्य पर (Current Price)

12.5.1 बाजार मूल्य (Market Cost)– जिस मूल्य पर क्रेता (Buyer) खरीदने और विक्रेता (Seller) बेचने को तैयार हो उस मूल्य को बाजार मूल्य कहते हैं जो कि ग्राफ 12.1 से स्पष्ट होता है :

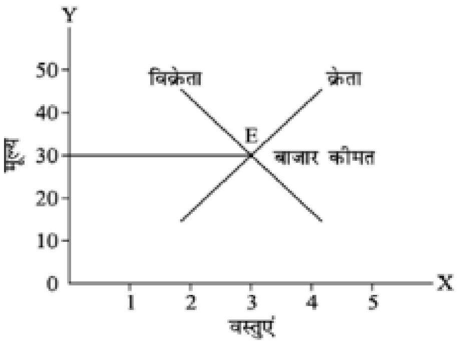

12.5.2 साधन कीमत (Factor Cost)– वस्तु के उत्पादन में पाँच साधनों का प्रयोग होता है भूमि (Land), श्रम, (Labour) पूंजी (Capital),

संगठन(Orgnaisation) और साहस (Entreprenure) । भूमि को लगान, श्रम की मजदूरी (Wages), पूँजी को ब्याज (Interest on Capital), संगठनकर्ता को वेतन (Salary for Organiser) और साहसकारी उद्यमी को प्राप्त होने वाला लाभ इन साधनों की कीमत होती है। समस्त साधनों पर आने वाली कुल लागत के योग को उत्पादित माल की मात्रा से भाग देकर उस वस्तु की साधन कीमत (Factor Cost) ज्ञात हो जाती है।

साधन कीमत = कुल लागत/कुल मात्रा

12.5.3 स्थिर मूल्य (Constant Price)– आधार वर्ष में जो मूल्य होता है उसी मूल्य के आधार पर (स्थिर मूल्य) राष्ट्रीय आय की गणना की जाती है। व्यवहार की दृष्टि से बाजार मूल्य और स्थिर मूल्य दोनों पर ही राष्ट्रीय आय की गणना की जाती है। स्थिर मूल्य आधार वर्ष से संबंधित होते है जबकि बाजार मूल्य मुद्रा प्रसार के कारण सदैव बढ़ते रहते हैं।

12.5.4 चालू (वर्तमान) मूल्य (Current Price)– जिस वित्तीय वर्ष में राष्ट्रीय आय की गणना करना हो उस वर्ष में वस्तुओं की सेवाओं का जो बाजार मूल्य होता है उसी मूल्य पर राष्ट्रीय आय की गणना की जाती है।

ग्राफ 12.2 : राष्ट्रीय आय का प्रस्तुतिकरण

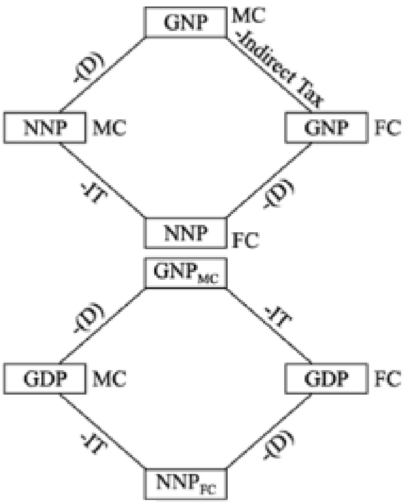

उपरोक्त धारणाओं के आधार पर राष्ट्रीय आय को समीकरण के माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है।

सूत्र रूप में :

GNP_{MC} - Indirect Tax-Depreciation = National Income

NNP_{MC} - Depreciation +Subsidy = National Income

GNP_{MC} - Indirect Tax - Depreciation +Subsidy = National Income

12.6 राष्ट्रीय आय की गणना की विधियाँ (Methods of Measuring National Income)

राष्ट्रीय आय की गणना की प्रायः तीन विधियाँ प्रचलित है।

12.6.1 उत्पादन गणना विधि Production Method– कुजनेट्स ने इस विधि को वस्तु सेवा विधि के नाम से परिभाषित किया है इस विधि में राष्ट्रीय आय उत्पादित अंतिम वस्तुओं का शुद्ध मूल्य ज्ञात किया जाता है तथा उसके योग को अंतिम उपज योग (Final Product Total) कहा जाता है यह वास्तव में सकल घरेलू उत्पाद को दर्शाता है। राष्ट्रीय आय (साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद) की गणना के लिए सकल घरेलू उत्पाद के मूल्य में विदेशों में अर्जित शुद्ध आय को जोड़ा जाता है और मूल्य ह्रास को घटाया जाता है।

इस विधि में एक वर्ष में उत्पन्न सभी वस्तुओं की सेवाओं के मूल्य के योग में से स्थायी संपत्तियों के ह्रास को घटा दिया जाता है। तत्पश्चात साधन लागत पर परिवर्तित करने के लिये निम्न समायोजन करते हैं–

राष्ट्रीय आय = शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन–अप्रत्यक्ष व्यापारिक कर+ सरकारी सहायता (अनुदान)– सरकारी उद्यमों का आधिक्य–व्यापारिक हस्तांतरण भुगतान–डूबत ऋण ± सांख्यिकी त्रुटि

दूसरी पद्धति के अनुसार राष्ट्रीय आय की गणना निम्नवत भी की जा सकती है :–

कृषि+वानिकी+मत्स्य पालन+खनन एवं उत्खनन विनिर्माण

12.6.2 आय गणना विधि (Income Method) – इस विधि में राष्ट्रीय आय आर्थिक क्रियायों से उत्पन्न होन वाली आय का योग होता है।

i) इस विधि से राष्ट्रीय आय की गणना में सभी नागरिकों की आय का योग कर लिया जाता है। राष्ट्रीय आय निम्न 8 मदों का योग होती है

मजदूरी व वेतन+स्वरोजगार से उत्पन्न आय+ किराये की आय+निगम लाभ+ शुद्ध ब्याज+ उत्पाद और आयात पर कर+ व्यापारी द्वारा किया गया हस्तांतरण भुगतान+ सरकारी उद्यमों की अधिशेष

ii) दूसरी पद्धति के अनुसार राष्ट्रीय आय की गणना निम्नवत भी की जा सकती है

=बिजली, गैस एवं जल आपूर्ति + व्यापार, होटल रेस्त्रां तथा परिवहन + वित्त, बीमा, रियल स्टेट तथा व्यावसायिक सेवाएँ + सामुदायिक, सामाजिक एवं व्यकितगत सेवाएँ

12.6.3 व्यय विधि (Expenditure Method)– इसे उपभोग बचत विधि भी कहा जाता है। इस विधि में राष्ट्रीय आय की गणना का आधार किसी वर्ष में व्यक्तियों, नागरिकों व सरकार द्वारा किया गया व्यय होता है।

राष्ट्रीय आय = निजी उपभोग+ निवेश+सरकारी उपयोग+शुद्ध निर्यात

भारत जैसे देश में राष्ट्रीय आय की गणना के लिए उत्पादन प्रणाली तथा आय प्रणाली का सम्मिश्रण प्रयोग किया जाता है।

राष्ट्रीय आय की गणना निम्नवत भी की जा सकती है :–

=निर्माण (निर्माण क्षेत्र, विनिर्माण क्षेत्र, बिजली, गैस एवं जल आपूर्ति आदि) तथा तृतीयक (Tertiary) (सेवा क्षेत्र– व्यापार, होटल तथा रेस्त्रां, परिवहन, भंडारण तथा संचार, वित, बीमा, रियल स्टेट तथा व्यावसायिक सेवाएँ, सामुदायिक, सामाजिक एवं व्यकितगत सेवाएँ)

12.7 राष्ट्रीय आय की गणना एवं महत्वपूर्ण बिन्दु (Key Points of Calculation of National Income)

12.7.1 महत्वपूर्ण बिन्दु

राष्ट्रीय आय की माप करने वाली संस्था केन्द्रीय सांख्यिकी कार्यालय (CSO) ने सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product) गणना का आधार अब बदल दिया है। पहले आधार वर्ष 2004-05 था जो अब 2011-12 हो गया है अब जीडीपी की गणना कारक लागत के स्थान हर बाजार कीमत पर होगी। जीडीपी निकालने का नया तरीका आई0एम0एफ के बहुत निकट हो गया है। अन्तर्राष्ट्रीय मानकों पर आधारित होने से यह अब दूसरे राष्ट्रों से सरलता से तुलना योग्य हो गया है।इससे अर्थ व्यवस्था का आकार बढ़ जायेगा तथा राजकोषीय घाटा और चालू खाते का घाटा जैसे मानक भी प्रभावित होंगे।

- बाजार मूल्य पर सकल घरेलू उत्पाद (GDP) एक वर्ष में राष्ट्रीय सीमाओं के अंतर्गत उत्पादक इंकाईयों द्वारा की गयी वृद्धि का योग है।

- कारक लागत पर निबल घरेलू उत्पाद (NDP) ज्ञात करने के लिये बाजार मूल्य पर ज्ञात सकल घरेलू उत्पाद में से शुद्ध अप्रत्यक्ष कर घटा देते है।

- बाजार मूल्य पर निबल घरेलू उत्पाद (NDP) ज्ञात करने के लिये बाजार मूल्य पर सकल घरेलू उत्पाद में से मूल्य ह्रास घटा दिया जाता है।

12.7.2 बाजार कीमत तथा साधन कीमत में अन्तर Difference between Market Cost and Factor Cost

बाजार कीमत (Market Cost i.e MC)	साधन कीमत (Factor Cost i.e. FC)
Market Cost i.e MC में विभिन्न लागते हैं जेसे– Indirect Tax+ Trasnportation Cost + Advertisement Cost + Profit जुड़ा होता है ।	Factor Cost i.e. FC में वस्तु के उत्पादन के साधनों में आने वाली कुल लागत का योग मात्र होता है।
MC > FC	FC < MC
MC में उपभोक्ता वस्तु की कीमत में तोल–मोल कर सकता है।	FC में मोल–तोल करना संभव नहीं।
प्रायः अलग–अलग जगह पर वस्तु की MC भिन्न–भिन्न होती है ।	FC लगभग हर स्थान पर समान होती है।
MC में राष्ट्रीय आय की गणना करना कठिन है।	FC में राष्ट्रीय आय की गणना करना आसान है।

उपरोक्त मूल्यांकन से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय आय को साधन कीमत पर आंकना अधिक व्यवहारिक है। परन्तु वर्तमान में राष्ट्रीय आय की गणना और दोनों में की जाती है।

12.7.3 आर्थिक विकास दर तथा आर्थिक संवृद्धि दर में अन्तर

क्र.सं.	आर्थिक विकास दर	आर्थिक संवृद्धि दर
1	आर्थिक विकास गुणात्मक संकल्पना है	जबकि आर्थिक संवृद्धि दर मात्रत्मक संकल्पना है।
2	सकल घरेलू उत्पाद में परिवर्तन की दर आर्थिक विकास दर कहलाती है।	जबकि निबल राष्ट्रीय उत्पाद में परिवर्तन की दर आर्थिक संवृद्धि दर कहलाती है।

12.8 राष्ट्रीय आय की गणना करते समय बरतने वाली सावधानियां (Precautions while Calculation of National Income)

- राष्ट्रीय आय में केवल उपभोग (Consumption) एवं पूंजीगत (Capital Goods) वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्य को जोड़ा जाता है।
- केवल अंतिम वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्य को जोड़ा जाता है।
- मध्यवर्ती वस्तुओं के मूल्यों को नहीं जोड़ा जाता।
- राष्ट्रीय आय की गणना साधन लागत पर की जाती है।
- आयातित वस्तुओं के मूल्य को नहीं जोड़ा जाता क्योंकि वह अपने देश में उत्पादित नहीं होती।

12.9 राष्ट्रीय आय की गणना में शामिल न की जाने वाली मदें (Items not included while Calculating National Income)

1) **हस्तान्तरण भुगतान (Transfer Payment):** ऐसे भुगतान जो किसी सेवा या उत्पादन के बदले नहीं दिए जाते बल्कि प्रायः सामाजिक सुरक्षा हेतु भुगतान किए जाते हैं, जैसे–पेंशन, बेरोजगारी भत्ता, बैंकों में जमा राशि पर मिलने वाले ब्याज, आदि हस्तान्तरण भुगतान कहलाते हैं। जिन्हें राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं किया जाता।

2) **पूंजीगत लाभ (Capital Gain):** पूंजीगत लाभ वस्तुओं एवं सेवाओं के वास्तविक उत्पादन पर नहीं बल्कि बाजार में व्याप्त स्फीतिकारी प्रभावों के कारण प्राप्त होते हैं। अतः इसे भी राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं किया जाता।

3) **आय (Income Tax):** पूंजीगत लाभ की गणना साधन कीमत पर करते समय सभी साधनों पर आयी लागत को जोड़ लिया जाता है। चूंकि व्यक्ति (प्रबंधक) को प्राप्त आय उस लागत को हिस्सा है, और वह उसी आय से आयकर देगा, तो दोहरी गणना की समस्या उत्पन्न होगी इसलिए आयकर को राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं किया जाता।

नोटः–यही कारण है कि राष्ट्रीय आय में निगम कर (corporate tax) शामिल नहीं किया जाता।

गैर–कानूनी गतिविधियां (Illegal Activities): कालाबाजारी, तस्करी, जुआ, आदि से प्राप्त आय को राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं किया जाता।

पुरानी वस्तुओं की खरीद एवं बिक्री (Sale/Purchase of Old Articles): पुरानी वस्तुओं की खरीद एवं बिक्री को भी राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं किया जाता

क्योंकि इनका उत्पादन किसी दूसरे वित्तीय वर्ष में हुआ था और वहां इनकी गणना की जा चुकी थी।

12.10 राष्ट्रीय आय का महत्व (Importance of National Income)

जिस प्रकार किसी व्यक्ति की आय उसकी आर्थिक स्थिति का परिचायक है उसी प्रकार राष्ट्रीय आय राष्ट्र की सम्पन्नता का मापदण्ड है। राष्ट्रीय आय राष्ट्र की अर्थ व्यवस्था तथा सामाजिक स्थिति का महत्वपूर्ण अवयव है। उसका महत्व निम्न विवेचना से स्पष्ट हैः

1) **आर्थिक नियोजन का आधार–** राष्ट्रीय आय के समंक अर्थ सामाजिक विकास के लिये बनाये गये योजनाओं का आधार होते है।

2) **राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था के विभिन्न अवयवों के योगदान का मूल्यांकन–** भारतीय अर्थ व्यवस्था के प्राथमिक (Primary) (कृषि, वानिकी, मत्स्य पालन) द्वितीयक (Secondary) (खनन एवं उत्खनन, निर्माण क्षेत्र, विनिर्माण क्षेत्र, बिजली गैर एवं जल आपूर्ति आदि) तथा तृतीयक (Tertiary) (सेवा क्षेत्र– व्यापार, होटल तथा रेस्त्रां, परिवहन, भंडारण तथा संचार, वित, बीमा, रियल स्टेट तथा व्यावसायिक सेवाएँ, सामुदायिक, सामाजिक एवं व्यकितगत सेवाओं) के द्वारा उत्पादित वस्तुओ व सेवाओं के पृथक–पृथक आंकलन से अर्थ व्यवस्था मे उनके तुलनात्मक योगदान का ज्ञान हो जाता है।

विगत वर्षों में भारत में सेवा क्षेत्र के उद्योग जिसमें व्यापार, होटल तथा रेस्त्रां, परिवहन, भंडारण तथा संचार, वित, बीमा, रियल स्टेट तथा व्यावसायिक सेवाएँ तथा सामुदायिक, सामाजिक एवं व्यकितगत सेवाओं का मुख्य योगदान है।

12.11 निर्धनता (Poverty)

निर्धनता धन हीनता की स्थिति है। जब व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को पूराकरने की स्थिति में भी नहीं होता अर्थात उसके पास इतनी क्रय शक्ति भी नही होती कि वह अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके तो वह स्थिति निर्धनता की स्थिति कही जाती है।

निर्धनता प्रति व्यक्ति आय की न्यूनता, पिछड़ा जीवन स्तर और न्यूनतम साधनों के अभाव की स्थिति है।

विश्व बैंक की अर्थ शास्त्रीय परिभाषा देश काल परिस्थितियों के हिसाब से हर राष्ट्र के लिये अलग अलग है तथापि विश्व बैंक के अनुसार, ''विकासशील राष्ट्रों में प्रतिदिन 1.25 डालर से कम तथा विकसित राष्ट्रों में 2 डालर प्रतिदिन से कम कमाने वाले व्यक्ति को निर्धन कहा जाता है।''

योजना आयोग के अनुसार, ''ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति 2,400 कैलोरी और शहरी क्षेत्रो में 2,100 कैलोरी प्रतिदिन प्राप्त न कर पाने वाले व्यक्ति गरीबी रेखा से नीचे माने जाते हैं।''

योजना आयोग राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन के माध्यम से निर्धनों की संख्या का आंकलन करता है यद्यपि निर्धनता संबंधी समंक प्रति वर्ष संकलित किये जाते हैं पर उनका प्रकाशन प्रति 5 वर्ष के अंतराल से किया जाता है।

12.12 निर्धनता रेखा से आशय (Poverty Line)

गरीबी रेखा के आंकलन का पुराना फार्मूला वांछित कैलोरी आवश्यकता पर आधारित है। गरीबी रेखा या निर्धनता रेखा आय का वह स्तर है जिससे कम

आय होने पर व्यक्ति अपनी आवश्यक आवश्यकताएं भी पूरी नही कर पाता इस रेखा से नीचे रहने वाले को गरीबी रेखा से नीचे (Below Poverty Line i.e. BPL) रहने वाला कहा जाता है। इसमें अनाज, दालें, सब्जियां, दूध, तेल, चीनी आदि वा खाद्य वस्तएं शामिल थी जो जरूरतमंद कैलोरी प्रदान करते हैं। कैलोरी की जरूरत उम्र, लिंग और कार्य और कार्यक्षमता पर निर्भर करती है जो एक व्यक्ति करता है। भारत में अनेक अर्थशास्त्रियों एव संस्थाओं ने निर्धनता के निर्धारण के लिए अपने प्रमाप बनाये हैं इन सभी अध्ययनों के आधार 2,250 कैलोरी के बराबर का खाद्य मूल्य है। योजना आयोग द्वारा गठित आयोग द्वारा गठित विशेषज्ञ दल "Task Force on Minimum Needs and Effective Compensation on Demand' की रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में औसत कैलोरी आवश्यकता 2,400 कैलोरी, प्रति व्यक्ति प्रति दिन है, जबकि शहरी क्षेत्रों में यह 2,100 कैलोरी प्रति व्यक्ति प्रतिदिन मानी जाती रही है। चूंकि ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोग स्वय को ज्यादा शारीरिक कार्यो में व्यस्त रखते हैं इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों में कैलोरी की आवश्यकताओं को शहरी क्षेत्रों की तुलना में अधिक रखा गया। इन गणनाओं के आधार पर वर्ष 2,000 में ग्रामीण क्षेत्रों में 328 रूपये प्रति माह और शहरी क्षेत्रों में 454 रूपये प्रति माह कमाने वाले मानक को गरीबी रेखा में शामिल किया गया था। इस तरह वर्ष 2,000 में, ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले और 1,640 रूपये प्रति महीने से भी कम कमाई वाले पांच सदस्यों के एक परिवार को गरीबी रेखा के नीचे रखा गया। प्रो0 लकड़ावाला फॉर्मूले ने शहरी निर्धनता के आंकलन हेतु औद्योगिक श्रमिकों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक व ग्रामीण क्षेत्रों में इस उद्देश्य हेतु कृषि श्रमिकों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक को आधार सूचकांक को आधार बनाया गया है। इस प्रकार प्रो0 लकड़ावाला फार्मूले के तहत सभी राज्यों के लिये अलग–अलग निर्धनता रेखा अर्थात निर्धरता 35 रेखाएं तक की गई।

तालिका 12.1 निर्धनता रेखा के निर्धारण हेतु न्यूनतम उपभोग व्यय (2011-12 की कीमतों पर)

क्र.सं.	समिति	शहरी क्षेत्र	ग्रामीण क्षेत्र
1	रंगराजन समिति	रू0 1407 प्रतिमाह (रू0 47 प्रतिदिन)	रू0 972 प्रतिमाह (रू0 32 प्रतिदिन)
2	तेंदुलकर समिति	रू0 1000 प्रतिमाह (रू0 33 प्रतिदिन)	रू0 816 प्रतिमाह (रू 27 प्रतिदिन)

तालिका 12.2 भारत में निर्धनता अनुपात

निर्धनता की माप– निर्धनता की माप में महत्वपूर्ण घटक है– कुपोषण, निम्न आय, खराब स्वास्थ्य, असाध्य रोग, निरक्षरता, बेरोजगारी या अल्प–रोजगार और घर की अस्वास्थ्य कर दशा इत्यादि होते हैं। मोटे तौर पर किसी भी समाज में निर्धन का उल्लेख उसमें साधनों की कमी, कम राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति कम आय, संसाधनों के बंटवारे में भारी असमानता, कमजोर सुरक्षा से होता है। कुछ विद्वानों ने यह बताने के लिये कि कैसे परिवारो में व्यक्तियों के निर्धन होने की अधिक सम्भावनाएं है उन परिवारों की निर्धनता से सम्बंधित कुछ विशेषताओं का उल्लेख किया है। जैसे–जैसे ये परिवार उन विशेषताओं के अधिक संख्या में प्रदर्शित करते हैं वैसे–वैसे उनके निर्धन होने की संभावनाएं बढ़ जाती हैं, जैसे परिवार में कमाने

वाले व्यक्ति कम होना उदाहरणतः परिवार में 60 वर्ष से अधिक व्यक्तियों की संख्या ज्यादा होना। ऐसे परिवार जिनमें मात्र स्त्रियाँ ही मुखिया हों और जो कहीं कार्यरत न हों, परिवार जिसमें अधिक संख्या में बच्चे 18 वर्ष की आयु से कम के हो, परिवार जिनके मुखिया दैनिक मजदूरी कर भरण पोषण करते हों।

12.13 भारत में निर्धनता का आंकलन (Mesaurement of Poverty in India)

भारत में योजना आयोग समय समय पर निर्धनता का आंकलन गठित कार्यकारी समूहों/टास्क फोर्स/विशेषज्ञ समूहों की संस्तुतियों के आधार पर करता रहा है जिन्होंने नयी परिभाषा बनायी और गढ़ी है। विभिन्न काल खण्डों में यह आकलंन निम्नवत रहा है—

1) **1960 का दशक**— भारतीय योजना आयोग ने 1962 में प्रो0 डी0 आर गाडगिल की अध्यक्षता में निर्धनता के निर्धारण हेतु एक कार्यदल का गठन किया।इस कार्यदल ने 1960-61 के मूल्य स्तर के आधार पर 20 रू0 प्रतिमाह को न्यूनतम उपभोग मूल्य मात्रा अर्थात् जिस व्यक्ति की सामर्थ्य 20 रू0 प्रतिमाह व्यय करने की नहीं है उन्हें निर्धन कहा गया तथा उन्हें गरीबी की रेखा के नीचे माना जाता है।

2) **1970 का दशक** —1971 में रथ दाण्डेकर सूत्र के अनुसार आय—व्यय के स्थान पर भोजन में कैलोरी मात्रा निर्धनता निर्धारण का आधार बन गयी। शहरी क्षेत्र में 2095 और ग्रामीण क्षेत्रों मे 2435 कैलोरी (न्यूनतम पोषाहार) से कम भोजन ऊर्जा पाने वालो को गरीबी रेखा से नीचे माना गया। 1977 में न्यूनतम आवश्यकताओं पर प्रभावी उपभोग मांग के प्रक्षेपणों पर डॉ0 वाई के अलघ की अध्यक्षता में कार्यबल का गठन हुआ।

3) **1980 का दशक**— 1989 में योजना आयोग ने डी0टी0 लकड़वाला की अध्यक्षता में गठित कार्य दल को निर्धनता का आकलन करने का दायित्व सौंपा। लकड़वाला फामूर्ले के नाम से विख्यात इस सूत्र में शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में क्रमशः उद्योग और कृषि को आधार मान विभिन्न राज्यों के लिये अलग—अलग 35 गरीबी रेखाये निर्धारित की।

4) **1990 का दशक**— 1990 के दशक में पुनः कैलोरी को ही आधार मानकर गरीबी रेखा निर्धारित की गई।

5) **2000 का दशक**— राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण कार्यालय (National Sample Survey Organisation i.e N.S.S.O.) ने 2004-05 में निर्धनता के आंकडों को निर्धारित करने के लिये दो विधियों का प्रयोग किया एक समान याददाश्त विधि —Unifrom Recall Methood और दूसरी मिश्रित याददाश्त विधि (Mixed Recall Methood) अंततः एक समान याददाश्त विधि (URM) विधि से प्राप्त ग्रामीण क्षेत्रों में 28.3 और शहरी क्षेत्रों का 25.7 को आधार माना गया और इससे नीचे के लोग गरीबी की रेखा से नीचे माने गये।

2008 में निर्धनता रेखा के निर्धारण के लिये सुरेश तेन्दुलकर की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया जिसने ग्रामीण क्षेत्रों में 446.68 रुपये तथा शहरी क्षेत्रों में 578.80 रुपये प्रति व्यक्ति प्रतिमाह को आधार मानकर इससे कम व्यय

करने वालों को गरीबी रेखा से नीचे मान लिया गया, इसके पश्चात डॉ0 सी0 रंगराजन की अध्यक्षता में नियुक्त समिति ने इस आकड़ों को संशोधित किया।

हाल ही में इसमें कुछ संशोधनों के साथ गरीब लोगों की अन्य बुनियादी आवश्यकताओं पर विचार किया गया, जिसमें आवास, वस्त्र, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, वाहन, ईंधन, मनोरंजन, आदि शामिल था, ताकि प्रकार गरीबी रेखा की परिभाषा को और अधिक यतार्थवादी बनाया जा सके। यह कार्य यूपीए सरकार के कार्यालय के दौरान सुरेश तेंदुलकर ने 2009 और सी रंगराजन ने 2014 में किया ।

तेंदुलकर समिति ने नए मानक तय किये जिसके अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में 27 रूपये और शहरी क्षेत्रों में 33 रूपये प्रतिदिन खर्च करने वालों को गरीबी रेखा से ऊपर रखा गया, और इस मानक के अनुसार गरीबी रेखा वाली आबादी में 22 फीसदी की गिरावट दर्ज की गई। यह काफी विवादास्पद रहा, क्योंकि संख्याओं को वास्तविकता से परे माना गया। बाद में रंगराजन समिति ने इस सीमा को बढ़ा दिया जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों में 32 रूपये और शहरी क्षेत्रों में 47 रूपये प्रतिदिन खर्च करने वालों को गरीबी रेखा से बाहर रखा गया और गरीबी रेखा में 30 फीसदी गिरावट की बात कहीं गई।

तालिका 12.2 भारत में निर्धनता अनुपात व निर्धनों की संख्या तालिका

भारत में निर्धनता अनुपात व निर्धनों की संख्या						
वर्ष	निर्धनता अनुपात (प्रतिशत में)			निर्धनों की संख्या (करोड़ में)		
	ग्रामीण क्षेत्र	शहरी क्षेत्र	अखिल भारत	ग्रामीण क्षेत्र	शहरी क्षेत्र	अखिल भारत
1993-94	50.1	31.8	45.3	32.86	7.45	40.37
2004-05	41.8	25.7	37.2	32.63	8.08	40.71
2009-10	33.8	20.9	29.8	27.82	7.64	35.47
2011-12 (तेंदुलकर समिति)	25.7	13.7	21.9	21.65	5.28	26.93
2011-12 (रंगराजन समिति)	30.9	26.4	29.5	20.05	10.25	36.30

12.14 भारत में निर्धनता के कारण (Reasons of Poverty in India)

कहा जाता है कि गरीबी का दुष्चक्र होता है जो गरीबी से ही प्रारम्भ होता है और गरीबी पर ही समाप्त होता है। हम गरीब हैं क्योंकि हम गरीब थे और हम गरीब रहेंगे क्योकि हम गरीब हैं। गरीबी अपने आप में ही गरीबी का कारण और परिणाम दोनों हैं। भारत में निर्धनता है और यह निर्धनता अकारण नहीं है उसके सुनिश्चित कारण हैं। ऐतिहासिक भारत में निर्धनता के कारण सामाजिक राजनीतिक ऐतिहासिक और आर्थिक सभी प्रकार के हैं :–

12.14.1 ऐतिहासिक कारण (Historial Reasons): भारत लम्बे समय तक विदेशी शासकों के शासन में रहा जिनकी रूचि भारत का शोषण करने की रही विकास कभी उनका उद्‌देश्य नहीं रहा इसलिये भारत की जनता गरीब रह गयी। जो भारत कभी सोने की चिड़िया कहलाता था। विदेशी आक्रांताओ ने सब पंख

नोंच लिये और देश के सारे संसाधनो को लूट लिया। देश का सारा सोना बाहर चला गया और गरीब हो गए।

12.14.2 राजनीतिक कारण (Political Reasons) : स्वतन्त्रता के पश्चात देश के राजनेताओं ने भारत के सर्वांगीण विकास के प्रयास सच्चे मन से नहीं किये। लोगों का वोटर के रूप में प्रयोग किया और सत्ता में आने पर वास्तविक दायित्व भूल गये। राजनैतिक इच्छा शक्ति के अभाव के कारण देश की आर्थिक स्थिति कमजोर रह गयी लगभग इसी काल अवधि में हमारे पड़ोसी राष्ट्र चीन ने हमसे कही अधिक प्रगति कर ली।

राजनीतिज्ञों ने पौंजी योजनाओं के माध्यम से देश की जनता को सब्जवाग दिखा कर लूटा और देशलगातार पिछड़ता गया। राजनीतिक उठा पटक टांग खिचाई और नकारात्मक दृष्टिकोण के कारण देश में आर्थिक सम्पन्नता की गंगा नहीं बह सकी और देश गरीब रह गया।

12.14.3 सामाजिक कारण (Social Reasons) : परम्पराएँ, कुप्रथाएँ, रूढ़ियों से चिपके रहने का भाव, आराम पसंदगी, सामाजिक विषमता, भेदभाव, पूर्वाग्रह, प्रान्तीयता, जातिवाद आदि सामाजिक कारक भी लोगों की गरीबी के कारण होते हैं जो न सिर्फ रोजगार के अवसरों को वरन कुल आय को भी प्रभावित करते हैं। भारत में प्रादेशिकता पर आधारित असंतुलन विभिन्न राज्यों की आय के अंतर को इंगित करते हैं। बीमारू (BIMARU) राज्य अर्थात बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश के साथ उड़ीसा की अपेक्षा, पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र एवं गुजरात कहीं अधिक विकसित हैं। गरीबी का सबसे बड़ा कारण अति जनसंख्या है। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं0 नेहरू ने कहा था कि जनसंख्या हमारी अर्थ-सामाजिक समस्याओं की जननी है। एक अर्थशास्त्री ने कहा था हम जो दिन में बुनते हैं रात को उधड़ जाता है और ताना बाना और भी उलझ जाता है। भारत की सामाजिक प्रथायें दहेज प्रथा, धार्मिक उन्माद, अंध विश्वास तथा अशिक्षा गरीबी का बड़ा कारण है।

12.14.4 आर्थिक कारण (Economic Reasons) : निर्धनता एक आर्थिक समस्या है और इसके कारण भी आर्थिक संरचना से ही उद्भूत हैं। प्रमुख आर्थिक कारण निम्नवत हैं :–

1. जनसंख्या वृद्धि की बढ़ी हुयी दर
2. आवश्यक वस्तुओं के मूल्य स्तर में वृद्धि
3. बेरोजगारी
4. पूंजी निर्माण की नीची दर
5. कृषि पर निर्भरता
6. तकनीक और कौशल कर अभाव
7. ऋण ग्रस्तता
8. प्रशिक्षण संस्थानों की कमी

9. सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों कर अभाव

10. अधोसंरचना (इन्फ्रास्ट्रक्चर) का अभाव

11. उद्योगों का अभाव

12.15 निर्धनता के प्रकार (Types of Poverty)

1) क्षेत्र के आधार पर– शहरी निर्धनता एवं ग्रामीण निर्धनता

2) तुलना के आधार पर– निरपेक्ष निर्धनता एवं सापेक्ष निर्धनता

3) भाव के आधार पर– आर्थिक निर्धनता एवं मानसिक निर्धनता

12.15.1 क्षेत्र के आधार पर

i) शहरी निर्धनता– कैलोरी के आधार पर शहर में 2100 कैलोरी पोषण प्राप्त न करने वाला व्यक्ति निर्धन कहलाता है जबकि आय के आधार रूपये से कम आय पाने वाले को निर्धन कहा जाता है।

ii) ग्रामीण निर्धनता– ग्रामीण क्षेत्रों में 2400 कैलोरी से कम पोषण पाने वाला तथा रू0 प्रतिदिन से कम आय प्राप्त करने वाला व्यक्ति निर्धन होता है।

12.15.2 तुलना के आधार पर

i) **निरपेक्ष निर्धनता**– निर्धारित कैलोरी या दैनिक आय प्राप्त न करने वाला व्यक्ति निर्धन है यह निर्धनता की निरपेक्ष माप और व्याख्या है।

ii) **सापेक्ष निर्धनता**– सापेक्ष निर्धनता तुलनात्मक होती है कम आय वाला कोई भी व्यक्ति अपने से अधिक आय पाने वाले की तुलना में निर्धन होता है।

12.15.3 भाव के आधार पर

i) **आर्थिक निर्धनता**– एक निश्चित सीमा से कम आय या सम्पत्ति रखने वाला व्यक्ति निर्धन कहलाता है अर्थात ऐसी निर्धनता कर आधार आर्थिक होता है। धन हीन व्यक्ति ही निर्धन होता है।

ii) **मानसिक निर्धनता**– मानसिक निर्धनता का आय व संपत्ति से कोई मतलब नहीं होता। धनी से धनी व्यक्ति भी मन से निर्धन हो सकता है। विचारों की दरिद्रता, दूसरों की सहायता न करने का भाव, मनोबल की कमी, उत्साह का अभाव अवसाद की स्थिति मानसिक दरिद्रता के ही उदाहरण है। स्वयं को ही न और अशक्त समझने वाला व्यक्ति मानसिक रूप से दरिद्र माने जाते है।

12.16 गरीबी के दुष्परिणाम अथवा दुष्प्रभाव (Consequences of Poverty)

धन में समस्याओं का समाधान करने की शक्ति है जबकि निर्धनता के कारण निम्नलिखित समस्यायें उत्पन्न हो जाती है–

1. कुपोषण एवं असंतुलित आहार

2. बाल श्रम

3. बेरोजगारी

4. निरक्षरता एवं अशिक्षा

5. स्वच्छता का अभाव

6. स्वास्थ्य की समस्यायें

7. समाजिक विषमता

8. आवासीय समस्या

9. अपराधों को बढ़ावा

10. तनाव को बढ़ावा

11. हस्तान्तरण शीलता तथा स्थानान्तरण शीलता का अभाव

गरीब आदमी, नैतिक दृष्टि से कमजोर हो जाता है। पेट की भूख, बच्चों की लाचारी, माँ बीबी और वहिनों की बेबसी माँ पिता के चेहरे की चिन्ता भरी रेखायें मनुष्य की अनैतिक राह पर चलने के लिये विवश कर देती हैं। कहा गया है भूखा बेचारा पाप करने के लिये मजबूर हो जाता है– बुभुक्षतः किम् न करोति पापम् – गरीबी का दृष्चक्र व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को गरीबी के दल दल से बाहर नहीं आने देता। गरीबी का साम्राज्य बढ़ता जाता है। निराशा और हताशा का वातावरण बन जाता है। शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, सड़क, बिजली, संतुलित आहार एवं अन्य बुनियादी जरूरतें पूरा न होने के कारण समाज की स्थिति दयनीय हो जाती है। मानव विकास की दृष्टि से पिछड़ा होने के कारण मानव संसाधन विकास भी पिछड़ा ही रहता है। प्रति व्यक्ति आय, प्रति व्यक्ति उपभोग, प्रति व्यक्ति बचत, प्रतिव्यक्ति विनियोग सभी नीचे के स्तर के ही रह जाते है।

12.17 निर्धनता उन्मूलन की आवश्यकता (Need of Poverty Alieviation)

निर्धनता व्यक्ति और समाज के माथे पर कलंक है का टीका है। आर्थिक पिछडेपन के कारण सामाजिक और सांस्कृतिक पिछडापन आ जाता है क्योंकि निर्धनता के कारण व्यक्ति अशिक्षित रह जाता है, अज्ञानी रह जाता है और उसकी मानसिक विकास भी अवरूद्ध हो जाता है। अतः गरीबी के कलंक को मिटाना अति आवश्यकता है। अर्थशास्त्रीय मान्यता यह भी है कि कहीं भी विद्यमान निर्धनता सम्पन्नता को सर्वत्र और सर्वदा तथा सर्वथा गंभीर खतरा है। निर्धनता जानित आर्थिक विषमता लम्बे समय तक चले तो वर्ग विद्वेष और अंततः वर्ग संघर्ष का कारण बन जाती है समाज की सम्पन्नता, शांति और कल्याण की दृष्टि से यह आवश्यक है कि कोई भी कही भी और कभी भी निर्धन न रहे।

12.18 निर्धनता उन्मूलन के उपाय (Remedial Measures of Poverty Alieviation)

निर्धनता उन्मूलन हेतु निम्न उपाय किये जाने चाहिये

1. शिक्षा प्रसार हो और व्यक्ति साक्षर ही नहीं शिक्षित बने उसमें ज्ञान का संवर्द्धन हो

2. तकनीकी प्रशिक्षण द्वारा व्यक्ति को काम करने की योग्यता प्रदान की जाय

3. सामाजिक सुरक्षा का आधार सुदृढ़ हो लोगो को शिक्षा, चिकित्सा, बेरोजगारी भत्ता, पेंशन आदि उपलब्ध रहे।

4. अद्यो संरचरना (अव संरचना इन्फ्रास्ट्रक्चर) का निर्माण हो जिससे व्यक्ति को सुखद जीवन जीने का आधार मिल सके।

5. रोजगार के अवसर सुलभ किये जायें

6. काम करने के सम्मान अवसर उपलब्ध हो

7. कृषि को समुन्नत किया जाय ताकि कृषकों की आय में बुद्धि हो। कृषि क्षेत्र में नवीन तकनीक के प्रयोग से यह संभव है।

8. ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि पर आधारित छोटे बड़े उद्योग स्थापित किये जाने चाहिये।

9. ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि के साथ वैकल्पिक आय के साधन जैसे पशुपालन आदि के माध्यम से ग्रामीणों की आय में वृद्धि की जानी चाहिये।

10. मजबूरी की न्यूनतम दर निर्धारित कर उसका कठोरता से पालन हो ताकि भूमि हीन श्रमिक, सीमांत कृषक और अन्य कामगरों की आय में वृद्धि हो सके।

11. गरीब लोगों विशेषतः निर्धनता रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों को जीवनोपयोगी आवश्यक वस्तुयें–आटा दाल चावल, शिक्षा चिकित्सा, पहनने के कपड़े विशेष सस्तीदरों पर उपलब्ध कराना चाहियें।

12. जन संख्या वृद्धि को रोकने के प्रयास किये जाने चाहिये। किसी अर्थशास्त्री ने कहा है कि यदि भारत की जनसंख्या वर्तमान जनसंख्या से आधी होती तो भारत विश्व का सबसे धनी राष्ट्र होता।

भारत के संबंध में एक उक्ति बड़ी प्रचलित है कि भारत एक धनी राष्ट्र है पर उसके निवासी निर्धन है। इस कथन का आशय यही है कि भारत के पास प्राकृतिक संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। सदानीरा नदियाँ बहुमूल्य खनिज संपदा, खुशनुमा मौसम, फल फूल, वन संपदा पर्याप्त मात्रा मे है पर संसाधनों के भरपूर विदोहन के अभाव में राष्ट्र की अर्थ व्यवस्था कमजोर रह जाती है। यदि सही नीति, रणनीति, आर्थिक प्रयास, औद्योगिक विकास और उचित शिक्षण प्रशिक्षण द्वारा देश का अर्थ सामाजिक विकास हो सके तो भारत पुनः अपने गौरव को प्राप्त कर सोने की चिड़िया बन सकता है।

चार्ट **12.1**

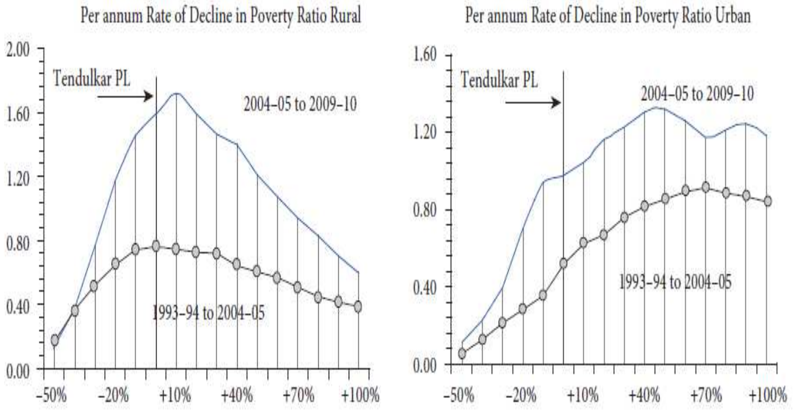

चार्ट 2.4: गरीबी रेखा के वैकल्पिक उपायों के लिए वर्ष 1993–94, 2004–05 और 2009–10 के बीच गरीबी अनुपात के प्रतिशत बिन्दुओं में वार्षिक कमी

चार्ट **12.2**

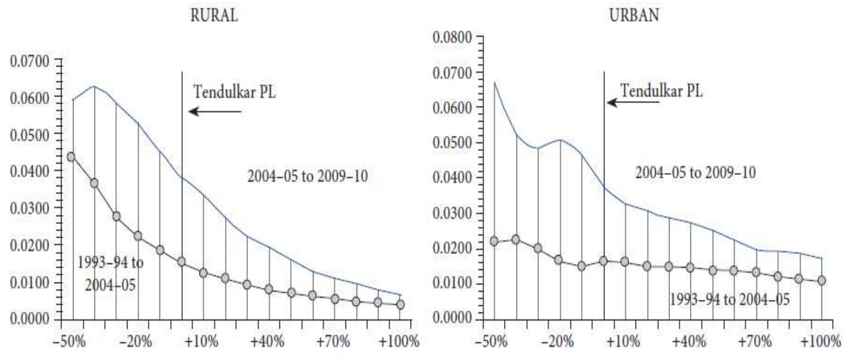

चार्ट 2.5: उस व्यय वर्ग में प्रारम्भिक अनुपात के भाग के रूप में गिरावट की वार्षिक दर

12.19 देश में कार्यान्वित गरीबी उन्मूलन तथा रोजगार सृजन के मुख्य कार्यक्रम (Programs Run for Poverty Alleviation and Employment Generation at National Level)

निर्धनता आय के साधनों के अभाव का नाम है। सरकार ने समय पर गरीबी निकरण के लिये विशेष प्रयास किये है। ग्रामीण क्षेत्रों की बेरोजगारी दूर कर उन्हें आय के साधन सुलभ कराने वाले प्रमुख प्रयास निम्नवत है:

1. राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा योजना 2013
2. सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (SRGY)
3. स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना (SRGY)
4. राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन
5. राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन
6. राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम (NSAP)
7. कृषि श्रमिक सामाजिक सुरक्षा योजना (KSSSY)
8. प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना (PMGY)

9. इन्दिरा आवास योजना (IAY)
10. महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी स्कीम (MNREGA)
11. स्वर्ण जयन्ती शहरी योजना (SJSRY)
12. प्रधानमंत्री की रोजगार योजना (PMRY)
13. ग्रामीण आवास योजना (RHS)
14. प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (PMGSY)
15. सूखा राहत क्षेत्र कार्यक्रम (DPAP)
16. मरू विकास कार्यक्रम (DDP)
17. अंत्योदय अन्न योजना (AAY)
18. वाल्मीकि अम्बेडकर आवास योजना (VAMBAY)

12.20 वर्तमान सरकार के विशेष कार्यक्रम (Special Programs run by the Presesnt Government)

वर्तमान सरकार द्वारा विशेष कार्यक्रमों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत है :—

12.20.1 शहरी और ग्रामीण गरीबों के लिए दीनदयाल उपाध्याय योजना

केंद्र सरकार ने शहरी और ग्रामीण गरीबों के लिए दीनदयाल उपाध्याय अंत्योदय योजना का आरंभ 25 सितंबर 2014 को किया। योजना का उद्देश्य कौशल विकास और अन्य उपायों के माध्यम से आजीविका के अवसरों में वृद्धि कर शहरी और ग्रामीण गरीबी को कम करना है। दीनदयाल उपाध्याय अंत्योदय योजना के दो घटक हैं— एक शहरी भारत के लिए और एक ग्रामीण भारत के लिए। शहरी घटक का कार्यान्वयन केंद्रीय आवास एवं शहरी गरीबी उन्मूलन मंत्रालय करेगा, जबकि ग्रामीण घटक, जिसका नाम दीन दयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना है, का कार्यान्वय केंद्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा किया जाएगा।

12.20.2 दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना

- योजना का उद्देश्य आगामी तीन वर्षों अर्थात वर्ष 2017 तक 10 लाख (एक मिलियन) ग्रामीण युवाओँ को प्रशिक्षित करना है।
- योजना के तहत शामिल होने के लिए न्यूनतम आयु 15 वर्ष है,जबकि आजीविका कौशल कार्यक्रम में शामिल होने के लिए न्यूनतम आयु 18 वर्ष थी।
- ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या का समाधान करने के लिए कौशल विकास प्रशिक्षण केंद्रों की स्थापना की जाएगी।
- योजना के तहत प्रदान किए जाने वाले कौशल अब अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरुप होंगे और मेक इन इंडिया अभियान का पूरक बनेंगे।
- कौशल योजना में विक्लांगों के प्रशिक्षण की जरूरतों का भी ख्याल रखा जाएगा और ग्रामीण युवाओं में कौशल विकास के लिए अंतरराष्ट्रीय कंपनियों सहित निजी क्षेत्र की कंपनियों को भी शामिल किया जाएगा।

12.20.3 दीनदयाल उपाध्याय अंत्योदय योजना

शहरी क्षेत्रों के लिए दीनदयाल उपाध्याय अंत्योदय योजना के अंतर्गत सभी 4041 शहरों और कस्बों को कवर कर पूरे शहरी आबादी को लगभग कवर किया

जाएगा। वर्तमान में सभी शहरी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के तहत सिर्फ 790 शहर और कस्बे ही आते हैं। प्रत्येक शहरी गरीब पर 15000 रुपयों से लेकर 18000 रुपये खर्च कर उन्हें कुशल बनाया जाएगा।

- सूक्ष्म उद्यमों (माइक्रो– इंटरप्राइजेज) और समूह उद्यमों (ग्रुप इंटरप्राइजेज) की स्थापना के जरिए स्व– रोजगार को बढ़ावा दिया जाएगा। इसमें व्यक्तिगत परियोजनाओं के लिए 2 लाख रुपयों की ब्याज सब्सिडी आरै समूह उद्यमों पर 10 लाख रुपयों की ब्याज सब्सिडी प्रदान की जाएगी। सब्सिडी वाले ब्याज की दर 7 फीसदी होगी।
- शहर आजीविका केंद्रों के जरिए शहरी नागरिकों द्वारा शहरी गरीबों को बाजारोन्मुख कौशल में प्रशिक्षित करने की बड़ी मांग को पूरा किया जाएगा। प्रत्येक केंद्र को 10 लाख रुपयों का पूंजी अनुदान दिया जाएगा।
- प्रत्येक शहरी गरीब पर 15,000 से 18,000 रूपये खर्च कर कौशल सिखाना।
- शहरी गरीबों को स्वयं– सहायता समूहों से वित्तीय और सामाजिक जरूरतों को पूरा करने में सक्षम बनाने के लिए प्रत्येक समूह को दस हजार रुपए का सहयोग दिया जाएगा जो बदले में बैंक लिंकेज के साथ मदद करेगा
- शहरी गरीबों को वित्तीय एवं सामाजिक आवश्यकताएं पूरी करने के लिए स्वयं–सहायता समूह बनाने के लिए तैयार करना और प्रत्येक समूह को 10–10 हजार रूपये की सहायता देना ताकि बदले में प्रत्येक समूह को बैंकों से मदद मिल सके। आपूर्तिकर्ताओं के कौशल का विकास करने के अलावा उनके बाजारों का विकास करना तथा शहरी बेघरों के लिए स्थायी आश्रयगृहों का निर्माण एवं अन्य आवश्यक सेवाओं की व्यवस्था
- विक्रेताओं के कौशल को बढ़ावा देने के लिए विक्रेता बाजार का विकास किया जाएगा।
- शहरी बेघरों के लिए स्थायी आवासों का निर्माण और अन्य जरूरी सेवाओं का प्रावधान।

12.20.4 पंडित दीनदयाल उपाध्याय श्रमेव जयते कार्यक्रम

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने राष्ट्र निर्माण के लिए श्रम की महत्ता को ध्यान में रखते हुए 16 अक्टूबर 2014 को दक्षता विकास व श्रम सुधारों से संबंधित पंडित दीनदयाल उपाध्याहय श्रमेव जयते कार्यक्रम का शुभारंभ किया । इसका उद्देश्य श्रमिकों के प्रति नजरिया बदल बदलना है। कार्यक्रम में श्रम क्षेत्र से संबंधित पांच प्रमुख योजनाओं का शुभारम्भ किया गया :

- समर्पित श्रम सुविधा पोर्टल
- आक्समिक निरीक्षण की नयी योजना
- यूनिवर्सल खाता संख्या
- प्रशिक्षु प्रोत्साहन योजना
- पुनर्गठित राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना

12.20.5 महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियम

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियम मनरेगा (MGNREGA) नाम से सुविख्यात यह योजना ग्रामीण क्षेत्र में हर परिवार को कम से कम आय की सुनिश्चित वेतन सहित) प्रदान कर लोगों को आय की सुनिश्चित गारण्टी प्रदान करती है 2014 में किये गये संशोधन के अनुसार इस योजना के अंतर्गत किये गये कार्यो का कम से कम 60 प्रतिशत कार्य कृषि से जुड़ी उत्पादक क्रियाओं में होगा। इससे सिंचाई संसाधनो का सृजन होगा और जल संरक्षण और मिट्टी की उर्वरता में सुधार होगा जिससे किसान समृद्ध होगा।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि चाहे भारतीय अर्थव्यवस्था ने बहुत से क्षेत्रों में सराहनीय प्रगति की है परन्तु गरीबी दूर करने, कुपोषण को नियंत्रित करने और समग्र जनसंख्या को आवास तथा सुरक्षित पेय जल उपलब्ध कराने में अभी मीलों का सफर तय करना है।

12.21 सारांश

राष्ट्रीय आय किसी राष्ट्र की आर्थिक स्थिति का परिचायक होती है। अर्थशास्त्रीय अध्ययन और विवेचन में राष्ट्रीय आय का विशेष महत्व है। राष्ट्रीय आय सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product i.e. GDP) शुद्ध घरेलू उत्पाद (Net Domestic Product i.e NDP) सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product GNP) तथा शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (Net National Product i.e. NNP) आदि रूपों में परिलक्षित होती है। राष्ट्रीय आय के आधार पर प्रति व्यक्ति आय की गणना की जाती है।

राष्ट्रीय आय की गणना बाजार मूल्य पर साधन मूल्य पर, स्थिर मूल्य पर तथा वर्तमान मूल्य पर की जाती है। आय का सर्वथा अभाव अथवा कम आय निर्धनता कहलाती है। निर्धनता सामाजिक दृष्टि से घोर अपराध है क्योंकि निर्धन व्यक्ति पाप की ओर प्रवृत्त हो सकता है। अतः सरकार का दायित्व है कि समाज में धन के उत्पादन को बढ़ावा दें तथा उस धन के वितरण में समता का लक्ष्य रखें। वितरणात्मक न्याय के अभाव में समाज धनी और निर्धन दो वर्गों में विभाजित हो जाता है जिससे अंततः वर्ग संघर्ष को बढ़ावा मिलता है।

सरकार को सभी संभव प्रयासों से निर्धनता उन्मूलन के लक्ष्य को प्राप्त करना चाहिये तथा जब तक निर्धनता उन्मूलन संभव नहीं होता गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों को सभी संभव सहायता/अनुदान देकर मदद करना चाहिये। निर्धनता विहीन समाज आदर्श समाज होता है क्योंकि इस समाज में आवश्यक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये तरसते लोगों की भीड़ नहीं होती।

12.22 शब्दावली

अर्थव्यवस्था– सामान्यतः आर्थिक क्रियाओं या गतिविधियों को अर्थव्यवस्था कहा जाता है। आर्थिक क्रियाओं के आधार पर ही व्यवस्थाओं को विभाजित किया जाता है जैसे– उत्पादन सार्वजनिक क्षेत्र के तवाधान में हो रहा है या निजी क्षेत्र के तत्वाधान में।

दोहरी अर्थव्यवस्था– अर्थव्यवस्था का वह स्वरूप जहां ूपजी गहन तकनीक का प्रयोग कुछ क्षेत्रों में होता है और साथ ही उन्हीं क्षेत्रों या अन्य क्षेत्रों में परम्परागत एवं श्रम गहन तकनीक भी प्रयुक्त होती है को दोहरी अर्थव्यवस्था कहा जाता है।

आधार वर्ष– वह वर्ष जिसमें न तो कीमतें बहुत बढ़ी हो और न ही तेजी से घटी हो, जिस वर्ष किसी प्रकार की प्राकृतिक आपदा न आयी हो और उत्पादन सामान्य स्तर पर हो रहा हो, ऐसे वर्ष को आधार वर्ष के रूप में राष्ट्र आय मापने के लिए प्रयोग करते हैं।

राष्ट्रीय आय– केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन के अनुसार देश के नागरिकों द्वारा वेतन, किराया ब्याज तथा लाभ के रूप में अर्जित आय को राष्ट्रीय आय कहते हैं। राष्ट्रीय आय किसी राष्ट्र से एक निश्चित काल में उत्पन्न सम्पन्न वस्तुओं तथा सेवाओं का शुद्ध मौद्रिक मूल्य है। संक्षेप में साधन लगात पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद को ही राष्ट्रीय आय कहा जाता है।

मध्यवर्ती एवं अंतिम वस्तुए –: ये वस्तुएं या सेवाएं जो प्रत्यक्षतः उपभोक्ताओं को उपलब्ध न होकर उत्पादन में सहयोग करती है मध्यवर्ती और अंतिम वस्तुएं कहलाती हैं। जबकि अंतिम वस्तुओं एवं सेवाएं के अंतर्गव वे वस्तुए एवं सेवाएं सम्मिलित होती हैं जिनका प्योग उपभोक्ता प्रत्यक्ष रू॰ से करता है और जिन्हें पुनः उत्पादन कार्य में प्रयोग नहीं लाया जाता।

नोटः अंतिम वस्तुओं को राष्ट्रीय आय में शामिल किया जाता है जबकि मध्यवर्ती वस्तुओं को नहीं।

सकल घरेलू उत्पाद– किसी राष्ट्र में एक वित्तीय वर्ष में उत्पादित वस्तुओं व सेवाओं के कुल मौद्रिक मूल्य का योग सकल घरेलू उत्पाद (GDP) कहलाता है।

शुद्ध घरेलू उत्पाद– किसी राष्ट्र के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में से मूल्य ह्रास घटाने के पश्चात बचे शेष को शुद्ध घरेलू उत्पाद Net Domestic Product (NDP) कहते हैं।

शुद्ध घरेलू उत्पाद = सकल घरेलू उत्पाद –मूल्य ह्रास

सकल राष्ट्रीय उत्पाद– किसी राष्ट्र में एक वित्तीय वर्ष में देश में रहने वाले निवासियों द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का कुल मौद्रिक योग सकल राष्ट्रीय उत्पाद Gross National Product (GNP) कहलाता है। सूत्र रूप में यह कहा जा सकता है-

सकल राष्ट्रीय उत्पाद

= सकल घरेलू उत्पाद + देश वासियों द्वारा विदेशों में अर्जित आय - विदेशियों द्वारा देश में अर्जित आय

शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद– किसी राष्ट्र मैं एक वित्तीय वर्ष के सकल राष्ट्रीय उत्पाद में से मूल्य ह्रास को घटाने के पश्चात बचे शेष को शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद Net National Product (NNP) कहा जाता है। सूत्र रूप में यह कहा जा सकता है-

शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद = सकल राष्ट्रीय उत्पाद– मूल्य ह्रास

राष्ट्रीय आय– साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद को राष्ट्रीय आय National Income (N.I.) कहते हैं। प्रचलित कीमतों पर शुद्ध राष्ट्रीय में से अप्रत्यक्ष कर को घटा दिया जाये और उपादान को जोड दिया जाये तो राष्ट्रीय आय प्राप्त होती है।

राष्ट्रीय आय = प्रचिलित कीमतों पर शुद्ध राष्ट्रीय आय– अप्रत्यक्ष कर+उपादान

वास्तविक राष्ट्रीय आय– किसी भी देश की मुद्रा की क्रय शक्ति में निरंतर परिवर्तन होता रहता है इसलिऐ वास्तविक राष्ट्रीय आय की जानकारी के लिए किसी आधार वर्ष के सापेक्ष शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद की गणना की जाती है इसे वास्तविक राष्ट्रीय आय (Real National Income) कहा जाता है।

प्रति व्यक्ति आय– जब कुल राष्ट्रीय आय में से कुछ जनसंख्या को भाग देते हैं तो प्रति व्यक्ति आय (Per Capita Income) प्राप्त होती है, इसमें व्यक्तियो के जीवन स्तर और नागरिकों के जीवन की गुणवत्ता का परिचय मिलता है। प्रति व्यक्ति आय दो तरह से प्राप्त की जा सकती हैः–

i) प्रचलित कीमतों पर प्रति व्यक्ति आय =प्रचलित कीमतों पर राष्ट्रीय आय/वर्तमान जनसंख्या

ii) स्थिर कीमतों पर प्रति व्यक्ति आय =स्थिर कीमतों पर राष्ट्रीय आय/वर्तमान जनसंख्या

वैयक्तिक आय– एक वर्ष में राष्ट्र के निवासियों को प्राप्त होने वाली वास्तविक आय वैयक्तिक आय (Personal Income) कही जाती है।

वैयक्तिक आय = राष्ट्रीय आय + अंतरण भुगतान–निगम कर अवतरित लाभ–सामाजिक सुरक्षा अनुदान

व्यय योग आय – प्रत्येक व्यक्ति एक वर्ष में प्राप्त आय को पूर्णतः व्यय नहीं कर पाता बल्कि सरकार द्वारा प्रत्यक्ष कर के रूप में कुछ राशि ले ली जाती है शेष बची राशि को व्यय योग्य आय (Disposable Income) कहते हैं। व्यय योग्य आय = वैयक्तिक आय–प्रत्यक्ष कर

राष्ट्रीय आय की गणना की आय विधि - एक समयावधि में किसी अर्थव्यवस्था में अंतिम कारक अदायगी (आय) के समस्त मूल्य की माप करके राष्ट्रीय आय की गणना की विधि।

निर्धनता– विश्व बैंक के अनुसार विकाशील राष्ट्रों में प्रतिदिन 1.25 डॉलर से कम तथा विकसित राष्ट्रों में 2 डॉलर प्रतिदिन से कम कमाने वाले व्यक्ति को निर्धन कहा जाता है।

निर्धनता रेखा– योजना आयोग के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति 2,400 कैलोरी और शहरी क्षेत्रों में 2,100 कैलोरी प्रतिदिन प्राप्त न कर पाने वाले व्यक्ति गरीबी रेखा से नीचे आते जाते हैं।

12.23 बोध प्रश्न

I) वैकल्पिक प्रश्न

1) राष्ट्रीय आय की गणना में निम्न में से कौनसा फ़ॉर्मूला सही है :–

v) प्रचलित कीमतों पर शुद्ध राष्ट्रीय आय– अप्रत्यक्ष कर+उपादान

vi) सकल घरेलू उत्पाद –मूल्य ह्रास

vii) सकल राष्ट्रीय उत्पाद– मूल्य ह्रास

viii) उक्त में से कोई नही

2) निम्न में से कौनसा कथन सही नहीं है :–

i) किसी राष्ट्र में एक वित्तीय वर्ष में उत्पादित वस्तुओं व सेवाओं के कुल मौद्रिक मूल्य का योग सकल घरेलू उत्पाद (GDP) कहलाता है।

ii) किसी राष्ट्र में एक वित्तीय वर्ष में देश में रहने वाले निवासियों तथा विदेशियों द्वारा द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का कुल मौद्रिक योग सकल राष्ट्रीय उत्पाद कहलाता है ।

iii) भारत के केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन के अनुसार देश के नागरिकों द्वारा वेतन, किराया, ब्याज तथा लाभ के रूप में अर्जित आय को राष्ट्रीय आय कहते है।

iv) उक्त सभी

3) रंगराजन समिति द्वारा 2011.12 में सम्पूर्ण भारत में निर्धनता अनुपात कितना था

i) 19.5
ii) 24.5
iii) 29.5
iv) उक्त में से कोई नहीं

4) तुलना के आधार पर निर्धनता में कौनसा प्रकार आयेगा

i) शहरी निर्धनता एवं ग्रामीण निर्धनता
ii) निरपेक्ष निर्धनता एवं सापेक्ष निर्धनता
iii) आर्थिक निर्धनता एवं मानसिक निर्धनता
iv) उक्त में से कोई नहीं

5) केंद्र सरकार ने शहरी और ग्रामीण गरीबों के लिए दीनदयाल उपाध्याय अंत्योदय योजना का आरंभ किस तिथि को किया था

i) 25 सितंबर 2012
ii) 25 सितंबर 2013
iii) 25 सितंबर 2014
iv) उक्त में से कोई नहीं

II) निम्न लिखित मे ंसे कौन सा कथन सत्य है और कौन सा असत्यः

6). शुद्ध राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय भिन्न होती है । (सत्य/असत्य)

7). राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण कार्यालय (N.S.S.O.) ने निर्धनता के आंकडों को निर्धारित करने के लिये 2004-05 में अंततः मिश्रित याददाश्त विधि को आधार माना । (सत्य/असत्य)

8) बीमारू (BIMARU) राज्यों में आन्ध्र प्रदेश भी शामिल है । (सत्य/असत्य)

9). प्रो0 लकड़ावाला फार्मूले के तहत सभी राज्यों के लिये अलग–अलग निर्धनता रेखा अर्थात निर्धरता की 35 रेखाएं तय की गई। (सत्य/असत्य)

10). पंडित दीनदयाल उपाध्याय श्रमेव जयते कार्यक्रम के तहत समर्पित श्रम सुविधा पोर्टल लांच किया गया है । (सत्य/असत्य)

12.24 बोध प्रश्नों के उत्तर

वैकल्पिक प्रश्न

1) i 2) ii 3) iii 4) ii 5) iii

सत्य/असत्य

6) सत्य 7) असत्य 8) असत्य 9) सत्य 10) सत्य

12.25 स्वपरख प्रश्न

1. राष्ट्रीय आय से आपका क्या आशय है ? राष्ट्रीय आय की गणना की विधियों के बारे में विस्तार से बताइये ? राष्ट्रीय आय की गणना करते समय क्या सावधानियां बरतनी चाहिये ?
2. निम्न में से किन्ही दो में अंतर स्पष्ट करिये :
   i) शुद्ध राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय
   ii) बाजार कीमत तथा साधन कीमत
   iii) आर्थिक विकास दर तथा आर्थिक संवृद्धि दर
   iv) सापेक्ष तथा निरपेक्ष निर्धनता
3. भारत में निर्धनता को किस प्रकार परिभाषित किया गया है? इस परिभाषा के आधार पर निर्धनता के विस्तार का क्या अनुमान लगाया जाता है?
4. मान लीजिये कि आप कि आप एक सलाहकार हैं और एक निर्धन परिवार से सम्बद्ध व्यक्ति आपसे छोटी सी दुकान खोलने के सरकारी सहायता प्राप्त करने के लिए आपसे सहायता मांगने आया है। आप किस योजना के अंतर्गत उसको आवेदन करने के लिये कहेंगे और क्यों?
5. अपने शहर अथवा गाँव से निर्धनता उन्मूलन के कुछ सुझाव दीजिये।

12.26 सन्दर्भ पुस्तकें

1. राजस्व : डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय
2. लोकवित्त : डॉ0 एस0 के0 सिंह
3. राजस्व : डॉ0 आर0 एस0 कौशिक
4. राजस्व सिद्धान्त एवं व्यवहार : के0 एल0 माहेश्वरी
5. Delton, H : Principles of public Finance
6. Public Finance Theory and Practice : Mehta and Agrawal
7. Shirras, Findley : The Science of Public Finance
8. Hicks, Ursula : Public Finance
9. A.C. Pigou : A Study of Public Finance
10. Taylor P.E. : Economics of Public Finance
11. Raja J Chhelliah : Fiscal Policy in under developed Countries.

इकाई 13 मूल अवधारणाएँ (राजकोषीय कार्य, राजकोषीय नीति, सार्वजनिक क्षेत्र और समता की अवधारणा) (Basic Concepts: Fiscal Function, Fiscal Policy, Public Sector and Concept of Equity)

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 राजकोषीय कार्य
13.2.1 मुद्रा–स्फीति की अवस्था में आर्थिक स्थिरता
13.2.2 मंदी की अवस्था में आर्थिक स्थिरता
13.3 राजकोषीय नीति
13.3.1 राजकोषीय नीति का अर्थ, एवं परिभाषा
13.3.2 राजकोषीय नीति का आधुनिक दृश्य
13.3.3 राजकोषीय नीति के उद्धेश्य
13.3.4 राजकोषीय नीति के अंग
13.3.5 निर्मित स्थिरता प्राप्ति के उपकरण
13.3.6 मुख्य स्थिरकर्त्ता
13.3.7 निर्मित–स्थिरीकरण का प्रभाव
13.3.8 मुख्य करों की लोचपूर्णता
13.3.9 अल्प विकसित देशों में राजकोषीय नीति
13.3.10 अल्पविकसित देशों में राजकोषीय नीति की विधियाँ
13.3.11 राजकोषीय नीति की सीमाएँ
13.4 सार्वजनिक क्षेत्र
13.4.1 सार्वजनिक क्षेत्र के लक्ष्य
13.4.2 सार्वजनिक क्षेत्र के उद्धेश्य
13.4.3 सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का विस्तार
13.4.4 सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की भूमिका
13.4.5 सार्वजनिक क्षेत्र का निष्पादन
13.4.6 सार्वजनिक क्षेत्र के दोष
13.4.7 सार्वजनिक क्षेत्र को सुधारने के लिए सुझाव
13.5 समता की अवधारणा
13.5.1 समता क्या है?
13.5.2 समता के तीन सिद्धान्त
13.5.3 विकासशील देशों में समता को बढ़ावा
13.5.4 समता को बढ़ावा देने के लिए बाधाएँ और चुनौतियां
13.6 सारांश
13.7 शब्दावली
13.8 बोध प्रश्न
13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
13.10 स्वपरख प्रश्न
13.11 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्धेश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- राजकोषीय नीति का अर्थ एवं परिभाषा को समझ सकें।
- राजकोषीय नीति के कार्य, एवं उद्धेश्य को बता सकें।
- अल्प विकसित देशों में राजकोषीय नीति को जान सकें।
- सार्वजनिक क्षेत्र के लक्ष्य एवं उद्धेश्यों को जान सकें।
- सार्वजनिक क्षेत्र का निष्पादन एवं दोष को जान सकें।
- सार्वजनिक क्षेत्र को सुधारने के लिए सुझावों को जान सकें।
- समता क्या है तथा समता के सिद्धान्तों को समझा सकें।
- समता को बढ़ावा देने के लिए बाधाएं एवं चुनौतियों को जान सकें।

13.1 प्रस्तावना

आर्थिक स्थिरता को प्रभावशाली ढंग से कायम करने के लिए करारोपण और सार्वजनिक व्यय की एक समन्वय पूर्ण नीति अपनाई जाए तथा इसके बावजूद भी यह आवश्यक है कि इन राजकोषीय उपायों एवं आर्थिक नियंत्रण तथा उपयुक्त मौद्रिक नीति आदि अन्य उपायों के बीच भी समन्वय स्थापित किया जाए। इस इकाई में आप राजकोषीय नीति के कार्य, उद्धेश्य, लक्ष्य एवं उद्धेश्यों एवं सार्वजनिक क्षेत्र को सुधारने के लिए सुझावों का अध्ययन करेंगे

13.2 राजकोषीय कार्य (Fiscal Functions)

सभी अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ इस विचार से सहमत है कि मनुष्य के आर्थिक जीवन में सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक है, प्रत्येक प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में सरकारी हस्तक्षेप आर्थिक जीवन में होता है। परन्तु कुछ अर्थशास्त्रियों का विचार है कि राज्य का हस्तक्षेप सिर्फ आर्थिक क्रियाओं के नियमन और नियंत्रण तक ही सीमित होना चाहिए। परन्तु अपने आर्थिक विकास माडलों में प्रो. लुईस, नेल्सन, नर्क से तथा हैर्षभन आदि विद्वानों ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है कि अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास के लिए इन अर्थव्यवस्थाओं को निर्धनता के दुष्प्रभाव से निकालने के लिए एक बड़े धक्के के लिए विकास का न्यूनतम आवश्यक प्रभाव के प्रयत्न की आवश्कता है और इसके लिए अत्यधिक सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता है। प्रो. मैसग्रेव ने राज्यों में सरकार के वित्तीय कार्यो को निम्न तीन भागों में बांटा हैः

1. आंबटन कार्य (Allocation Function)
2. वितरण कार्य (Distribution Function)
3. स्थायित्व कार्य (Stablization Function)

1. आंबटन कार्य (Allocation Function) : बजट नीति का संबंध इस तथ्य से है कि समाज के कुल साधनों का विभाजन व निर्धारण निजी क्षेत्र व सार्वजनिक क्षेत्र में किस प्रकार से तथा कितनी मात्रा में आंबटित किया जाए।

प्रत्येक प्रकार की अर्थव्यवस्था बाजार की विभिन्न विशेषताओं के साथ कार्य करती है, जैसे : (i) पूर्ण प्रतियोगिता (ii) बढ़ती लागतें (iii) सामाजिक वस्तुओं का अभाव (iv) पूर्ण ज्ञान तथा (v) साधनों की पूर्ण गतिशीलता आदि।

परन्तु व्यवहारिक जीवन में कुछ क्षेत्रों में बाजार की शक्तियाँ कार्य नहीं करती तथा उनके परिणाम भी उचित नहीं आते, उदाहरण के लिए, आय के समान वितरण की समस्या, पूर्ण रोजगार की प्राप्ति तथा कीमत स्थिरता आदि कार्यो में बाजार की शक्तियाँ उचित परिणाम नहीं देती है। उत्पादकों व उपभोक्ताओं के अपूर्ण ज्ञान के कारण भी विकसित देशों में भी अपूर्णता को जन्म देते है। अतः इन अपूर्णताओं को दूर करने के लिए राजकोषीय क्रियाओं की आवश्यकता पड़ती है, इसलिए उत्पादन के साधनों के कुशलतम प्रयोग के लिए बजट नीति की आवश्यकता है।

सरकार सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र से प्राप्त वस्तुओं के मिश्रण में परिवर्तन की नीति अपनाती है तो सरकार को ऐसी नीतियों को अपनाना होगा जिससे उत्पादन के साधनों के संयोगो का मिश्रण उत्पादन प्रक्रिया के तरीकों के प्रयोग के लिए अलग हो और जिससे वस्तुओं व सेवाओं की कीमतों का निर्धारण भी सरकार अपनी नीतियों द्वारा करती हैं इन सभी नीतियों को आंबटन नीतियां कहते है।

साधनों के बंटवारे में आर्थिक विकास एक महत्वपूर्ण कार्यक्षेत्र है। आर्थिक विकास मुख्य रूप से स्थिर पूंजी तथा मानवीय पूंजी पर निर्भर करता है। पूंजी निर्माण का अर्थ है कि अर्थव्यवस्था के कुछ साधनों का प्रयोग वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति की अपेक्षा भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाना है। जिससे भविष्य में अत्यधिक उत्पादन किया जा सकें; क्योंकि कल्याण सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र में वर्तमान एवं भविष्य के आशातीत उपभोग पर निर्भर करता है। यदि व्यक्ति ऐसे त्याग के लिए तैयार होते है, तभी आर्थिक विकास संभव है। सामाजिक आर्थिक विकास की नीति वर्तमान साधनों के आंबटन से परिवर्तन की नीति वर्तमान साधनों के आंबटन में परिवर्तन करके पूंजी निर्माण में वृद्धि कर सकती है। आर्थिक विकास की नीति का संबंध राष्ट्रों के बीच साधनों के बंटवारें से भी है। साधनों के प्रयोग के अधिकारों का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अनुबन्ध होता है क्योंकि राष्ट्र इसमें अपने नागरिकों का कल्याण देखते है।

आर्थिक विकासः संसाधनों के बंटवारें में आर्थिक विकास एक महत्वपूर्ण कार्यक्षेत्र है। द्वित्तीय विश्व युद्ध और महामंदी (1929–30) के पश्चात् साम्यवादी तथा पूंजीवादी विचारधाराओं में विभिन्नता का युग आरम्भ हुआ। आर्थिक विकास मुख्य रूप से स्थिर पूंजी तथा मानवीय पूंजी पर निर्भर करता है। पूंजी निर्माण से आशय अर्थव्यवस्था के कुछ साधनों का प्रयोग वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति की अपेक्षा भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाना है। जिससे भविष्य में अधिक उत्पादन किया जा सकें, क्योंकि कल्याण वर्तमान और भविष्य के निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र में उपभोग पर निर्भर करता है। यदि ग्रहस्थ ऐसे त्याग करने को तैयार होते है, तभी आर्थिक विकास संभव होता है। आर्थिक विकास की नीति वर्तमान साधनों के आंबटन से परिवर्तन की नीति वर्तमान साधनों के आंबटन में परिवर्तन करके पूंजी निर्माण में वृद्धि कर सकती है।

आर्थिक विकास की नीति का संबंध राष्ट्रों के बीच साधनों के बंटवारें से भी है। साधनों के प्रयोग के अधिकारों का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अनुबन्ध होता है क्योंकि राष्ट्र इसमें अपने नागरिकों का कल्याण देखते है। समुद्रों तथा आकाश का प्रयोग अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सन्धियों के आधार पर होता है।

2. **वितरण कार्य (Distribution Function) :** पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में आय के वितरण के लिए साधनों की कीमत का निर्धारण साधनों की सीमान्त

उत्पादकता से होता है। सरकार विभिन्न नीतियों द्वारा आय के वितरण का निर्धारण बाजार शक्तियों में परिवर्तन करके करती हैं क्योंकि अन्य लोग कल्याण, व्यक्तिगत कल्याण का फलन है। दूसरों के कल्याण के लिए यह व्यवहार सार्वजनिक आर्थिक नीति के समानता का आधार की नीति पर निर्भर करता है। इस नीति के लिए किसी एक धारणा का प्रयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि व्यक्तिगत कल्याण के फलन के तत्व परिवर्तनशील है, जिनकों परिभाषित करना कठिन है, ये नीति राजनैतिक प्रक्रिया द्वारा ही लागू करनी चाहिए। वितरण कार्य अधिक कठिन है, इसलिए वितरण कार्य बजटीय चर्चा में विवादस्पद रहता है।

समता की धारणा मुख्य रूप से दो तत्वों पर निर्भर करती है :–

(i) Object, जैसे ''आय'' (Income) जिसका वितरण किया जाना है।

(ii) Subject, ''व्यक्तियों'' का समूह जिनमें आय का वितरण किया जाना है।

हम समता को उपरोक्त दो तत्वों के आधार पर वर्णन कर सकते है, परन्तु फिर भी हम समता का कोई एक फार्मूला ज्ञात नहीं कर सकते है। व्यक्तिगत कल्याण को समता के मुख्य आधार (object of equity) के रूप में नहीं लिया जा सकात है क्योंकि व्यक्तिगत कल्याण को मापा तथा इसकी तुलना नहीं की जा सकती है।

आय को समान वितरण का आधार माना गया है तथा आय के समान वितरण के लिए विभिन्न नीतियाँ सुझाई गई हैं। एक विशिष्ट नीति – ''गरीबी हटाओं प्रोग्राम (Anti-Poverty programme) में आय के विशेष स्तर के नीचे के परिवारों की संख्या को काम करना है, परन्तु यहां पर समस्या परिवार के आकार, आयु संरचना, भौगोलिक क्षेत्र के अनुसार कीमतों में भिन्नता व्यक्तिगत उपभोग के अनाज की कीमत, तथा स्वयं के मकान का मूल्य आदि के समायोजन की आती है। उपरोक्त सभी समस्याओं के समाधान के लिए 'आय' के स्थान पर 'धन' का प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु धन को परिभाषित करना कठिन कार्य है। यदि परिसम्पतियों का बाजार मूल्य ही धन है तो इसका वितरण उस धन से भिन्न होगा जो भविष्य के श्रम की वर्तमान कीमत को शामिल करेगा। इसके अतिरिक्त कुछ वस्तुओं की बाजार कीमत का ज्ञान नहीं होता है जैसे दुलर्भ पुस्तके, पेंटिग आदि। इसलिए धन को object of equity के रूप में परिभाषित करना कठिन है।

कर प्रभार (Tax charge) : व्यक्तियों द्वारा करों के भुगतान और उनकी आय से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए Poogressive और Regressive अवधारणाओं का प्रयोग किया जाता है। उपरोक्त दोनो प्रकार की कर व्यवस्थाए्र कर वसूलने के प्रकार है जिन्हे राजनैतिक प्रक्रिया द्वारा स्वायत्त आय (Disposable Income) के वितरण में समानता लाना है। प्रगतिशील करों से धनी व्यक्तियों पर अधिक कर तथा निर्धनों पर करों का कम भार पड़ता है, तथा लोग इस प्रकार के करों को ठीक मानते है। इसमें अन्तः व्यक्ति उपयोगिता (Inter personalvitility) की तुलना से कर लगाए जाते है अतः प्रगतिशील कर व व्यय करों (Expenditure taxes) को समानता का आधार (Object of Equity) के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

सार्वजनिक वस्तुओं के प्रयोग तथा समानता का आधार :– किसी विशेष कर की समानता का वर्णन जब तक अधूरा होगा तब तक की उन करों से प्राप्त धन को खर्च करके लोगों को सार्वजनिक वस्तुओं के रूप में उपलब्ध कराई जाने वाली

वस्तुओं से प्राप्त लाभ का वर्णन ना किया जाए। करों और सार्वजनिक व्यय का सामूहिक अध्ययन करके ही आय के समान वितरण की उपयोगिता का निर्माण किया जा सकेगा, अर्थात् करों और सार्वजनिक व्ययों से प्राप्त लाभों की तुलना की जा सकेगी। कुछ वस्तुएं ओर सेवाएं, जो कि सरकार द्वारा उपलब्ध कराई जाती है, उदाहरण के लिए राष्ट्रीय सुरक्षा, देश के सभी नागरिकों के द्वारा एक समान मात्रा में उपयोग की जाती हैं, परन्तु कुछ सार्वजनिक सेवाओं का लाभ समाज के एक हिस्से के लिए ही लाभकारी होता हैं, अर्थात् लाभों का समान वितरण नहीं होता हैं – "Equility of Educational Opportunity" उपरोक्त phrase शिक्षा के क्षेत्र में समानता के उद्धेश्य को दर्शाता है परन्तु what does the phrase mean? क्या इसका अर्थ है कि प्रत्येक विद्यार्थी पर प्रत्येक स्कूल में समान रुपये खर्च किए जाएगें या 'शिक्षा में समानता का अवसर' का अर्थ है कि प्रत्येक बच्चे को एक न्यूनतम स्तर तक स्कूलों की सुविधा उपलब्ध करवाना है। शायद इसका अर्थ यह है कि समान योग्यताओं के वितरण वाले बच्चों के समूह को समान शिक्षा का स्तर प्राप्त करना चाहिए।

प्रत्येक बच्चों के समूह पर, दूसरे समूह के उस स्तर तक शिक्षा प्राप्त करने के लिए अधिक खर्चे भी क्यों ना करना पड़े। Equity of Educational Opportunity की कोई एक स्पष्ट परिभाषा नहीं दी जा सकती हैं।

उपरोक्त विवेचन से वितरण नीति के चार प्रमुख उद्धेश्य है – आय, धन, कर व सामाजिक वस्तुएं। व्यक्तियों का समूह में अध्ययन किया गया है क्योंकि नीति निर्धारण के कार्य पूरे समूहों को प्रभावित करते हैं न कि किसी व्यक्ति विशेष को, अतः अन्य व्यक्तियों का कल्याण हमारे अपने कल्याण को प्रभावित करता है। इस प्रकार इन चारों उद्धेश्यों को व्यक्तियों के समूह में आय के वितरण के आधार पर बांटा गया है, परन्तु समता के लिए केवल आय को ही मापदण्ड मान कर मापना पर्याप्त नहीं है बल्कि अन्य मापदण्डों को भी ध्यान में रखना होगा जैसे शहरी ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात, लिंग अनुपात, भौगोलिक परिस्थितियाँ तथा पारिवारिक पृष्ठभूमि आदि।

3. **स्थायित्व कार्य (Stablization functions) :** राजकोषीय नीति के कार्यो में आर्थिक स्थिरता सबसे नया कार्य है जो कि लगभग 1930 से अस्तित्व में आया है। स्थिरता का कार्य, जो भी क्षतिपूर्ति वित भी जाना जाता है, रोजगार के उच्चे स्तर तथा कीमतों में स्थिरता रखना है। वित्तीय कार्य की आवश्यकता इसलिए हुई क्योंकि बाजार अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार और मूल्य की स्थिरता स्वतः ही प्राप्त नहीं की जा सकती है। पूर्ण रोजगार का स्तर तथा कीमतें उत्पादन क्षमता की सापेक्षता में कुल मांग के स्तर पर निर्भर करते हैं। देश में स्थिर कुल माँग को बनाए रखने के लिए बजट के रूप में विस्तारवादी तथा संकुचनवादी राजकोशिक नीति की आवश्यकता होगी। सरकार समाज के आर्थिक क्रियाओं का नियमन करने के लिए सार्वजनिक व्यय तथा करारोपण का सहारा लेती हैं, इनका आर्थिक क्रियाओं पर प्रभाव पड़ता है।

13.2.1 मुद्रा–स्फीति की अवस्था में आर्थिक स्थिरताः मुद्रा–स्फीति में मूल्यों में निरन्तर वृद्धि होती रहती है जिससे समाज में उपभोक्ताओं को हानि होती है। ऐसी स्थिति में सरकार अधिक कर लगाकर, व्यय–शक्ति कम करके कीमतों को बढ़ने से रोकती है। आय–कर तथा व्यय कर इस संबंध में अधिक प्रभावशाली हुए हैं।

चूंकि मुद्रा–स्फीति का एक कारण उत्पादन का आय की अपेक्षा कम होना भी हैं, अतः उत्पादन को प्रोत्साहित करने के लिए कुछ करों में छूट देना अधिक लाभकारी सिद्ध होता है। यह उचित होगा कि नये उत्पादकों पर कोर्ठ नया कर नहीं लगाया जाए ताकि उन्हें उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन मिलें। वस्तुओं की मात्रा आयातों द्वारा भी बढ़ाई जा सकती है।

13.2.2 मंदी की अवस्था में आर्थिक स्थिरताः मंदी काल के दौरान सामान्यता नये कर लगाना उचित नहीं समझा जाता क्योंकि इसमें एक ओर तो क्रय शक्ति कम हो जाती है और दूसरे ओर निवेश में भी कमी हो जाती है।

इसलिए मंदीकाल की अवस्था में यह आवश्यक है कि करों की मात्रा पहले से कम की जाए, सार्वजनिक व्यय में वृद्धि की जाए और ऐसे उद्योगों का चालू किया जाए जिनसे अधिक व्यक्तियों को रोजगार मिल सकें। मंदीकाल ये घाटे के बजटों का सुझाव दिया जाता है क्योंकि इनसे लोगों की क्रय–शक्ति में वृद्धि होती है। मंदीकाल में उन करों में कमी करना विशेष रूप से आवश्यक होता है जिनका भार कम आय वाले या निर्धन वर्गो पर अधिक पड़ता है। धनी व्यक्तिों का कर भार कम करने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि उपभोग की मात्रा में केवल निर्धनों का कर–भार कम करने से ही वृद्धि होगी। इस प्रकार करों द्वारा जो धन का पुनः वितरण होता है वह मंदी को रोकने तथा आर्थिक स्थिरता को बनाए रखने में सहायता करता है।

13.3 राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)

राज्य आर्थिक मामलों के नियमन में अहम भूमिका निभाती है। मुख्य रूप से राजस्व नीति का संबंध राज्य की आय–व्यय की नीति के निर्धारण से है। आधुनिक युग में, राज्य की भूमिका में त्वरित आर्थिक विकास के कारण वृद्धि हुई है तथा राजस्व नीति के अर्न्तगत सार्वजनिक ऋण तथा घाटा एवं बजटिंग भी आ गए है। एक प्रभावी राजस्व नीति सरकार के सम्पूर्ण वित्तीय ढ़ांचे जैसे – व्यय, ऋण, टैक्स आदि से संबंधित होता है। इस सभी को इसलिए संतुलित रखना पड़ता है ताकि अधिकाधिक आर्थिक उद्धेश्यों को पूरा किया जा सकें। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि कुछ तत्व जैसे आर्थिक स्थिरता, बाजार शक्तियाँ, विदेशी मुद्रा का प्रचलन तथा प्रसार आदि पर आर्थिक विकास की सफलता निर्भर करती है।

13.3.1 राजकोषीय नीति का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Defination of Fiscal Policy):

सरकार के सभी व्यय, आयकर, उत्पादन तथा रोजगार से राजस्व नीति संबंधित होती है। यह एक यंत्र है जो कि अर्थव्यवस्था के आर्थिक क्रियाओं को संचालित करता है।

सरकारी आय–व्यय एवं राजस्व तथा ऋण सम्बन्धी आर्थिक उपायों का यह एक पैकेज है । यह किसी भी अर्थव्यवस्था में कुल निवेश, कुल व्यय तथा कुल माँग की भी व्याख्या करता है तथा यह दर्शाता है कि जिस स्त्रोत से यह कार्यान्वित हुआ वह कितना प्रभावशाली है।

इसकी परिभाषा विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा इस प्रकार दी गई हैं :–

श्रीमती उर्सला हिक्स के अनुसार, ''राजस्व नीति एक ऐसी नीति है जिसके प्रत्येक तत्व अपना कार्य करते हुए फिर एक साथ मिलकर आर्थिक नीति को सुदृढ़ करते है।''

("Fiscal Policy is concerned with the manners is which all the different elements of public finance, while still primarily concerne with carrying out their own duties may collectively be geare to forward the aims of economic policy").

आर्थर स्मिथि के शब्दों में, ''इस नीति के अन्तर्गत सरकार अपना व्यय, राजस्व कार्यक्रम इस तरह से नियोजित करती है, ताकि उचित परिणाम की प्राप्ति हो और राष्ट्रीय आय, उत्पादन तथा व्यय पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।''

("As a policy under which the government uses its expenditure and revenue programme to produce desirable effects and avoid undersirable effects on the national income, production and employment.")

हार्वे तथा जॉनसन के अनुसार, ''राजस्व नीति सरकार व्यय तथा करों में परिवर्तन है ताकि कार्यक्रम को प्रभावकारी बनाया जा सकें।''

("Changes in government expenditure and taxation designed to influence the pattern and level of activity.")

प्रो. गार्डनर अकली के अनुसार, ''सरकारी व्यय तथा सेवाओं, कर दर आदि में परिवर्तन के लिए राजस्व नीति का प्रयोग किया जाता है। इस नीति के अर्न्तगत सरकार वस्तुओं के मामलों में सीधे बाजार में प्रवेश करती है। निजी मांग पर इसका सीधा प्रभाव पड़ता है।''

("Fiscal Policy involves alterations in government expenditures for goods and services or the level of tax rates. Unlike monetary policy, these measeures involve direct government entrance into the market for goods and services and a direct impact on private demand.")

राजकोषीय नीति का परम्परागत दृश्य (Traditional view of Fiscal Policy): परम्परावादी अर्थशास्त्री स्वतंत्र अर्थव्यवस्था में विश्वास रखते थें। **जे. बी. से** (J.B Say) के अनुसार बाजार का नियम सभी आर्थिक नीतियों का आधार था जिसका मानना है कि पूर्ति अपनी माँग स्वयं बनाती है तथा परिणामस्वरूप सामान्य अधिक उत्पादन का प्रश्न ही नहीं उठता।

वह सरकारी क्रिया कलापों को न्यूनतम बनाकर सार्वजनिक क्षेत्र को सीमित करना चाहते थें ताकि बाजार की यंत्र कला के कार्यो में रूकावट न आये। अतः उनका विचार था कि बाजार शक्तियों में स्वतंत्र कार्य पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त क सकेंगे तथा देश में साधनों का अनुकूलतम निर्धारण सुनिश्चित करेंगे। उनके लिये कर अनुपादक व्यय मात्र थे जिनसे साधनों को गलत दिशा मिलती थी। उनका मानना था कि राजकोषीय प्रबन्ध उस बिन्दु से आगे न जायें जो सर्वोत्तम निर्धारण में बाधा आयें। वह इसे अधिक उपयुक्त मानते थे कि सरकार केवल न्यूनतम आवश्यक कार्य करें तथा आर्थिक व्यवस्था में काम—काज के हस्ताक्षेप न करें।

सुदृढ़ वित्ती के नियम के सम्बन्ध में उन्होंने इस बात का समर्थन किया कि वह सरकार अच्छी है जो न्यूनतम खर्च करती है तथा न्यूनतम कर लगाती है।

उनकी कुछ शर्तो का वग्रन इस प्रकार हैः

(i) सरकार न्यूनतम व्यय करे तथा कम कर लगाये।

(ii) करों के उत्पादन पर न्यूनतम प्रतिकूल प्रभाव हों।

(iii) सार्वजनिक व्यय उत्पादन क्षेत्र में हो।

(iv) संतुलित बजट का होना आवश्यक है।

13.3.2 राजकोषीय नीति का आधुनिक दृश्य (Modern views of Fiscal Policy): राजकोषीय नीति के आधुनिक स्वरूप के प्रतिपादन में प्रो. केन्ज, ए. पी लर्नर, जी, मार्यडल (Prof. Keynes, A.P Lerner, G. Myrdal) आदि अर्थशास्त्रीयों के नाम आते है उन्होंने राजकोषीय नीति को एक नया स्वरूप दिया। इन अर्थशास्त्रीयों ने परम्परावादी अर्थशास्त्रीयो की इस अवधारणा को नकार दिया कि पूर्ति अपनी माँग की स्वयं रचना करती है तथा इस प्रकार अर्थव्यवस्था बेरोजगारी और सन्तुलन में कोई सम्भावना नहीं है, यह बाजार शक्तियों के कारण स्वयं ही प्राप्त हो जाते है, जे. बी से (J.B Say) ने दृढ़तापूर्वक कहा। केन्ज का विश्वास था कि एक उन्नत अर्थव्यवस्था में उपभोग की प्रवृत्ति आय बढ़ने के साथ कम हो जाती है। दूसरे शब्दों में आय के बढ़ने से बचत की प्रवृत्ति बढ़ जाती है। कम उपभोग तथा अधिक बचतों के बीच का अन्तराल, एक समय पर उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं की मांग को कम कर देता है जिसके कारण अर्थव्यवस्था में असंतुलन आ जाता है। इस कारण आय और रोजगार का संतुलन स्तर बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि घटी हुई मांग तथा उपभोग में कमी के कारण उत्पादन पर इसके प्रभाव को सार्वजनिक व्यय में अनुक्रय वृद्धि द्वारा इसकी क्षतिपूर्ति की जाये। इसलिए सरकार का प्रमुख कर्त्तव्य है कि बड़े स्तर पर सार्वजनिक कार्यक्रम आरम्भ करके सीधे रूप में व्यय को बढ़ाये। इस प्रकार आधुनिक अर्थशास्त्री इस बात पर बल देते है कि सरकार द्वारा निर्णायक आर्थिक गतिविधियों द्वारा अर्थव्यवस्था को नियमित ओर नियन्त्रित करने के लिए एक सकारात्मक भूमिका निभानी होती है। वह इसे प्रकायत्मिक वित्त का नियम कहते है। दूसरे अर्थ में, ऐसी वित्तीय गतिविधियों को राजकोषीय नीति कहा जाता है; जिन्हे अवस्फीति अथवा स्फीति को सुधारने के लिए प्रयोग किया जाता है।

13.3.3 राजकोषीय नीति के उद्धेश्य (Objective of Fiscal Policy): राजकोषीय नीति का प्रमुख उद्धेश्य अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार, आर्थिक स्थिरता, तथा आर्थिक विकास दर में स्थिरता लाना है। परन्तु अल्पविकसित देशों में इसका उद्धेश्य पूंजी निर्माण तथा पुर्ननिवेश को गति प्रदान करना है। एक विकासशील देश में राजकोषीय नीति के निम्नलिखित उद्धेश्य हो सकते हैंः

1. **पूर्ण रोजगार (Full Employment):** किसी देश की अर्थव्यवस्था में राजकोषीय नीति का प्रथम उद्धेश्य पूर्ण रोजगार की अवस्था को प्राप्त करना होता है। यदि किसी कारण से अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति नहीं आती हैं, तो लगभग पूर्ण रोजगार की दिशायें बनाए रखनी होती है तथा बेरोजगारी को पूर्ण समाप्त करना होता है। इसके लिए सरकार को आर्थिक सामाजिक कार्यक्रमों पर अधिक बयान देना पड़ता है। इससे अधिकाधिक रोजगार के अवसर प्राप्त होंगे तथा अर्थव्यवस्था की कार्यक्षमता में वृद्धि होगी। इन परिस्थितियों में सार्वजनिक व्यय एवं सरकारी उपक्रम की एक अहम भूमिका है। निवेश द्वारा न केवल आय तथा रोजगार बढेंगे बल्कि कई गुणा माँग भी बढ़ेगी और इस तरह अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार की ओर बढ़ता जायेगा।

2. **मूल्य स्थिरता (Price Stability):** एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के लिए आर्थिक विकास तथा स्थिरता दोनों ही आवश्यक हैं। विकासशील देशों में स्फीति के रूप में अस्थिरता प्रकट होती है। प्रो. नर्क से के अनुसार निवेश में मंहगाई निहित है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि निवेश पर अंकुश लगा दिया जाये। दूसरे

कई उपाय है जिनसे इस पर नियन्त्रण पाया जा सकता है। उन उपायों में से एक उपाय राजस्व नीति है जिससे स्थिरता को प्राप्त किया जाता है। एक विकासशील देश की अर्थव्यवस्था में यह एक विशेष बात है कि मूल्यों में वृद्धि होती हैं, क्योंकि सरकारी खर्च बढ़ते रहते है। आय के बढ़ने से माँग बढ़ती है। माँग के बढ़ने से पूर्ति कम हो जाती है। इस कारण पूंजीगत वस्तुओं तथा उपभोग की वस्तुओं में समानता नहीं रह जाती है। दोनों के बीच जो मध्यांतर आता है जिससे महंगाई कहते है। इस प्रकार हम कह सकते है कि राजस्व नीति तथा मुद्रा नीति दोनों ही आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है।

3. **संसाधनो का अनुकूलतम बंटवारा करना (Optimum Allocation of Resources):** अल्पविकसित देशों में राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय न्यूनतम होती है। इसमें सुधार लाने के लिए सरकार सामाजिक संसाधनों को इस कार्य में लगा सकती है। सार्वजनिक व्यय, अनुदान तथा प्रोत्साहन आदि संसाधनों के वितरण में अनुकूल प्रभाव ला सकते है। करों में छूट देने से नए उद्योगों में संसाधनों को आकर्षित कर सकते है। दूसरा टैक्स में वृद्धि से संसाधन को खतरा बना रहता है। इस कारण हमें अपने उपभोग तथा अनुत्पादक निवेश में कटौती करनी चाहिए ताकि संसाधनों का उचित उपयोग हो सकें तथा मुद्रा स्फीति की प्रवृत्ति से निपटा जा सकें। इसलिए राजकोषीय नीति एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के लिए सुरक्षा की नीति उपयोगी सिद्ध होती है, क्योंकि इससे आर्थिक विकास को प्रोत्साहन मिल सकें।

4. **आर्थिक विकास की दर को बढ़ाना (To Accelerate the Rate of Economic Growth):** किसी भी देश की राजकोषीय नीति को विकास दर में तेजी प्रदान करने वाला होना चाहिए किन्तु विकास की उच्च दर बिना मूल्य स्थिरता के प्राप्त नहीं हो सकती है। इस कारण कर सार्वजनिक ऋण तथा वित्तीय घाटा इस प्रकार प्रयोग हो ताकि यह उत्पादन, उपभोग तथा वितरण को प्रभावित न कर सकें। देश का आर्थिक विकास हो ताकि राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हो सकें।

5. **धन का समान वितरण (Equitable Distribution of Wealth):** किसी भी विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में धन का समान वितरण बहुत महत्वपूर्ण होता है। इन देशों में प्रायः असमानता विद्यमान रहती है। कुछ लोगों के पास ही धन होता है; क्योंकि निजी स्वामित्व का बोल–बाला होता है। असमानता के अलावा राजनीतिक तथा सामाजिक असंतोष इस स्थिति को और भयानक बना देते है। समाज के विभिन्न वर्गो में व्याप्त असमानता को दूर करने के लिए सरकार को ऐसे उत्पादन क्षेत्रों में निवेश करना चाहिए।

6. **पूँजी निर्माण (Capital Formation):** किसी भी देश की अर्थव्यवस्था के विकास के लिए पूंजी का प्रमुख स्थान है। राजकोषीय नीति का यह गुण होना चाहिए कि अधिकाधिक पूंजी निर्माण हो सके। एक विकासशील देश गरीबी के कुचक्र में फंसा रहता है। इसलिए संतुलित विकास की आवश्यकता होती है एवं कुचक्र समाप्त हो सकें। यह तभी सम्भव हो सकता है जब पूंजी का निर्माण हो।

7. **आर्थिक स्थिरता (Economic Stability):** किसी देश की राजकोषीय नीति ऐसी हो ताकि वह अन्तर्राष्ट्रीय उतार–चढ़ाव का सामना करते हुए आर्थिक

स्थिरता प्रदान करने की क्षमता रखती हो। व्यापार में होने वाली उतार–चढ़ाव से विकसित देशों को लाभ पहुंचता है, जबकि विकासशील देशों के लिए उचित है। अतः आर्थिक स्थिरता लाने के लिए वित्तीय प्रभावों में ऐसी लोचशीलता होना आवश्यक है ताकि सरकार की आय तथा व्यय एक दूसरे के पूरक हो। हम यह पाते है कि आन्तरिक कारणों से होने वाली अस्थिरता एक सीमा तक इस नीति से नियंत्रण में आ जाती है। बाहरी कारणों से उत्पन्न होने वाली अस्थिरता टेरिफ नति के द्वारा नियंत्रण मं लाई जा सकती है। अर्थव्यवस्था में तेजी के समय अन्तर्राष्ट्रीय उतार–चढ़ाव को नियंत्रित करने के लिए आयात कर लगाना चाहिए। विपरित स्थिति में सरकार को वित्तीय घाटे वाली नीति अपनानी चाहिए। अर्थव्यवस्था की विभिन्न इकाईयों को दृष्टि में रखकर संतुलित विकास के लिए कदम उठाना चाहिए।

8. **निवेश के लिए प्रोत्साहन (To Encourage Investment):** निवेश को प्रोत्साहित करना राजकोषीय नीति का एक अन्य उद्धेश्य क्षेत्र सरकारी क्षेत्र में निवेश दर में तेजी प्रदान करना होता है। यह सरकारी क्षेत्र में निवेश करने के लिए प्रोत्साहित करता है। फलस्वरूप निजी क्षेत्रों में इसका विस्तार होने लगता है। इस तरह वित्तीय नीति आर्थिक विकास की ओर कार्य करती है। इसलिए हमें उन्हीं क्षेत्रों में अधिक से अधिक निवेश करना चाहिए जो सामाजिक दृष्टि से जरूरी हो। अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए यातायात, संचार, सिंचाई, डैम, बाढ़ पर नियंत्रण, बंदरगाह, औद्योगिक प्रशिक्षण, शिक्षा, स्कूल एवं अस्पतालों पर व्यय करना चाहिए। इससे विकासकारी योजनाओं को गति प्रदान होगी।

13.3.4 राजकोषीय नीति के अंग (Tools of Fiscal Policy): अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति को बनाए रखने के लिए राजकोषीय नीति की प्रमुख भूमिका है। इस स्थिति में न तो मुद्रा स्फीति और महामंदी दोनो का कोई स्थान नहीं होता। राजकोषीय नीति के प्रमुख अंग निम्नलिखित है :–

I. बजट (Budget)
II. कर नीति (Taxation Policy)
III. राजकीय व्यय (Public Expenditure)
IV. राजकीय कार्य (Public Work)
V. सार्वजनिक ऋण (Public Debt)

राजकोषीय नीति के अंगो का वर्णन इस प्रकार है :–

I. बजट (Budget): किसी देश की अर्थव्यवस्थाा के लिए बाजार उतार–चढ़ाव को प्रकट करता है। बजट के अनेक प्रकार है जैसे :–

(i) वार्षिक बजट (Annual Budget)
(ii) चक्रीय बजट (Cyclically Balance Budget)
(iii) पूर्ण रूपेण प्रबन्धित क्षतिपूर्ण बजट (Fully Managed Compensatory Budget)

1. **वार्षिक बजट (Annual Budget):** यह बजट विश्व मंदी के समय (1930) तक ही लोकप्रिय रहा। इसके निम्नलिखित कारण है :–

- इसमें सरकारी आय तथा व्यय संतुलित रहती है।

- इसमें वर्तमान गतिविधियों में खर्च होता है।
- संतुलित बजट से महंगाई नहीं होती है।
- राजनीतिक दृष्टि से भी यह उचित है। पूर्ण रोजगार की सम्भावनाएं भी है।
- इसमें कर अधिक होता है। इससे आय में वृद्धि होती है तथा व्यय में कमी।
- परन्तु इस सिद्धान्त के कई तरह के प्रतिरोध हैं।
- वार्षिक संतुलित बजट उदासीन होता हैं, यह सत्य नहीं है।
- यह मानना गलत है कि पूर्ण रोजगार की प्राप्ति होगी।
- कुछ अर्थशास्त्रियों का कहना है कि वार्षिक संतुलित बजट में कम कर भार होता है।

2. **चक्रीय संतुलित बजट (Cyclically Balanced Budget) :** चक्रीय संतुलित बजट को स्वीडिश बजट भी कहते है। ऐसे बजट में सार्वजनिक ऋण को वापस करने का प्रयास किया गया है, परन्तु मंदी के समय घाटे का बजट इस प्रकार बनाया जाता है ताकि मुद्र स्फीति के समय जो ज्यादा था वह वित्तीय घाटे के साथ संतुलित हो सकें। एकत्रित किए गए राजस्व से अधिक सरकारी व्यय के लिए ऋण मिल जाते हैं।

निम्नलिखित कारणों से इसे अनुकूल माना जाता है।

- अपनी आवश्यकता के अनुसार सरकार अपने बिल को अनुकूल बना सकती है।
- यह नीति प्रत्येक प्रकार के समय के लिए उपयुक्त होती है।
- यह अर्थव्यवस्था में स्थिरता प्रदान करती है, परन्तु इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि पूर्ण रोजगार की स्थिति आयेगी।

3. **पूर्ण रूपेण प्रबन्धित क्षतिपूर्ण बजट (Fully Managed Compensatory Budget):** इसके अर्न्तगत कर में सोच–विचार कर अनुकूलता प्रदान की जाती है व्यय, राजस्व, सार्वजनिक ऋण आदि विशेष ध्यान दिया जाता है ताकि पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त कर सकें। ऐसी स्थिति में महंगाई में वृद्धि की सम्भावना कम रहती है। बजट में संतुलन लाना इसका मुख्य उद्धेश्य होता है। पूर्ण रोजगार और मूल्यों में स्थिरता पर पूर्ण बल दिया जाता है। इससे सार्वजनिक ऋण तथा ब्याज अदायगी आदि की समस्या समाप्त हो जाती है।

इस प्रकार के बजट के आलोचको द्वारा आलोचना की गई हैं :–

- आलोचकों का मत है कि बेरोजगारी के विरुद्ध इसे गारण्टी मिलनी चाहिए क्योंकि बेरोजगारी के विरुद्ध कदम उठाने से अर्थव्यवस्था में महंगाई का दबाव पड़ता है।
- वह बजट नीति जटिल है।
- इससे राजनीतिक अनिश्चितताएं पैदा होगी क्योंकि उपयुक्त वित्तीय सुधार के क्रियान्यवन में देरी पैदा होती है।
- देश को लम्बे समय में ऋण का बोझ अधिक उठाना पड़ता है।

II. कर नीति (Taxation Policy) : कर नीति एक ऐसा शक्तिशाली यंत्र है जिसके द्वारा आय, उपभोग तथा निवेश में परिवर्तन लाना संभव है। ऐसी कर नीति जो महामंदी के काल में उपयुक्त है, सरकार व्यय करने योग्य आय में वृद्धि करती है। उपभोग और निवेश को प्रोत्साहित करती है। अतः कर में कमी पर लोगों के लिए निवेश तथा उपभोग की क्षमता बढ़ जाऐगी। मांग में वृद्धि होगीं ऐसी अवस्था में यह सुझाव दिया जाता है कि आबकारी कर, बिक्री कर तथा आयात कर को कम किया जाये। ऐसा करने से उपभोग को बल मिलेगा।

दूसरा मुद्रा स्फीति विरोधी कर नीति (Anti Inflationary Tax Policy) ऐसी होनी चाहिए जो स्फीति से उत्पन्न खाई को कम करें। मुद्रा स्फीति के समय पुरातन कर नीति पर अधिक भरोसा नहीं करना चाहिए बल्कि कर–नीति में ऐसे परिवर्तन करने चाहिए ताकि अधिक क्रयशक्ति का ह्रास हो तथा उपभोक्ता की मांग में कमी आए। यहां व्यय–कर तथा आबकारी–कर में वृद्धि की जा सकती है परन्तु यह वृद्धि इतनीं न हो जाये कि नये निवेश में कमी आए। निर्यात पर प्रतिबंध लगाया जायें तथा आयात केवल आवश्यक वस्तुओं का ही होना चाहिए।

यहां सरकार को इस बात पर विशेष ध्यान रखना चाहिए कि सरकारी नीतियों के कारण अधिक उतार–चढ़ाव न आये और आर्थिक प्रगति में रूकावट पैदा न हो।

III. सरकारी व्यय (Public Expenditure) : आर्थिक क्रियाकलापों में सरकारी हस्तक्षेप के कारण सरकारी व्यय वित्त विभाग के लिए एक औजार के रूप में सामने आया है। सरकारी व्यय में कमी करने से उतार–चढ़ाव की तुलना में आर्थिक क्रियाकलापों पर सीधा प्रभाव पड़ सकता है। सरकारी व्यय के बढ़ने से आय पर कई तरह के प्रभाव पड़ते है। सरकारी व्यय की कमी से अधिक क्रियाशील मंद पड़ जाती है।

मुद्रा स्फीति काल के दौरान अधिकाधिक व्यय से आर्थिक व्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ता है। निजी खर्च तथा निवेश दोनों में बहुत वृद्धि हो जाती है। ऐसी अवस्था में सरकार को अपना व्यय घटाना चाहिए। निवेश तथा निजी व्यय दोनों में बहुत वृद्धि हो जाती है। ऐसी अवस्था में सरकार को अपना व्यय घटाना चाहिए। अन्य शब्दों में कुछ कार्यक्रमों पर रोक लगा देनी चाहिए तथा अन्य को छोड़ देना चाहिए परन्तु जो व्यय उत्पादकता अधिक दे रहे है, उन्हें रखना चाहिए परन्तु जो व्यय उत्पादकता अधिक दे रहे है, उन्हें रखना पड़ेगा क्योंकि ऐसा न करने से बोझ और बढ़ेगा। गैर–उत्पादक चीजों पर रोक लगा देने से अर्थव्यवस्था पर बोझ कम पड़ेगा। परन्तु ऐसा निर्णय लेना आर्थिक एवं राजनीतिक दोनों कारणों से कठिन है।

IV. सरकारी कार्य (Public Works) : प्रो. केन्ज के अनुसार महामंदी पर काबू पाने के लिए सरकारी कार्य एक अच्छा उपाय है। इसमें दो तरह के व्यय आते हैं :– सरकारी खर्च तथा भुगतान का हस्तान्तरण।

इस प्रकार के कार्यक्रम में लार्ड केन्ज का दृढ़ विश्वास था। उन्होंने तो यहां तक कह दिया कि गैर–उत्पादक कार्य जैसे गड्ढा खोदना और उसे दोबारा बन्द कर देना भी अनिवार्य है। जब कभी सरकार को लगे महामंदी के चिन्ह दिखाई देने लगे, तो राजकीय सरकारों के समझ कुछ कार्य तैयार होने चाहिए ताकि लोगो को उसमें लगाया जा सकें। इस ढंग से अर्थव्यवस्था का विकास होगा।

ऐसे कार्यो को महामंदी रोकने वाला कहा जाता हैं।

- इन कार्यों में बेरोजगार युवकों को रोजगार मिल जाता है।
- लोगों की क्रयशक्ति बढ़ जाती है। जिससे वस्तुओं की मांग में वृद्धि होती है।
- सामाजिक दृष्टि से उपयोगी वस्तुओं का निर्माण बढ़ जाता है। जैसे सड़के, नहरें, बिजलीघर, इमारतें, सिंचाई के साधन, प्रशिक्षण केन्द्र आदि।
- उद्योगों के विकास के लिए काफी प्रोत्साहन मिलता है।
- कामगारों का उत्साह बढ़ता है। बेरोजगार प्रशिक्षित कारीगरों को काम मिलता है।
- ये सरकारी कार्य निजी निवेश पर कोई प्रभाव नहीं डालता है।

V. सार्वजनिक ऋण (Public Debt) : मुद्रास्फीति की रोकथाम के लिए सार्वजनिक ऋण मुख्य भूमिका निभाता है। इससे अर्थव्यवस्था में स्थिरता आती है तथा पूर्ण रोजगार के अवसर प्राप्त होते हैं।

निम्नलिखित में से किसी भी तरीके से ऋण प्राप्त किया जा सकता है :—

(i) गैर–सार्वजनिक संस्थानों से ऋण लेना (Borrowing from Non-Bank Public): असार्वजनिक संस्था से ऋण लेने के लिए सरकार बांड, शेयर आदि बेचती है। इन्हें खरीदने के लिए जनता बचत करती है। इस तरह ऋण प्रक्रिया राष्ट्रीय स्तर पर स्थिति के अनुसार बदलती रहती है। लाभकारी स्थिति में जनता अपने उपभोग पर रोक लगाकर शेयर, बांड आदि खरीदती रहती है। जब बचत किए गये धन से बांड आदि खरीदे जाते हैं, तो इस तरह के क्षण से महंगाई नही बढ़ती। यदि सरकार इन्हें ऋण के रूप में न ले, तो निजी निवेश में लग जायेंगे। इस तरह हम देखते हैं कि सार्वजनिक ऋण विशेष महत्व नहीं रखता।

(ii) बैंको से ऋण लेना (Borrowing from Banking system): सरकार बैंको से भी ऋण ले सकती है। महामंदी काल के समय इस तरह के ऋण लाभदायक होते हैं। इस समय बैंको के पास नकदी जमा काफी मात्रा में होती है तथा जन साधारण बैंको से ऋण लेना नहीं चाहती क्योंकि इससे उसे कोई लाभ नहीं होता है। जब बैंक का पैसा बाहर आता है तो उपभोग बढ़ता है और बेरोजगारी की समस्या का समाधान होता है। इसलिए बैंको से ऋण लेना वांछनीय है। दूसरी ओर स्फीति के समय यह ऋण उपलब्ध नहीं होते। महंगाई के समय ऋण की मांग अधिक हो जाती है। यदि सरकार ऋण लेना चाहती है, तो बैंको को किसी दूसरी जगह अनदेखा करके सरकार को ऋण देगा। इससे राष्ट्रीय आय की स्थिति असमान्य हो जाती है तथा रोजगार पर भी प्रतिकूल असर पड़ेगा।

(iii) ट्रेजरी से निकासी (Drawing from Treasury): वित्तीय घाटे के क्रियान्यवन के लिए सरकार ट्रेजरी से धन ले सकती है। ऐसा करना महंगाई को प्रोत्साहन दे सकता है, क्योंकि जमा किया हुआ धन बाहर बाजार में आएगा। जिससे इसकी पूर्ति बढ़ जाएगी।

(iv) नोट की छपाई (Printing of Money): नोट की छपाई या वित्तीय घाटा संसाधनो को जुटाने में एक कदम हैं, जिससे सरकार को व्यय करने के लिए धन मिलता है। इससे स्फीति बढ़ती है। वित्तीय घाटे से एक लाभ यह है कि महामंदी के समय आय का स्तर तथा रोजगार दोनों मे वृद्धि होती है परन्तु स्फीति

के समय इस पर प्रतिबंध लगाया जाता है पर ऐसा करने से सरकार को लाभ भी मिलता है। कम लागत पर सरकार को अतिरिक्त संसाधन की प्राप्ति होती है। इससे अर्थव्यवस्था का पुर्नजीवन होता है।

13.3.5 **निर्मित स्थिरता प्राप्ति के उपकरण (Built in Stabilizer {BIS}):** निर्मित स्थिरता के उपकरणों से तात्पर्य कर एकत्रीकरण तथा स्थानान्तरित भुगतान व्यय कार्यक्रमों में परिवर्तन ताकि यह कुल मांग पर स्थायीकरण के प्रभाव उत्पन्न कर सके। माइरोन रॉस (Myron Ross) कहते हैं कि निर्मित स्थिरता उपकरण का सार यह है कि इसमें करों का परिवर्तन आल्पित है, स्थानान्तरण अपने आप शीघ्रता से तथा ठीक दशा में हो जाता है। जब आय का विस्तार होता है, तो करों में अपने आप वृद्धि अथवा स्थानान्तरण भुगतानों में कमी अथवा सरकारी व्यय में वृद्धि को सामान्य बना देगा। इसके विपरीत जब आय घटती है तो कर स्वयं घट जाते ह ै तथा स्थानांतरण और सरकारी व्यय अपने आप बढ़ जाता है। इस प्रकार निर्मित स्थिरता में उपकरण आय में गिरावट को कम कर देती है।

इस धारणा को समझने के लिए निम्नलिखित में भेद करना आवश्यक है।

(i) स्वैच्छिक परिवर्तन (ii) निर्मित परिवर्तन (Built in changes)

यद्यपि स्वैच्छिक परिवर्तन व्यय कार्यक्रमों तथा कर सरंचना में परिवर्तन है जिनका निर्णय सरकार द्वारा किया जाता है। जबकि करों और व्ययों में निर्मित परिवर्तन आर्थिक गतिविधि में परिवर्तन के उत्तर में होते हैं, मुख्यतम कुछ राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) के स्तर में तथा देने योग्य ऊँचे में अपरिवर्तित होने पर। इसलिये स्वैच्छिक तथा निर्मित परिवर्तन व्यय और राजस्व दोनो ओर होते है परन्तु परिवर्तन मुख्यतम कर और स्थानान्तरण परिवर्तन होते है।

13.3.6 **मुख्य स्थिरकर्ता (Main Stabilisers):** मुख्य स्थिरकर्ता में निम्नलिखित तीन मुख्य स्थिरकर्ता शामिल हैः

1. **कारारोपण (Taxation):** निर्मित कर परिवर्तन, अर्थव्यवस्था को वस्तुओं और सेवाओं की निजी मांग के आधुनिक उतार–चढ़ाव से स्थिर करती है। व्यक्तिगत आय आदि प्रगतिशील है तो स्वचालित स्थिकर्ता का कार्य करती है। जैसे आय बढ़ती है तो ऊँचे दरों पर कर कटौतिां लगाई जाती है तथा आय के घटने से निम्न दरों पर कटौतियां लगती है। परन्तु इसे एक नम्र स्थिरकर्ता कहा जाता है, क्योंकि करदाताओें को कई कटौतियो एवं छूटो की इजाजत होती है। कार्पोरेट कर को कही अधिक शक्तिशाली और प्रभाव माना जाता है। विशेष परोक्ष कर सम्बन्धित रूप में कम स्थिरी कारक मूल्य रखते है। जबकि यथा मूल्य कर अधिक स्थिरी कारक मूल्य रखते हैं। जबकि यथा–मूल्य कर अधिक स्थिरी कारक मूल्य रखते है।

2. **बेरोजगारी बीमा लाभ (Unemployment Insurance Benifits):** बेरोजगारी बीमा भुगतान अर्थव्यवस्था पर मंदी के समय स्थिरकारी प्रभाव रखते है। बेरोजगारी के बढ़ने के साथ–साथ कुल आय घटती है परन्तु उसी समय, बढ़ती हुई बेरोजगारी क्षतिपूर्ति, आंशिक रूप में क्रय माध्यम की कमी को पूरा कर देती है। दूसरा रोजगार के बढ़ने से आय खुशहाली से बेरोजगारी बीमा भुगतानों में

सिकुड़न आ जाती है। इसलिए ऐसे भुगतान एक इच्छित स्तर पर आय और मांग को स्थिर कर देते हैं परन्तु स्थायीकरण का यह यंत्र पूर्ण–रोजगार के आगे कार्य नहीं कर सकता।

3. **कृषि मूल्य सहायताएं (Agriculture Price Supports):** कृषि मूल्य सहायताएं उस सीमा को सीमित करती है जिस पर मंदी में सिकुड़न पर कृषि मूल्य से नीचे जाता है, किसानों को दी जाने वाली वित्तीय सहायताएं अधिक होगी तथा प्रतिकूल स्थिति में इसके विपरीत होगा। इसलिए कृषि मूल्य और कृषि आय इच्छित स्तर पर बनाये रखी जा सकती है।

13.3.7 निर्मित–स्थिरीकरण का प्रभाव (Effectiveness of Built-in-Stabilization): निर्मित – स्थिरीकरण के प्रभावीपन का माप आय में वास्तविक परिभाषा परिवर्तन की तुलना कोई स्वैचतित बजट प्रतिक्रिया न होने के परिणामों से करने से की जा सकती है। निर्मित स्थिरीकरण का माप निम्नलिखित सूत्र की सहायता से किया जा सकता है :–

$$00 = 1 - \frac{KBIS}{K}$$

KBIS = गुणांक का मूल्य जब निर्मित स्थिरीकरण सम्मिलित है।

K = गुणाक जब बिस (BIS) कारक गुणक की समता से बाहर रखे जाते है।

00 = बिस (BIS) का सूचक

13.3.8 मुख्य करों की लोचपूर्णता (Flexibility of Major Taxes): अनुपातिक दर करों की स्वचालित लोचपूर्णता का निर्धारण केवल कर आधार की कुल राष्ट्रीय उत्पाद में परिवर्तन के प्रति प्रतिक्रिया द्वारा किया जा सकता है। राजस्व की निर्मित लोचपूर्णता पर आधार की लोच के बराबर होती है। प्रगतिशील दरों वाले करों के लिए, एक अतिरिक्त कारक प्रवेश करता है। यह औसत कर दर भी कर आधार में परिवर्तन के प्रति प्रतिक्रिया है। इन दो कारकों के समिश्रण में लोचता तथा कर दर की आधार लोचता विभिन्न करों की राजस्व लोच में पर्याप्त अन्तर बनते हैं।

यदि व्यापार चक्रों के निर्मित लचीलेपन को देखते हैं तो कार्पोरेशन के लाभ कर सर्वोच्च है। ऐसा इसलिये है क्योंकि आधार में जी. एन. पी. से अधिक तीव्रता पूर्ण उतार–चढ़ाव आता है। दूसरी ओर व्यक्तिगत आय और बिक्री जी. एन. पी. के अनुसार ऊपर नीचे होते है अथवा कई बार निचले स्तर पर, ताकि उनकी लोच बन्द रहे अथवा इकाई से नीचे रहे। सम्पति कर, पिछड़े हुए कर निर्धारण के साथ, बहुत कम लोच रखता है।

दीर्घकाल में अनुपातिक दर पर कर लगभग एक लोच गुणक है, क्योंकि कारक भाग तथा उत्पादन के घटकों में अधिक परिवर्तन नहीं होता है। उन्नत दर संरंचना के कारण व्यक्तिगत आय कर में अधिक लोच होती है। जैसे ही बढ़ते हुये उत्पादन से वास्तविक आय बढ़ती है तो लोग उच्च दर कोष्ठकों में आ जाते हैं। मुद्रा स्फीति की प्रक्रिया मं यदि दर कोष्ठताओं को बढ़ते हुये मूल्यों से समायोजित नहीं किया जाता तो यह अधिक तीव्रता से होगा। उसकी अनुपस्थिति में, हमारे आय कर की राजस्व लोच 1970 के मुद्रा स्फीति के दशक में बहुत ऊँची थी

जिसका मूल्य 1.5 था। अतः जी. एन. पी. की प्रत्येक 10 प्रतिशत की वृद्धि में कर राजस्व 15 प्रतिशत से बढ़ता है।

13.3.9 अल्पविकसित देशो में राजकोषीय नीति (Fixcal Policy in Underdeveloped Countries): किसी भी अर्थव्यवस्था में, मुद्रा स्फीति, पूर्ण रोजगार की प्राप्ति के लिए सरकार के पास बजट, कर, सार्वजनिक व्यय, सार्वजनिक कार्य तथा सार्वजनिक ऋण आदि ऐसी विधियां है, जो प्रत्येक स्थिति पर नियंत्रण पाने में सहयोग देती है।

अतः सरकार के दो शक्तिशाली हथियार–सरकारी व्यय तथा कर आदि ऐसे हैं, जो बढ़ावा दे और उपभोग तथा निवेश को प्रोत्साहन मिलें। महामंदी के समय में व्यय करने से मांग में वृद्धि होती है। दूसरी ओर मुद्रा स्फीति के समय में व्यय में कमी स्थिति को नियंत्रण में किया जा सकता है।

इसलिए राजकोषीय नीति आर्थिक विकास तथा आर्थिक स्थिरता के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हसे सकती हैः

1. **संसाधनों का प्रबन्धन (To Manage Resources):** अल्पविकसित देशों में राजकोषीय नीति का उद्धेश्य निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों में संसाधनों का प्रबंध करना होता है। अल्प बचत से राष्ट्रीय आय तथा व्यक्तिगत आय बहुत कम होती है। अतः ऐसे देशों की सरकार जनता पर दबाब डालकर बचत करने को प्रोत्साहित करती है, ताकि निवेश की दर और आर्थिक विकास में वृद्धि हो सकें।

2. **रोजगार के अवसर उपलब्ध करवाना (Provide Employment Opportunity):** अल्प विकसित देशों में जनसंख्या में वृद्धि तेजी से होती है। इसलिए सार्वजनिक व्यय करने से रोजगार के अवसर बढ़ाये जा सकते हैं। ऐसे देशों में सामान्यतः बेरोजगारी अधिक देती है।

3. **विकास दर में तेजी (Accelerate the Growth Rate):** राजकोषीय नीति निजी तथा सरकारी क्षेत्रों में निवेश करके आर्थिक विकास को बढ़ावा देती है। इसलिए राजकोषीय नीति के विभिन्न ढंग जैसे वित्तीय घाटा कर नीति ऋण नीति आदि सम्मिलित रूप से विकास के दर में तेजी ला सकती है। यह राजकोषीय नीति ऐसी हो ताकि उपभोग, उत्पादन तथा धन के वितरण को प्रभावित न कर सकें। विभिन्न क्षेत्रों में संतुलित विकास के लिए उद्योग तथा कृषि पर ध्यान देना आवश्यक है। अतः मूल आवश्यकता तथा पूंजीगत पदार्थो में निवेश करने से आर्थिक विकास सम्भव है।

4. **सामाजिक निवेश को प्रोत्साहित करना (To Encourage Socially Investment):** अल्पविकसित देशों में राजकोषीय नीति उत्पादनशील क्षेत्रों में निवेश के लिए प्रेरित करती है, जो सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से वांछनीय है। इससे अनुपादक क्षेत्रों में निवेश पर रोक लगती हैं, जिससे आर्थिक विकास को बल मिलता है। संचार, यातायात, टेक्नीकल प्रशिक्षण, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि पर निवेश किया जाता है। इससे उत्पादकता में वृद्धि होती है तथा बाजार क्षेत्र बढ़ता है।

5. **पूंजी निर्माण को प्रोत्साहन (Capital Formation):** अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में एक ओर औद्योगिक क्षेत्र तथा जन सुविधाओं में निवेश किया जाता है तथा दूसरी ओर नये उद्योगों को भी प्रोत्साहित किया जाता है। उन्हें नयी तकनीक तथा उत्पादन के नये साधन जुटाये जाते हैं ताकि आर्थिक विकास में

वृद्धि हो सकें। आर्थिक विकास एक गतिशील प्रक्रिया है। इसमें जनसंख्या रूचि, ज्ञान आदि की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसलिए इन विषयों की ओर ध्यान केन्द्रित करके विकास की दी को बढ़ाया जा सकता है।

6. **आर्थिक स्थिरता (Economic Stability):** एक अन्य महत्वपूर्ण योगदान आर्थिक राजकोषीय नीति की स्थिरता प्रदान करना भी है। विकासशील देश अन्तर्राष्ट्रीय उतार–चढ़ाव से बहुत प्रभावित होते है। ऐसे देश प्राथमिक उत्पाद का निर्यात करते हैं तथा निर्माण की गई चीजों का आयात करते है। इस प्रभाव को कम करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में विविधता प्रदान करनी चाहिए। संतुलित विकास के लिए महामंदी के समय घाटे का बजट तथा मुद्रा–स्फीति के समय आधिक्य बजट का प्रावधान सही है।

7. **आय के असमान वितरण को रोकना (Reduction in Inequality):** अविकसित देशों में आय तथा धन के बीच गहरी खाई है। अतः इन देशों में राजकोषीय नीति की मुख्य भूमिका निभाई जाती है। आय तथा सम्पत्ति पर कर, धनी वर्ग द्वारा उपभोग की जाने वाली वस्तुओं पर अधिक कर, जनता द्वारा उपभोग की वस्तुओं पर कर में छूट राहत कार्य पर सरकारी व्यय किसानों के लिए सस्ते दामों पर यंत्रों का प्रबन्ध आदि। जिससे धनी निर्धन विषमता को घटाने का प्रयास किया जाता है।

8. **राष्ट्रीय आय में वृद्धि तथा उचित वितरण (To Increase National Income Income and Proper Distribution):** अल्पविकसित देशों में राजकोषीय नीति का उद्धेश्य राष्ट्रीय आय में वृद्धि तथा आय का समान वितरण करने आदि पर बल दिया जाये। समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता से ही राजनीतिक तथा आर्थिक अस्थिरता आती है। यह किसी भी अर्थव्यवस्था के लिए उचित नहीं है। कुछ धनी लोग सारी सम्पत्ति के मालिक बने रहते हैं, जबकि अधिकांश लोग, जो निर्धन है, ऐसा जीवन व्यतीत करते है जिसमें अभाव के ब्जाय और कुछ नहीं है।

9. **मुद्रास्फीति की प्रवृति पर रोक (To Check the Inflationary Tendencies):** विकासशील देशों की अनेक समस्याओं में गहन समस्या मुद्रा स्फीति हैं, क्योंकि ये देश अधिकाधिक धन निवेश में लगाते है। मांग और आपूर्ति में हमेशा असंतुलन रहता है। क्रय शक्ति बढ़ा देने से मांग में वृद्धि तो हो जाती है किन्तु हठधर्मित (rigidity) के कारण आपूर्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। पूंजीगत वस्तुओं तथा उपभोग की वस्तुएं आय के बढ़ने के साथ तालमेल नहीं हो पाता है।

10. **उपभोग तथा उत्पादन में अनुदान (Subsidy in Consumption and Production):** खाद्य पदार्थो पर आर्थिक अनुदान तथा उत्पादप पर अनुदान देना भी राजकोषीय नीति का महत्वपूर्ण कार्य है। सरकार वितरण व्यवस्था, मूल्य निर्धारण, खाद्यान्न की खरीद तथा बाजार सुविधा उपलब्ध करवा कर किसानों की सहायता करती है। ऐसी करने से किसानों तथा गरीबों की आय में वृद्धि होती है। गरीबी दूर करने हेतु सरकार अनेक योजनाएं जैसे – एन. आर. ई. पी, तथा आर. एस. ई. जी. पी आदि योजनाएं चलाई जा रही है।

11. **उत्पादन को प्रोत्साहन (Incentive to Production):** प्रोत्साहन देने से उत्पादन तथा उत्पादकता में वृद्धि सम्भव है। कर नीति में छूट देकर ऐसा किया जा सकता है। अवांछनीय उत्पादन प्रक्रिया को रोकने के लिए राजकोषीय नीति में

परिवर्तन करने से आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन बढ़ेगा क्योंकि इस तरफ अधिक से अधिक संसाधन लाये जायेंगे।

12. **संतुलित विकास (Balanced Growth):** आर्थिक विकास के संबंध में अधिकांश अल्पविकसित देश असमानता के शिकार होते हैं। इन देशों में निजी क्षेत्र के उद्योग केवल विलासकारी वस्तुऐ पैदा करने में लीन रहते है। ये वस्तुऐं धनी वर्ग के लिए ही उपभोग में आती है। असमान क्षेत्रीय विकास एक गम्भीर समस्या बन जाती है। इस कारण से देश का पिछड़ापन तब तक दूर नहीं होगा; जब तक कि सरकार पिछड़े क्षेत्रों की ओर ध्यान केन्द्रित नहीं करती है। निजी उद्योगों को प्रोत्साहित कर तथा सरकारी क्षेत्रों द्वारा उद्योग लगाकर संतुलित विकास की प्राप्ति की जा सकती है। राजकोषीय नीति द्वारा इस विसंगति को घटाने के लिए नियोजित विकास प्रक्रिया आरम्भ की जा सकती है।

13.3.10 अल्पविकसित देशो में राजकोषीय नीति की विधियां (Methods of Fixcal Policy in Underdeveloped countries): अल्पविकसित देशों मे विकास दर को बढ़ाने हेतु निम्नलिखित प्रक्रिया को अपनाया जाता हैः

1. **कर नीति (Taxation Policy):** अल्पविकसित देशों में सरकार को ऐसी कर नीति अपनानी चाहिए ताकि पूंजी निर्माण को प्रोत्साहन मिलें। उन सभी को कर से राहत मिलनी चाहिए जो बचत करते हैं या जो बचत करने के इच्छुक है। उपभोग पर अंकुश लगाकर बचत को बढ़ावा दिया जा सकता है। यदि प्रगतिशील कर नीति लागू की जाये तो उत्पादक कार्यक्रमों के लिए धन लगाया जा सकता है तथा आर्थिक विकास को प्रेरित किया जा सकता है। यदि ऐच्छिक रूप से लोग बचत नहीं करते तो बचत कार्यक्रम को अनिवार्य बनाया जाना चाहिए। विलासिता तथा उपभोग की वस्तुओं पर अधिक कर लगाना चाहिए। इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि प्रगतिशील कर नीति बचत को प्रभावित न करें। अतः उन लोगो पर प्रत्यक्ष कर अधिक लगना चाहिए जो अनुत्पादक वस्तुओं पर अधिक धन खर्च करते हैं। परोक्ष कर की सीमा भी अधिक होनी चाहिए। कर चोरी को रोकने का प्रयास किया जाना चाहिए क्योंकि ऐसा न करने से काले धन में वृद्धि होती है। अल्पविकसित देशों में कर नीति ऐसी होनी चाहिए, ताकि पूंजी निर्माण को बढ़ावा मिलें, बचत में वृद्धि हो, विलासकारी वस्तुओं का उपभोग कम हो, धन और आय का वितरण समान रूप से हो। ऐसा करने से न केवल आर्थिक स्थिरता बल्कि आर्थिक विकास में भी वृद्धि होगी।

2. **सार्वजनिक व्यय नीति (Public Expenditure Policy):** अविकसित देशों में सार्वजनिक व्यय नीति अपनाई जाती है क्योंकि अक्सर इन देशों में पूंजी का अभाव रहता है। हम केवल निजी क्षेत्रों से ही पूंजी के निवेश की आशा नहीं कर सकतें। सार्वजनिक व्यय विभिन्न क्षेत्रों में लगाया जा सकता है जैसे – यातायात, सिंचाई, बिजली परियोजना, स्वास्थय चिकित्सा और शिक्षा आदि। सार्वजनिक व्यय निम्नलिखित तरीके से आर्थिक विकास में योगदान करता है :–

1. **सार्वजनिक उपक्रमों का विकास (Development of Public Enterprices):** अल्पविकसित देशों में मुख्य उद्योगों का अभाव रहता है। अधिक पूंजी निवेश करने से ही बड़े उद्योग विकसित हो सकते हैं किन्तु निजी निवेशकर्ता ऐसे उद्योगों में निवेश का जोखिम नहीं उठाना चाहते। सरकारी क्षेत्र में ही ऐसे

उद्योगों की स्थापना होती है। सामाजिक कल्याण योजना जैसे – जल आपूर्ति, बिजली घर, पुल, अस्पताल, शिक्षा, आवास आदि।

2. **निजी क्षेत्रों को प्रोत्साहन (Encouragement to Private Sector):** आर्थिक विकास की गति को तेज करने के लिए सरकार को चाहिए कि वह निजी क्षेत्र को प्रोत्साहन दे। राजकोषीय नीति को भूमिका यहां पर विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाती है। इस योजना के अन्तर्गत सरकार को अनुदान कर में छूट तथा तकनीकी ज्ञान उपलब्ध करवाना पड़ता है।

3. **आधारभूत सरंचना में वृद्धि (Creation of Infrastructure):** इसे प्रोत्साहित करके सार्वजनिक निवेश में वृद्धि की जा सकती है। इसका अर्थ है सड़क विकास, रेल विकास, बिजली, यातायात, अस्पताल तथा अन्य जन–सुविधाएं आदि का विकास करना।

4. **सार्वजनिक ऋण नीति (Public Debt Policy):** अल्प विकसित देशों में कर से राजस्व की प्राप्ति बहुत कम होती है, जिनसे इन देशों का विकास सम्भव नहीं है। ऐसे देशों में लोग बहुत गरीब होते है। कर देने मे असमर्थता नहीं होती। इस कारण संसाधनों का होना बहुत आवश्यक है। यह केवल सार्वजनिक ऋण की सुविधा से ही सम्भव हो सकता है। सार्वजनिक ऋण नीति दो प्रकार की होती हैः

(i) आन्तरिक ऋण नीति (Internal Debt Policy): आन्तरिक ऋण देश के अन्दर ही लिए जाते हैं। अल्पविकसित देशों मे इसका उपयोग ऐसा होना चाहिए ताकि विकास प्रक्रिया पर अनुकूल प्रभाव पड़े। लघु बचत योजनाओं से ऋण प्राप्त करना लाभदायक है। आम जनता को आकर्षित प्रलोभन द्वारा लघु बचत की जा सकती है। ग्रामीण क्षेत्रों में इस प्रकार की बचत के अच्छे अवसर उपलब्ध है। इस बचत से पूंजी निर्माण की सम्भावना बढ़ जाती है।

(ii) बाह्म ऋण (External Debt): अल्पविकसित देशों मे आन्तरिक ऋण की मात्रा कम होती है, तो बाह्म ऋण का सहारा लेना पड़ता है। बाह्म ऋण से अल्पविकसित देशों की प्रारंभिक अवस्था के विकास में सहायता मिलती है। यह ऋण विदेशी पूंजी, लकनीकी आदि लाने में भी सहयोग देते है। भुगतान की समस्या के कारण ऐसे ऋण की केवल उत्पादक उद्धेश्यों में ही लगा लेना चाहिए। अतः सार्वजनिक ऋण का आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण स्थान होता है। यह बचत और पूंजी निर्माण में सहायक बनता है तथा स्फीति को रोकता है। संकटकालीन अवस्था से निपटने में सहायक होता है। संसाधनों का वितरण सही होता है। सामाजिक सेवाओं को लाभ मिलता है किन्तु इसके मार्ग मं अनेक रूकावटें होती हैं।

(iii) घाटे की वित्त व्यवस्था (Deficit Financing): राजकोषीय नीति के अन्तर्गत घाटे की वित्त व्यवस्था एक महत्वपूर्ण विधि है। जब आय से व्यय अधिक हो जाता है तब नये करंसी नोट छाप कर वित्तीय घाटा पूरा किया जा सकता है। साधारणतः केन्द्रीय बैंको से ऋण लेकर यह क्रिया की जाती है। इस प्रकार की वित्त व्यवस्था के पक्षधर प्रो० केन्ज थे। अल्प विकसित देशों में आय का स्तर निम्न होता है। इसके कारण कर चुकाने की क्षमता कम होती है। ऐसी समस्याओं का एक मात्र हल वित्तीय घाटा होता है। विकास की प्रक्रिया को गतिशील बनाने के लिए तथा संसाधनों पर नियंत्रण के लिए घाटे की अर्थव्यवस्था को अपनाया जाता

है। विकास कार्य जैसे बिजली योजना यातायात अन्य प्रतिष्ठान आदि भी वित्तीय घाटे पर निर्भर करते हैं। इसमें स्फीति की प्रवृति होती है। इस अवस्था में उत्पादकों को लाभ पहुंचता है। जिसके कारण उत्पादक अधिक उत्पाअन करते है। ये उद्यमी अधिक बचत भी कर सकते है। इस कारण वित्तीय घाटा यदि सीमा के अन्दर रहे तो बेहतर होता है। वरन् यह विनाशकालीन बन जाता है। ऐसी अवस्था में सरकार को वित्तीय घाटे की अर्थव्यवस्था लाभदायक होती है, यदि इसका प्रयोग आर्थिक विकास, आर्थिक स्थिरता तथा पूर्ण रोजगार की प्राप्ति के लिए किया जाए।

13.3.11 राजकोषीय नीति की सीमाएं (Limitations of Fiscal Policy): घाटे की वित्तीय व्यवस्था के क्रियान्यवन में कुछ व्यवहारिक कठिनाइयां तथा सीमाएं है जिनका वर्णन इस प्रकार है:

1. **राजकोषीय नीति की प्रकृति (Nature of Fiscal Policy):** राजकोषीय नीति की सफलता या असफलता इस बात पर निर्भर करती है कि सार्वजनिक अधिकार ने इसकी किस प्रवृत्ति की सरंचना की है तथा भविष्य में किस समय पर इसका प्रयोग किया जाना है। यह कठिन है कि सरकार सही अनुमान लगाकर राजकोषीय नीति के लागू करने का समय निर्धारण कर सकती है।
2. **राष्ट्रीय आय में कटौती (Reduction in National Income):** यदि व्यय आय से अधिक हो तो संतुलित बजट लाभकारी ढंग से अपनाया जा सकता है। यह तभी सम्भव होगा जब करदाताओं की क्षमता से अधिक या समान क्षमता सार्वजनिक व्यय में हो। यदि यह काम है तो संतुलित बजट को अपना कर राष्ट्रीय आय में कमी की जा सकती है।
3. **बेरोजगारी दूर करने के लिए अपूर्ण (Imperfect Measurement for Unemployment):** राजकोषीय नीति पर दोष लगाया जाता है कि यह अल्पविकसित देशों में बेरोजगारी की समस्या को हट कर रखने में असमर्थ है।
4. **पूर्वानुमान (Forecasting):** अर्थव्यवस्था में आर्थिक अस्थिरता कब आयेगी, यह कहना कठिन है। जब तक कि यह तय नहीं हो जाता, कितना राजस्व बढ़ता है, कितना व्यय करना है, बजट किस प्रकार का होगा – तब तक उसकी योजना बनाना अति कठिन है। इस कारण राजकोषीय नीति की सफलता सही पूर्वानुमान पर निर्भर करती है।
5. **आय के पुर्नवितरण पर प्रतिकूल प्रभाव (Adverse Effect on Redistribution of Income):** ऐसा समझा जाता है कि पुर्नवितरण से वास्तविक प्रभाव अनिश्चित हो जाता है यदि कम आय वालों को धन का अधिक भाग दिया जाये तो मांग में वृद्धि होगी, क्योंकि कम आय वाले अधिक खर्च करने की प्रवृत्ति रखते हैं किन्तु इसका विपरीत प्रभाव हो सकता है, यदि अधिक बचत करने वालों के पास आय का अधिक भाग हो जायें।
6. **राजस्व चयन (Fiscal selectivity):** जब नीति सामान्य होती है तथा उसका प्रभाव किसी व्यक्ति विशेष पर नहीं पड़ता तो हम कहते हैं कि राजकोषीय चयन है। सामान्य नीति से बाजार की गतिविधियां सरल हो जाती हैं। अव्यक्तिगत न होने से बाजार की गतिविधियों में व्यवधान पड़ता है। किसी क्षेत्र में बुरा प्रभाव पड़ सकता है, तो किसी अन्य में अच्छा। यह निर्भर करता है कि व्यक्ति इसको किस तरह से अपनाता है।

7. **ऋण पर प्रतिकूल असर (Adverse Effect on Debt):** इस राजकोषीय नीति का कुप्रभाव महामंदी तथा बेरोजगारी के समय में अधिक पड़ता है क्योंकि इस ऋण का उचित प्रबंध नहीं हो पाता है। इसका समाधान केवल वित्तीय घाटा ही है, जिसकी अपनी समस्याएं है।

8. **प्रतिकूल मनोवैज्ञानिक प्रभाव (Adverse Psychological Reaction):** अधिक ऋण लेकर घाटे के बजट से जनता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। सरकार के दिवालियेपन के अफवाह से निवेशकर्ता को हतोत्साहित होना पड़ता है।

9. **अपर्याप्त वित्तीय सुधार (Inadequate Fiscal Measures):** स्फीति के समय अपनाई जाने वाली राजकोषीय नीति में सार्वजनिक व्यय तथा कर में कमी ये दो तत्व रहते हैं। अगर इनमें से किसी एक में कोई अभाव हो तो निश्चय ही आर्थिक अस्थिरता का उदय होगा।

10. **प्रशासनिक समस्याएं (Administrative Problems):** प्रजातंत्र में नीति बहुत अधिक समय लेती है। वैधानिक प्रक्रिया, प्रशासनिक प्रक्रिया आदि विलम्ब से होती है। इस विलम्ब के कारण इस नीति का कोई महत्व नहीं रह जाता।

11. **अल्पविकसित देशों की कठिनाइयां (Problems in Underdeveloped Countries):** अल्पविकसित देशों में राजकोषीय नीति की अनेक कठिनाइयां है। ये देश मुख्य कृषि प्रधान देश होते है। कृषि क्षेत्र पिछड़ा हुए, कम उत्पादक, छुपी हुई बेरोजगारी आदि समस्याएं निरन्तर अर्थव्यवस्था को कमजोर करती है।

13.4 सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector)

सार्वजनिक क्षेत्र भारत जैसे विकासशील देशों में व्यवस्थित एवं नियोजित विकास की प्राप्ति के लिए महत्वपूर्ण है। विकासशील देश प्रायः निर्धनता के कुचक्र में होते है। निर्धनता से छुटकारा पाने के लिए आर्थिक विकास की गति को तेज करने और पूंजी संचित की दर को बढ़ाने की तुरन्त आवश्यकता होती है। निजी क्षेत्र औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक साधन बड़े स्तर पर जुटाने में असमर्थ होता है। दूसरी ओर सार्वजनिक क्षेत्र अर्थव्यवस्था को स्व–निर्भर विकास के मार्ग पर लाने के लिए आवश्यक न्यूनतम संवर्धन उपलब्ध करवाता है। इसलिए यह भली प्रकार से जाना जाता है कि जब तक सार्वजनिक क्षेत्र औद्योगिक विकास के लिए साकारात्मक भूमिका नहीं निभाता तब तक इन देशों में औद्योगिक संरचना की सुदृढ़ नींव नहीं रखी जा सकती है। प्रो० जे. एम. केन्ज के अनुसार अर्थव्यवस्था में राज्य की भागीदारी महत्वपूर्ण है, इसलिए राज्य को उनकी क्रियाशीलता का दायित्व लेना चाहिए। इस प्रकार उनसे न केवल यह आशा की जाती है कि आर्थिक विकास की गति को तेज करने के लिए सरकार को पर्याप्त मात्रा में अतिरिक्त धन जुटाना बल्कि अर्थव्यवस्था के निजी क्षेत्र में संतुलित विकास की प्राप्ति में भी अहम भूमिका होगी।

13.4.1 **सार्वजनिक क्षेत्र के लक्ष्य (Motives of Public Sector):** सार्वजनिक क्षेत्र का विकास कई लक्ष्यों से होता है जो भिन्न–भिन्न स्थानों एव भिन्न–भिन्न अर्थव्यवस्थाओं में भिन्न–भिन्न होते है। विकासशील देशों में उनकी आवश्यकता निम्नलिखित प्रयोजनाओं के लिए होती है।

1. प्रकृति संसाधनों के विकास के लिए।

2. सार्वजनिक उपयोग की सेवाओं का उचित उपयोग करने के लिए।

3. आधारभूत एवं आवश्यक उद्योगों के विकास के लिए।

4. समाज में शोषण को समाप्त करने के लिए।

5. सीमित साधनों के उचित उपयोग एवं गैर–उत्पादकीय व्यय को समाप्त करके राष्ट्रीय हितों की रक्षा करना।

6. आवश्यक वस्तुओं एवं सेवाओं से सम्बन्धित उपभोक्ता के हितो की रक्षा करना।

7. उत्पादक कौशलता को बढ़ाना देना।

8. आकस्मिक चक्रीय उतार–चढ़ावों से बचाव।

9. क्षेत्रीय विकास तथा सहायक उद्योगों का विकास।

10. अर्थव्यवस्था को अस्पष्ट लाभ पहुंचाना जिससे इससे विकास को प्रोत्साहन मिलें।

13.4.2 सार्वजनिक क्षेत्र के उद्धेश्य (Objective of Public Sector): सार्वजनिक क्षेत्र के उद्धेश्य निम्नलिखित हैः

1. अर्थव्यवस्था के विकास के लिए संरचनात्मक सुविधाओं को बढ़ाना।

2. औद्योगिक सरंचना में अन्तर को समाप्त करके तीव्र आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करना

3. एकाधिकार पर रोक तथा शक्ति का कुछ हाथों में केन्द्रीकरण को समाप्त करना।

4. सार्वजनिक वित्त समस्याओं द्वारा सामाजिक नियंत्रण तथा नियमन का अभ्यास करना।

5. धनी एवं निर्धन के बीच का अन्तराल समाप्त करना तथा आय और समपत्ति में असमानताओं को समाप्त करना।

6. भारी निवेश द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार के साधन उत्पन्न करना और बढ़ाना।

7. विदेशी सहायता तथा विदेशी तकनीक पर निर्भरता को समाप्त करना।

8. निर्यात का संवर्धन और आयात का घटाना ताकि भुगतानों के संतुलन पर से दबाव कम हो।

9. तकनीकी ज्ञान में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना।

10. वितरण प्रणाली, दुर्लभ आयात की गई वस्तुओं को निर्धारण को नियन्त्रित करना।

13.4.3 सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का विस्तार (Expansion of Public Sector Enterprises): सार्वजनिक क्षेत्र का विकास, आर्थिक वृद्धि के आधार पर विकास की सीमा पर निर्भर करता है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में संतुलित आर्थिक वृद्धि की प्राप्ति के लिए निजी उद्योग मुख्य भूमिका निभाते हैं जब कि विकासशील देशों में स्थिति बिल्कुल विपरीत हैं क्योंकि कई बार निजी क्षेत्र एक अर्थव्यवस्था की वृद्धि की गति के लिए हानिकारक प्रतीत होता है।

सार्वजनिक क्षेत्र आर्थिक विकास में कई कारणों से सहायक सिद्ध होता है जो कि नीचे दिये गये हैं :–

1. **आर्थिक विकास दर (Rate of Economic Development):** सार्वजनिक क्षेत्र का वृद्धि दर निजी क्षेत्र की तुलना में बहुत तेज है। सार्वजनिक क्षेत्र हर क्षेत्र

में लक्ष्य तक पहुंचने का आवश्यक साधन है। **प्रो० रामानाथन** के अनुसार, ''साधनों को एकत्रित करने के पश्चात् सरकार तथा अन्य नीति निर्माण करने वाली संस्थाएं जैसे योजना आयोग, सामान्य प्रलोभन के अधीन कोष का सरकार के अपने संरक्षण में प्रयोग करना चाहती है। तथा प्रशासन के लिए यह एक असुविधा है कि पहले जो निजी क्षेत्र को धन दें और फिर धन की सुरक्षा एवं उचित प्रयोग के लिए आवश्यक निरीक्षण एवं जांच का प्रबन्ध करें। इसके स्थान पर यह उचित प्रतीत होता है कि संसद एवं प्रशासनिक संस्थाएं स्वयं सार्वजनिक उद्यम आरम्भ करें।''

2. **साधन निर्धारण का ढंग एवं सार्वजनिक उद्यम (Pattern of Resources Allocation and public Enterprises):** सार्वजनिक उद्यमों में अपने वित्तीय प्रबन्धन सम्बन्धी अधिक लोचपूर्णता होती है तथा बदलती बाजार स्थितियों के प्रकाश में अधिक महत्वपूर्ण निर्णय ले सकते हैं। इस सम्बन्ध में **प्रो० रामानथान** ने अपने शब्दों में कहा है, ''सार्वजनिक क्षेत्र के विकास का मुख्य कारण योजनाओं के अन्तर्गत साधनों के निर्धारण के ढंग में निहित है।''

दूसरी पंचवर्षीय योजना के उद्योगों, खानों, मौलिक एवं आवश्यक उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र में विकसित करने पर बल दिया।

3. **क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करना (Removal of Regional Disparities):** भारत में आर्थिक विकास के मार्ग में क्षेत्रीय असमानताएं गम्भीर समस्या बनी हुई हैं इसका अर्थ है देश के विभिन्न भागों में वृद्धि दर में असमानता का होना है। इस कारण अल्पविकसित देशों में सार्वजनिक उद्यमों के विकास की बहुत आवश्यकता है। उदाहरण के लिए इस्पात परियोजनाओं का विकास अपने आस–पास के क्षेत्रों में उद्योगीकरण को बढ़ावा देता है। इसी प्रकार विभिन्न क्षेत्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इससे बड़ी सीमा तक क्षेत्रीय असन्तुलन समाप्त हो सकता है।

4. **अर्थव्यवस्था के विकास के लिए कोष के साधन (Sources of Funds for Economic Development):** अर्थव्यवस्था के विकास के लिए सार्वजनिक क्षेत्र कोष का एक महत्वपूर्ण साधन है। निजी क्षेत्र भी विकास में भूमिका निभाता है परन्तु यह लोगों में असमानताएं उत्पन्न करता है। दूसरी ओर सार्वजनिक उद्यमों के साधन स्पष्ट रूप में पूंजी निर्माण के लिए प्रयोग हो सकते हैं जिससे नये उद्योग स्थापित किये जा सकते है जिससे नये उद्यम स्थापित किये जा सकें तथा अन्य उद्योगों का विकास हो सकें। सार्वजनिक क्षेत्र का लाभ अर्थव्यवस्था की वृद्धि का मुख्य साधन है जबकि निजी क्षेत्र के लाभ अंशधारकों में वितरित कर दिये जाते है।

5. **सामाजिक ढ़ांचा (Socialistic Pattern):** सामाजिक ढांचे का अर्थ हैं, अर्थव्यवस्था की वृद्धि की आवश्यकताओं पर निर्भर आवश्यकता अनुसार सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार। वृद्धि का यह ढंग केवल सार्वजनिक क्षेत्र से संभव है न कि निजी क्षेत्र से। दूसरी पंचवर्षीय योजना के अनुसार, ''समाज के समाजवादी ढंग को राष्ट्रीय लक्ष्य के रूप में अपनाये जाने से तथा नियोजित एवं तीव्र गति विकास के लिए आवश्यक है कि भौतिक एवं युक्ति संगत महत्व वाले उद्योगों या जन उपयोगी सेवाओं के स्वरूप वाले उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र में होने चाहिए। अन्य

उद्योग जो आवश्यक है और जिन्हें वर्तमान स्थितियों में राज्य के निवेश की आवश्यकता है, को भी सार्वजनिक क्षेत्र में होना चाहिए।''

6. **निजी क्षेत्र के दुरूपयोग को रोकना (To take the abuses of Private Sector):** निजी क्षेत्र में उचित योजनाबंदी तथा प्रबन्धन का अभाव होता है जब कि सार्वजनिक क्षेत्र इन बुराईयों से मुक्त है। इस प्रकार यह निजी क्षेत्र के दुरूपयोग को बड़ी सीमा तक रोकता है।

13.4.4 सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की भूमिका (Role of Public Sector Enterprises): स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में योजनाबंदी के आरंभ से सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका बढ़ रही है। निजी क्षेत्र का स्वरूप ऐसा है कि वह ऐसे उद्योग स्थापित करने में असमर्थ हैं जहां पूंजी की अत्यधिक आवश्यकता हो तथा उत्पादन का समय लंबा हो। साथ ही, ऐसी पूंजी पर लाभ की प्राप्ति अनिश्चित होती है। इसके अतिरिक्त वह उद्योग जहां आधुनिक तथा नवीन तकनीक की आवश्यकता होती है वह निजी क्षेत्र के व्यापारियों की पहुंच के बाहर होते है। दूसरी ओर सार्वजनिक क्षेत्र में आर्थिक विकास में प्रभुत्वशाली और गतिशील भूमिका निभानी होती है।

1. **रोजगार को बढ़ाना (Generation of Employment):** सार्वजनिक क्षेत्र रोजगार प्रदान करने वाला व्यवस्थित क्षेत्र है। भारत में लगभग 70 प्रतिशत काम करने वाले लोग सार्वजनिक क्षेत्र में कार्यरत है, दूसरे शब्दों में लगभग 243 लाख रोजगार प्राप्त लोगों में से 194.66 लाख लोग व्यवस्थित सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार प्राप्त किये हुए हैं। बैंको एवं खानों में राष्ट्रीयकरण से सार्वजनिक क्षेत्र की स्थिति में महत्वपूर्ण सुधार हुआ है।

2. **शुद्ध घरेलु उत्पाद (Net Domestic Product):** सार्वजनिक क्षेत्र शुद्ध घरेलू उत्पाद में योगदान दे रहा है। वर्तमान मूल्यों पर मापने से सार्वजनिक क्षेत्र का भाग सन् 1951–52 में कठिनता से 7.5 प्रतिशत था जबकि सन् 1994–95 में यह 23 प्रतिशत तक बढ़ गया।

3. **प्राकृतिक संसाधनों का विकास (Development of Natural Resources):** यह देखा गया है कि अल्प विकसित देश इसलिए निर्धन नहीं होते कि उनके पास प्राकृतिक साधनों की कमी होती है बल्कि इस कारण निर्धन होते है कि उनके प्राकृतिक संसाधनों का पूर्ण विकास नहीं हो पाता। निजी उद्योग इन साधनों का निजी स्वार्थ के लिए उपयोग करते हैं कई बार उनका कम प्रयोग किया जाता है और कई बार दुरूपयोग। इसलिए सार्वजनिक क्षेत्र इन प्राकृतिक संसाधनों का सदुपयोग करके समाज की प्रगति में सहायता करता है। इस सम्बन्ध में तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग अच्छा काम कर रहा है।

4. **संरचनात्मक विकास (Development of Infrastructures):** अर्थव्यवस्था का विकास सरंचनात्मक सुविधाओं पर निर्भर करता है। कृषि, आधारभूत एवं आवश्यक उद्योगों का विकास नहीं हो सकता जब तक कि पर्याप्त सिंचाई, विद्युत, ऊर्जा तथा यातायात सुविधाएं उपलब्ध न हों। विकासशील एवं अल्प विकसित देशों की स्थिति विकसित देशों की तुलना में बहुत कमजोर है। इस प्रकार सरकार देश के विकास की गति को बनाये रखने के लिए सरंचनात्मक सुविधाएं प्रदान करती है, क्योंकि सरंचनात्मक सुविधाओं के उत्पादन पर बहुत व्यय करना पड़ता है जिस

कारण निजी क्षेत्र उपलब्ध करवाने की क्षमता नहीं रखता क्योंकि वह तुरन्त लाभ कमाना चाहता है।

5. **अर्थव्यवस्था पर नियन्त्रण करना (Control over Economy):** पूर्व निर्धारित लक्ष्यों के इछित परिणाम प्राप्त करने के लिए अर्थव्यवस्था पर सरकार का प्रभावी नियंत्रण आवश्यक है योजनाबंदी, प्रबन्धन, राजकोषीय एवं मौद्रिक नीति वृद्धि की प्रक्रिया को आरम्भ करने के यंत्र है परन्तु फिर भी कुछ गंभीर समस्याओं के कारण यह आवश्यकताएं पूर्ण नहीं कर सकते।

6. **सामाजिक कल्याण (Social welfare):** सार्वजनिक क्षेत्र निर्धन एवं कमजोर वर्गो की कल्याण वृद्धि का पर्याप्त उपाय है। निजी एकाधिकारी ऐसे क्षेत्रों में निवेश करने से झिझकते है जहां लाभ के अवसर कम हो। वह उन परियोजनाओं पर बल देते है जहां से उन्हें अधिकतम लाभों की आशा होती है। यहां तक कि निजी उद्योगपति लाभ कमाने का लक्ष्य रखते हुए जन कल्याण को भी अनदेखा कर देती है। परन्तु केवल सार्वजनिक क्षेत्र ही साधारण जनता के हितों का ध्यान रखता है तथा न कोई लाभ न कोई हानि के नियम अनुसार कार्य करता है।

7. **मित्तव्ययताओं की सम्भावना (Possibility of Economics of Scale):** निजी क्षेत्र में प्रतियोगिता की प्रवृत्ति होती है जिसके कारण राष्ट्रीय पूंजी का बड़ा भाग व्यर्थ हो जाता है। इस प्रकार नये उद्योगों की स्थापना के लिए धन का अभाव होता है जिसके परिणामस्वरूप वह मित्तव्ययताओं को प्राप्त करने में असफल हो जाते हैं।

8. **विदेशी आय कमाने का साधन (Sources of Foreign Earnings):** अर्थव्यवस्था के विकास के लिए बहुत अधिक व्यय की आवश्यकता होती है जो कि घरेलु संसाधनों द्वारा। सम्भव नहीं है। अल्प विकसित देशों के निर्यात कुछ आरंभिक उत्पादों तक सीमित होते हैं। इस प्रकार इस संदर्भ में सार्वजनिक उद्यम विदेशी विनिमय कमाने का प्रभावी साधन है।

9. **रक्षा सम्बन्धी उद्योगों पर नियंत्रण करना (Control over Defence Industries):** यहद रक्षा संबंधी साजो–सामान निजी क्षेत्र के अधिकार क्षेत्र में होगें तो यह किसी समय भी देश के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है। आधुनिक समय में सरकार को रक्षा क्षेत्र का नियंत्रण अपने हाथों में रखना चाहिए क्योंकि इस क्षेत्र की व्यवस्था पर बहुत धन खर्च करना पड़ता है।

10. **पूंजी निर्माण (Capital Formation):** अर्थव्यवस्था के विकास के लिए पूंजी निर्माण को एक आधारभूत तत्व माना जाता है। सार्वजनिक क्षेत्र पूंजी निर्माण के महत्वपूर्ण यंत्र माने जाते हैं क्योंकि यह लाभ मूल्य नीति पर आधारित होते है। अन्य शब्दों में यह पूंजी निर्माण के लिए आवश्यक वातावरण उत्पन्न करते हैं जो पूंजी निर्माण को पैदा करता है।

11. **संतुलित क्षेत्रीय विकास (Balanced Regional Development):** देश के आर्थिक विकास की गति को तेज करने के लिए सन्तुलित क्षेत्रीय विकास आवश्यक है। निजी उद्यम पिछड़े क्षेत्रों में तथा जोखिमपूर्ण निवेशों से झिझकते हैं परन्तु यदि सार्वजनिक उद्यम इन क्षेत्रों में स्थापित किये जाते है तो यह आर्थिक विकास की गति को तीव्र कर सकते हैं। जीन इस्पात परियोजनाओं की भिलाई,

रोडकीला और दुर्गापुर में स्थापना, आस–पास के क्षेत्रों के उद्योगीकरण के अच्छे उदाहरण है।

13.4.5 सार्वजनिक क्षेत्र का निष्पादन (Performance of Public Sector): सार्वजनिक उद्यमों के निष्पादन को मापने के लिए विभिन्न विद्वानों ने भिन्न माप दण्ड़ों का सुझाव दिया है। परन्तु बहुत से तत्वों को ध्यान में रखते हुए कोई भी ढ़ंग उचित नहीं प्रतीत होता। सार्वजनिक क्षेत्र के निष्पादन को मापने के लिए निम्नलिखित प्रयास किए गए हैं।

1. (i) केन्द्रीय सरकार के विभाग (ii) सार्वजनिक उद्योग (iii) प्रांतीय सरकारों के व्यापारिक संस्थान
2. रोजगार में भाग।
3. कुल घरेलू बचत और कुल घरेलू पूंजी निर्माण में भाग।
4. केन्द्रीय राजकोष में भाग।
5. सार्वजनिक क्षेत्र का विकास।
6. विदेशी विनिमय की आय में भाग।

1. **(क) केन्द्रीय सरकार के विभाग :–**

I सन् 1991–92 रेलवे योजना के लिए 5,325 करोड़ रुपए का व्यय निर्धारित किया गया था। वर्ष 2000–01 के लिए रेलवे 3087 करोड़ रुपये की जिम्मेवारी को निभाने के लिए पूरी तरह तत्पर है, इसके बिना 2773 करोड़ रुपये में से 300 रुपए की जिम्मेवारी की अतिरिक्तता का भुगतान करने के लिए तैयार है इस प्रकार शुद्ध आय जो पूंजी कोष निवेश का एक हिस्सा है।

भारतीय रेलवे की कुल यातायात प्राप्तियां सन् 1991–92 में 12096 करोड़ रुपयों से बढ़ कर वर्ष 2000–01 में 7837 करोड़ रुपए हो गई जो कि 11.2 प्रतिशत की वृद्धि दर्शाती है। इसी प्रकार सन् 2008–09 में यह राशि 79862 करोड़ हो गई। रेलवे की कुल यातायात 1980–81 में 2624 करोड़ रुपये थी। इसी प्रकार यह राशि 2009–10 में बढ़ कर 586964 करोड़ हो गई। रेलवे की कुल यातायात प्राप्तियों ने सन् 1995–96 में 2811 करोड़ रुपयों से बढ़कर सन् 2000–01 में 3095 करोड़ रुपए हो गई। रेलवे से प्राप्त कुल राजस्व जिस में शुद्ध यातायात प्राप्तियां और शुद्ध फुटकर प्राप्तियों की राशि सन् 1994–95 में 3250 करोड़ रूपए थी। रेलवे ने वास्तव में सामान्य राजकोष में 2670 करोड़ रुपयो का योगदान किया जिसमें 1362 करोड़ रुपयों का लाभांश भुगतान सम्मिलित है तथा 1308 करोड़ रुपए की शुद्ध रेलवे कोष की राशि राजकोष में रखी गई। रेलवे की आय जिसमें शुद्ध यातायात प्राप्तियाँ तथा शुद्ध फुटकर प्राप्तियां सम्मिलित है। भारतीय रेलवे की कार्यशील खर्चे (working expenses) जो सन् 1980–81 में 2537 करोड़ थे जो बढ़कर सन् 2001–02 में 36293 करोड़ में यह राशि 82915 करोड़ रुपये हो गई। लाभांश के रूप में सन् 1980 में (-) 198 deficit जो 2001–02 में लाभांश में परिवर्तन हो गई इसी प्रकार यह राशि सन् 2006–07 में बढ़ कर 13431 करोड़ रुपये हो गई। सन् 2011–12 में यह राशि 3173 करोड़ होने की संभावना हो गई। 15 अगस्त सन् 2002 को माननीय प्रधानमंत्री ने भारतीय रेलवे को वृद्धि को तीव्र मार्ग पर डालने के लिए एक महत्वपूर्ण पहल को स्वीकृति दी। सरकार ने एक नई गैर बजटीय निवेश की योजना भारतीय रेल विकास के लिए

बनाई जिसे राष्ट्रीय रेल विकास योजना कहते है। कुल यातायात प्राप्तियां सन् 2009–10 में 65810 करोड़ रुपयों तक बढ़ गई तथा इसमें 8.5 प्रतिशत की वृद्धि देखी गई।

डाक एवं तार संचार (Post and Telecommunication) : सन् 1996 में व्यापारिक डाक आरंभ की गई ताकि लाभ आधारित सेवाएं जैसे शुल्क सुधर, स्पीड़ पोस्ट सरंचना का विकास, निगमित ग्राहकों के लिए शुल्क युक्त डाक सेवाएं उपलब्ध हो। उचित व्यय नियंत्रण पर विशेष बल दिया जा रहा है ताकि (i) कड़े आर्थिक उपाय लागू किये जा सकें। (ii) बजटीय सीमा में व्यय को सीमित रखा जा सके। (iii) जन शक्ति का तर्क संगत उपयोग सुनिश्चित करना।

वर्ष 2001–02 में 50 उप डाकघर और 5000 ब्रांच डाकघर खोले गए हैं। इसी समय के दौरान 2000 पंचायत संचार सेवा केन्द्र खोलने का प्रस्ताव है। वर्ष 2000–01 में 88 VAST खोले गए ताकि अतिरिक्त 5500 डाकघरों को जोड़ा जा सकें जिस से VAST की कुल संख्या 139 और डाक घरों की 1550 तक पंहुच गई इस प्रकार 1660 से अधिक डाक घरों में 7350 कम्प्यूटर हैं जहां एक महीने में 10 मिलियन लेखा व्यवहार संभाले जाते हैं।

II डाक जीवन बीमा (PLI) ने 2.51 मिलियन पी. एफ. आई पालसियां एकत्रित की है जिससे कुल 10,405 करोड़ रुपयों की राशि का बीमा हुआ है। ग्रामीण डाक जीवन बीमा (RPLI) मार्च 2001 तक के लिए 2898 करोड़ रुपयों की राशि का बीमा हुआ था। सन् 2001–02 में कुल प्राप्ति 5195 करोड़ रुपए की थी और शुद्ध कार्य 4848 करोड़ रुपयों का था। घाटा 1412 करोड़ रुपयों तक घट गया। सन् 2005–2006 में कुल प्राप्तियों की राशि 10,175 करोड़ रुपए की थी तथा कुल कार्य 5374 करोड़ रूपयों का था इसमें 1364 करोड़ रुपयों का घाटा था।

डाक विभाग ने राजस्व निष्पादन और सेवा उपलब्ध करवाने के लक्ष्य को लेकर कई प्रकार की पहल कदमियां आरंभ की है। पारम्परिक सेवाओं के अलावा नई पुरस्कृत योजनाएं आरंभ की है। जैसे स्पीड पोस्ट, नैट पोस्ट, गरीटिंग पोस्ट, मीडिया पोस्ट, ई–बिल पोस्ट और कोर्पोरेट सैक्टर के लिए सीमा शुल्क युक्त डाक सेवाएं। यू. एस. आधार वाली वैस्टरन यूनियन तथा अनेक डाक घरों से समझौते हुए हैं, जो अन्तर्राष्ट्रीय धन स्थानान्तरण सेवाओं में कार्यारत है।

सन् 1992–93 में नये उपलब्ध कराये गये टेलीफोन संयोजनों की संख्या 9.87 लाख सीधी एक्सचेंज लाइनो से थी जो कि सन् 1991–92 से 34.3 प्रतिशत अधिक थी। सन् 1992–93 के दौरान 33.1 टैलेक्स क्नैक्शन जोड़े गये। सन् 1992–93 में तार संचार और महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड का योजना व्यय 4627 करोड़ रुपए था सन् 2000–01 में राजस्व प्राप्तियों के 19814 करोड़ रुपए हो जाने की संभावना थी जबकि 1999–2000 में यह 18257 करोड़ रुपए थी जो कि पिछले वर्ष से यह 8.5 प्रतिशत की वृद्धि थी। आठवीं योजना का प्रयास था कि 75 लाख नये कनैक्शन देने के लिए 93 लाख लाइनों की स्विचिंग केपस्टी जोड़ी जायें, जिस प्रतीक्षा काल में कटौती होगी। सन् 2005–06 के दौरान नये टेलीफोन कनैक्शनों की संख्या 39.8 लाख हो गये जो आगे बढ़कर सन् 2009–10 में 58.3 लाभ होने संभावना थी।

31 मार्च सन् 2004 में कुक टेलीफोन कनैक्शनों की संख्या 54 मिलियन थी जिसमें 48.2 मिलियन स्थिर लाइनें थी और 0.6 मिलियन सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा उपलब्ध करवाये गये सैलुलर कनैक्शन थे और 6.2 मिलियन सैलुलर कनैक्शन निजी क्षेत्र द्वारा दिये गये थे। दिसम्बर सन् 2002 तक 49.8 लाइनों की लैस क्षमता थी और 405 मिलियन कार्यरत कनैक्शनों को देश में 35508 टेलीफोन एक्सचेंज को उपलब्ध करवाये गये।

टेलीकॉम में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय लंबी दूरी की मण्ड़ियां प्रतियोगिता के लिए खोली गई। सन् 2001–02 में 25 नये मौलिक सेवा लाइसैन्स समझौते निजी चालको द्वारा हस्ताक्षर किये गये। 30 नवम्बर सन् 2006 के अन्त तक देष में 1.3 मिलियन पी. सी. ओ. थे। दिसम्बर 2008 के अन्त तक 84742 लाख गांवों को सार्वजनिक टेलीफोन उपलब्ध कराये गये।

(ख) सार्वजनिक उद्योग (Pubic Enterprises):

सन् 1992–93 में, 237 कार्यरत पी. एस.यू. में से 131 लाभप्रद थे जबकि सन् 1991–92 में इनकी संख्या में 133 थें। इन लाभ प्राप्त कर रहे उद्यमों का लाभ सन् 1991–92 में 60797 करोड़ रुपयों से बढ़ कर सन् 1992–93 में 7346 करोड़ रुपए हो गया जो कि 20.8 प्रतिशत वृद्धि दर्शाता है। कुल अतिरिक्त राशि तथा कुल लाभ का लगाई गई पूंजी के अनुपात के सन्दर्भ में पी. एस. यू. की लाभप्रदता में पिछले दस वर्षो से कोई सुधार नहीं हुआ है। तथापि शुद्ध लाभ के कुल निवेशित पूंजी से अनुपात ने सन् 1992–93 में थोड़ा सा सुधार प्रदर्शित किया। 15 बड़े उद्यमों में से, जो एकाधिकार वाले उद्यम हैं तथा मुख्य क्षेत्र में कार्यरत है हानि कमाने वाले है फर्टीलाइजर कार्पोरेशन; देहली ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन वायुदूत, भारत गोल्ड और हिन्दूस्तान शिपयार्ड। सन् 2000–01 में 236 इकाइयां कार्यरत थी जिन्होंने 3061 करोड़ बिलियन रुपयों का लाभ कमाया।

सन् 1994–95 में 99 पी. एस. ई. ने एम. ओ. यू हस्ताक्षर किये। इसके अतिरिक्त 95 पी. एस. ई. के लिए स्वमूल्यांकन प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् सार्वजनिक उद्यमों के विभाग द्वारा इनका परीक्षा हुआ। यह देखा गया कि 95 पी. एस. ई. में से 39 को अति उत्तम माना गया, 26 को बहुत अच्छे तथा केवल 2 को दुर्बल माना गया। 16 का मूल्यांकन शेष है तथा चार की प्रतीक्षा है। परिणाम 1994–95 की तुलना में पर्याप्त सुधार प्रदर्षित करते हैं पी. एस. यू. की लाभ प्रदता ने, कुल आय, कुल लाभ और टैक्स पूर्व लाभ की निवेषित पूंजी के अनुपात के सन्दर्भ में कुछ सुधार दर्षाया है। शुद्ध लाभों के सम्बन्ध में यह सन् 1991–92 मे 2272 करोड़ रुपए था जो कि सन् 1995–96 9578 करोड़ रुपये हो गया। वर्ष 2000–01 में शुद्ध लाभ 15653 करोड़ रुपये था जो वर्ष 2005–06 में और बढ़ कर 37431 करोड़ रुपए हो गया। यह राषि 2008–09 में बढ़ कर 56040 करोड़ हो गई।

(ग) प्रान्तीय सरकार के व्यापारिक उद्यम (State Government Commercial Undertakings): प्रान्तीय सरकार तथा केन्द्र शासित प्रदेषों के विभागीय उद्यम, वनों और खनिजों को छोड़ कर, सभी पिछले कुछ समय से हानि उठा रहे हैं। प्रातों और केन्द्र शासित प्रदेषों के विभागीय रूग्ण उद्यमों ने सन् 1990–91 में 1005 करोड़ शुद्ध हानि उठाई। दो मुख्य गैर–विभाग उद्यम, प्रान्तीय बिजली बोर्ड तथा प्रान्तीय सड़क यातायात निगम अपने कार्यों में बहुत हानियां

उठाते रहे। सभी प्रान्तीय बिजली बोर्डो की इकट्ठी व्यापपारिक हानियां सन् 1990–91 में 1005 करोड़ शुद्ध हानि उठाई।

दो मुख्य गैर–विभागीय उद्यम, प्रान्तीय बिजली बोर्ड तथा प्रान्तीय सड़क यातायात निगम अपने कार्यो में बहुत हानियां उठाते रहे। सभी प्रान्तीय बिजली बोर्डो की इकट्ठी व्यापारिक हानियां सन् 1990–91 में 4169 करोड़ रुपये थी तथा इनके सन् 2008–09 में 5858 करोड़ रुपयों तथा सन् 2011–12 में 7683 करोड़ रूपये तक बढ़ जाने की सम्भावना है। प्रान्तीय सड़क यातायात निगम का निष्पादन भी इसी प्रकार असन्तोषपूर्ण था। व्यापारिक हानियां सन् 1990–91 में 470 करोड़ रुपये थी।

रोजगार में हिस्सा (Share in Employment): सार्वजनिक क्षेत्र के रोजगार की दो मुख्य श्रेणीयां हैं (क) सरकारी प्रषासन, रक्षा तथा अन्य सरकारी सेवाएं जैसे षिक्षा, स्वास्थ्य आदि (ख) केन्द्र, प्रान्त एवं स्थानीय सरकार के स्वामित्त्व वाले सार्वजनिक उद्यम। सन् 1981 में सार्वजनिक उद्यमों में कर्मचारियों की संख्या 191. 38 लाख थी जो कि 31 मार्च सन् 1981 तक 154.84 लाख थी। इनकी संख्या सन् 2011 में 175.48 लाख हो गई। यहां यह कहना उचित होगा कि सार्वजनिक क्षेत्र के कर्मचारियों के 70 प्रतिषत भाग को व्यवस्थित क्षेत्र में रोजगार उपलब्ध करवाता है। समाज में सब से बड़े रोजगार के उद्यम, सामाजिक तथा व्यक्तिगत सेवाएं मार्च 2011 के अन्त तक 90.95 लाख थीं तथा अगला स्थान है – परिवहन, भण्डारण तथा संचार का अतः इन उद्यमों में कर्मचारियों की संख्या 23.84 लाख थी। सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार की स्थिति को तालिका 1 में दर्शाया गया है।

तालिका 1. सार्वजनिक क्षेत्र उद्योग में रोजगार (Lakh, as on 31 march)

		1981	1991	2001	2011
A	**By Branch**				
1.	Central Government	31.95	34.11	32.61	24.63
2.	State Government	56.76	71.12	74.25	72.18
3.	Quasi Government	45.76	62.22	61.92	58.16
4.	Local bodies	20.37	23.13	22.61	20.53
	Total	**154.84**	**190.58**	**191.38**	**175.48**
B	**By Industry**				
1.	Agriculture, hunting etc.	4.63	5.56	5.02	4.77
2.	Mining and Quarrying	8.18	9.99	8.75	10.90
3.	Manufacturing	15.02	18.52	14.30	10.16
4.	Electricity, gas and water	6.83	9.05	9.35	8.31
5.	Construction	10.89	11.49	10.81	8.47
6.	Whole sale and retail trade	1.17	1.50	1.63	1.70
7.	Transport, storage & Communications	27.09	30.26	30.42	23.84
8.	Finance, Insurance, real estate etc.	7.48	11.94	12.81	13.61
9.	Community social & Personal services	73.55	92.27	98.30	90.95

	Total	**154.84**	**190.58**	**191.38**	**172.71**

Sources : Economic Survey, 2013-14.

कुल घरेलु बचत और कुल घरेलु पूंजी निर्माण में भाग (Share in Gross Domestic saving and Gross Domestic Capital Formation) : कुल घरेलु उत्पाद और कुल घरेलु पूंजी निर्माण में सार्वजनिक क्षेत्र के भाग को तालिका 7.1 में संक्षिप्त किया गया है। सन् 1950–51 से सन् 1984–85 के समय के दौरान कुल घरेलु पूंजी निर्माण 10.7 प्रतिशत से बढ़कर 24.1 प्रतिशत हो गया, जबकि सार्वजनिक क्षेत्र का भाग सन् 1950–51 में कठिनता से 3.5 प्रतिशत था तथा 1980–85 के बीच यह सुधर कर 11.8 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार कुल घरेलू बचत के क्षेत्र में ऐसी प्रवृत्ति देखने को मिली। कुल घरेलु बचत में सार्वजनिक क्षेत्र का भाग, सम्पूर्ण योजना काल के दौरान लगभग एक जैसा बना रहा। यह 17 प्रतिषत के बीच था। सातंवी पंचवर्षीय योजना में कुल पूंजी निर्माण 11.7 प्रतिशत था इसने बाजार मूल्य तथा कुल बचत 3.8 प्रतिषत थी।

सन् 1990–91 और 1991–92 की वार्षिक योजनाओं के दौरान कुल बचत में प्रतिशत भाग क्रमशः 10.5 प्रतिशत और 10 प्रतिशत था जब कि बाजार मूल्य पर कुल राष्ट्रीय उत्पाद के प्रतिषत के संदर्भ में इसका भाग वही था। कुल घरेलु बचत के भाग के सम्बन्ध में और बाजार मूल्य पर कुल राष्ट्रीय उत्पाद की प्रशितता क्रमषः 9.4 प्रतिशत और 9.5 प्रतिशत, 1 प्रतिशत और 1.7 प्रतिशत थी। सन् 1995–96 में यह 315179 करोड़ रुपए था जा कि सन् 2000–01 मं 472708 करोड़ रुपयों तक बढ़ गया। सन् 2006–07 में इसके 832040 करोड़ रुपए हो जाने की सम्भावना है। उसी प्रकार सन् 1995–96 में कुल घरेलु बचत 298747 करोड़ रुपए थी जो सन् 2000–01 में 496272 करोड़ रुपयों तक बढ़ गई। सन् 2003–04 तक इसके 1147503 करोड़ रुपयों तक बढ़ जाने की सम्भावना है। यद्यपि पूंजी निर्माण प्रतिशत भाग 6.4 से 7.1 प्रतिशत के बीच ही घूमता रहा। इसके साथ कुल राष्ट्रीय उत्पाद की बाजार मूल्य पर प्रतिशतता विभिन्न अन्तरालों पर 3.7 प्रतिशत से 4.2 प्रतिशत के बीच रही। कुल घरेलु बचत के सम्बन्ध में यह 0.6 से 1.5 के बीच रही, जहां बाजार मूल्यों पर कुल राष्ट्रीय उत्पाद की प्रतिशतता कुल घरेलु बचत के लिए क्रमशः 0.2 और 1.9 प्रतिशत थी।

केन्द्रीय एक्सचेकर का भाग (Share to Central Exchequer): सार्वजनिक क्षेत्र ने केन्द्रीय कोष में लाभांशों, कार्पोरेट टैक्सों, उत्पादन शुल्क, सीमा शुल्क आदि के रूप में शानदार योगदान दिया है। तालिका 2 सन् 1990–91 से लेकर सन् 2008–09 के दौरान केन्द्रीय कोष में किये गये योगदान को दिखाती है। पांचवी

पंचवर्षीय योजना के समय के दौरान सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का केन्द्रीय कोष में योगदान 7985 करोड़ रुपए था। छठी योजना में इसका योगदान 26570 करोड़ रुपए था। यह तालिका दर्शाती है कि योगदान निरन्तर बढ़ रहा है। सन् 1980–81 में यह 19844 करोड़ रुपए था जो सन् 1990–91 में 110607 करोड़ रुपए हो गया। सन् 2000–01 में 305320 करोड़ रुपयों और 2005–06 में 753956 करोड़ रुपयों तक बढ़ गया तथा वर्ष 2009–10 तक इसके 966884 करोड़ रुपए हो जाने की सम्भावना थी।

तालिका 2. सन् 1980–81 से 2012–13 के दौरान केन्द्रीय कोष में सार्वजनिक क्षेत्र का भाग

Year	Income & Corporation	Customs Duties	Union Duties Excise	Sales Tax	Others	Total (Tax & Non Tax)
1980-81	2817	3409	6500	4018	3100	19844
1990-91	10712	20644	24514	17228	13625	110607
2000-01	67460	47542	68526	72874	48918	305320
2010-11	437790	135813	137701	293256	267105	594277
2012-13	563046	181694	193729	423263	384342	2234987

Source : Economic Survey, 2012-13.

सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार (Expansion of Public Sector): योजनाबंदी के युग में सार्वजनिक क्षेत्र का बहुत विस्तार हुआ है। पहली योजना के आरम्भ होते समय कठिनता से 5 सार्वजननिक उद्यम थे जिसमें 29 करोड़ रुपयों का निवेश था। 31 मार्च, 1990–91 के अन्त तक 236 सार्वजनिक उद्यम थे जिसमें 101797 करोड़ रुपयों की पूंजी निवेशित थी। सन् 2006–07 में 239 इकाईयां थीं जिनमें 393057 करोड़ रुपयों की पूंजी निवेशित थीं, इसके पश्चात् सन् 2010 में इनकी संख्या 256 तक बढ़ गई, जिन पर 528951 करोड़ रुपयों का निवेश हुआ। सन् 2006–07 में इसकी संख्या 239 थी जिसमें 393057 करोड़ रुपयों का निवेश था। इसी प्रकार सन् 2008–09 में इनकी संख्या 246 थी जिसमें 528951 करोड़ रुपये निवेष हुए थें।

तालिका 3. सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का सन् 1950–51 से 2010–11 के दौरान विस्तार

Year	No. of Units	Total Investment
1950-51	5	29
1960-61	48	953
1980-81	185	21102
1990-91	236	101797
2000-01	230	324632
2006-07	239	393057
2010-11	247	1543000

Source : Public Enterprices Survey, 2010-11.

विदेशी विनिमय आय में भाग (Share in Foreign Exchange Earning): विदेषी व्यापार के भाग में, सार्वजनिक क्षेत्र अर्थ–व्यवस्था के लिए विदेशी मुद्रा की कमाई तथा व्यय की बचत में सहायक सिद्ध हुआ है। बहुत सा आधुनिक साजो–समान पूंजीगत मशीनरी का आजकल अपने देष में ही निर्माण हो रहा है। जबकि यह

पहले आयात होता था। उदाहरण के लिए, भारतीय रेल निगम, हिन्दोस्तान एन्टीबायोटिक्स लिमिटिड और इण्डियन ड्रगज एण्ड फार्मासिटीकल्ज आदि ने काफी हद तक विदेषी निर्भरता को समाप्त किया है। उसी प्रकार तेल और प्राकृतिक गैस आयोग और भारतीय तेल निगम भी देश की आत्म निर्भरता को बढ़ाने के प्रयत्न कर रहे हैं।

सन् 1974—75 में कुल आय में विदेषी विनिमय का भाग 20.50 प्रतिशत से बढ़ कर 34 प्रतिशत हो गया। सन् 1982—83 में निर्यात का मूल्य कुल निर्यात कमाई का 53.1 प्रतिशत था। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की विदेशी विनिमय से आय सन् 1965—66 में 35 करोड़ से बढ़ कर सन् 1985—86 में 5831 करोड़ रुपए हो गई और सन् 1990—91 में 7496 करोड़ रुपयों तक पहुंच गई। सन् 1995—96 में यह 10345 करोड़ रुपए थी तथा सन् 2008—09 में इसके 103458 करोड़ रुपये हो जाने की सम्भावना थी।

13.4.6 सार्वजनिक क्षेत्र के दोष (Limitations of Public Sector): सार्वजनिक क्षेत्र का राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में बहुत योगदान हैं, परन्तु सार्वजनिक क्षेत्र में सब योजनाओं के अनुसार नहीं चल रहा है। पिछले कुछ वर्षो से बहुत सी सार्वजनिक इकाईयां, कुछ समस्याओं एवं कमियों के कारण बहुत बड़ी हानियों का सामना कर रही है। भारत के सार्वजनिक क्षेत्रों के असन्तोषजनक निष्पादन के लिए जिम्मेदार विविध प्रकार के तत्वों की पहचान की गई है। परियोजना के निर्माण में बहुत बड़ी लागत तथा लंबा समय सार्वजनिक क्षेत्र की कार्य कुषलता में बाधा बनते है। सार्वजनिक क्षेत्र सम्बन्धी अनुमान समिति ने समय—समय पर इस क्षेत्र की कार्य—शैली के सम्बन्ध में कई त्रुटियों की ओर ध्यान आकर्षित किया है। विभिन्न तत्वों में से निम्नलिखित वर्णनणीय है।

1. **कौशल हीन प्रबन्ध (Inefficient Management):** आधुनिक काल में प्रबन्धकीय प्रभाव और कौशलपूर्णता सार्वजनिक उद्यमों का नेतृत्व कर सकते हैं परन्तु दुर्भाग्य से भारत में अनुभवशाली व्यक्ति उपलब्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त सर्वोच्च अधिकारियों को कोई दायित्व और कर्त्तव्य नहीं दिये जाते। वास्तव में उच्च अधिकारियों द्वारा वह उपनिवेश माने जाते है। पुनः वह इन औद्योगिक उद्यमों को भली प्रकार चलाने के योग्य नहीं होते।

2. **स्पष्ट लक्ष्यों का न होना (Lack of Clear Cut Objectives):** सार्वजनिक उद्यमों में सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि इनमें स्पष्ट लक्ष्यों का अभाव रहता है। एक बार इस पर दोष लगाया जाता है कि यह विशेष लक्ष्य की ओर ध्यान नहीं दे रहा। दूसरे समय किसी अन्य लक्ष्य पर बल दिया जाता है। ऐसी संवेदनशील स्थिति में उद्यम द्वारा उसी समय उच्च स्तरीय कौशल प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसलिए सार्वजनिक क्षेत्र सदा इस दुविधा में रहता है कि कौन सी दिशा में कार्य किया जायें।

3. **निर्माण कार्यो के पूरा होने में दूरी के कारण लागत में वृद्धि (Increase in Cost of Constructiondul to Dlay in Completion):** प्रायः यह देखा जाता है कि बहुत सी परियोजनाएं निर्धारित निर्धारित समय के अन्दर पूरी नहीं की जा सकीं, केवल इतना ही नहीं बल्कि इनकी लागत भी बढ़ाई गई। उदाहरण के रूप में ट्राम्बे फर्टीलाइजर प्रोजैक्ट ने पूरा होने में 6—7 वर्ष लगाये जबकि इसके लिए निर्धारित समय 3 वर्ष का था। इसके परिणाम स्वरूप निर्माण की लागत बढ़ गई।

आरम्भ में इसकी लागत 27 करोड़ रुपए निर्धारित की गई थी जो अन्त में सन् 1965 में 40 करोड़ रुपए हो गई। इस प्रकार की देरी अर्थव्यवस्था पर अनावष्यक व्यय है। इस प्रकार अनेक निर्माण कार्यो में देरी एक चिन्ता का विषय बन गया है।

4. **अधिकारी वर्ग द्वारा देरी (Bureaucratic Delay):** सार्वजनिक उद्यम वित्त मन्त्रालय से कोष की स्वीकृति दिलाने में होने वाली देरी की समस्या का सामना कर रहे हैं। इस देरी से लागत में वृद्धि तथा दक्षता कम होती हैं।

5. **कीमत नीति (Price Policy):** निजी क्षेत्र के उद्योग अधिकतम लाभ के लक्ष्य से चलाये जाते हैं तथा कीमतें ऐसे स्तर पर निर्धारित की जाती हैं जहां वह पूरी लागत तथा पर्याप्त लाभ उपलब्ध करवा सकें परन्तु सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में मूल्य निर्धारण लाभ को अधिकतम बनाने के नियम से मार्गदर्शित नहीं होता। वहां सरकार के कुछ नियम अथवा उपनियमों का अनुसरण किया जाता है।

6. **क्षमता का कम प्रयोग (Under Utilization of Capacity):** क्षमता का काम प्रयोग भी कम लाभप्रदता का एक कारण है। सन् 1985–86 के दौरान लगभग 24 प्रतिषत सार्वजनिक उद्यमों में 50 से 75 प्रतिशत क्षमता का उपयोग हो रहा था तथा लगभग 25 प्रतिशत इकाईयों में 50 प्रतिशत कम क्षमता का उपयोग हो रहा था।

7. **त्रुटिपूर्ण नियन्त्रण (Faulty Control):** सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों के निर्बल निष्पादन का एक और कारण इनका त्रिटिपूर्ण नियन्त्रण है इस समय वित्त मन्त्रालय एवं उद्यमों के प्रभारी मंत्री तथा संसद नियन्त्रण करती है। इन उद्यमों पर संसद का नियन्त्रण बहुत कठोर है इस प्रकार इनकी कार्यशैली में अधिक स्वायता की आवश्यकता है। स्वयता की वहां विशेष आवश्यकता होती है। जहां विभिन्न समस्याओं पर उसी समय निर्णय लेते होते है।

8. **श्रम समस्या (Labour Problem):** सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के दुर्बल निष्पादन का एक कारण श्रमिकों की अनुशासनहीनता भी है। श्रमिकों में अनुशासनहीनता तथा प्रबन्धन एवं श्रमिकों के बीच दुर्बल सम्बन्धों ने बड़े सरकारी उद्यमों को कठिनाई में डाला है। दैनिक कार्यो में राजनीतिक हस्ताक्षेप ने प्रबन्ध को निरूत्साहित कर दिया है। बहुत सी उच्च्य नियुक्तियां व्यवसायिक योग्यता के आधार पर नहीं की जाती परन्तु केवल राजनीतिक विचारों के आधार पर की जाती है।

9. **त्रुटिपूर्ण योजना (Faulty Planning):** बहुत सी रिर्पोटो में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की कार्यशैली के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि त्रुटिपूर्ण योजनाबन्दी के कारण यह उद्यम उत्पादन आरम्भ करने में बहुत देर लगा देते है। इसके अतिरिक्त योजना के समय को बहुत कम ध्यान दिया जाता है।

10. **पूंजीगत उद्योग (Capital Intensive Industries):** देश में उद्योगो की स्थापना के लिए सार्वजनिक क्षेत्रों के उत्पादन की बड़े स्तर की तकनीकों को अपनाने का निर्देश गया जो कि गहन पूंजी निवेश की मांग करती है। जिसके परिणामस्वरूप रोजगार पैदा करने की प्राथमिकता और लघु स्तरीय उद्योगों का प्रोत्साहन पीछे रह गया। सार्वजनिक क्षेत्र की अध्ययन टीम ने बहुत से उद्यम देखें जिनमें अत्यधिक पूंजी का निवेश था।

13.4.7 सार्वजनिक क्षेत्र को सुधारने के लिए सुझाव (Suggestion to Improve Working): देश में सार्वजनिक क्षेत्र को उद्यमों की समस्त कार्य प्रणाली को सुधारने के लिए बहुमुखी नीति अपनाई जाये। डॉ० अर्जुन सेन गुप्ता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया जो स्वायता एवं उत्तरदायी बहराने के बीच सन्तुलित तालमेल बैठाने के लिए गम्भीर प्रयास करेगी।

समिति ने निम्नलिखित सिफारिशें की।

1. सार्वजनिक उद्यम पूर्णतया न हों। संसद का नियन्त्रण निरीक्षण एवं मार्ग दर्शन आवश्यक है। इस कार्य के लिए नियन्त्रक कम्पनी एवं सर्वोच्च कम्पनी की स्थापना की जाये।
2. भारत सरकार को नियन्त्रक कम्पनी एवं सर्वोच्च कम्पनी मण्डल से पंच वर्षीय एम. ओ. यू (M.O.U) आपसी समझ के स्मृति पत्र में प्रवेश करना चाहिए।
3. परियोजना की स्वीकृति को कार्यक्रमों के क्रमिक पुनः जीवित करने तथा इसके निवेश से जोड़ना चाहिए।
4. वेतन नीति को उत्पादिकता के साथ जोड़ा जाये, उद्यमों को निश्चित उच्च सीमा के साथ समझौता करने में सहायता दी जायें।
5. उत्पादक आकृति तथा शोध एवं विकास कर्मचारियों को तकनीक के आयात की प्रक्रिया के साथ आरम्भ से संक्षिप्त करना चाहिए।

13.5 समता की अवधारणा (Concept of Eauity)

13.5.1 समता क्या है? (What is Eauity): समता का आदर्श अवधारणा हैं, जिसका धार्मिक, सांस्कृतिक और दीर्घ इतिहास है यह दार्शनिक परम्पराओं (विश्व बैंक, 2005) और समानता, निष्पक्षता और सामाजिक न्याय से संबधित हैं, ऐसे विषय जो राजनीतिक दार्शनिकों के बीच भीषण बहस का विषय है। जैसे, समता के सटीक अर्थ के बारें में बहस, और यह सम्भावना है कि कई धारणाएं 'सही' परिभाषा होने के लिए प्रतिस्पर्धा करेगा। समता की अवधारणा को समझाने के लिए हमें एक विशेष दृष्टिकोण को प्रस्तुत करना चाहिए लेकिन इस विषय को देखने के कई अलग–अलग बिंदुओं से संपर्क किया जा सकता है। यह कहने के बाद, हम मानते हैं कि नैतिक और राजनैतिक के बारें में एक विस्तृत समझ से चित्रण करके दर्शन, समता को समझने के लिए एक मजबूत नींव का प्रतिनिधित्व करती है। यह एक अवधारणा के बुनियादी ढांचे की रूपरेखा, लगभग 'व्याकरण' की तरह, इसका उपयोग कैसे किया जाता है, के आधार पर सिद्धांत के संतुलित और मजबूत अवधारणा के ढांचे को निर्धारित करके, हम आधा करते हैं कि हम कर सकते हैं पाठकों को कम से कम ऐसे उपकरण देते है जिनसे समता के स्तर के बारें में अपना निर्णय लेना चाहिए। तब तक इसमें शामिल मूल्य निर्णयों की हमारी स्वयं की व्याख्या की जा रही है, हम आशा करते हैं कि एक विस्तृत और समता की समावेशी समझ, कुछ सार्थक और पर्याप्त देने के लिए पर्याप्त गहराई बनाए।

13.5.2 समता के तीन सिद्धांत (Three Principles of Equity): जैसा कि ऊपर तर्क दिया गया हैं, समता का कोई एकल व्याख्या नहीं हैं, और माल और सेवाओं के वितरण के लिए सबसे 'प्रासंगिक' सिद्धांतों के रूप में उत्तीर्ण होने और माल की सबसे उपयोगी व्यापक समूह, एक मूल्य निर्णय है। इसलिए, स्पष्ट

रूप से डिलीवरी यंत्र पर संवाद राष्ट्रीय राजनीति और नीतिगत बहस के लिए सर्वोच्च प्राथमिकता होना चाहिए। यह सुनिश्चित करना कि न्याय सार्वजनिक नीति के लिए एक केन्द्रीय चिंता है समता पर वैध नीतियां बनाने में एक केन्द्रीय कार्य है। हालांकि, साहित्य के माध्यम से चल रहे कनवर्जेन्स और सर्वसम्मति के तीन मजबूत क्षेत्र हैं, जो इन वादों के लिए कम से कम एक शुरुआती बिंदु के रूप में सेवा करनी चाहिए। हम समता की सरंचना के आधार के रूप में इन्हें लेते हैं : प्राथमिकता के क्रम में तीन सिद्धांत दिए गए है।

1. **समान जीवन संभावनाएं (Equal Life Chances):** कारकों के आधार पर परिणाम में कोई अंतर नहीं होना चाहिए, जिसके लिए लोगों को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। लोगों में कुछ मतभेद स्वाभाविक अनुचित रूप से सबसे अधिक हड़ताल करते हैं। विश्व विकास रिपोर्ट 2006 (विश्व बैंक, 2005) दक्षिण अफ्रीका में उसी दिन पैदा हुए दो बच्चों के उदाहरण का उपयोग करता हैं : नथबिसेंग काला हैं, पूर्वी केप में से एक ग्रामीण झलाके में एक गरीब परिवार में पैदा हुआ हैं, जिसमें कोई औपचारिक शिक्षा नहीं है; Pieter सफेद हैं, केप टाउन में एक अमीर परिवार में पैदा हुआ, एक माँ ने एक पास के प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय में एक कॉलेज की शिक्षा पूरी की। जिन परिस्थितियों में दो बच्चे पैदा हुए थें, वे अपने जीवन को आकार देने में एक प्रमुख भूमिका निभाते हैं : एनथैबिसेंग के अपने पहले वर्ष में मारने की सम्भावना 7.2 प्रतिशत है और पीटर के 3 प्रतिशत और 68 के मुकाबले यह उम्मीद कर सकती है कि वह 50 रहेंगी; वह औपचारिक स्कूली शिक्षा के एक साल से कम पीटर के 12 को पूरा करने की संभावना है; और वह अपने जीवन भर में काफी गरीब होने की सम्भावना है। प्रारम्भ से, ये बच्चे बेहद भिन्न अवसरों का सामना करते हैं और भलाई को प्राप्त करने और उनकी क्षमता तक पहुँचने की बहुत संभावनाएं होती हैं, उनकी अपनी कोई गलती नहीं होती है।

समता का यह सिद्धांत लोगों की जीवन संभावनाओं से संबंधित है, जो एक संभाव्य अवधारणा है जो वर्णन करता है कि एक व्यक्ति का जीवन कैसे निकल सकता है। इसमें परिणामों की एक विस्तृत श्रृंखला का सर्वेक्षण शामिल है, जैसे कि स्वास्थ्य, धन, शैक्षिक उपलब्धि और लोगों के कल्याण और भलाई के लिए प्रासंगिक अन्य कारक, जैसे कि कैरियर क्षेत्र और टेकनिकीकरण इन परिणामों और लोगों और उनके विभिन्न विशेषताओं के बीच सहसंबंध, लिंक और कारण संबंध खींचा जाते हैं, यह देखने के लिए कि किसी व्यक्ति के संभावित परिणामों पर विभिन्न कारकों का प्रभाव कैसे प्रभावित होता है।

यहां का मुख्य सिद्धांत यह है कि जीवन के कारणों में कोई मतभेद नहीं होना चाहिए जो एक व्यक्ति के नियंत्रण से परे हैं, जिसके लिए हम उन्हें जिम्मेदार नहीं रख सकते। दूसरे शब्दों में, दो लोगों के बीच होने वाले परिणामों में मतभेदों के लिए कोई प्रासंगिक कारण नहीं हो सकता है, जहां उन्होंने एक दूसरे से अलग नहीं किया है। जीवन संभावनाओं की चर्चा उन कारकों से जुड़ी संभावनाओं पर ध्यान केन्द्रित करती है जिनके साथ या जिसमें लोग पैदा होते हैं, और जिसके लिए एक व्यक्ति को काफी स्पष्ट रू‐ से कोई नियंत्रण नहीं है या 5 के लिए जिम्मेदारी नहीं है। इसलिए, जहां परिवार की परिस्थितियों (जैसे आय, निर्भरता अनुपात, पिता का व्यवसाय या माता के शिक्षा के वर्षों), जन्म स्थान और समूह

विशेषताओं (जैसे लिंग, जाति, धर्म) जैसे कारक एक व्यक्ति की संभावित कल्याणकारी परिणामों का निर्धारण करने में एक भूमिका निभाते है, सिद्धांत का उल्लंघन किया गया है। एक बच्चे को अवसरों का धन देते हुए, जबकि दूसरे को अपेक्षाकृत अभाव का सामना करना पड़ता है या तो इसका मतलब है कि ये औचित्य प्रासंगिक नहीं है।

2. **लोगों की जरूरतों के लिए समान चिंता (Equal Concern for People's Needs):** कुछ वस्तुओं/सेवाओं की आवश्यकता होती है और लोगो के स्तर की आवश्यकता के अनुसार अनुपातिक वितरित किया जाना चाहिए। लोगों की आम मानवता का सम्मान करने के लिए बहुत से सामानों और सेवाओं की, जो अक्सर लोगों और सार्वभौमिक मूल्य के लिए महत्वपूर्ण होती हैं, बहुत स्पष्ट और दृढ़ मानदण्डों के आधार पर वितरित की जानी चाहिए। एक दृष्टांत के रूप में, एक डॉक्टर की सर्जरी में दो बीमार बच्चों की कल्पना करें, दोनों एक ही स्थिति के साथ, इलाज की जरूरत के समान। पहले बच्चे को एक पूर्ण परीक्षा दी जाती है और उपचार किया जाता है और एक त्वरित वसूली करता है जबकि दूसरा सप्ताह के इंतजार के लिए किया जाता है, फिर चिकित्सक द्वारा कुछ समय पहले ही देखा गया और अपनी बिमारी का पूरी तरह से इलाज करने के लिए पर्याप्त दवा नहीं दी। दो समान समस्याएं, लेकिन बहुत अलग उपचार। यह अनुचित लगता है : डॉक्टर स्पष्ट रूप से बच्चों की समस्याओं के लिए समान चिंता नहीं दिखाया है, और शायद हमारी प्रवृत्ति यह कहने के लिए होगी कि डॉक्टर ऐसा काम नहीं करेंगे। हालांकि, असमान राज्य चलाने वाले स्वास्थ्य देखभाल कवरेज के साथ इस तरह के कुछ समान स्तर पर होता है।

3. **प्रतिभा (Meritocracy):** निष्पक्ष प्रतियोगिता के आधार पर, प्रयास और क्षमता में अंतर को प्रतिबिंबित करने के लिए समाज और पुरस्कारों की स्थिति वितरित की जानी चाहिए। एक मजबूत वृत्ति कि, जहां लोगों की जीवन में सफलता में अंतर वास्तव में उन कारकों को प्रतिबिंबित करता है जिन पर वे नियंत्रण कर रहे थें, ये सिर्फ यही है। जुड़वा एडम और बेट्टी एक समान विद्यालय में उपस्थित होने के साथ, एक संगीत कार्यक्रम पियानोवादक के रूप में एक जीविका बनाने में समान हितों के साथ कल्पना करो। संगीत विद्यालय छोड़ने पर, बेट्टी प्रत्येक जागने के घंटे अभ्यास, सीखने और पदो के लिए आवेदन करने के लिए समर्पित करती है, जबकि एडम में सुधार करने की कोशिश नहीं करता, पियानों खेलने के अवसरों की तलाश में थोड़े समय व्यतीत करता है और वास्तव में इसके बारें में वास्तव में कुछ करने की इच्छा को कभी नहीं लगता। यदि बेट्टी को एक संगीत कार्यक्रम पियानोवादक के रूप में एक बेहद फायदेमंद, उच्च–प्रोफाइल और अच्छी तरह के भुगतान करने वाला नौकरी मिलना था, और एडम प्रतिभा प्रतियोगिता में कलाकारों के साथ एक साधारण जीवन जीना था, तो उस अंतर्ज्ञान का सबसे अधिक होना चाहिए कि उपलब्धि में यह अंतर है। यदि एडम को बेटी के सामन संगीत कार्यक्रम पियानोवादक नौकरी प्राप्त करने में सक्षम थ, तो न्याय करने वाले पैनल पर मित्र होने के लिए, या क्योंकि न्यायाधीश पर एक आदमी को नौकरी देते हुए खुश थे, तो यह उनकी क्षमताओं पर एक अनुचित प्रतिबिंब होगा या विफल होगा अपने भाई के संबंध में बेट्टी द्वारा किए गए महान त्यागों के लिए सम्मान दें।

समता का यह सिद्धांत समाज के उन पदों से संबंधित है, जो कि योग्य हो सकते हैं, और उन चीजों की तरह जिन्हें लोगों के गुणों के आधार पर विपरित किया जाना चाहिए, और मौके की समानता पर अधिकतर साहित्य का ध्यान केन्द्रित करना है। इन पदों के वितरण के लिए प्रासंगिक मानदण्ड, तो, योग्यता है। इन पदों के लिए आवेदन करने वाले लोग स्थिति के लिए उनकी योग्यता के अनुसार काफी न्यायसंगत होना चाहिए। उनकी विभिन्न उपलब्धियों के प्रति काम करना उनके द्वारा किए गए विकल्पों का एक कार्य होना चाहिए, वे जो भी प्रयास करते हैं, जिन प्रतिभाओं का विकास होता है और नौकरी करने की उनकी क्षमता होती है। इस सिद्धांत का उल्लंघन किया जाता है, जहां लोगों की पारिवारिक पृष्ठभूमि, वंश या उत्त्पति के स्थान जैसे कारकों का मतलब है कि उन्हें विभिन्न प्रकार की नौकरी तक पहुंच है। या, जहां पुरुषों और महिलाओं को नौकरी के लिए अलग–अलग विचार किया जाता है या समान कार्य करने के लािए अलग तरह से भुगतान किया जाता है। या, जहां किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति या राजनीतिक शक्ति पद के लिए उनकी योग्यताओं की तुलना में उपलब्ध अवसरों के प्रकार में अधिक संचालन करती है।

एक सच्चे प्रतिभा सुनिश्चित करने के लिए, दो अतिरिक्त कारकों को पकड़ना होगा।

(i) सबसे पहले, स्पष्ट रूप से सभी लोगों को इन पदों तक पहुंच प्राप्त होनी चाहिए, इस अर्थ में कि सभी लोगों को पदों के लिए पात्र होना चाहिए और स्थिति के प्रकार में कोई भिन्नता नहीं होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, एक में एक प्रशासनिक नौकरी देने सरकारी विभाग का आवेदन उम्मीदवारों की योग्यता के आधार पर किया जा सकता है, लेकिन अगर एक भाषा में केवल एक बहुभाषी समाज में नौकरी का विज्ञापन किया जाता हैं, तो स्पष्ट रूप से सभी को आवेदन करने का मौका नहीं मिलता है।

(ii) दूसरा, प्रयास और क्षमता के आधार पर 'निष्पक्ष' प्रतियोगिता सुनिश्चित करने के लिए कुछ आवश्यकताएं हैं, जैसे सफलता के लिए आवश्यक कौशल और प्रतिभा को विकसित करने के लिए पर्याप्त अवसर वाले सभी लोग। न केवल माल को संबंधित सिद्धांतो के अनुसार वितरित किया जाना चाहिए, बल्कि माल के लिए प्रासंगिक गुणों को प्राप्त करने की संभावना समान रूप से वितरित की जानी चाहिए। यह दूसरा पहलू कई संस्थानों (जैसे मार्केट) के लिए महत्वपूर्ण है, जो लोगों के बीच उचित प्रतिस्पर्धा के विचार पर आधारित होते हैं, जो हमेशा पकड़ नहीं सकते ळे। उदाहरण के लिए, वंचित क्षेत्रों के लोगों को शिक्षा हांसिल करने और सभ्य जीवन जीने के लिए आवश्यक कौशल विकसित करने के लिए अपनी मानव पूंजी का निर्माण करने का मौका नहीं मिलता है। या, 'अपूर्ण' क्रेडिट बाजार अर्थव्यवस्था में पूर्ण भागीदारी से समाज में समूहों को बाहर कर सकता है। यह तत्व 1 सिद्धांत से जुड़ा हुआ है।

13.5.3 विकासशील देशों में समता को बढ़ावा (The Case for Promoting Equity in Developing Countries): हाल ही में, कई स्त्रोतों ने तर्क दिया है कि समता विकास के लिए एक केन्द्रीय चिंता का विषय होना चाहिए : 2005 मानव विकास रिपोर्ट, एक असाधारण दुनिया में सहायता, व्यापार और सुरक्षा (यूएनडीपी, 2005) में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग, असमानता और असमानताओं पर

केन्द्रित है मानव विकास में 2006 की विश्व विकास रिपोर्ट, समता और विकास, विकास के लिए समता के महत्व पर स्पष्ट रूप से केन्द्रित है। एक काफी हालिया कामकाजी (एंडरसन और ओ निइल, 2006) का तर्क है कि एक 'नया समता एजेंडा' उभर रहा है।

तीन मुख्य तर्क है कि समता को विकासशील देशों में सरकारी नीति के लिए केन्द्रिय होना चाहिए और यह अंतर्राष्ट्रीय विकास कलाकारों की एक बड़ी चिंता क्यों होनी चाहिए। सबसे पहले, समता आंतरिक मूल्य हैं। दूसरा, लक्ष्यों (जैसे विकास और अधिकारों के साथ) के अपने संबंधों के माध्यम से, समता कई अवधारणाओं में एक महत्वपूर्ण घटक है जो 'विकास' या 'अच्छे' सामाजिक परिवर्तन का गठन करते हैं। तीसरा, समता अन्य महत्वपूर्ण परिणामों के साथ अपने कारण संबंधों के माध्यम से किसी भी विकास की रणनीति के लिए महत्वपूर्ण है, जो इसे विकास, गरीबी कम करने, सामाजिक सामंजस्य और दीर्घकालिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

1. **आंतरिक मूल्य के रूप में समता (Equity as having Intrinsic Value):** समता आंतरिक मूल्य का है एक आदर्श अवधारणा के रूप में, यह अपने आप में मूल्यवान हैं, अर्थात कुछ 'अच्छा' या 'सही' लोगों को जीवन में और भी अधिक संभावनाएं प्राप्त करने में समाज को बदलने के लिए कार्य करता है समाज समता और न्याय (एंडरसन और ओ निइल, 2006) के लिए क चिंता का हिस्सा हैं। दुनिया भर में किए गए सर्वेक्षण से पता चलता है कि लोगों को निष्पक्ष रूप में निष्पक्षता के रूप में समानता का अनुभव करने के लिए केवल लोगों को समान अंक मिलते हैं। (बैरोस एट अल। 2009)।

नैतिक समानता का सिद्धांत, जिसमें से समता उपजी है, कई धर्मो के लिए एक सामान्य मान्यता है। उदाहरण के लिए, ईश्वर से पहले मनुष्यों की समानता ईसाई धर्म का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है, और तल्मूड और इस्लाम में पाया जा सकता है, जहां यह ग्रीक और यहूदीय तत्वों (गोसापथ, 2007) में आधारित है। यह कई दार्शनिक परम्पराओं में गूँजती है, उदाहरण के लिए होब्स, लोके, रूसों और कांत यह दुनिया भर में कई कानूनी परम्पराओं का एक मौलिक सिद्धांत हैं, और इसे प्राकृतिक मानवाधिकार (आईबीआईडी) के आधार के रूप में देखा जाता है। यह जीवन के कई क्षेत्रों में सिद्धांतों के मार्गदर्शन में सिद्धांतों परिलक्षित होता हैं, उदाहरण के लिए, हिप्पोक्रेटिक शपथ में किसी को किसी के हित के लिए किसी को जानबूझकर हानि नहीं करने और एक मरीज के कल्याण को सर्वोच्च प्राथमिकता के रूप में रखने का वादा शामिल है। एक कानूनी ढांचे में लोगों की नैतिक समानता का सम्मान करते हुए एक निष्पक्ष सुनवाई के अधिकारों को शामिल करने, सिद्धांतों, प्रक्रियाओं और एजेंटों के एक निश्चित सेट को शामिल किया जाता है।

2. **प्रगति के सह–गठन के रूप में समता (Equity as Co-constitutive of Progress):** कुछ अन्य प्रमुख वैरिएबल के साथ, समता 'विकास' और 'सकारात्मक' प्रगति को परिभाषित करने वाली तस्वीर को पूरा करने के मामले में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है नैतिक दर्शन और राजनीतिक मूल्यों के दायरें में, यह स्वतंत्रता–उन्नमुख अवधारणाओं जैसे कि अधिकारों या राजनीतिक स्वतंत्रता के पूरक हैं, जो कि समाज में 'मूल्यवान' के रूप में लोागें को कितना देखते हैं।

समता और अधिकार दोनें लोगों की आम जनता मानवता के शुरूआती बिंदु से ही हैं, लेकिन विरोधभास और मतभेद जो एक दूसरे के पूरक है :

(i) जब समता लोगों को समान 'जीवन संभावना' देने से संबंधित है, तो मानव अधिकार लोगों को अपने 'जीवन विकल्प' बनाने की अनुमति दे रहें है। (ii) वे उस हद तक भी पूरक है जो मानवाधिकार कार्य मुख्यतः नागरिक और राजनीतिक क्षेत्रों पर केंन्द्रित है, जबकि समता सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों (मोरवर्दी, 2008) पर केंन्द्रित है। (iii) जहां कुछ कोर 'पूर्ण' मानकों पर मानव अधिकारों पर ध्यान केंन्द्रित किया गया है।

अधिक महत्वपूर्ण, पूर्ण गरीबी को कम करने में वृद्धि के साथ समता एक गठित भूमिका निभाती है। पूर्ण गरीबी में कमी की दर पूरी तरह से औसत आय में वृद्धि और आय के वितरण में परिवर्तन (बोरगिनॉन, 2004) द्वारा पूरी तरह निर्धारित है। इस रिश्ते में, आय विषमता, जो दृढ़ता से असमानता से संबंधित है, यह निर्धारित करती है कि किस प्रकार विकास और देश–स्तरीय आर्थिक प्रगति गरीबों तक पहुंचती है : विकास की एक निश्चित दर के लिए, उच्च असमानता का मतलब गरीबी में कमी और कम असमानता का मतलब अधिक है।

ये निर्णय लेने के लिए सिद्धांत के दो विपरीत प्रकार का प्रतिनिधित्व करते हैं। पॉलिसी फैसलों का एक बड़ा हिस्सा (निश्चित रूप से आर्थिक दृष्टि से देखने के लिए) इन दो प्रकार के सिद्धांतो (ओकुन, 1975) के बीच एक ट्रेड–ऑफ शामिल होगा। हालांकि, कुछ संकेत है कि अंतर्राष्ट्रीय विकास में निर्णय लेने में समता कम अच्छी तरह से प्रतिनिधितव कर सकती है। साथ ही साथ देशों के बीच बढ़ती असमानता, कई टीकाकारों ने चिंता व्यक्त की है कि एमडीजी को समता और पुनर्वितरण संबंधी चिंताओं (जैसे एंडरसन और ओ निइल, 2006) की अनदेखी करनी पड़ती है, और एक सह–अध्यक्ष जो उन्हें एक साथ रखता है हाल ही में तर्क दिया गया था कि उन्हें देश के भीतर समानता पर जोर देने के लिए पुनः व्याख्या करना चाहिए (वंदेमोटले, जे।, 2009) दक्षिण अमेरिका में नीति निर्माण के चालकों के एक अध्ययन के मुताबिक, एक समस्या के समाधान के लिए सक्ल और सहायक समाधान, नीति प्रसार पर हावी पड़ते हैं।

3. समता के रूप में केन्द्रिय कारण दीर्घकालिक परिवर्तन (Equity as Causally Central to long-term Change): भलाई के उपायों की एक बड़ी रेंज के पार, एक मजबूत सहसंबंध दिखा रहा है कि अधिक समान देशों ने बेहतर प्रदर्शन किया है (जैसे विल्किनसन और पिकेट, 2009, जीवन प्रत्याशा, ट्रस्ट, अपराध, जन्म–भार, एचआईवी और ट्रस्ट के लिए दूसरों के बीच यह दिखा)। इससे भी ज्यादा, सबूतों का एक महत्वपूर्ण निकाय है जो इंगित करता है कि समात में कुशलता और आर्थिक विकास, गरीबी कम करने, सामाजिक सामंजस्य और आवाज पर कई मजबूत प्रभाव पड़ता है। समता और असमान इन मौजूदा विकास लक्ष्यों के साथ या इसके बिना मौजूद हैं, जो कई तरह से अपने प्रक्षेपवक्र को प्रभावित करते हैं। इन अन्य लक्ष्यों को हासिल करने में सहायता के लिए समता को बढ़ावा देने के लिए यह एक मजबूत सहायक भूमिका है।

13.5.4 समता को बढ़ावा देने के लिए बाधाएं और चुनौतियां (Barriers and Challenges to Promioting Equity): समता को बढ़ावा देना आसान नहीं

है इसमें कई चुनौतियां और नीतियों को लागू करने में बाधाएं हैं, जिनमें से संबंधित सरंचनाएं शामिल हैं; राजनीति आसपास की असमानता, निदान और समता को प्राप्त करने की जटिलता और सांस्कृतिक कारकों की परस्पर किया।

1. **शक्ति (Power):** असमान शक्ति संबंध असमानता के केन्द्रिय कारण हैं। यह चुनौतीपूर्ण है : बिजली की गतिशीलता को बदलने के लिए राजनीतिक प्रतिरोध का कारण बन सकता हैं, क्योंकि ये नीतियों को अक्सर असमान संस्थानों से लाभ होता है, जबकि असमान शक्ति संबंधों का भी आशय है कि गरीब और हाशिए वाले कम परिवर्तन ओर मांग को बदलने में सक्षम है। इसलिए, असमानता से निपटने के लिए ही असमानता से प्रतिबंधित है। राजनीतिक अर्थव्यवस्था के परिप्रेक्ष्य को लेकर, बर्ड (2008) उन तरीकों पर प्रकाश डाला, जिनमें अभिजात वर्ग, प्रो–समता सुधारों का विरोध कर सकते हैं, जैसे कि गरीबों की आर्थिक नीतियों के प्रति उदासीनता के माध्यम से या अधिक शक्तिशाली क्षेत्रों द्वारा राजनीतिक एंजेडा का वर्चस्व रहा। संस्थागत कमजोरियों के कारण गरीबों के लिए गैर–गरीबों की नीतियों के लाभ पर कब्जा करने की अधिक संभावना हो सकती है। इन कठिनाइयों के लिए बातचीत करने के लिए, नीतियों को पहले हस्तक्षेप के आसपास की शक्ति और राजनीति की संपूर्ण समझ पर आधारित होना चाहिए और स्थायी संरचनाओं को आगे बढ़ाने के लिए पावर संरचनाओं को स्थानांतरित करने के प्रयासों के साथ पूरक होना चाहिए।

2. **राजनीति (Politics):** समता के कुछ गुणों का आशय है कि प्रो–समता नीतियों के लिए दबाव डालने के लिए राजनीतिक बाधाएं होगी। पुनर्वितरण जैसे नीतियां अक्सर स्पष्ट 'विजेताओं' और स्पष्ट 'हारें' होते हैं, ऐसे 'शून्य राशि' के मुद्दों के साथ अक्सर राजनेताओं द्वारा टाला जाता है नतीजतन, पुनर्वितरण पक्षपातपूर्ण राजनीति का एक बड़ा स्त्रोत हो सकता है, और परिवर्तन को प्रभावित करना मुश्किल हो सकता है (पोंटसन और रुडा, 2008) कुछ संदर्भो में बिना शर्त हस्तांतरण जैसे कार्यक्रम भी मुश्किल हो सकते हैं, जहां उन्हें 'हाथ–आउट' या 'निर्भरता' बनाने के रूप में डाली जा सकती है।

यह हस्तक्षेप के राजनीतिकरण की सेवा कर सकता है। दाताओं और सरकारें अधिक 'तकनीकी' या 'अरोपीकल' लक्ष्यों को पसंद करती हैं, और विकास के हस्तक्षेप के उद्धेश्य के अधिक स्पष्ट रूप से मानक, राजनीतिक या पावर–लादेन संकल्पनाओं से दूर करते हैं। राजनेताओं को सरल, एकीकृत और

3. **निदान की कठिनाईं (Difficulty of Diagnosis):** आंशिक रूप से इस जटिलता से संबंधित समता को मापने में कठिनाई है क्लिंग एट अल (2005) इंगित करते हैं, क्योंकि इसमें कई आयाम और जटिल प्रक्रियाएं शामिल हैं, समता रैकिंग या सरल, मानकीकृत, मात्रात्मक संकेतकों के लिए अनुकूल नहीं है। यह उस समय आती है जब विकास समुदाय के गुट इस तरह के चीजों के पक्ष में 'मजबूती' कर रहें हैं। उदाहरण के लिए, मौके की समानता वितरण को मापने और कई अन्य चर के साथ इन तुलना की जरूरत होती है – अर्थशास्त्रियों ने केवल कुछ देशों में इस तरह के विश्लेषण करना शुरू कर दिया हैं, इसलिए राष्ट्रीय स्तर के डेटा दुर्लभ हैं। इससे भी बदतर, इनमें से बहुत से बड़े पैमाने पर मात्रात्मक सर्वेक्षणों को ठीक से याद किया जा सकता है जो सबसे खराब हैं, क्योंकि सामाजिक बहिष्कार, भेदभाव और प्रतिकूल निगमन छिपाए जा सकते हैं। समता

को बढ़ावा देने मेंएक बड़ी कठिनाई गरीब और हाशिए वाले समूहों का पता लगा रही है और यह सुनिश्चित करने के लिए कि सहायता उन लोगों तक पहुंचती है साथ ही साथ समग्र असमानता का आकलन करने के लिए उपकरणों के विकास पर ध्यान केंद्रित करना, अनुसंधान विधियों की एक विस्तृत श्रृंखला का उपयोग करना महत्वपूर्ण है जो 'कठोर' (केवल मात्रात्मक सांख्यिकीय अध्ययन की ब्जाय) के रूप में गिन सके हैं।

4. **जटिलता (Complexity):** समता एक प्रणाली बहुआयामी सम्पत्ति हैं, जिसमें एक दूसरे पर निर्भर निर्भरताएं ओर बल शामिल हैं और किसी एक द्वारा नियंत्रित नहीं है। क्लिंग एट अल (2005) का तर्क है कि एक संभावित कठिनाई खुले प्रश्न के चारों ओर से घेरेगी कि क्या सहायता प्रणाली जटिल प्रक्रियाओं और परिणामों से निपट सकती है जो बढ़ती समता में शामिल होगी। हालांकि, यह मामला हो सकता है कि विकास की जटिलता को अनदेखा करने का एक ट्रैक रिकॉर्ड है (रामलिंगम और जोन्स, 2008) इस तरह से जुड़े हुए, बहुआयामी प्रक्रियाओं तक पहुंचने का मुद्दा (कम से कम) एजेंडा को आगे बढ़ाना है। यह तेजी से पहचाना जा रहा है कि विकास को उसके लक्ष्य प्राप्त करना महत्वपूर्ण हैं, और इस गड़बड़ी से निपटने के लिए बाधाओं को समझने के लिए काम चल रहा हैं, इस जटिलता से निपटना महत्वपूर्ण है।

5. **संस्कृति (Culture):** यह काफी संभव है कि समता को बढ़ावा देने के लिए सांस्कृतिक बाधाएं मौजूद रहेंगी। होफस्टेड (1991) का तर्क है कि सांस्कृतिक परिवर्तनशीलतार के पाँच आयाम है : व्यक्तिगतवाद बनाम संग्रहवादी, मर्दानगी बनाम स्त्रीत्व, अनिश्चितता से बचने और दीर्घकालिक बनाम अल्पकालिक अभिविन्यास। जाहिर हैं, इनमें से कुछ के पास महत्वपूर्ण बीयरिंग है कि एक देश कितना न्यायसंगत हो सकता है, और समता को बढ़ावा देने के लिए जो गहरे विचारों को चुनौती दी जा सकती है सबसे पहले, मर्दानगी और स्त्रीत्व के बीच सांस्कृतिक संतुलन समता के लिए बेहद प्रासंगिक है, और लिंग के बीच भूमिकाओं का वितरण असमानता का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र हो सकता है। हालांकि, परिवर्तन के दायरे को निर्धारित करने में अन्य आयाम भी अत्यधिक महत्वपूर्ण हो सकते हैं।

13.6 सारांश

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि मुद्रा–स्फीति में नये कर लगाकर तथा मंदीकाल में करों की दरे कम करके तथा नये करों पर विचार स्थगित करके कीमतों को स्थिरता प्रदान की जा सकती है और रोजगार की स्थिति को स्थाई बनाया जा सकता है। इसी उद्धेश्य की पूर्ति के लिए राजस्व सम्बन्धी क्रियाओं का उपयोग आधुनिक सरकारों द्वारा किया जाता है।

सार्वजनिक क्षेत्र का विकास, आर्थिक वृद्धि के आधार पर विकास की सीमा पर निर्भर करता है। पूंजीवादी एवं विकसित देशों में सन्तुलन आर्थिक वृद्धि की प्राप्ति के लिए निजी उद्योग मुख्य भूमिका निभाते हैं जब कि विकासशील देशों में स्थिति बिल्कुल अलग है क्योंकि कई बार निजी क्षेत्र एक अर्थ–व्यवस्था की वृद्धि की गति के लिए हानिकारक प्रतीत होता है।

समता विकास के लिए एक बहुत महत्वपूर्ण मामला है, लेकिन अभी तक नीति और अभ्यास में प्रस्तुत किया गया है। इस पत्र में समता की अवधारणा,

विकासशील देशों में असमानताओं के बारें में चर्चा की गई है और सरकार की नीति और दाता के हस्तक्षेप के माध्यम से समता को बढ़ावा देने के लिए समता और रूपरेखा प्राथमिकताओं पर ध्यान केन्द्रित करने का मामला बना दिया है। समस्या क्या है पर ज्ञान, जो इसे संचालित करता है और इसे संबोधित करने के लिए प्राथमिकताओं को प्रस्तुत किया गया है।

13.7 शब्दावली

राजकोषीय नीतिः सरकार के सम्पूर्ण व्यय, आयकर, उत्पादन तथा रोजगार से राजस्व नीति संबंधित होती है। यह एक यंत्र है जो कि अर्थ व्यवस्था के आर्थिक क्रियाओं को नियमित करता है।

मुद्रा–स्फीतिः मुद्रा स्फीति से अभिप्राय सामान्य कीमत स्तर में होने वाली स्थायी और निरन्तर वृद्धि से है।

मंदीः मंदी में एक ओर तो क्रय शक्ति कम हो जाती है और दूसरा इससे निवेश में भी कमी हो जाती है।

पूंजी निर्माणः पूंजी निर्माण से आशय वित्त के विभिन्न स्त्रोतो से धन जुटाना तथा इसे निवेश के लिए प्रयोग करना है।

कर नीतिः कर नीति एक ऐसा शक्तिशाली यंत्र है जिसके द्वारा आय, उपभोग तथा निवेश में परिवर्तन लाना संभव है।

सार्वजनिक ऋणः गैर–सार्वजनिक संस्थानों, बैंकों से ऋण, ट्रेजरी से निकासी तथा नोटों की छपाई से सार्वजनिक ऋण का प्रबन्ध किया जाता है।

समताः समता से अभिप्राय समान जीवन संभावनाएं, लोगों की जरूरत, तथा प्रतिभा, के लिए समान अवसर से है।

13.8 बोध प्रश्न

रिक्त स्थान को भरिएः–

i) कुछ अर्थशास्त्रियों का विचार हैं कि राज्य का हस्तक्षेप सिर्फ .... के नियमन और नियंत्रण तक ही सीमित होना चाहिए।

ii) राजकोषीय कार्यो को .... भागों में बांटा गया है।

iii) द्वित्तीय विश्व युद्ध और महामंदी (1920–30) के पश्चात् .... विचारधाराओं में विभिन्नता का युग प्रारम्भ हुआ।

iv) सार्वजनिक क्षेत्र की वृद्धि दर निजी क्षेत्र की तुलना में .... है।

v) समता के .... सिद्धान्त है।

vi) समता एक आदर्श अवधारणा के रूप में यह अपने आप में .... है।

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

i) आर्थिक क्रियाओ ii) तीन iii) साम्यवादी तथा पूंजीवादी

iv) तेज v) तीन vi) मूल्यवान।

13.10 स्वपरख प्रश्न

1. राजकोषीय कार्य क्या है? राजकोषीय कार्यो को कितने भागों में बांटा जा सकता है।
2. राजकोषीय नीति क्या हैं? इसके मुख्य उद्धेश्य बताएं।

3. राजकोषीय नीति की विवेचना करें। इसके विभिन्न अंगों पर प्रकाश डालें।
4. क्षति पूरक राजकोषीय नीति से क्या अभिप्राय है? इसके प्रभावीकरण व सीमाएं बताओं।
5. राजकोषीय नीति की विभिन्न प्रणालियों को बताएं जिन्हे अल्प विकसित देश अपना रहें है?
6. सार्वजनिक क्षेत्र क्या है? भारत में इनकी भूमिका दर्शायें।
7. भारत जैसे अल्पविकसित देश में सार्वजनिक क्षेत्र की क्या आवश्यकता हैं?
8. सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में सन् 1991 से हुए सुधारों पर विस्तृत नोट लिखें?
9. समता क्या हैं? इसके सिद्धान्त कौन–कौन से हैं?
10. विकासशील देशों में समता को बढ़ावा देने के लिए आने वाले बाधाओं और चुनौतियों का वर्णन करों।

13.11 सन्दर्भ पुस्तकें

1. राजस्व : डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय
2. लोकवित्त : डॉ0 एस0 के0 सिंह
3. राजस्व : डॉ0 आर0 एस0 कौशिक
4. राजस्व सिद्धान्त एवं व्यवहार : के0 एल0 माहेश्वरी
5. Delton, H : Principles of public Finance
6. Public Finance Theory and Practice : Mehta and Agrawal
7. Shirras, Findley : The Science of Public Finance
8. Hicks, Ursula : Public Finance
9. A.C. Pigou : A Study of Public Finance
10. Taylor P.E. : Economics of Public Finance
11. Raja J Chhelliah : Fiscal Policy in under developed Countries.

इकाई 14 भारत में राजकोषीय सुधार (Fiscal Reforms in India)

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 सुधार के समय आर्थिक स्थिति
14.2.1 कराधान
14.3 राजकोषीय नीति और मध्यम अवधि वित्तीय योजना विश्लेषण
14.3.1 केन्द्र सरकार के वित्तीय सुधार
14.3.2 बाहरवीं वित्त आयोग द्वारा सुझाए गए सरकारी व्यय का पुर्नगठन
14.3.3 भारत में सरकारी उधार के साधन
14.3.4 राज्यों के लिए राजकोषीय सुधार कार्यक्रम
14.3.5 लोकल/स्थानीय के लिए वित्तीय सुधान पहल
14.4 सारांश
14.5 शब्दावली
14.6 बोध प्रश्न
14.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
14.8 स्वपरख प्रश्न
14.9 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्धेश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- राजकोषीय सुधार कि प्रकृति और महत्व को समझ सकें।
- राजकोषीय सुधार के समय आर्थिक स्थिति के बारें में जान सकें।
- राजकोषीय नीति और मध्यम अवधि वित्तीय योजना विश्लेषण कर सकें।
- सरकारी व्यय के पुनर्गठन के बारें में समझ सकें।
- भारत में सरकारी ऋण की व्यवस्था के बारें में जान सकें।
- भारतीय अर्थव्यवस्था पर राजकोषीय सुधार के प्रश्न को जान सकें।
- समता क्या है तथा समता के सिद्धान्तों को समझ सकें।
- समता को बढ़ावा देने के लिए बाधाएं एवं चुनौतियों को जान सकें।

14.1 प्रस्तावना

आजादी के बाद के वर्षो में राजनीतिक और आर्थिक अनिश्चितता के कारण तेज विकास राजकोषीय नीति के प्राथमिक उद्धेश्यों में से एक था। एक नवजात अर्थव्यवस्था में जहां आय स्तर और वित्तीय बचत कम थी। राजकोषीय नीति में विकास को प्रोत्साहित करने के लिए आधारभूत सरंचना के रूप में पूंजी आधार बनाने की जरूरत हुई। इस प्रकार भारत ने 1950 से एक नियोजन प्रक्रिया शुरू की जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र में बड़ी भूमिका निभाई और कराधान को सार्वजनिक वित्त का मुख्य आधार बनाया गया। आजादी के बाद से भारत में राजकोषीय नीति के संचालन पर शुरूआती अनुभवजन्य साहित्य इस प्रकार कराधान के पक्ष में योजनाबद्ध विकास के लिए संसाधन जुटाने की रणनीति में इसके महत्व को दर्शाती है। योजना के युग के दौरान अर्थव्यवस्था की सममूल्य

ऊँचाइयों मानते हुए सार्वजनिक क्षेत्र के साथ सार्वजनिक व्यय पर अध्ययन पांच साल की योजनाओं के प्रदर्शन से काफी प्रभावित थी। राजकोषीय नीति ने 1970 के दशक के दौरान अधिक से अधिक समता और सामाजिक न्याय प्राप्त करने पर ध्यान केन्द्रित किया। इस उद्धेश्य को पूरा करने के लिए कराधान और व्यय दोनों नीतियसों को नियोजित किया गया। उच्च सीमांत कर दरों ने अनुमानित सार्वजनिक व्यय के लिए आवश्यक राजस्व प्राप्त नहीं हुआ। अतिरिक्त कराधान और प्रशासित कीमतों में वृद्धि के चलते संसाधनों की पर्याप्त मात्रा के बावजूद प्राप्तियों में वृद्धि संवितरणों में वृद्धि से पीछे है। इस प्रकार 1980 के दशक के दौरान भारतीय सार्वजनिक वित्त अर्थव्यवस्था और बजट के बीच से संबंध को अस्थिर करने के राजकोषीय नीति के साथ अव्यवस्था की स्थिति में था। इससे लगातार बड़े घाटे हुए जो कि सुविधाजनक प्रतीत होता हैं। इसलिए 1980 के दशकों को राजकोषीय गिरावट का दशक कहा जा सकता है। इस प्रकार अनुभवजन्य अनुसंधान ने अर्थव्यवस्था पर इसके प्रभाव का विश्लेषण करने के लिए घाटे के वैकल्पिक अवधारणाओं का संज्ञान लिया। 1980 के दशक की आर्थिक गलितयों ने बाहरी क्षेत्र को गिरा दिया। जिसके परिणामस्वरू 1991 के व्यापक आर्थिक संकट उत्पन्न हुआ। राजकोषीय व्यवस्था का एक अन्य असंतोषजनक विशेषता मुद्रीकृत घाटे का बड़ा आकार था। जिसने मुद्रास्फीति के दबाव का सामना किया। लगातार और बढ़ते हुए राजस्व घाटे जो प्रणाली में स्थानिक बन गए थें। सरंचनात्मक समायोजन कार्यक्रम और परिणामी आर्थिक सुधारों ने राजकोषीय नीति के अनुभवजन्य विश्लेषण के लिए एक नया आयाम दिया जो कि न केवल राजकोषीय नीति के विभिन्न उपकरणों और ऋण के मुद्दों पर बल्कि एक खुले अर्थव्यवस्था ढांचे के संदर्भ में समग्र राजकोषीय स्थिरता पर भी केंन्द्रित था। हालांकि 1990 के दशक की पहली छमाही में कुछ राजकोषीय सुधार हुआ था। फिर भी दशक के दूसरे छमाही के दौरान इसके निरंतर और सतत राजकोषीय समेकन प्रक्रिया की आवश्यकता को रेखांकित किया गया था।

14.2 सुधार के समय आर्थिक स्थिति (Economic Conditions at Time of Reforms)

14.2.1 कराधान (Taxation)

आजादी के बाद से बनाए गए नियोतिक आर्थिक मॉडल में कराधान का उपयोग निजी खपत को कम करने और संसाधनों को सरकार को स्थानांतरण करने के लिए एक साधन के रूप में किया गया था ताकि इसे आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के प्रयास में बड़े पैमाने पर सार्वजनिक निवेश करने में समर्थ हो सकें। आम तौर पर 1970 के दशक में आय और धन के संबंध में प्रगतिशील के माध्यम से असमानताअें को कम करने के लिए भी इस्तेमाल किया गया था। अप्रत्यक्ष कर ढांचे की गैर–एकीकृत और जटिल प्रकृति और लेवी की लेवी को संदर्भ में बनाई गई समस्याओं और परिणामी कैस्केड्गि प्रभावों ने ध्यान दिया । 1980 के दशक के मध्य में कर सरंचना में सुधार के लिए प्रारंभिक कदम संशोधित मूल्य वर्धित कर (एमओडीवीएटी) को शुरू करने के रूप में लिया गया था। 1990 के दशक के शुरू में टैक्स सुधारों को बढ़ावा मिलें जिसे 1991 के आर्थिक संकट के मद्देनजर शुरू किया गया सरंचनात्मक समायोजन कार्यक्रम था।

अवस्था 1: 1947–1968

स्वतंत्रता के बाद के युग मे टैक्सेशन पॉलिसी नए निवेश के लिए कर प्रोत्साहन के माध्यम से रोजगार को बढ़ावा देने के आर्थिक उद्धेश्यों को प्राप्त करने के लिए तैयार थीं। आय और धन पर प्रगतिशील करों के माध्यम से असमानता को कम करना आयात शुल्क से वृद्धि के माध्यम से भुगतान संतुलन पर दबाव कम करना और खपत के सामान पर उत्पाद शुल्क में कर छूट के माध्यम से मूल्य स्थिर करना। संकीर्ण कर आधार को देखते हुए कर नीति अप्रत्यक्ष करों पर अधिक निर्भर करती है। कर प्रणाली में सुधार करने का पहला व्यापक प्रयास कराधान जांच आयोग (टीईसी 1953–54 अध्यक्ष जॉन मथाई) ने किया था। माभई आयोग द्वारा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर की घटनाओं पर पहली बड़ी आधारिक अध्ययन लाया गया था। 1961 और 1969 के दौरान इसी तरह के अध्ययनों से इसका पालन किया गया, जिसमें मूल अध्ययन के डेरिवेटिव को रोजगार मिला। भारत में कॉरपोरेट आय कर की घटनाओं का स्थानांतरण किया गया था।

अवस्था 2: 1969–1980

इस चरण के दौरान आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के अलावा राजकोषीय नीति का इस्तेमाल आय समानता को कम करने के साधन के रूप में भी किया गया था। शुरूआती वर्षो के दौरान इस उद्धेश्य को प्राप्त करने के लिए कराधान को एक प्रमुख साधन के रूप में इस्तेमाल किया गया था। गरीबी उन्मूलन और अधिक सामाजिक न्याय लाने के अपने उद्धेश्य को पूरा करने के लिए सरकार ने 1970 के दशक के दौरान आयकर दरों को काफी उच्च स्तर तक बढ़ाया – टैक्स में मामूली दर 97 प्रतिशत तक बढ़ी और संपत्ति कर की घटनाओं के साथ–साथ सौ प्रतिशत। धन कर संपदा कर्त्तव्य (विरासत में धन पर) और उपहार कर (धन के हस्तांतरण पर) लगाए गए थें। अप्रत्यक्ष करों को सामानों पर विलासिता या असंवेदनशील माना जाता है।

अवस्था 3: 1981–1990

कच्चे तेल के आयात की कीमतों में तेजी से बढ़ोतरी के कारण यह चरण कम विकास उच्च मुद्रास्फीति और भुगतान संतुलन में गिरावट के कारण गंभीर आर्थिक स्थिति से शुरू हुआ। सरकार ने कर घाटे के माध्यम से अपने घाटे को कम करने की मांग की। बड़ी योजना व्यय के वित्तपोषण को सक्षम करने के लिए नए टैक्स बचत उपकरण पेश किए गए थे। भुगतान समस्या संतुलन को नियंत्रण करने के लिए विदेशी मुद्रा प्रेषण के प्रवाह को प्रोत्साहित करने के लिए गैर–निवासियों को कर रियायतें भी दी गई। सीमा शुल्क के आयात में वृद्धि राजस्व में वृद्धि और घरेलू उद्योग के लिए बढ़ाया गया था। भारत सरकार द्वारा 1985 में घोषित दीर्घकालिक राजकोषीय नीति ने पहली बार वित्तीय नीति के लिए दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत की जिसमें केन्द्र सरकार ने मान्यता दी। 1980 के दशक की सबसे महत्वपूर्ण चुनौती के रूप में बिगड़ते राजकोषीय स्थिति और वित्तीय लक्ष्य को हासिल करने के लिए विशिष्ट लक्ष्य और नीतियां निर्धारित की गईं। इसमें वृद्धि को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक कर नीति में परिवर्तन की दिशा टैक्स प्रणाली की अंतर्निहित रिक्तियां बढ़ाना बेहतर कर अनुपालन सुरक्षित करना और योजना के वित्तापोषण के बोझ के अधिक न्यायसंगत वितरण की दिशा में कदम रखा गया। 1986 में मूल्यवर्धित कर (एमओडीवीएटी) की एक संशोधित प्रणाली को चरणबद्ध तरीके से पेश किया गया था ताकि उत्पादन पर कर के

विरूपणकारी प्रभाव को कम किया जा सकें। टैक्स को कम किया जा सकें और उत्तरोत्तर वृद्धि हो सकें। सीमा शुल्क में सुधार टैरिफ सिस्टम पर वृद्धि की निर्भरता पर ध्यान केन्द्रित करने के ब्जाय मात्रात्मक प्रतिबंधों पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए आयात को विनियमित करने के लिए अधिक राजस्व अर्जित करने के लिए इस चरण में टैक्स सुधार के लिए दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य के लिए पहला वास्तविक प्रयास चिन्हित किया गया जो बदलें में नीति निर्माताओं की ओर से प्राप्ति से प्रेरित था।

अवस्था 4: 1991 बाद

1991 से पहले कर सुधार प्रयासों ने बड़ी विकास योजनाओं को वित्तपोषित करने और अक्विटी को बढ़ावा देने के लिए राजस्व उत्पादकता बढ़ाने पर ध्यान केन्द्रित किया। 1991 के बाद से कर सुधारों को प्रारंभ में 1991 के व्यापक आर्थिक संकट के बाद सरंचनात्मक सुधार प्रक्रिया के एक भाग के रूप में किया गया था। टैक्स रिफॉर्म्स समिति 1991 अध्यक्ष डॉ० राजा जे चेलीहैया की सिफारिशों से मुख्य रूप से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों के पुनर्गठन सरलीकरण और तर्कसंगत बनाने के माध्यम से राजस्व में वृद्धि और कर सरंचना में विसंगतियों को हटाने के उद्धेश्य से सुधार किया। मुख्य कर सुधारों में निजी आयकर पर अधिकतम सीमांत दर को कम करना शामिल है। शहरी क्षेत्रों में संभावित करदाताओं की पहचान और सेवाओं के कराधान की पहचान के लिए छह (एक से छह) आर्थिक मानदंडों के एक सेट को अपनाने प्रत्याशित करों को शामिल करने सहित कई कदमों के माध्यम से कर आधार को चौड़ा करना दोनों घरेलू और विदेशी कंपनियों पर कॉरपोरेट टैक्स दर को कम करने से आयोजित व्यापक रूप से आयोजित घरेलू कंपनियसों पर कर दरों का एकीकरण पूंजी लाभ कर और लाभांश कर के युक्तिकरण गैर–कृषि उत्पादों पर सीमा शुल्क की चोटी दर और उत्पाद शुल्क के युक्तिकरण में प्रगतिशील कमी करना है।

14.3 राजकोषीय नीति और मध्यम अवधि वित्तीय योजना विश्लेषण (Fiscal Policy and Medium Term Fiscal Plan Analysis)

राजकोषीय क्षेत्र में उल्लेखनीय विकास राजकोषीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबंधन (एफआरबीएम) अधिनियम 2003, भारत सरकार द्वारा किया गया था। पांच राज्य सरकारों, जैसे कर्नाटक, पंजाब, केरल, तमिलनाडु और उत्तरप्रदेश ने भी इसी तरह के कानून बनाए है। इसके अलावा, महाराष्ट्र ने अपने विधानसभा में वित्तीय कानून बिल पेश किया है। यह ध्यान रखना जरूरी है कि इन विधानों की संरचना और सामग्री पारंपरिक राजकोषीय कानून से परे जाते हैं, अर्थात, राजकोषीय संकेतक पर सीमा निर्धारित करर्ना विधायकों में प्रवर्तन तंत्र के साथ–साथ वित्तीय संस्थाओं का समर्थन शामिल था ताकि वित्तीय विवेकपूर्णता का पालन किया जा सकें। इसके अलावा, विधाओं ने राजकोषीय पारदर्शिता और मध्यम अवधि के राजकोषीय नीति ढांचे के प्रावधानों को शामिल किया हैं, जो बजट अखंडता और जवाबदेही के लिए महत्वपूर्ण है। एफआरबीएम बिल को अगस्त 2003 में राज्य सभा और लोकसभा द्वारा पारित किया गया था। संस्थागत व्यवस्था राजस्व घाटा, और राजकोषीय घाटे में कमी केंद्र में चरणबद्ध गिरावट 'के उन्मूलन के माध्यम से ध्वनि वित्तीय प्रबंधन को प्राप्त करने की परिकल्पना की गई है। भारतीय रिजर्व बैंक से उधार राजकोषीय कानून के पारंपरिक सुनहरे सिद्धांतों, जैसे घाटे का

नियम, ऋण नियम और उधार नियम, बजट प्रबंधन, मध्यम अवधि की राजकोषीय योजना और वित्तीय प्रदर्शन के मूल्यांकन के संदर्भ में भारत सरकार के कानून लागू किए गए है। अधिनियम के तहत नियम 5 जुलाई, 2004 को अधिसूचित किए गये हैं। राजस्व घाटे को समाप्त करने के लिए टर्मिनल वर्ष को वर्ष 2008–09 तक बढ़ाया गया है ताकि जुलाई में किए गए एफआरबीएम अधिनियम 2003 में संशोधन किया जा सकें।

राज्य के स्तरों पर राजकोषीय कानून व्यापक रूप से केन्द्र के राजकोषीय कानून के अनुरूप हैं, राज्य के विधानों का मुख्य लक्ष्य प्रमुख घाटे के संकेतकों के संदर्भ में घाटे में कमी का लक्ष्य हैं, विशेष रूप से, मध्यम अवधि में राजस्व घाटे को समाप्त करना। इसके वित्तीय लक्ष्यों का उद्धेश्य जीएफडी को कम करना है। जीएफडी–जीएफडीपी अनुपात के संबंध में लक्ष्य 2 प्रतिशत (केरल) से 3 प्रतिशत (कर्नाटक और उत्तर प्रदेश) के लिए भिन्न है। कर्नाटक राजकोषीय उत्तरदायित्व अधिनियम, 2002 जीएफडी/GSDP प्रतिशत पर 2015 तक और गारंटी पर भीतर निर्धारित की स्थापना की है को कम करने के उद्धेश्य कर्नाटक सरकार गारंटी अधिनियम के तहत यह अधिनियम मध्यम अवधि के राजकोषीय योजना के माध्यम से बजट प्रबंधन को भी निर्दिष्ट करता है, । केरल राजकोषीय योजना के माध्यम से बजट प्रबंधन को भी निर्दिष्ट करता है, केरल राजकोषीय उत्तरदायित्व (KFR) अधिनियम, 2003 3007 तक GSDP प्रतिशत और राजस्व घाटा 2 की जीएफडी लक्ष्य निर्धारित किया है के बाद से सरकार पर केरल छत गारंटी अधिनियम 14000 करोड़ रुपये पर बकाया की गारंटी देता है पर एक ऊपरी सीमा के लिए प्रदान करता, केएफआर अधिनियम में गारंटी की कोई अलग व्यवस्था नहीं की गई है। केएफआर अधिनियम सार्वजनिक व्यय समीक्षा समिति की स्थापना के लिए भी प्रदान करता है। जो पिछले साल के दौरान राजकोषीय लक्ष्य से विचलन के कारण बताते हुए एक समीक्षा रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा। पंजाब राजकोषीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबंधन अधिनियम, 2003 में जीएफडी के विकास की दर मामूली रूप से 2 प्रतिशत प्रति वर्ष है, जब तक कि जीएफडी जीएसडीपी का 3 प्रतिशत से कम नहीं है। राजस्व घाटे के अनुपात में कम से कम राजस्व प्राप्तियों में कटौती करता है । राजस्व संतुलन हासिल होने तक प्रत्येक वर्ष 5 प्रतिशत अंक दिए जाते है। इस अधिनियम में 2007 तक जीएसडीपी का 40 प्रतिशत ऋण चुकाया गया है और पिछले साल के राजस्व प्राप्ति के 80 प्रतिशत के लिए दीर्घावधि ऋण पर बकाया राशि को कैप करता है। यह अधिनियम मध्यम अवधि के राजकोषीय योजना और वित्तीय पारदर्शिता के लिए प्रदर्शन और उपायों की तिमाही समीक्षा प्रदान करता है। तमिलनाडु फिस्कल रिस्पॉन्सिबिलिटी एक्ट, 2003 का उद्धेश्य जीएफडी को 2.5 फीसदी जीएसडी पर रखना है और राजस्व घाटे का अनुपात 2007 तक 5 फीसदी पर राजस्व प्राप्तियों के अनुपात में है। यह अधिनियम कुल राजस्व प्राप्तियों में 100 फीसद बकाया गारंटी देता हैं पूर्ववर्ती वर्ष या जीएसडीपी का 10 प्रतिशत, जो भी कम हो, पारस्परिकता के लिए मध्यकालिक वित्तीय योजना और उपायों के अतिरिक्त, अधिनियम में यह भी कहा गया है कि एक स्वतंत्र बाहरी संस्था अनुपालन के लिए आवधिक समीक्षा करेगी। इस अधिनियम के बाद से 2004 में संशोधन किया गया है, जिसमें राजस्व घाटे के लिए टर्मिनल लक्ष्य उठाया गया है 2.5 प्रतिशत से 3.0 प्रतिशत तक जोखिम–भारित गारंटी भी पूर्ववर्ती

वर्ष में कुल राजस्व प्राप्तियों का 75 प्रतिशत या जीएसडीपी का 7.5 प्रतिशत, जो भी कम हो, पर बंद किया गया है। उत्तर प्रदेश राजकोषीय उत्तरदायित्व अधिनियम, 2004 में जीएफडी को 2009 तक अधिकतम 3 प्रतिशत तक सीमित करने की बात कही गई है। इसी अवधि के दोरान राजस्व घाटा शून्य हो जाएगा। कुल देनदारियों को 2018 तक जीएसडीपी का 25 प्रतिशत से कम किया जाएगा। महाराष्ट्र वित्तीय राजनैतिकता और बजट प्रबंधन विधेयक, 2002 में निर्दिष्ट है कि राजस्व व्यय नियत दिन से पांच वर्ष की अवधि के बाद राजस्व प्राप्तियों से अधिक नहीं होगा। खर्च को नवीनतम राजस्व अनुमान के अनुसार समायोजित किया जाएगा और गारंटी के कारण जोखिम की राशि अपेक्षित राजस्व प्राप्ति के 1.5 प्रतिशत के भीतर होगी।

14.3.1 केन्द्र सरकार के वित्तीय सुधार (Fiscal Reforms of the Central Government):

(i) राजस्व सुधार (Revenue Reform)

सार्वजनिक राजस्व में वृद्धि के लिए मुख्य फोकस कराधान सुधारों पर बनी हुई है। कर प्रणाली में सुधार करने का पहला व्यापक प्रयास 1953 में कराची जांच समिति राव 2000 द्वारा किया गया था। यह दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956–60) के लिए पृष्ठभूमि प्रदान करता था, और उन्हें बचत और निवेश के स्तर को बढ़ाने, निजी क्षेत्र से सार्वजनिक क्षेत्र में संसाधन स्थानांतरित करने और एक वांछित राज्य को प्राप्त करने के लिए विभिन्न उद्धेश्यों को पूरा करना आवश्यक था। निजी आयकरों के संबंध में सबसे कठोर और दृश्यमान परिवर्तन व्यक्गित और कॉर्पोरेट आयकरों में कमी में देखा गया है। निजी आयकरों के मामलें में, वांछित राज्य को हासिल करने का प्रयास पुनर्वितरण ने नीति निर्माताओं को डिजाइन करने का कारण सीमांत दरों के साथ आयकर प्रणाली कर चोरी, पहचान की कम लाभप्रदता और अप्रभावी कानूनी व्यवस्था जो कि एक के भीतर जुर्माना लगाने में असफल रही। 1999–98 के बाद से 1993 में 40 प्रतिशत और आगे 30 प्रतिशत। ''छह से एक'' नामक एक नई योजना को पेश किया गया था। 1998–99 के दौरान टैक्स नेट को चौड़ा कर दिया। ''इस योजना के तहत एक एक घर एक टेलीफोन मोटर वाहन रखने वाला व्यक्ति विदेशी यात्रा पर खर्च क्रेडिट कार्ड धारण और महंगे क्लबों की सदस्यता आयकर रिटर्न दर्ज करने के लिए उत्तरदायी थी। यह योजना 1997–98 के बजट में 12 जिलों में शुरू की गई और 1998–99 में 35 जिलों 1999–2000 में 54 जिलों और 2000–01 में 133 जिलों तक विस्तारित किया गया। भरतीय संघीय परिदृश्य में केन्द्र से राज्यों में स्थानान्तरण व्यवस्था सरकार के दोनों स्तरों के संसाधनों पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है। राज्यों को हस्तांतरित केन्द्र सरकार की सक्ल राजस्व प्राप्तियां चोटी तक पहुंच गई।

एफसी – 9 का पुरस्कार अवधि के दौरान 40.33 प्रतिशत का स्तर (1989–1995)। हालांकि 1979 से भारत सरकार की सक्ल राजस्व प्राप्तियों का 35 प्रतिशत से 40 प्रतिशत राज्य सरकारों को स्थानांतरित कर दिया गया है। केन्द्रीय स्थानान्तरण एफसी–एक्स और एफसी–इलेवन द्वारा लगभग 35 प्रतिशत तक गिर गया।

जुलाई 2002 में संसद को अनुदान की पूरक मांगो के पहले बैच को पेश करने के समय, वित्त मंत्री ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों के सरलीकरण और युक्तिसंगत

बनाने के लिए उपायों की सिफारिश करने के लिए दो कार्यबलों की स्थापना करने का प्रस्ताव किया था। तदनुसार, सितंबर 2002 में विजय केलकर की अध्यक्षता में दो कार्यबल की स्थापना की गई, वित्त मंत्री और कंपनी मामलों के सलाहकार। डायरेक्ट टैक्स पर टास्क फोर्स ने 2 नवंबर 2002 को सरकार को अपना परामर्श पत्र प्रस्तुत किया। अप्रत्यक्ष करों पर चर्चा पत्र 25 नवंबर, 2003 को प्रस्तुत किया गया था। ये परामर्श पत्र सार्वजनिक कर दिया गया था ताकि कर नीति पर सूचित चर्चा की सुविधा मिल सकें। प्रत्यक्ष करों पर मुख्य सिफारिशें व्यक्तिगत आयकर की छूट सीमा, छूट की युक्तिसंगतता, लंबी अवधि के पूंजीगत लाभ के लिए रियायती उपाय का उन्मूलन और संपत्ति कर के उन्मूलन से संबंधित हैं। अप्रत्यक्ष करों के संबंध में, मुख्य सिफारिशें कर आधार को चौड़ा करने, छूट, विस्तार, सेवा कर की कवरेज में विस्तार से संबंधित हैं। प्रत्यक्ष करों पर कार्य बल को निम्नलिखित नियमों का संदर्भ सौंपा गया था। छूटों को कम करने, विसंगतियसों को दूर करने और इक्विटी में सुधार करने के लिए प्रत्यक्ष करों का तर्कसंगत और सरलीकरण करदाता सेवाओं में सुधार, ताकि अनुपालन लागत को कम किया जा सकें, पारदार्शिता प्रदान करें।

Revenue Transfers from Centre to States as Percentage of Gross Revenus Receipts of the Centre

Years	Transfers
FC-VII (1979-1984)	38.11
FC-VIII (1984-1989)	37.86
FC-IX (1989-1995)	40.33
FC-X (1995-2000)	35.79
FC-XI (2000-2005)	35.27
FC-XII (2005-2010)	38.51

Note : ये राजस्व खाते स्थानान्तरण है। एफसी–बारहवीं से पहले, योजना सहायता में भी एक ऋण घटक था, जो सामान्य श्रेणी के राज्यों के लिए 70 प्रतिशत से कुल सहायता के हिस्से के रूप में भिन्नता है, विशेष वर्ग के राज्यों के लिए 10 प्रतिशत। 1999–2000 से पहले, छोटे बचत योजनाओं में शुद्ध संग्रहों के केन्द्रों पर केन्द्र द्वारा उधार दिया गया था।

स्त्रोत : बारहवें वित्त आयोग (2005) और तेरहवें वित्त आयोग (2010) की रिपोर्ट।

स्थानान्तरण की संख्या बढ़कर 38.51 प्रतिशत हो गई। हालांकि, एफसी–एक्स, एफसी–इलेवन और एफसी–बारहवीं के दौरान केन्द्र के सक्ल राजस्व प्राप्ति का प्रतिशत हिस्सा एफसी–9 के दौरान कम रहा है। इसलिए, सकल राजस्व प्राप्तियों से स्थानान्तरण का हिस्सा कम करकें केन्द्र सरकार अपनी वित्तीय स्थिति को सुधारने की कोशिश कर रही है। दूसरी तरफ, इस तरह के बदलाव राज्य सरकारों की वित्तीय स्थिति बिगड़ते है।

स्थानांतरण वित्त आयोगों के माध्यम से प्रमुख हैं, कुल केन्द्रीय के लगभग 60 से 70 प्रतिशत के लिए लेखांकन राज्यों में स्थानान्तरण और समय के साथ भिन्नता

दिखाई है वित्त की हिस्सेदारी में वृद्धि हुई है । पुरस्कार में 60.13 प्रतिशत से आयोग हस्तांतरण पुरस्कार अवधि में एफसी–आठवीं की अवधि 69.38 प्रतिशत थी एफसी इलेवन। यह एफसी–बारहवीं के पुरस्कार अवधि में 68.03 प्रतिशत नीचे चला गया। वित्त आयोग के हस्तांतरण के भीतर, अनुदान के हिस्से में वृद्धि हुई हैं, खासकर एफसी–इलेवन और एफसी–बारहवीं। एफसी बारहवीं का मानना था कि अनुदान बेहतर लक्षित किया जा सकता है। 2005–10 में एफसी–8 के मुकाबले 35.91 प्रतिशत से 28.55 प्रतिशत की गिरावट आई है। यह योजना अनुदान की सरंचना में बदलाव के साथ–साथ सीएसएस (केन्द्र प्रायोजित योजनाओं) के माध्यम से उच्च स्थानान्तरण के कारण है। इस प्रकार, वर्षो से, राज्यसों के संसाधनों के हस्तांतरण में एफसी के महत्व में वृद्धि हुई है और योजना आयोग की कमी आई है।

दीर्घकालिक राजकोषीय नीति (एलटीएफपी) के अनुरूप, महत्वपूर्ण सुधार भी कॉर्पोरेट कराधान के क्षेत्र में किए गए थे। कॉर्पोरेट कराधान जिसका उद्धेश्य आंतरिक संसाधनों की पीढ़ी बढ़ाने पर हैं, जबकि साथ ही साथ औद्योगिक निवेश, विकास और प्रोत्साहन के लिए प्रोत्साहन प्रदान किया गया है।

1983–84 में कॉर्पोरेट आय के कराधान की प्रणाली को हटाने के साथ–साथ कॉर्पोरेट आयकर काफी हद तक तर्कसंगत बना हुआ है। 1991–92 तक व्यापक रूप से शेयरों (स्टॉक मोंट में उद्धृत किए गए शेयरों) और करीब से घरेलू कम्पनियों पर क्रमशः 51.75 और 57.5 फीसदी पर कर लगाया गया था। विदेशी कम्पनियों पर 65 फीसदी का कर लगा था। टैक्स रिफॉर्म्स कमेटी (टीआरसी) 1991 की सिफारिशों के बाद, 1994–95 में करीब से आयोजित और व्यापक रूप से आयोजित कम्पनियों के बीच अंतर 46 प्रतिशत पर एकीकृत किया गया था। 1994–95 (आर्थिक सर्वेक्षण, 1994–95) में विदेशी कम्पनियों पर कर की दर घटरकर 55 प्रतिशत हो गई। हालांकि, दर क्रमशः 1997–98 से 35 प्रतिशत तक कम हो गई थी।

2002–03 में, घरेलू कम्पनी के लिए कर की दर 35 फीसदी बनी रही, जबकि विदेशी कम्पनियों पर कर को भी 40 फीसदी तक कम कर दिया गया था। 2005–06 में घरेलू कम्पनियों के लिए कॉर्पोरेट आयकर घटाकर 30 प्रतिशत कर दिया गया था। इसके अलावा, कॉर्पोरेट टैक्स की मौजूदा दरों में कोई बदलाव नहीं हुआ साथ ही, व्यक्तिगत आयकर स्तर पर लाभांश कर समाप्त कर दिया गया था। हालांकि, शून्य कर की घटनाओं से निपटने के लिए, ऐसी कम्पनियों को लाने के प्रयास 1997–98 में न्यूनतम वैकल्पिक कर (एमएटी) के तहत पर्याप्त मुनाफे वाली किताबें लेकर किया गया था। मेटाइट की दर 2000–01 में 7.5 प्रतिशत से बढ़कर 2006–07 में 10 प्रतिशत हो गई थी। 1957–58 में कल्डोर समिति कीसिफारिश पर व्यय कर लगाया गया था।

रोकने की खपत ने अपेक्षित आय उत्पन्न नहीं की, इसे तीन साल बाद वापस लेना पड़ा। इसे फिर से अधिनियमित किया गया और 1 नवंबर 1987 से लागू किया गया। आवास, भोजन, पेय और अन्य सेवाओं पर होटल में किए गए खर्च पर कर लगाया गया था। ''1992 में विदेशी मुद्रा में किए गए भुगतान को छूट दी गई थी। हालांकि, पर्यटन क्षेत्र को बढ़ावा देने और होटल उद्योग पर कर की घटनाओं को कम करने के लिए, वित्त अधिनियम, 2003 में व्यय टैक्स का खर्च

नहीं लिया जाना चाहिए 31 मार्च 2003 के बाद एक होटल में खर्च।'' (ढिंगरा, 2005)। 1 जुन, 2003 से प्रभावी होने के बाद, व्यय कर भी समाप्त कर दिया गया।

सम्पत्ति कर की दर के संबंध में, सबसे ज्यादा संपत्ति करः

दर 1974–75 में 8 प्रतिशत से घटाकर 1976–77 में 2.5 प्रतिशत हो गई और 1979–80 में आगे बढ़कर 5 प्रतिशत हो गई। 1985–86 में, इसे फिर से 2.5 प्रतिशत तक कम कर दिया गया और शुद्ध सम्पत्ति पर रु। 20 लाख टैक्स रिफॉर्म्स कमेटी की सिफारिशों पर, 1991, वैल्यू टैक्स का मूल्य 1 रुपए के फ्लैट रेट पर लगाया गया था, जिसमें मूल के रूप में रु। सम्पत्ति के कर योग्य वस्तुओं पर 15 लाख इसके साथ, सम्पत्ति कर का दायरा काफी कम हो गया था। दरअसल, प्रत्यक्ष करों पर कार्यबल ने सम्पत्ति कर के उन्मूलन की सिफारिश की थी। हालांकि , 2004–05 में दीर्घकालिक पूंजीगत लाभ पर कर के उन्मूलन के रूप में और अल्पकालिक पूंजीगत लाभ पर टैक्स में 30 प्रतिशत से कमी के कारण सिक्यसोरिटीज लेनदेन पर 10 प्रतिशत की एक फ्लैट रेट में बड़ी राहत प्रदान की गई। 2005–06 में, एक नया कर अर्थात, फ्रिंज लाईन टैक्स पेश किया गया था, जो कर्मचारियों द्वारा सामूहिक रूप से लाभान्वित उन लाभों पपर लक्षित था, और व्यक्तिगत कर्मचारियों के कारण नहीं, जो कि नियोक्ता के हाथों में कर लगाना था। लेकिन 2009–10 में काफी अनुपालन बोझ की पूर्ति के बाद फ्रिंज लाभ पर समाप्त कर दिया गया था।

अप्रत्यक्ष कर एक बड़ा स्त्रोत रहा है। भारत में राजस्व इसलिए, इन करों की दक्षता में सुधार के लिए अप्रत्यक्ष करों के क्षेत्र में भी उपाय किए गए थे। हालांकि, अप्रत्यक्ष करों के पक्ष में, 1972 में अप्रत्यक्ष कर जांच समिति ने एक प्रमुख सरलीकरण अभ्यास का प्रयास किया था। जैसा कि आबकारी प्रणाली में चोरी के खिलाफ कोई अंतर्निहित जांच नहीं थी, उसने विशिष्ट शुल्क के रूपांतरण को एक विज्ञापन मूल्य, एकीकरण टैक्स की दरों और टैक्स को मैन्युफैक्चरिंग स्टेज वैल्यू में टैक्स में परिवर्तित करने के लिए इनपुट टैक्स क्रेडिट की शुरूआत। (MANVAT), लेकिन 1986–87 तक लागू नहीं किया गया था। फिर, 1987 में संशोधित मूल्यवर्धित कर प्रणाली (एमओडीवीएटी) की शुरूआत के माध्यम से, इनपुट पर कराधान की घटनाओं को कम करने के लिए एक विस्तृत और व्यवस्थित प्रयास किया गया था। यह कुछ वस्तुओं पर एक सीमित तरीके से पेश किया गया था और कवरेज धीरे–धीरे वर्षो में विस्तारित किया गया । मोडवाट योजना में शुरू की गई सरलीकरण और छूट का एक परिणाम के रूप में, ड्यूटी के भुगतान के लिए (MODVAT) क्रेडिट का लाभ काफी वर्षो में बढ़ गया था।
इसके अतिरिक्त 1991 के बाद, उत्पाद शुल्क पर सुधार के प्रोत्साहन में टैक्स रिफॉर्म्स कमेटी (टीआरसी) की सिफारिशों के कार्यान्वयन के साथ आया। 1999–2000 में, लगभग 11 प्रमुख विज्ञापन मूल्य शुल्क दरों को घटाकर तीन कर दिया गया, अर्थात् 19 प्रतिशत की एक केन्द्रीय दर, 8 प्रतिशत की योग्यता दर और 24 प्रतिशत। दर संरचना में और सरलीकरण लाने के लिए, इन्हें उत्पादन स्तर पर एक समान 16 प्रतिशत केन्द्रीय मूल्यवर्धित कर (सेनवैट) में मिला दिया गया था। साथ ही, 2000–01 में विशिष्ट वस्तुओं पर विशेष उत्पाद शुल्क (एसईडी) की दर 8 प्रतिशत और 24 प्रतिशत रही। 2001–02 में इसे और अधिक

सुधार किया गया था जिसमें तीन विशेष उत्पाद शुल्क दरों को एक एकल दर से घटाकर 16 प्रतिशत किया गया था। 2008–09, सभी वस्तुओं और सेवाओं पर सामान्य सेनवैट दर को घटाकर 14 प्रतिशत कर दिया गया था।

1980 के दशक 1985–86 में संसद में प्रस्तुत दीर्घकालिक राजकोषीय नीति (एलआईएफपी) ने टैरिफ को कम करने, कम दरों और अधिक समानता और आयात को कम करने और अंत में मात्रात्मक प्रतिबंधों को समाप्त करने की आवश्यकता पर बल दिया। हालांकि, राजस्व के कारणों और आयात से अनुचित प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिए, टैरिफ उठाए गए और भारित औसत दर 1980–91 (राव 2005) में 1980–81 से 87 प्रतिशत तक 38 प्रतिशत से बढ़ी। राजकोषीय सुधार के उपाय के रूप में, 1990–91 में लम्बें समय में भारतीय उद्योग प्रतिस्पर्धात्मक बनाने के लिए औसत और चरम टैरिफ दर दोनों में भारी कमी आई थी। 1990–91 में 1997–98 में कस्टम ड्यूटी की चोटी दर 40 प्रतिशत से घटकर 35 प्रतिशत हो गई थी और 1990–91 में 125 प्रतिशत से बढ़कर 1997–98 में 25 प्रतिशत पहुंच गई थी। 2001–02 में कस्टम ड्यूटी की चोटी की दर को 35 प्रतिशत तक घटाकर 2002–03 में 30 प्रतिशत और 2003–04 में 25 प्रतिशत कर दिया गया था। 2005–06 में कस्टम ड्यूटी की औसत दर 15 प्रतिशत के स्तर तक और कम हो गई थी, जिसमें पूंजीगत सामान और कच्चे माल के लिए तेज कटौती और ड्यूटी सरंचनाओं के लिए सुधार शामिल था। यह पूर्व–घोषणा के कारण किया गया था। टैक्स रिफॉर्म्स कमेटी (टीआरसी), 1991 ने सेवाओं पर चयनात्मक कर लगाने की सिफारिश की चूंकि सर्विस टैक्स को फेमर्स के द्वारा कभी नहीं देखा गया था।

संविधान और नीति निर्माताओं, इसे भारत के संविधान में कोई स्थान नहीं मिल रहा है। नतीजतन, यह केन्द्र सरकार से संबंधित है लेकिन सेवा कर से पूरी आय विभाज्य पूल का हिस्सा बननी चाहिए क्योंकि यह भविष्य में करों से ज्यादा अच्छा है।

हालांकि, केन्द्रीय सरकार ने 1994–95 से गैर–जीवन बीमा, स्टॉक ब्रोकरेज और दूरसंचार दर से 5 फीसदी की दर से सेवाओं पर टैक्स पेश किया। 2001–02 में, सेवा कर का कवरेज 5 प्रतिशत की दर से 15 नई सेवाओं तक बढ़ा दिया गया था। इसे 2002–03 में जीवन बीमा, सहायक सेवाओं के बीमा, अंतर्देशरय कार्गो हैंडलिंग, भंडारण और भंडारण आदि सहित 10 नई सेवाओं तक बढ़ा दिया गया था।

हालांकि, बाद में जीवन बीमा को सेवा कर से छूट दी गई थी। 2003–04 में, सेवा कर को बढ़ाकर 8 प्रतिशत कर दिया गया था और 10 नई सेवाओं पर टैक्स लगाया गया था। 2004–05 में फिर से, ''सर्विस टैक्स को 75 से अधिक अलग–अलग सेवाओं तक बढ़ा दिया गया है और राजस्व उपज सकल केन्द्रीय राजस्व का करीब 5 प्रतिशत है'' (आचार्य, 2005)। सेवा कर में यह निरंतर विस्तार सीमा शुल्क और उत्पाद शुल्क राजस्व में गिरावट की वजह से वैकल्पिक राजस्व संसाधनों की बढ़ती आवश्यकता के कारण था, हालांकि, 2005–06 में सर्विस टैक्स की दर 10 प्रतिशत कर दी गई थी।

कराधान के लिए उत्तरदायी सेवाओं की संख्या 99 तक बढ़ा दी गई थी 2006–07 में सेवाओं और फिर धीरे–धीरे 100 सेवाओं में 2007–08। 2006–07 में सर्विस

टैक्स की दर को बढ़ाकर 12 प्रतिशत कर दिया गया था और इसे 2007–08 में इसी दर पर रखा गया था। देश में एक व्याप अप्रत्यक्ष कर सुधार है।

अप्रैल 2011 में दोहरे सामान और सेवा कर (जीएसटी) के कार्यान्वयन के साथ केन्द्र में केन्द्रीय स्तर जीएसआई (सीजीएसटी) के रूप में केन्द्र द्वारा और राज्य स्तर जीएसटी (एसजीएसटी) के रूप में लगाया गया। जीएसट वैट के ऊपर एक और सुधार होगा। यह नई प्रणाली, जिसे राज्य वित्त मंत्रियों की एक अधिकार प्राप्त समिति द्वारा संचालित किया जा रहा है और केन्द्र सरकार राज्य स्तर के वैट और सेनवेट का स्थान ले लेगी। केन्द्रीय जीएसटी, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क, अतिरिक्त उत्पाद शुल्क, सेवा कर, अतिरिक्त कस्टम ड्यूटी के मामले में (काउंटरवल्टी ड्यूटी), विशेष अतिरिक्त शुल्क, अधिभार और सीमाएं सीजीएसटी के साथ जमा की जाएंगी, जो वर्तमान में केन्द्र सरकार द्वारा माल और सेवाओं पर अलग से लगाई जाती है। राज्य जीएसआई के मामले में, वैट/बिक्री कर, लॉटरी, लक्जरी टैक्स, सट्टेबाजी और जुआ पर करों, स्टेट सेस और अधिभार, और स्टांप ड्यूटी, टोल टैक्स, यात्री कर और सड़क कर को छोड़कर प्रवेश कर को एसजीएसटी से जोड़ा जाएगा, जो वर्तमान में माल और सेवाओं पर अलग से लगाए गए हैं। राज्य सरकार द्वारा यह पूरे देश में कर शासन को एकजुट करने में एक प्रमुख कदम को चिन्हित करेगा और कर अंतरपणन को दूर करेगा, जो वर्तमान में निवेश निर्णयों को परेशान कर रहा है।

(ii) व्यय सुधार (Expenditure Reforms):

1980 के दशक के मध्य से केन्द्र सरकार की वित्तीय स्थिति तनाव में थी क्योंकि सार्वजनिक व्यय की वृद्धि दर की तुलना में सार्वजनिक व्यय बहुत तेज दर से बढ़ गया है। राजकोषीय तनाव को दर्शाते हुए, विकासात्मक गतिविधियों के लिए खर्च, जो काफी हद तक प्रतिबद्ध हैं, ने लगातार वृद्धि देखी है। उच्च विकास को सक्षम करने के लिए विकास व्यय के पक्ष में व्यय का पुनर्गठन करने के लिए वित्त में सुधार लाने के लिए महत्वपूर्ण था इसलिए, 1990 के बाद से केन्द्रीय सरकार के बजट में व्यय में अंतर्निहित वृद्धि को रोकने और व्यय की सरंचना में सरंचनात्मक परिवर्तन और गैर–योजना व्यय में अर्थव्यवस्था को प्रभावी बनाने के लिए कई उपायों पर विचार किया गया है। सार्वजनिक व्यय को नियंत्रित करने की आवश्यकता को 1979–80 में भी महसूस किया गया था और सार्वजनिक खर्च पर एक आयोग का गठन किया गया था, जो स्वतंत्र भारत में पहला था जिसे भारत सरकार के 29 मई, 1979 को एक प्रस्ताव से स्थापित किया गया था। 1980 से पहले अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर सकता है व्यय के विकास को रोकने के लिए, जनवरी 1984 में केन्द्रीय सरकार ने उपायों का एक पैकेज लिया था। योजना व्यय में 5 प्रतिशत की कमी की जानी थी, जिसमें अनुपूरक अनुदान शामिल था। गैर–योजना व्यय (ब्याज भुगतान और राज्यों की स्थानान्तरण को छोड़कर) 3 प्रतिशत (आर्थिक सर्वेक्षण, 1983–84) से घटा दिया गया था। यह उम्मीद थी कि इन उपायों के परिणामस्वरूप लगभग उस वर्ष के दौरान गैर–योजना व्यय में 800 करोड़ रुपये हो।

व्यय समस्या की गंभीरता को स्वीकार करते हुए, 1987–88 (आर्थिक सर्वेक्षण,1986–87) के लिए सभी केन्द्रीय सरकारी विभागों के बजट तैयार करने के

दौरान शून्य–आधार बजट की व्यवस्था शुरू की गई थी। राजकोषीय जांच के लिए सरकार द्वारा प्रयास किए गए थे।

1990–91 में असंतुलन और कई उपायों का उपक्रम करके अनुत्पादक व्यय को कम करने पर जोर दिया गया। इन उपायों में कर्मचारियों की कारों, बिजली और टेलीफोन बिलों के खर्च में कटौती, और नए वाहनों (आर्थिक सर्वेक्षण, 1990–91) की खरीद पर पूरी तरह से प्रतिबंध पर सभी विभागों में खर्च का मासिक बजट शामिल था। 1991–92 के दौरान राजकोषीय असंतुलन को दूर करने के लिए सरकार ने व्यय के सामने कुछ उपाय किए। इस तरह के उपाय मुख्य रूप से उर्वरक सब्सिडी में 30 प्रतिशत तक कमी, निर्यात के लिए नकद मुआवजे का समर्थन उन्मूलन, चीनी पर सब्सिडी का उन्मूलन इसके अलावा, सरकार ने सभी मंत्रालयों/विभागों के खर्च पर 5 प्रतिशत कटौती भी की थी। केवल कुछ व्यय जैसे वैधानिक अनुदान के लिए राज्य सरकारों, ब्लॉक अनुदान और राज्य योजना के लिए ऋण योजनाएं, ब्याज भुगतान और पेंशन भुगतान थे व्यय में कटौती से मुक्त (आर्थिक सर्वेक्षण, 1991–1992)।

गैर–विकासात्मक व्यय के विकास की उच्च दर की समस्या लंबे समय तक जारी रही, लेकिन इस मोर्चे पर सुधार सरकार को घटाने की प्रक्रिया की शुरूआत के साथ बहुत देर हो गई । सरकार ने 1 अप्रैल, 1999 से प्रभावी केन्द्रीय सरकार के विभागी के विलय और युक्तिसंगत प्रक्रियाओं के माध्यम से चार सचिव स्तर के पदों को समाप्त कर दिया। सरकार की भूमिका और प्रशासनिक ढांचे को कम करने की दिशा में इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए व्यय सुधार आयोग का गठन 29 फरवरी, 2000 को हुआ था। व्यय सुधार आयोग द्वारा पहचाने गए क्षेत्रों में एक राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा बफर स्टॉक का निर्माण और चरणबद्ध तरीके से नियंत्रण को खत्म करने के माध्यम से उर्वरक सब्सिडी को कम करना शामिल था। 2000–01 में, सरकार ने गैर–योजना, गैर–विकासात्मक व्यय में वृद्धि को नियंत्रित करने के लिए कई उपायों की, जिसमें शामिल हैं : सभी मंत्रालयों विभागों को स्वायत्तों के गैर–योजना के गैर–वेतन व्यय के लिए बजटीय आबंटन में अनिवार्य 10 प्रतिशत कटौती संस्थानों; एक वर्ष के लिए नए वाहनों की खरीद पर एक पूर्ण प्रतिबंध; कर्मचारियों के लिए पेट्रोलियम तेल और स्नेहक (पीओएल) पर व्यय के लिए खपत में आबंटन और आबंटन में दस प्रतिशत कटौती कारों; एक वर्ष के लिए नई पदों के निर्माण पर प्रतिबंध; पर प्रतिबंध अध्ययन पर्यटन, सेमिनार आदि के लिए विदेशी यात्रा व्यय की गुणवता में सुधार के लिए उपाय सभी मौजूदा योजनाओं को शून्य–आधारित पर लागू करना शामिल है बजट और केवल उन लोगों का जो 2001'02 से बचाए जाने का निर्णय लिया गया था। ''पदों के सृजन और अधिशेष कर्मचारियों के लिए नई भर्ती और स्वैच्छिक सेवानिवृति योजना (वीआरएसव) की शुरूआत क लिए मानदंडों की समीक्षा करके इसे प्राप्त करने की मांग की गई थी। इस प्रक्रिया में सभी सब्सिडी की समीक्षा भी शामिल है (कपिला, 2003) किए गए व्यय सुधार के अन्य महत्वपूर्ण उपाय, दो वर्ष की अवधि के लिए नई पदों के निर्माण पर प्रतिबंध के माध्यम से सरकारी कर्मचारियों की ताकत को बढ़ाने और विभिन्न सरकारी विभागों और स्वायत्त संस्थानों में अधिशेष कर्मचारियों की फिर से तैनाती के लिए अनुदान के माध्यम से बजटीय सहायता प्रदान कर रहें हैं। साथ ही, केंन्द्र सरकार ने 1 जनवरी, 2004 से लागू एक नई पेंशन योजना

शुरू करने के साथ पेंशन सुधारों के बारेंमें लाया हैं, जो मौजूदा परिभाषित लाभ पेंशन की जगह उस तारीख (या पहले चरण में, सशस्त्र बलों को छोड़कर) पर भर्ती कराए गए केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों के लिए प्रणाली। ''केन्द्र सरकार ने एक स्वतंत्र पेंशन नियामक प्राधिकरण की नियुक्ति के लिए कानून बनाने की प्रक्रिया भी शुरू कर दी है, जो पेंशन फंड का उचित निवेश सुनिश्चित कर सकता है'' (श्री वास्तव, 2005)। 2006–07 में, सरकार ने राजकोषीय सुधारों के लिए कई तरह की पहल की थी जैसे कि एक समय में रिलीज के माध्यम से व्यय की भीड़ से बचने और प्रक्रियाओं के सरलीकरण (आर्थिक सर्वेक्षण, 2006–07)

14.3.2 बारहवीं वित्त आयोग द्वारा सुझाए गए सरकारी व्यय का पुनर्गठन (Restructuring of Government Expenditure Suggested by the Twelth Finance Commission):

केन्द्रीय और राज्य सरकारों के स्तर पर व्यय की सरंचना का विस्तार करने के बाद, बारहवीं वित्त आयोग ने सिफारिश की कि निम्नलिखित लाइनों पर पुनर्गठन की सिफारिश की गई। – पुर्नरचना व्यय में, आर्थिक गतिविधियों में सरकार के हस्तक्षेप के मूल उद्देश्यों और केन्द्रीय और उप–राष्ट्रीय सरकारों के बीय जिम्मेदारियों को सौंपने के मूलभूत उद्धेश्यों के संदर्भ में संदर्भ देने की आवश्यकता है। सरकारी खर्चो की गुणवता, पहुच और सरकारी सेवाओं के प्रभाव में आने के लिए सरकार के व्यय को संबोधिकत करना भी महत्वपूर्ण है। यदि सरकार निजी क्षेत्र से आवश्यक सेवाएं प्रदान कर सकती है तो यह उन क्षेत्रों में संसाधनों के प्रसार के ब्जाय अपनी प्राथमिक जिम्मेदारियों पर अधिक ध्यान देने पर सहायता प्रदान की जाएगी। सरकार की प्राथमिक भूमिका, सार्वजनिक सामान जैसे अवज्ञा, कानून और व्यवस्था, और सामान्य प्रशासन प्रदान करना है। सरकारों की भूमिका, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे बड़े सकारात्मक निकायों के साथ योग्यता और सेवाओं के लिए विस्तारित की गई। यदि सार्वजनिक वस्तुओं का दायरा राष्ट्रव्यापी रक्षा की तरह है तो सेवाओं को केन्द्र सरकार को सौंपा जाना चाहिए। सेवाओं को राज्य सरकारों को सौंपा जाता है, यदि सार्वजनिक अच्छा का दायरा सीमत क्षेत्रों में है या यदि बाहरी सेवाएं स्वास्थ्य सेवाओं जैसे चरित्र में अधिक स्थानीय हैं यह जांच करने के लिए एक महसूस की आवश्यकता है कि क्या केन्द्र सरकार कई जिम्मेदारियों में हिस्सा नहीं ले रही है, जो कि वैध रूप से राज्यों के डझेमेन से संबंधित हैं। उदारीकरण के संदर्भ में व्यय सुधारों को समाप्त करने के लिए दो पहलुओं (i) एकीकरण हैं ताकि व्यय की मात्रा कम हो सके और (ii) सरकार के खर्चो की रचना को बदलने के लिए पुनर्गठन किया जा सकें, यानी बुनियादी ढांचे पर विकास–व्यय करने की दिशा में बदलाव। मानव संसाधन विकास और अनुचित सब्सिडी में कमी एक सफल व्यय नियंत्रण नीति में निम्नलिखित शामिल होना चाहिए : (i) सभी मौजूदा योजनाओं को शून्य–आधारित बजट के अधीन, (ii) सरकारी विभागों की जनशक्ति आवश्यकताओं का आकलन, (iiii) सभी सब्सिडी की समीक्षा, (iv) लागत–आधारित उपयोगकर्ता शुरू करना जहां भी संभव हो, शुल्क, (v) स्वायत संस्थानों को बजटीय सहायता की समीक्षा, और (vi) सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के संचालन के अधिक व्यावसायीकरण।

(i) उधार प्रक्रिया में सुधार (Reforms in Borrowings Process)

बजटीय और अस्थयी बेमेल को पूरा करने के लिए केन्द्रीय सरकार के उधार की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण बदलाव भी राजकोष का हिस्सा है। क्षेत्र सुधार 1976–77 के दौरान, लंबी अवधि के उधार और डिबेंचर को पूंजी आधार से बाहर रखा गया था और 1 अप्रैल, 1976 से छोटी बचत को बढ़ावा देने के लिए एक नई राष्ट्रीय बचत की ऐन्युइटी योजना शुरू की गई थी। विकास उद्धेश्यों के लिए बचत को जुटाने के लिए, रुपये की राष्ट्रीय विकास बांड रु 10, रु 100, और रु 500 अगस्त 31, 1977 से शुरू किए गए थे। उत्पादक प्रयोजनों के लिए बेहिसाब धन को बर्बाद करने के लिए, भारत सरकार ने 15 जनवरी, 1981 को विशेष बियरर बांड की योजना की घोषणा की। सर्वजनिक उपयोग के लिए निजी बचत को संगठित करने के लिए, पूंजी निवेश बांड को पेश किया गया 28 जून 1982 को। दस साल की परिपक्वता अवधि वाले ये बांड 7 प्रतिशत की ब्याज दर ले गए।

बैकिंग में अतिरिक्त तरलता बढ़ाने की दृष्टि से प्रणाली और साथ ही जनता के लिए कुछ संसाधनों को जुटाने के लिए निवेश, सरकार ने 'राष्ट्रीय शुरू की जमा योजना' 30 जुलाई, 1984 से प्रभावी है 1984–85 के साथ पहली बार लंबी अवधि वाली सिकयोरिटीज के साथ 30 साल की परिपक्वता 10.50 प्रतिशत की कूपन दर के साथ पेश की गई थी। चूंकि स्थापना के बाद से राष्ट्रीय जमा योजना के तहत जमाराशियों की सदस्यता रु। 8 मार्च, 1987 को 8 मार्च, 1987 तक के रूप में 68.3 करोड़ रुपए, 500 करोड़ रुपए के लक्ष्य के मुताबिक, 1 अप्रैल 1987 से इस योजना को सरकार द्वारा बंद कर दिया गया। वित्तीय अनुशासन को एक महत्वपूर्ण कदम के रूप में मजबूत करने के लिए, तदर्थ प्रणाली बजट घाटे को वित्तपोषण के साधन के रूप में राजकोषीय बिल बंद कर दिया गया था। अप्रैल 1, 1987 से प्रभावी होने के साथ, इस प्रणाली को एक तरीके को एक तरीके से बदल दिया गया था जो कि तरीके और मीन एडवांस (डब्लूएमए) है। वित्तीय संस्थाओं और अन्य लोगों को लघु अवधि के निवेश के अवसर प्रदान करने के लिए, 182 दिनों के ट्रेजरी बिलों को पेश किया गया। 1991 की वित्तीय संकट के बाद, 1992–93 के दौरान आंतरिक ऋण प्रबंधन नीति को सक्रिय करने के लिए कई नीतिगत परिवर्तन किए गए थे। अप्रैल 1992 की मौद्रिक नीति ने भारत सरकार द्वारा रुपए की प्रतिभूतियों और दीर्घकालिक ट्रेजरी बिल के अवशोषण के संबंध में बाजार के संचालन को शुरू करने के द्वारा आंतरिक ऋण प्रबंधन के लिए एक नया दृष्टिकोण की शुरूआत की और यह 1992 में उधार कार्यक्रम में कुल कटौती से मददगार साबित हुआ। ये चक्रवर्ती समिति और नरसिंहम समिति की सिफारिशों के अनुरूप थे। पहली बार भारत सरकार ने जून 1992 में नीलामी के आधार पर दिनांकित प्रतिभूतियों को बेचने की पेशकश की। इसके अलावा, सरकार ने अप्रैल 1992 और दिसंबर 1992 से 364 दिनों के ट्रेजरी बिल और 91 दिन के ट्रेजरी बिलों को नीलामी के आधार पर पेश किया, क्रमशः। इसके अलावा, दिनांकित सिक्योरिटीज के पुर्नखरीद समझौतों (आरईपीओएस) की निलामी 1992 से शुरू की गई। हालंकि, यह महसूस किया गया था कि पहली जगह पर इन घटनाओं से मुद्रीकृत घाटे के लिए असर पड़ेगा। इसके अलावा, ब्याज की अपेक्षाकृत उच्च दरों पर उधार लेने वाले फंडों के उपयोग में वे अनुशासन का कारण बन सकते हैं इसके अलावा, वे निवेशकों के लिए तरलता का आयात करेंगे।

उधार लेने की प्रक्रिया में एक अन्य उल्लेखनीय सुधार, 1993–94 में बाजार उधार पर ब्याज दर और 'अन्य आंतरिक देनदारियों' (छोटी बचत, भविष्य निधि आदि) के बीच के अंतर को कम करना था। इसके अलावा, 1994–95 में, राजकोषीय बिलों और जीरों कूपन बॉन्डों के परिपक्व होने और 'अन्य आंतरिक देनदारियों' पर ब्याज दर में वृद्धि में ऋण शामिल किए गए थे। 1999–2000 में, अन्य देनदारियों को केन्द्रीय सरकारी प्रतिभूतियों में परिवर्तित किया गया जिससे आंतरिक ऋण में तेज वृद्धि हुई और 'अन्य आंतरिक देयताओं' में इसी गिरावट आई। इसके बाद, बाह्य ऋण प्रबंधन का सबसे उल्लेखनीय परिणाम लघु पर नियंत्रण रहा हैं।

14.3.3 भारत में सरकारी उधार के साधन (Instrument Borrowings in India):

भारत सरकार ने आंतरिक रूप से और बाह्य रूप से उधार लिया है। सरकार का आंतरिक उधार मुख्यतः बजटीय घाटे को पूरा करने के लिए होता है। बाह्य उधार भुगतान के शेष में घाटे को पूरा करने के लिए होता है आंतरिक उधार का मुख्य स्त्रोत व्यक्ति, वाणिज्यिक बैंक, वित्तीय संस्थान और भारतीय रिजर्व बैंक है। भारतीय रिजर्व बैंक से उधार लेने के तरीकों और तरीकों के माध्यम से (डब्लूएमए) है। सरकारी उधार के एक अन्य महत्वपूर्ण साधन वैधानिक तरलता अनुपात (एमएलआर) है। इस प्रणाली के तहत, वाणिज्यिक बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थानों को सरकारी प्रतिभूतियों में उनकी सम्पत्ति देयताओं के निर्धारित अनुपात को निवेश करने की आवश्यकता होती हे। वित्तीय सुधार संबंधी समिति (अध्यक्ष एम नरसिंहम) 1991 ने इस अनुपात को क्रमशः 25 प्रतिशत कम करने का सुझाव दिया था सरकार ने सिक्योरिटीज की नियमित प्लानिंग और किसान विकास पत्रों और अन्य छोटी बचत योजनाओं जैसे बांडों के माध्यम से आम जनता से ऋण भी उठाया हैं। बाहरी उधार का प्रमुख स्त्रोत आईएमएफ और विश्व बैंक, विदेशी सरकारों और विदेशी निजी स्त्रोतों जैसी अंतराष्ट्रय एजेंसियां हैं। विदेश से अल्पकालक उधार मुख्य रूप से भुगतान आवश्यकताओं के संतुलन को पूरा करने के लिए उपयोग किया जाता है। पांच साल की योजना के तहत विकास परियोजनाओं के वित्तपोषण के लिए लंबी अवधि के विदेशी उधारी की जरूरत है। राज्यसों का ऋणी राज्यों के बढ़ते कर्ज और ऋण–सेवा देनदारियें ने हाल के वर्षो में काफी ध्यान आकर्षित किया है। राज्यों के गैर–योजना के राजस्व अंतर को वित्त आयोग द्वारा देखा जाता है, जबकि योजना आयोग राजस्व और पूंजीगत खातों दोनो के लिए योजना के अंतराल का ख्याल रखता है। राज्यों के उच्च और बढ़ते कर्जबाजारी के लिए एक और कारण यह है कि गाडगील फॉर्मूला के तहत दी गई योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता की सरंचना। सहायता के मौजूदा पैटर्न में ऋण–अनुदान का अनुपात 70 : 30 है, राज्यों की ऋणी की समस्या नहीं है, हालांकि हाल के वर्षो में यह बढ़ी है। राज्यों को ऋण से संबंधित राहत विभिन्न रूपों में प्रदान की जा सकती है, अर्थात पुनर्भुगतान के समय को बदलने, आम शर्तो पर पिछले ऋणों को एकजुट करने, और ब्याज दर में कमी लाने के लिए ऋण के पुननिर्धारण, लिखना दूसरा वित्त आयोग को इस समस्या की जांच करने और राज्यों के कर्ज बोझ को कम करने के लिए उपयुक्त सिफारिशें करने के लिए कहा गया था। आयोग ने सिफारिश की, अंतर अर्फ, पुर्नभुगतान का

स्थगन, लेकिन इस समस्या को दीर्घकालिक आधार पर निपटने में मदद नहीं की। इस मामले को चौथे वित्त आयोग को भी संदर्भित किया गया, जिसने इस समस्या की पूरी जांच करने में असमर्थता व्यक्त की और इसके निपटान में थोड़े समय में स्थायी समाधान का सुझाव दिया। पांचवें वित्त आयोग ने सिफारिश की कि केन्द्र सरकार को संबंधित राज्यों को देय अनुदानों के खिलाफ थीटा राशि समायोजित करके अपने रिजर्व बैंक ऑफ इंड़िया को राज्य अनधिकृत ओवरड्राफ्टों की रकम चुकानी चाहिए। छठे वित्त आयोग कुछ केंन्द्रीय ऋणों के पुर्नभुगतान पर अनुशासित अधिस्थगन और एक छोटी राशि के कुछ पुराने ऋणों को लिखना आठवीं और नौवीं वित्त आयोग ने क्रमशः 2285 करोड़(1948–1989 की अवधि के लिए) और 494 करोड़ रुपए (1990–95 के लिए) के ऋण राहत की अनुशंसा की। दसवीं वित्त आयोग ने राज्यों और उसके प्रबंधन के ऋण प्रोफाइल की निम्नलिखित विशेषताएं लिखी हैं – (i) राजस्व व्यय को पूरा करने के लिए उधार ली गई राशि का मोड़, (ii) अनुत्पादक उद्‌यमों में ऋण का उपयोग जो संभावित रूप से उत्पादक होते हैं लेकिन खराब प्रदर्शन से, और वर्तमान में कम या उससे भी कम नकारात्मक रिटर्न, (iii) अवमूल्यन या परिशोधन निधि के लिए गैर–प्रावधान।

14.3.4 राज्यों के लिए राजकोषीय सुधार कार्यक्रम (Fiscal Reform Programmed for the States):

भारत के संविधान ने केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों के बीच कार्यात्मक जिम्मेदारियों और वित्तीय स्थिति के निर्धारण के लिए विस्तृत प्रावधान किए है। यह अक्सर विशेषज्ञों द्वारा उल्लिखित है कि करों और गैर करों और उधार की शक्ति से संबंधित वित्त्य संसाधनों के वितरण की व्यवस्था न्यायसंगत नहीं है। ''राजस्व के अधिकांश प्रसन्नचित स्त्रोत, जैसे सीमा शुल्क, निगम कर आदि प्रशासनिक दक्षता के कारण केन्द्र सरकार के दायरें में हैं और केन्द्रों को केन्द्रों की तुलना में मजबूत बनाने की पूरी इच्छा है। राजस्थान में राजस्व बढ़ाने के लिए केन्द्र सरकार के पास इसका तुलनात्मक लाभ है, लेकिन राज्य सरकारों के साथ भारी व्यय करने की वित्तीय जिम्मेदारी बनी हुई है (जेना, 2001)। इन कारकों ने राज्यों में वित्तीय समायोजन के लिए तीव्र समस्याओं का निर्माण किया है। जैसा कि केन्द्र सरकार ने 1991 से सुधार प्रक्रिया के साथ जारी रखा है, राज्यों में राजकोषीय सुधारों की शुरूआत में धीमा रहा है। 1980 के दशक से राज्य सरकारों की वित्तीय अधिक अनुपात राजस्व घाटे से बढ़े थे। बढ़ती व्यय आवश्यकताओं को पूरा करने में प्राप्ति की अपर्याप्तता से तनाव पैदा हुआ। कम और गिरावट टैक्स और गैर–कर प्राप्तियें में बढ़त, बाधाएं द्वारा किए गए नुकसान के कारण आंतरिक संसाधन जुटाना राज्य सार्वजनिक उपक्रमों, बिजली बोर्डो और केन्द्र से संसाधनों को कम करने वाले संसाधनों में कमी आई थी राज्य सरकारों की राजकोषीय घाटे में बढ़ोतरी के परिणामस्वरूप नब्बे के दशक के मध्य में राज्यों में राजकोषीय स्थिति में गिरावट (और 1998–99 में बढ़ोतरी) भी रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया (आरबीआई) के साथ राज्यों की अग्रिम और ओवरड्राफ्ट स्थिति के तरीकों और तरीको से परिलक्षित होती है। ''राज्य सरकारों ने ओवरड्राफ्ट और तरीके और मीन एडवांस (डब्लूएमए) का सहारा 1997–98 से पहले की तुलना में अधिक बार किया था।

केन्द्र सरकार राज्य सरकारों के उधार को सीमित करने में असमर्थ या अनिच्छुक थी'' (सवानी, 2008)। इसके परिणामस्वरूप, राज्यों के कर्ज में वृद्धि हुई थी।

यह नब्बे के दशक के अंत में था, कराधान के क्षेत्र में कुछ सुधार, सार्वजनिक व्यय का प्रबंधन, और उधार केवल कुछ राज्यों द्वारा ही किए गए थे। 1999 (राज्यों के मुख्यमंत्रियों द्वारा प्रतिनिधित्व) पर विशिष्ट विकास के लिए समयबद्ध राजकोषीय सुधार कार्यक्रमों पर राष्ट्रीय विकास परिषद में चर्चा हुई है। यह महसूस किया गया था कि संयुक्त प्रयास केंन्द्र सरकार के साथ ही राज्य का हिस्सा सरकारों को राज्यों के लिए राजकोषीय सुधार कार्यक्रमों के लिए एक माध्यम अवधि की रणनीति तैयार करने की आवश्यकता है।'' (जेबीआईसी रिसर्च पेपर नंबर 11, 2001)।

राज्यों के लिए राजकोषीय सुधार कार्यक्रम का मुख्य उद्धेश्य 'वर्तमान राजस्व पर संतुलन' में सुधार करना और मध्यम अवधि में राजस्व घाटे को कम करना है। नतीजतन, 9 राज्यों नें 1999–2000 के दौरान केन्द्र के साथ एक समझौते में प्रवेश किया और अप्रैल 1999 में पेश राज्यों के लिए राजकोषीय सुधार कार्यक्रम के अंतर्गत सहायता का लाभ उठाया। इन राज्यों में पंजाब, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, नागालैंण्ड, मिजोरम, उड़ीसा, सिक्किम और उत्तर प्रदेश। वास्तव में, ''यहां तक कि जो राज्य तीव्र वित्तीय संकट से सामना नहीं कर रहे हैं, वे विवेकपूर्ण राजकोषीय प्रबंधन की आवश्यकता को मान्यता देते हैं और उनके सुधार कार्यक्रम पर चर्चा करने के लिए आगे आते हैं'' (सिंह, 2006), लेकिन गरीबों के संसाधनों का नाम, भारी घाटे में चल रहा हैं, बिहार राज्य पिछड़ा रहा था वर्ष 2000–01 के दौरान, तेरह राज्यों ने अपने राजकोषीय सुधार कार्यक्रम चलाया। इन राज्यों में पंजाब, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, नागालैण्ड, मिजोरम, उड़ीसा, सिक्किम, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, असम आंध्र प्रदेश और जम्मू और कश्मीर शामिल है। राज्यों द्वारा शुरू किए गए उपायों को आम तौर पर राजस्व संचलन, व्यय रोकथाम, ऋण पुर्नगठन और संस्थागत सुधारों के तहत बांटा गया है।

(i) राजस्व संचलन (Revenue Mobilization)

इस को व्यवस्थित करने के लिए कोई व्यवस्थित प्रयास नहीं था । सुधार की प्रक्रिया 1991 के बाद भी जब बाजार उन्मुख सुधार शुरू किए गए थे । सुधार के अधिकांश प्रयास तदर्थ थे और उन्हें कर प्रणाली (राव और राव, 2005) के आधुनिकीकरण के प्रयासों के ब्जाय राजस्व की अपेक्षाओं के आधार पर निर्देशित किया गया था। यहां तक कि 2000 में, राव ने चेतावनी दी, ''केंन्द्र सरकार के कर प्रणाली सुधार में एक अच्छी प्रगति हुई है; राज्य कर प्रणाली के मामले में प्रगति अनुरूप नहीं है'' (राव, 2000)। राज्य वित्तपोषण को मजबूत करने की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए, ''राज्यों ने अपने करों में बढ़त पुर्नगठन के लिए कदम उठाए है, जैसे भूमि राजस्व, वाहन कर, मनोरंजन कर, बिक्री कर, सट्टेबाजी कर, बिजली शुन्क, ट्रेडों पर कर, पेशेवर कर और लक्जरी टैक्स'' (कपिला, 2003 और राज्य वित्त : 2003–04 के बजट का एक अध्ययन) । अंतरराज्यीय करों को सुसंगत करने के लिए और अंततः राज्य स्तरीय मूल्य के लिए स्विच–ओवर से जोड़ा गया कर (वैट), राज्यों को निर्देशित किया गया 2000 के दौरान एक समान मंजिल दर पेश करते है। वास्तव में, ''गुजरात को लागू करने वाला पहला राज्य था।

राज्यों के मामले में सबसे महत्वपूर्ण सुधार पहल, 1 अप्रैल, 2003 से राज्य स्तर के वैट के साथ कैस्केडिंग टाइप बिक्री कर के प्रतिस्थापन है, जो ''ब्लू प्रिंट पर आधारित है'' राज्य वित्त मंत्रालयों की सशक्त समिति द्वारा अंतिम रूप दिया गया ''(बर्नाडी और फ्रास्चीनी, 2005) इस प्रकार, सभी राज्यों/संघ शासित प्रदेशों द्वारा 2007–08 तक वैट पेश किया गया था। उत्तर प्रदेश ने 1 जनवरी, 2008 को वैट शुरू किया था। अधिकार प्राप्त समिति के साथ विचार विमर्श के बाद वैट की अवधारणा के साथ केन्द्रीय बिक्री कर (सीएसटी) की असंगति के बारें में बताता है, केन्द्रीय बिक्री कर के लिएए रोडमैप को 2007–08 में अंतिम रूप दिया गया था। इसने सीएसटी दर को अप्रैल से 4 प्रतिशत के स्तर से घटाकर एक क्रमिक चरण प्रदान किया। 1, 2007, हर साल 1 प्रतिशत से, 31 मार्च, 2010 तक पूरी तरह समाप्त हो गया। राज्य वित्त मंत्रियों (ईसी) की अधिकार प्राप्त समिति के परामर्श से अंतिम रूप से इस योजना से राज्यों के लिए नए राजस्व पैदा करने के उपायों को प्राइमरी क्षतिपूर्ति का हमार यह राज्य को अवशिष्ट घाटे के 100 प्रतिशत को पूरा करने के लिए भी प्रदान करता है, यदि उसके बाद कोई भी, केन्द्र के बजटीय संसाधनों के माध्यम से सीएसटी की दर में प्रति वर्ष 1 प्रतिशत की कमी से माल और सेवा कर (जीएसटी) की शुरूआत के साथ जीएसटी संयोग को खत्म करने के लिए मजबूर किया गया था।

जीएसटी की शुरूआत में राज्य के वैट और केन्द्रीय उत्पाद शुल्क के पुर्नगठन की आवश्यकता होगी और इस प्रकार इसमें कई हितधारकों के साथ परामर्श और उचित समन्वय और उचित प्रक्रिया शामिल हैं। जीएसटी वित्तीय संघवाद में अधिक ऊर्ध्वाधर इक्विटी की सुविधा प्रदान करेगी।

इसके अलावा, राज्यों ने रॉयल्टी के लिए उन्हें देय रॉयल्टी की समीक्षा करके गैर–कर राजस्व बढ़ाने के लिए भी कुछ उपाय किए है, जिनमें ''बड़े और छोटे खनिजों, वन और वन्यजीव, ट्यूशन फीस, मेडिकल फीस, सिंचाई पानी की दर और टैरिफ के संशोधन शामिल हैं शहरी पानी की आपूर्ति पर'' (राज्या वित्त : 2003–04 के बजट का एक अध्ययन) कुछ राज्यों ने ''बिजली, पानी और परिवहन के लिए उपयोगकर्ता के आरोपों की समीक्षा की ओर भी कदम उठाए है; अप्रैल 2003 में महाराष्ट्र द्वारा सारांश मूल्यांकन की एक नई योजना का परिचय कर्नाटक द्वारा बिक्री कर और प्रवेश और अधिनियम के तहत आत्म–निर्धारण योजना का परिचय'' (धनसेकरन, 2006)

(ii) व्यय प्रबंधन (Expenditure Management)

राज्य सरकारों को शामिल करने के उपाय अन्य के साथ व्यय में ताजा पर प्रतिबंध शामिल हैं नई पदों की भर्ती/निर्माण, मानव शक्ति की समीक्षा आवश्यकताओं और स्थापना खर्च में कटौती और बेहतर लक्ष्यीकरण के जरिए गैर–योग्यता सब्सिडी में कमी (कपिला, 2003) उड़ीसा द्वारा व्यय पुनर्गठन के लिए शुरू किये गये उपायों में 24 हजार पदों को खत्म करने, सरकारी कर्मचारियों के लिए स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना (वीआरएस) शुरू करने, कर्मचारियों को सीटीसी निलंबित करने और समर्पण रवाना को निलंबित करने के द्वारा सरकार के अधिकार शामिल है। पंजाब ने सार्वजनिक व्यय सुधार आयोग का गठन किया है दूसरी ओर, एनसीटी दिल्ली ने गैर–योजना व्यय (जेबीआईसी रिसर्च पेपर नंबर 11, 2001) की समीक्षा के लिए व्यय समीक्षा समिति पर स्थापित किया है। सरकार

के वित्तीय प्रदर्शन पर नजर रखने के लिए, केरल सरकार ने नवंबर 2005 में केरल लोक व्यय समीक्षा समिति (पीआरईसी) को नियुक्त किया। इसमें व्यय युक्तिसंगतता पर काफी जोर दिया गया, जिसका उद्धेश्य उत्पादक व्यय को प्राथमिकता देना था। अधिकांश राज्य सरकारों ने व्यय के युक्तिकरण की दिशा में पहल की है। प्रतिबद्ध राजस्व व्यय की रोकथाम के लिए उपाय में राज्यों द्वारा परिभाषित योगदान प्रणाली के आधार पर नई पेंशन योजनाओं की शुरूआत शामिल हैं। जिन राज्यों ने नई पेंशन योजना शुरू की है, वे आंध्र प्रदेश, असम, गुजरात, गोवा, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, राजस्थान, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, मध्य प्रदेश, बिहार, हरियाणा, कर्नाटक, महाराष्ट्र, उड़ीसा, सिक्किम, उत्तरांचल राज्य सरकारों ने "गैर–नियोजित राजस्व व्यय को सम्मिलित करके संसाधनों के सरंक्षण, व्यय पुननिर्माण, स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना की शुरूआत और शुन्य आधार बजट की शुरूआत" (धनसेकरन, 2006) की गुणवत्ता का आकलन करने के लिए प्रदर्शन संकेतकों की पहचान करने के बारें में भी कदम उठाए हैं।

(iii) ऋण पुनर्गठन (Debt Restructuring)

एक दशक के आर्थिक सुधारों के बाद, ऋण पुनर्गठन और उधार प्रक्रिया में सुधार के मुद्दे ने नीति निर्माताओं के ध्यान को आकर्षित किया है। पता करने के लिए राज्यों के बढ़ते बोझ और प्रयासों के पूरक के लिए मध्यम अवधि के राजकोष के विकास की दिशा में कहा गया है। सुधार कार्यक्रम (एमटीएफआरपी), केन्द्रीय सरकार ने 2002–03 में एक ऋण स्वैप योजना तैयार की। नीचे योजना, आपसी साथ, राज्यों और केन्द्र के बीच सहमति, राज्यों 13 प्रतिशत से अधिक में एक कूपन दर असर केन्द्र सरकार से लिया ऋण रिटायर होने की अनुमति दी गई। राज्यों ने अपने वित्त को स्थिर करने के लिए कई नीतिगत पहल की है। ऋण चुकौती रिटायर करने के लिए, आंध्र प्रदेश, असम, अरुणाचल प्रदेश, गोवा, महाराष्ट्र, मिजोरम, मेघालय, त्रिपुरा, उत्तरांचल, पश्चिम बंगाल, छत्तीसगढ़, गुजरात, केरल, उड़ीसा, पंजाब, सिक्किम और तमिलनाडु के राज्यों समेकित की स्थापना की है निक्षेप निधि। पंद्रह राज्यों ने गांरटियों पर छत लगाए हैं अर्थात्, सांविधिक सीमा – गोवा, गुजरात, कर्नाटक, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, नागालैण्ड, आंध्रप्रदेश, असम और मणिपुर और प्रशासनिक छत–असम, उड़ीसा, पंजाब, मध्य प्रदेश और राजस्थान असम, आंध्र प्रदेश, गोवा, गुजरात, हरियाणा, जम्मू और कश्मीर, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, सिक्किम, तमिलनाडु और राजस्थान एक गारंटी मोचन निधि की स्थापना की है।

(iv) केन्द्र की पहल (Centre's Initiatives)

केन्द्र और राज्य वित्त के बीच गठजोड़ को स्वीकार करते हुए, केन्द्र सरकार ने राज्य स्तर पर राजकोषीय सुधारों को प्रोत्साहित करने के लिए भी कदम उठाए। ग्यारहवें वित्त आयोग (एफसी) ने राज्यों के राजस्व घाटे को कम करने के उद्धेश्य से सभी राज्यों के लिए एक मॉनिटेबल राजकोषीय, सुधार कार्यक्रम की सिफरिश की। राजकोषीय सुधार कार्यक्रम को लागू करने के लिए राज्यों को प्रोत्साहित करने के लिए 10,607 करोड़ रूपयें निर्धारित किए गए थे। सभी 28 राज्यों ने मध्यम अवधि के राजकोषीय सुधार कार्यक्रम तैयार किए है। बारहवीं एफसी ने इस सुविधा को बंद कर दिया।

वित्तीय अनुशासन का परिचय देने के लिए एक विवेकपूर्ण राजकोषीय सुधार के रूप में, केन्द्र सरकार ने 26 अगस्त, 2003 को एफआरबीएम अधिनियम, और अधिनियम और नियमों को 5 जुलाई, 2004 से लागू करने के लिए अधिसूचित किया गया।''

इस अधिनियम का उद्धेश्य उधारों पर सीमा, राजकोषीय परिचालनों में पारदर्शिता और एक मध्यम अवधि के ढांचे में राजकोषीय नीति के संचालन के जरिए राजकोषीय स्थिरता के अनुरूप घाटे में कमी, विवेकपूर्ण ऋण प्रबंधन सुनिश्चित करना हैं (सिंह, 2005)। 28 राज्यों में से 26 ने 2008–09 तक राजकोषीय उत्तरदायित्त्व और बजट प्रबंधन अधिनियम लागू किए है। सिक्किम और पश्चिम बंगाल ने राजकोषीय उत्तरदायित्त्व और बजट प्रबंधन अधिनियम लागू नहीं किए हैं। राज्यों के लिए सुविधा (डीसीआरएफ)। यह राज्यों को राजस्व घाटे के उन्मूलन के लक्ष्यों को प्राप्त करने और 2008–09 के ठीक पहले सकल राज्य घरेलू उत्पाद (जीएसडीपी) को 3 प्रतिशत पर ठीक करने के लक्ष्य की पूर्ति करता हैं। अब तक, ऋण समेकन किया जा चुका है।

19 राज्यों के लिए, आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, छत्तीसगढ़, गुजरात, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मणिपुर, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु, त्रिपुरा, उत्तराखंड और उत्तर प्रदेश। इन राज्यों के संबंध में केन्द्रीय ऋण भी समेकित किया गया है।

14.3.5 लोकल/स्थानीय के लिए वित्तीय सुधार पहल (Fiscal Reform for the Local Governments):

भारत के संविधान के केन्द्रों और राज्यों के बीच कार्य के विभाजन और राजस्व के विभाजन को मान्यता दी। राज्य सरकारों द्वारा बनाई गई संस्थाओं के रूप में सातवीं अनुसूची की सूची। (राज्य सुची) की प्रविष्टि 5 में स्थानीय निकायों का उल्लेख किया गया है। इसके अलावा, संविधान के निर्देशक सिद्धांतों (अनुच्छेद 40) को राज्यों, विशेष रूप से पंचायती राज संस्थानों (पीआरआई) में स्थानीय स्वशासन की इकाइयों को सुदृढ़ करने की आवश्यकता है। हालांकि, स्वतंत्रता के पहले तीन दशकों के दौरान इस संबंध में बहुत कुछ किया गया था। लेकिन संविधान के 73वें और 74वें संशोधन ने स्थानीय निकायों के वैध अस्तित्व (गुप्त, 2007) को प्रदान किया है। 73वां संशोधन अधिनियम से संबंधित पंचायतों और 74वें संशोधन अधिनियम से संबंधित नगरपालिकाएं 24 अप्रैल 1993 को लागू हुई हैं, और 1 जून 1993 को क्रमशः लागू हुई हैं। संविधान के 73वें और 74वें संशोधन अधिनियमों द्वारा किए गए परिवर्तन ''भारत में स्थानीय सरकार के सुधार की प्रक्रिया की शुरूआत है'' (सिंह और श्री निवासन, 2002)।

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारतीय संघीय संघटन केन्द्र, राज्य और स्थानीय सरकारों की दो स्तरीय से तीन स्तरीय प्रशासनिक व्यवस्था में बदल गया है, जहां केन्द्र सरकार के पास शक्तियों की बहुत अधिक एकाग्रता है। भारतीय संविधान में, राजस्व शक्तियों, व्यय कार्यो और केन्द्रीय और राज्य सरकारों के साथ उधार की शक्ति का एक विभाजन होता है। 1990 के दशक के प्रारंभ में, भारतीय अर्थव्यवस्था को एक बहुत ही व्यापक व्यापक आर्थिक संकट के सामना करना पड़ा था, जिसकी कभी इसे कभी भी सामना नहीं करना पड़ा था। इस संकट से वित्तीय प्रणाली में गहरी सरंचनात्मक असंतुलन हुआ।

इसने राजकोषीय सुधार के व्यापक कार्यक्रम की आवश्यकता को रेखांकित किया। केन्द्र सरकार ने 1991 से सुधार प्रक्रिया शुरू की, लेकिन राजकोषीय सुधारों की शुरूआत में एक दशक से राज्य धीमें और देर से धीमा रहे।

महत्वपूर्ण कर सुधारों को केंद्र सरकार ने उच्चतम सीमांत कर की दर में कटौती और कॉपरेट टैक्स की मूल दर से संबंधित किया था। मुख्य केन्द्रीय करों, अर्थात्, यूनियन के एक्साइज ड्यूटी और कस्टम ड्यूटी भी प्रमुख बदलावों के तहत आते हैं। सीमा शुल्क के मामलें में, दरों की दरों में तेज दरों सहित दरों में दरों में भारी कटौती की गई।

सुधारों में दर श्रेणियों में कमी और छूट व्यवस्था भी शामिल थी। हालंकि, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क के मामलें में, इनपुट पर कराधान की घटनाओं को कम करने के लिए एक व्यापक और व्यवस्थित प्रयास संशोधित मूल्य वर्धित कर लागू करने के माध्यम से किया गया था जिसे 14 प्रतिशत सेंवैट की समान दर में बदल दिया गया था। दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों में प्रचलित स्तर तक टैरिफ संरेखित करने के लिए, आयात शुल्क की चोटी दर कम हो गई थी। 1991 के बाद से लाया गया अन्य महत्वपूर्ण सुधार सेवा कर, प्रतिभूति लेनदेन करे के उन्मूलन और फ्रिंज लाभ कर (अब समाप्त) की शुरूआत है।

व्यय सुधार आयोग द्वारा व्यय वृद्धि को रोकने के लिए भी प्रयास भी किए गए है। भारत सरकार दिनांकित रुपए प्रतिभूतियों और लंबी अवधि के ट्रेजरी बिलों के अवशोषण के संबंध में बाजार के संचालन को शुरू करने से नीतिगत परिवर्तनों की संख्या को आंतरिक ऋण प्रबंधन नीति को सक्रिय करने के लिए किया जाता है। उधार की प्रक्रिया में एक और सुधार बाजार उधार पर ब्याज दर और अन्य आंतरिक देनदारियों के बीच का अंतर कम था। अब तक राज्यों का संबंध है, सभी राज्यों ने अपने स्वयं के राजकोषीय सुधार कार्यक्रम शुरू किए हैं। मध्य अवधि वित्तीय सुधार कार्यक्रम विकसित करने की दिशा मे राज्यों के प्रयासों को पूरक करने के लिए, एक ऋण स्वैप यह योजना केन्द्र सरकार द्वारा तैयार की गई है। राज्यों ने बिक्री करों के मामलें में दर श्रेणियों को कम कर दिया।

कम छूट, और मंजिल की दरें पेश की राज्यों ने अपने एफआरबीएमए के अधिनियमन की सहायता से व्यय को सम्पीड़न करके व्यय को शामिल करने का भी प्रयास किया है। राजकोषीय सुधारों के लिए सांविधिक समर्थन प्रदान करने के लिए, 26 राज्यों ने राजकोषीय जिम्मेदारी अधिनियमों को लागू किया है।

14.4 सारांश

भारत में, राजकोषीय नीति ने आजादी के बाद से महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जो देश के सामाजिक–आर्थिक विकास प्रक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान होता है। यह दर्शाते हुए, वर्षो में साहित्य का एक बड़ा, बढ़ता और संगठित शरीर उभरा है। वर्षो से, उच्च आर्थिक विकास और स्थिरता, कुशल संसाधन आबंटन और आय का न्यायसंगत वितरण प्राप्त करने के लिए, राजकोषीय नीति के विभिन्न साधन अर्थात, कराधान, सार्वजनिक व्यय और सार्वजनिक उधार, नियोजित किया गया है, विभिन्न महत्वों के साथ। इसके अलावा, भारत में, कई विकासशील देशों के रूप में, राजकोषीय नीति अलगाव में काम नहीं करती क्योंकि यह वास्तविक, मौद्रिक और बाह्रय क्षेत्रों के साथ निकट व्यापक आर्थिक संबंध है। इस प्रकार, राजकोषीय नीति का व्यापक आर्थिक प्रभाव व्यापक आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण

है। भारतीय सार्वजनिक वित्त आज एक मोड़ पर पहुंच गया है। सार्वजनिक वित्त के भविष्य के पाठ्यक्रम में निम्नलिखित घटनाओं पर गंभीर रूप से काम होगा। सबसे पहले, राजकोषीय नीति विकास में तेजी लाने के लिए एक शक्तिशाली उपकरण हो सकती है, बशर्ते संसाधनों को विकृतियों के बिना कुशलता से उठाया गया और भौतिक और सामाजिक अवसरंचना सहित सार्वजनिक सामान और सेवाओं का उपयोग करने के लिए उपयोग किया गया, और वंचितों मौजूदा ढांचागत सुविधाओं के रखरखाव को सुनिश्चित करने और नए लोगों को बनाने के लिए जीडीपी के अनुपात के रूप में कुल सरकारी व्यय को बनाए रखा जाना चाहिए और राज्य स्तर पर उठाया जाना चाहिए। यह व्यय की सरंचना में बदलाव की मांग करता है। दूसरा, केन्द्र और राज्य स्तर पर दोनों ही राजकोषीय कानून का पालन, व्यापक आर्थिक, वित्तीय, बाहृय क्षेत्र और बजटीय स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण है। तीसरा, राजकोषीय सशक्तिकरण, अर्थात् बजट में राजस्व प्रवाह का दायरा और आकार बढ़ाना, कर सुधारों के माध्यम से उचित उपयोगकर्ता शुल्क और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के पुनर्गठन के महत्व को महत्व दिया जाता है चौथा, जैसा कि भारतीय अर्थव्यवस्था अधिक खुली होती है और शेष दुनिया के साथ एकीकृत होती हैं, राजकोषीय नीति को अधिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता। पांचवीं, ऊर्ध्वाधन और क्षैतिज असंतुलन को संबोधित करने के संदर्भ में, दोनों वित्तीय रूप से राजनीतिक संघवाद के दृष्टिकोण पर, संस्थागत सुधारों पर ध्यान केन्द्रित करना होगा जो राजस्व क्षमता के साथ जरूरतों को संरेखित करते हैं। छठे, बदलते जनसांख्यिकीय प्रोफाइल एक उपयुक्त राजकोषीय नीति को और अधिक जटिल बनाना होगा।

14.5 शब्दावली

राजकोषीय सुधारः राजकोषीय सुधार से आशय कराधान, राजस्व तथा व्यय में किए गए सुधार से है।

एमओडीवीएटीः संशोधित मूल्यवर्धित कर।

सम्पत्ति करः सम्पत्ति की कुल शुद्ध मूल्य पर लगने वाला कर है।

डिबेंचरः यह एक मध्यम तथा दीर्घ अवधि काल के लिए लिया गया ऋण है, जिस पर एक निश्चित दर से ब्याज का भुगतान किया जाता है।

जीएसटीः वस्तु एवं सेवा कर।

राजस्व संचलनः इसका आशय कर नीति के द्वारा राजस्व प्राप्त करना तथा विकास कार्यो में व्यय करना।

14.6 बोध प्रश्न

रिक्त स्थान को भरिएः—

i) राजकोषीय नीति ने 1970 के दशक के दौरान अधिक से अधिक .... प्राप्त करने पर ध्यान केन्द्रित किया।

ii) सार्वजनिक राजस्व में वृद्धि के लिए मुख्य फोक्स .... सुधारों पर बनी हुई है।

iii) दीर्घकालिक राजकोषीय नीति के अनुरूप महत्त्वपूर्ण सुधार .... के क्षेत्र में किए गए थे।

iv) टैक्स रिफॉर्म्स कमेटी 1991 ने सेवाओं पर .... कर लगाने की सिफारिश की।

v) .... में असंतुलन और कई उपायों का उपक्रम करके अनुत्पादक व्यय को कम करने पर जोर दिया गया।

vi) राज्यों के लिए राजकोषीय सुधार कार्यक्रम का मुख्य उद्धेश्य वर्तमान राजस्व पर संतुलन में सुधार करना और मध्य अवधि में .... को कम करना है।

vii) जीएसटी वित्तीय संघवाद में अधिक ऊर्ध्वाधर .... की सुविधा प्रदान करेगा।

14.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

i) समता और सामाजिक व्यय, ii) कराधान, iii) कॉर्पोरेट कराधान, iv) चयनात्मक, v) 1990–91, vi) राजस्व घाटे, vii) इक्विटी।

14.8 स्वपरख प्रश्न

1. भारतीय अर्थव्यवस्था में राजकोषीय सुधार के महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. राजकोषीय सुधार के समय भारत की आर्थिक स्थिति का वर्णन करो।
3. केन्द्र, राज्य तथा लोकल स्तर के राजकोषीय सुधारों का वर्णन करें।
4. बारहवीं वित्त आयोग द्वारा सुझाए गए सरकारी व्यय के पुनर्गठन का वर्णन करें।
5. भारत में राजकोषीय सुधार की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन करें।

14.9 सन्दर्भ पुस्तकें

1. राजस्व : डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय
2. लोकवित्त : डॉ0 एस0 के0 सिंह
3. राजस्व : डॉ0 आर0 एस0 कौशिक
4. राजस्व सिद्धान्त एवं व्यवहार : के0 एल0 माहेश्वरी
5. Delton, H : Principles of public Finance
6. Public Finance Theory and Practice : Mehta and Agrawal
7. Shirras, Findley : The Science of Public Finance
8. Hicks, Ursula : Public Finance
9. A.C. Pigou : A Study of Public Finance
10. Taylor P.E. : Economics of Public Finance
11. Raja J Chhelliah : Fiscal Policy in under developed Countries.

इकाई 15 भारत में राजकोषीय प्रवृत्ति (Fiscal Trends in India)

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
15.2 मूल अवधारणा
15.3 भारत की राजकोषीय नीति वास्तुकला
15.4 1991 तक भारतीय राजकोषीय नीति का विकास
15.5 उदारीकरण, विकास, समावेश और राजकोषीय समेकन
15.6 संकट और राजकोषीय समेकन में वापसी : भारतीय राजकोषीय नीति का परिपक्व होना
15.7 सारांश
15.8 शब्दावली
15.9 बोध प्रश्न
15.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
15.11 स्वपरख प्रश्न
15.12 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्धेश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- भारत में राजकोषीय प्रवत्ति को जान सकें।
- राजकोषीय प्रवृत्ति से सम्बन्धित मूल अवधारणाओं को जान सकें।
- भारतीय अर्थव्यवस्था पर उदारीकरण और राजकोषीय समेकन के प्रभाव का विश्लेषण कर सकें।
- नई आर्थिक नीति (1991) से पूर्व भारतीय राजकोषीय नीति के विकास की प्रवृत्ति को समझ सकें।
- संकट काल के समय भारतीय राजकोषीय नीति के परिपक्वता के बारें में जान सकें।

15.1 प्रस्तावना

राजकोषीय नीति सरकार के कराधान और व्यय से संबंधित है। मौद्रिक नीति, अर्थव्यवस्था में धन की आपूर्ति और ब्याज की दर से संबंधित है। अर्थव्यवस्था के व्यापक पहलुओं को चलाने के लिए आर्थिक प्रबंधकों द्वारा उपयोग किए जाने वाली ये मुख्य नीतियां है। अधिकांश आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं में, आर्थिक विकास वित्तीय नीति से संबंधित होता है, जबकि केन्द्रीय बैंक मौद्रिक नीति के लिए जिम्मेदार है। राजकोषीय नीति में टैक्स पॉलिसी, व्यय नीति, निवेश या विनिवेश रणनीतियां और ऋण या अधिशेष प्रबंधन शामिल है। राजकोषीय नीति देश के समग्र आर्थिक ढांचे का एक महत्वपूर्ण घटक है और इसलिए इसकी सामान्य आर्थिक नीति रणनीति से गहराई से जुड़ा हुआ है।

राजकोषीय नीति आर्थिक प्रवृत्तियों में मौद्रिक नीति को प्रभावित करती है। जब सरकार इसे खर्च से अधिक प्राप्त करती है, तो उसके पास एक अधिशेष है अगर सरकार इसे प्राप्त की तुलना में अधिक खर्च करती है तो यह घाटे को दिखाता है। इसके अतिरिक्त व्यय को पूरा करने के लिए, घरेलू या विदेशी स्त्रोतों

से उधार लेने की जरूरत है। सरकार विदेशी मुद्रा भंडार को आकर्षित करें या बराबर राशि का प्रिंट करें। यह अन्य आर्थिक चर को प्रभावित करने की प्रवृत्ति है। एक व्यापक सामान्यीकरण पर, मुद्रा की अत्यधिक छपाई मुद्रास्फीति की ओर जाता है । अगर सरकार विदेश से बहुत अधिक पैसा लेती है तो यह कर्ज संकट की ओर जाता है। यदि यह अपने विदेशी मुद्रा भंडार पर नीचे आ जाता हैं, तो भुगतान का असंतुलन उत्पन्न हो सकता है। सरकार द्वारा अत्यधिक घरेलू उधार लेने से उच्च वास्तविक ब्याज दर हो सकती है और घरेलू निजी क्षेत्र निधि का उपयोग करने में असमर्थ हो सकता है। किसी भी मामलें में, दीर्घकालिक विकास और आर्थिक कल्याण पर एक बडी कमी का असर नकारात्मक है। इसलिए, व्यापक सहमति है कि सरकार बड़े घाटे को नियंत्रित करने में विवेकपूर्ण नहीं है। हालांकि, विकासशील देशों के मामलें में, जहां बुनियादी ढांचे और सामाजिक निवेश की आवश्यकता पर्याप्त हो सकती है, कभी–कभी यह तर्क दिया जाता है कि दीर्घकालिक विकास की लागत पर चलने वाले अधिशेष भी सामाजिक निवेश की आवश्यकता पर्याप्त (फिशर और ईस्टरली, 1990) नहीं हो सकते। चुनौती तो सबसे अधिक विकासशील देश सरकारों के लिए बुनियादी ढांचे और सामाजिक जरूरतों को पूरा करना हैं, जबकि सरकार की वित्तीय स्थिति को ध्यान में रखते हुए कि घाटा या संचित ऋण का बोझ बहुत अच्छा नहीं है। यह इकाई ऐताहासिक प्रवृत्तियों, वित्तीय अनुशासन के ढांचे के विकास, वैश्विक वित्तीय संकट के लिए राजकोषीय प्रतिक्रिया का हाल का अनुभव और राजकोषीय एकत्रीकरण पथ पर बाद में लौटने पर विशेष ध्यान देने के साथ भारत की राजकोषीय नीति की गति की जांच करता है। भारत की योजनाबद्ध विकास रणनीति के शुरूआती वर्षो में रूढ़िवादी राजकोषी नीति की विशेषता थी, जिससे घाटे को नियंत्रण में रखा गया था। बड़े पैमाने पर सार्वजनिक क्षेत्र की औद्योगीकरण प्रक्रिया को निधि बनाने के लिए और सामाजिक कल्याण योजनाओं को नियंत्रित करने के लिए निजी क्षेत्र से संसाधनों को स्थानांतरित करने के लिए कर प्रणाली तैयार की गई थी। अप्रत्यक्ष कर प्रत्यक्ष कर से राजस्व का बड़ा स्त्रोत थे। हालांकि, विकास एनीमिक था और प्रणाली में अक्षमताएं होती थीं। 1980 के दशक में कुछ क्षेत्रों को विशेष क्षेत्रों में सुधार करने और कर प्रणाली में कुछ बदलाव करने के लिए कुछ प्रयास किए गए थें। लेकिन राजकोषीय घाटे के रूप में सार्वजनिक ऋण बढ़े उच्च तेल की कीमतों और राजनीतिक अनिश्चितताओं से प्रेरित होकर, 1991 के भुगतान संकट के संतुलन ने आर्थिक उदारीकरण का नेतृत्व किया। कर प्रणाली में सुधार प्रत्यक्ष कर के साथ शुरू अप्रत्यक्ष करों की तुलना में उनके शेयर में वृद्धि हुई राजकोषीय घाटे को नियंत्रण में लाया गया था जब घाटे और कर्ज की स्थिति फिर से 2000 के दशक के शुरू में नियंत्रण से बाहर हुई, राजकोषीय अनुशासन केन्द्रीय स्तर पर और ज्यादातर राज्यों में स्थापित किया गया था। घाटे को नियंत्रण में लाया गया और 2007–08 तक उच्च विकास और मध्यम मुद्रास्फीति के साथ एक सौम्य स्थूल–राजकोषीय स्थिति का प्रारंभ हुआ। वैश्विक वित्तीय संकट ने राजकोषीय नीति ढांचे का परीक्षण किया और इसमें कटौती और खर्च में बढ़ोतरी सहित काउंटर–चक्रीय उपायों के साथ जवाब दिया। भारतीय अर्थव्यवस्था के बाद संकट की वसूली में शासन की दिशा में राजकोषीय नीति का सुधार हुआ

हैं। भविष्य में, ध्यान संभवतः नए कर सुधार लाने और सामाजिक व्यय के बेहतर लक्ष्य को लाने पर होगा।

15.2 मूल अवधारणा (Basic Concept)

प्रारंभ में, कुछ बुनियादी अवधारणाओं को स्पष्ट करना महत्वपूर्ण है । सबसे प्रारांभिक शायद राजस्व ओर पूंजी प्रवाह के बीच अंतर है, वे प्राप्तियां या व्यय हालांकि इन विचारों के लिए कई जटिल कानूनी और औपचारिक परिभाषाएं हैं, कुछ सरल और शैलीगत वैचारिक स्पष्टीकरण प्रस्तुत करना उचित माना गया है। एक व्यय राजस्व एक पूंजीगत व्यय है, यदि यह किसी परिसम्पत्ति के निर्माण से संबंधित है जो कि काफी समय तक चलने की संभावना है और इसमें ऋण के वितरण शामिल है। इस तरह के व्यय आमतौर पर प्रकृति में नियमित नहीं होते हैं। उसी तर्क से एक पूंजी की रसीद एक परिसम्पत्ति के परिसमापन से उत्पन्न होती है जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों (विनिवेश) में सरकारी शेयरों की बिक्री, ऋण पर दी गई धनराशि या ऋण की प्राप्ति की वापसी शामिल होती है। यह आमतौर पर एक अपेक्षाकृत अनियमित घटना से उठता हैं और नियमित नहीं है। इसके विपरीत, राजस्व व्यय काफी नियमित हैं और आम तौर पर वेतन, पेंशन, सब्सिडी, ब्याज भुगतान जैसे कुछ नियमित आवश्यकताओं को पूरा करता है। राजस्व प्राप्तियां नियमित रूप से ''आय'' का प्रतिनिधित्व करती हैं, उदाहरण के लिए टेलीकॉम स्पेक्ट्रम की बिक्री सहित कर प्राप्तियां और गैर–कर राजस्व।

सरकार के घाटे का प्रतिनिधित्व करने और व्याख्या करने के कई तरीके हैं। सबसे सरल राजस्व घाटे जो राजस्व प्राप्तियों और राजस्व व्यय के बीच अंतर है।

Revenue Deficit = Revenue Expenditure – Revenue Receipts (that is Tax + Non-tax Revenue)

सरकार की घाटे का एक अधिक व्यापक संकेतक राजकोषीय घाटा है । यह राजस्व और पूंजीगत व्यय की राशि है जो ऋण के अलावा अन्य सभी राजस्व और पूंजी प्राप्तियां ली गई थी। यह सरकार की धन की स्थिति के बारें में अधिक समग्र दृष्टिकोण देता है क्योंकि इससे ऐसे व्यय को पूरा करने के लिए किए गए ऋणों के अलावा सभी रसीदों और व्यय में अंतर होता है।

Fiscal Deficit = Total Expenditure (that is Revenue Expenditure +Capital Expenditure) – (Revenue Receipts + Recoveries of Loans + Other Capital Receipts (that is all Revenue and Capital Receipts other than loans taken)

''सरकार का सकल राजकोषीय घाटा (जीएफडी) राजस्व प्राप्तियों (बाह्रय अनुदान समेत) और गैर–ऋण पूंजी प्राप्तियों से अधिक, कुल व्यय, वर्तमान और पूंजी से अधिक है, वसूली के ऋण सहित, शुद्ध राजकोषीय घाटा है।'' सकल राजकोषीय घाटे को सरकार द्वारा शुद्ध ऋण देने से कम (दासगुप्ता और डी, 2011)। सकल प्राथमिक घाटा जीएफडी कम ब्याज भुगतान है जबकि प्राथमिक राजस्व घाटे का राजस्व घाटा कम ब्याज भुगतान है।

15.3 भारत की राजकोषीय नीति वास्तुकला (India's Fiscal Policy Architecture)

भारतीय संविधान देश की राजकोषीय नीति के लिए व्यापक रूपरेखा प्रदान करता है। संविधान के अनुसार भारत में केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच विभाजित होने वाली ताकत और खर्च जिम्मेदारियों के साथ संघीय रूप है। स्थानीय स्तर पर सरकार का तीसरा चरण भी है। चूंकि राज्यों की करों की क्षमताएं उनके खर्च की जिम्मेदारियों के अनुरूप नहीं है, इसलिए केन्द्र सरकार की कुछ राज्य सरकारों को राज्य सरकारों को सौंप दिया जाना चाहिए। इस काम का आधार प्रदान करने के लिए और वित्तीय मामलों पर माध्यमिक दिशा–निर्देश प्रदान करने के लिए, संविधान हर पांच साल में वित्त आयोग (एफसी) के गठन के लिए प्रदान करता हैं। एफसी की रिपोर्ट के आधार पर केन्द्रीय कर राज्य सरकारों को दिए जाते हैं। संविधान भी प्रत्येक वित्तीय वर्ष के लिए प्रदान करता हैं, सरकार विधायिका विधायी बहस और अनुमोदन के लिए प्रस्तावित कर लगाने और खर्च प्रावधानों के एक बयान से पहले रखेगी। इसे बजट के रूप में संदर्भित किया जाता है केन्द्र और राज्य सरकारों के पास प्रत्येक का अपना बजट है।
केन्द्रीय सरकार उन मुद्दों के लिए जिम्मेदार हैं, जो आमतौर पर देश की राष्ट्रीय रक्षा, विदेश नीति, रेलवे, राष्ट्रीय राजमार्ग, नौवहन, वायुमार्ग, पोस्ट और टेलीग्राफ, विदेशी व्यापार और बैंकिग जैसी पूरी तरह से चिंता करते है। राज्य सरकारें कानून, व्यवस्था, कृषि, मत्स्य पालन, जल आपूर्ति और सिंचाई और सार्वजनिक स्वास्थ्य सहित अन्य मदों के लिए जिम्मेदार हैं। कुछ चीजें जिनकें लिए केन्द्र और राज्य दानों में जिम्मेदारी निहित है, उनमें वन, आर्थिक और सामाजिक नियोजन, शिक्षा, ट्रेड यूनियन और औद्योगिक विवाद, मूल्य नियंत्रण और बिजली शामिल है। अब शहर, शहर और गांव के स्तरों पर स्थानीय सरकारों को कुछ शक्तियों के वितरण में वृद्धि हो रही है। केन्द्रीय सरकार की करों की शक्ति आय पर करों (कृषि आय को छोड़कर), वस्तुओं के उत्पादन पर उत्पाद शुल्क (शराब के अलावा), सीमा शुल्क और सामानों की अंतर–राज्य बिक्री शामिल करती है। राज्य सरकारों को कृषि आय, भूमि और भवनों, माल की बिक्री (अंतर–राज्य के अलावा), और शराब पर उत्पाद शुल्क कर देने की शक्ति के साथ निहित है।

वार्षिक बजटीय प्रक्रिया के अलावा 1950 से, भारत ने दीर्घकालिक आर्थिक उद्धेश्यों को सुनिश्चित करने के लिए पांच वर्षो की योजनाओं की एक प्रणाली का पालन किया है। यह प्रक्रिया योजना आयोग द्वारा संचालित की जाती है। जिसके लिए संविधान में कोई विशेष प्रावधान नहीं है। नियोजन प्रक्रिया का मुख्य वित्तीय प्रभाव योजना और गैर–योजना घटकों में व्यय का विभाजन है। योजना घटकों को लंब अवधि के सामाजिक–आर्थिक लक्ष्यों से संबंधित वस्तओं से संबंधित हैं, जो चालू योजना प्रक्रिया द्वारा निर्धारित है। वे अक्सर विशिष्ट योजनाओं और परियोजनाओं से संबंधित हैं इसके अलावा, वे आमतौर पर केन्द्रीय वांछित उद्धेश्यों को प्राप्त करने के लिए राज्य सरकारों के माध्यम से केन्द्रीय मंत्रालयों के माध्यम से कराई जाती है। इन फंडों में आम तौर पर वित्त आयोंगों द्वारा निर्धारित केन्द्रीय करों के काम के अतिरिक्त होता है। कुछ मामलों में, राज्य सरकारें भी योजनाओं में अपने धन का योगदान करती हैं। गैर–योजना व्यय मोटे तौर पर प्रशासन, वेतन और जैसे के लिए सरकार के नियमित व्यय से संबंधित है।

हालांकि इन संस्थागत व्यवस्थाओं में विकास के एजेंडे को चलाने के लिए पर्याप्त रूप से दिखाई दिया गया। 1991 में आर्थिक उदारीकरण के बाद, जब

राजकोषीय घाटे और ऋण की स्थिति फिर से 2000 के आसपास स्थिर स्तर की ओर बढ़ रही थी, तो एक नया वित्तीय अनुशासन ढांचे की स्थापना की गई थी। केन्द्रीय स्तर पर इस रूपरेखा को 2003 में शुरू किया गया था जब संसद ने राजकोषीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबंधन अधिनियम (एफआरबीएमए) पारित किया था।

कर सरकारी राजस्व का मुख्य स्त्रोत हैं प्रत्यक्ष करों को सीधे उस व्यक्ति या संगठन से एकत्र किया जाता है जो अंततः कर का भुगतान करती है। व्यक्तिगत और कॉर्पोरेट आय पर कर, निजी सम्पत्ति और व्यवसाय प्रत्यक्ष कर हैं। भारत में केन्द्रीय स्तर पर मुख्य प्रत्यक्ष कर निजी और कॉर्पोरेट आय कर हैं। दोनों ही कानून के एक ही टुकड़े, 1961 के आय कर अधिनियम के माध्यम से लगाए जाते हैं। आयकर विभिन्न आयकरों पर लगाया जाता है, अर्थात् व्यापार और व्यवसाय, वेतन, घर की सम्पत्ति, पूंजीगत लाभ और अन्य स्त्रोतों से आय (जैसे ब्याज और लाभांश) अन्य प्रत्यक्ष करों में सम्पत्ति कर और प्रतिभूति लेनदेन टैक्स शामिल है। भारत में समय–समय पर प्रत्यक्ष रूप से विद्यमान कराधान के कुछ अन्य रूपों को अलग–अलग सुधारों के हिस्से के रूप में हटा दिया गया था, इसमें सम्पत्ति कर, उपहार कर, व्यय कर और फ्रिंज लाभ कर शामिल है। सम्पत्ति के कर्त्तव्य को मृत व्यक्ति की सम्पत्ति पर लगाया गया था फ्रिंज बेनिफिट टैक्स पर नियोक्ता द्वारा ऐसे प्रकार के गैर–नकद लाभों के मूल्य पर या अपने नियोक्ताओं के कर्मचारियों द्वारा प्राप्त लाभों पर शुल्क लिया गया था। इस तरह के प्राप्तियां अब बड़े पैमाने पर कर्मचारियों के हाथों सीधे तौर पर कर रहे हैं और इन्हें जोड़ा गया है। अप्रत्यक्ष करों का भुगतान उन लोगों के अलावा किया जाता है जो अंततः कर का भुगतान करते हैं (एक कानूनी अर्थ में)। उदाहरण के लिए, सामान की बिक्री पर कर खरीदार से विक्रेता द्वारा एकत्र किया जाता है। सरकार को कर का भुगतान करने की कानूनी जिम्मेदारी विक्रेता की हैं, लेकिन कर खरीदार द्वारा भुगतान किया जाता है। वर्तमान केन्द्रीय स्तर पर अप्रत्यक्ष कर, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क, (उत्पादित वस्तुओं पर कर), सेवा कर, सीमा शुल्क (आयात पर कर) और माल अंतरराज्यीय बिक्री कर हैं। मुख्य राज्य स्तरीय अप्रत्यक्ष कर, पोस्ट–मैन्युफैक्चरिंग (यह थोक और खुदरा स्तर है) बिक्री कर है (अब बड़े पैमाने पर इट्रा–स्टेट टैक्स क्रेडिट के साथ मूल्य वर्धित कर)। प्रस्तावित वस्तुओं और सेवा कर (जीएसटी) के संदर्भ में बाद में आर्थिक मूल्य श्रृंखला (टैक्सिंग शक्तियों के संवैधानिक काम से जरूरी) में इस एकाधिक कैस्केड़िंग कराधान की जटिलताओं और आर्थिक अक्षमताओं पर चर्चा की गई है।

15.4 1991 तक भारतीय राजकोषीय नीति का विकास (Evolution of Indian Fiscal Policy till 1991)

भारत ने 1950 में योजना आयोग की स्थापना के साथ योजनाबद्ध विकास किया। यह भी एक वर्ष था जब देश ने एक मजबूत संघटन सुविधाओं के साथ एक संघीय संविधान अपनाया जिससे आर्थिक विकास की योजना के संदर्भ में केन्द्र सरकार को प्राथमिकता दी गई (सिंह और श्रीनिवासन, 2004)। बाद की योजना प्रक्रिया ने आर्थिक विकास और औद्योगिक विकास को प्राप्त करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों को मजबूत करने पर जोर दिया। परिणामस्वरूप आर्थिक रूपरेखा ने विभिन्न उद्योगों पर प्रशासनिक नियंत्रण लगाए और निजी

उद्योगों के लिए लाइसेंसिग और कोटा की व्यवस्था की। परिणामस्वरूप, राजकोषीय नीति की मुख्य भूमिका सार्वजनिक क्षेत्र की बढ़ती खपत और निवेश की जरूरतों को पूरा करना था। अन्य लक्ष्यों में आय और धन की असमानताओं में कटौती और स्थानान्तरण कें माध्यम से कटौती, संतुलित क्षेत्रीय विकास को प्रोत्साहित करना, छोटे पैमाने पर उद्योगों को बढ़ावा देना और कभी–कभी आर्थिक गतिविधियों में प्रवृत्तियों को वांछित लक्ष्य (राव और राव, 2006) के लिए प्रभावित करना शामिल था।

कर नीति के संदर्भ, में, इसका आशय था कि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर दोनों ही निजी क्षेत्र से राजस्व प्राप्त करने और पुनर्वितरित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए राजस्व प्राप्त करने पर केन्द्रित रहें। संयुक्त केन्द्र और राज्य कर राजस्व जीडीपी अनुपात में 1950–51 में 6.3 प्रतिशत से बढ़कर 1987–88 में 16.1 प्रतिशत हो गया। केन्द्रीय सरकार के लिए यह अनुपात 1950–51 में जीडीपी का 4.1 प्रतिशत था, जबकि अप्रत्यक्ष करों से आने वाले बड़े हिस्से में 2.3 जीडीपी का प्रतिशत और जीडीपी का 1.8 प्रतिशत प्रत्यक्ष कर था। उनके निचले प्रत्यक्ष कर को देखते हुए, 1950–51 में राज्यों के प्रत्यक्ष कर के रूप में 0.6 फीसदी और अप्रत्यक्ष कर के रूप में जीडीपी का 1.7 प्रतिशत थी (राव और राव, 2006)।

सरकार ने 1953 की कराधान जांच आयोग की रिपोर्ट में समापन किए टैक्स सिस्टम की एक व्यापक समीक्षा को अधीकृत किया। हालांकि, सरकार ने ब्रिटिश अर्थशास्त्री निकोलस कल्डोरर को कर प्रणाली में सुधार की संभावना का परीक्षण करने के लिए आमंत्रित किया। कल्डोर ने पाया कि प्रणाली को अयोग्य और असंगत पाया संकीर्ण कर आधार और सम्पत्ति आय और कराधान की अपर्याप्त रिपोर्टिंग को पाया। उन्होंने यह भी पाया कि अधिकतम सीमांत आयकर की दर 92 प्रतिशत से अधिक है और यह सुझाव दिया कि इसे घटाकर 45 प्रतिशत कर दिया जाए। उनकी सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए, सरकार ने एक उपहार कर, एक सम्पत्ति कर और एक व्यय कर (जो प्रशासनिक जटिलताओं के कारण जारी नहीं रखा गया था) लाया गया पूंजीगत लाभ कराधान (हर्ड और लीबफ्रिज, 2008) को पुनर्जीवित किया।

कल्डोरर की सिफारिशों के बावजूद आय और कॉर्पोरेट टैक्स सबसे ज्यादा सीमांत दर पर असाधाण रूप से उच्च रहें। 1973–74 में, अधिभार खाते में लेनेवाली अधिकतम दर व्यक्तिगत आय के लिए 97.5 प्रतिशत थी। 0.2 मिलियन प्रणाली ग्यारह टैक्स ब्रैकेट्स के साथी भी जटिल थी। व्यापक रूप से आयोजित और बारिकी से आयोजित कम्पनियों के लिए कॉर्पोरेट आयकर में अंतर था, कुछ व्यापक रूप से आयोजित कम्पनियों के लिए 45 से 65 प्रतिशत के बीच कर की दर अलग थी। हालांकि वैधानिक कर की दरें बहुत अधिक भीं, बड़ी संख्या में विशेष भत्तों और मूल्यह्रास हो देखते हुए प्रभावी कर की दर बहुत कम थी। 1971 की प्रत्यक्ष कर जांच समिति ने पाया कि उच्च कर दरों में कर चोरी को प्रोत्साहित किया गया था लेकिन सम्पत्ति कर की दर में वृद्धि हुई थी अगले प्रमुख सरलीकरण में 1985–86 में टैक्स दर की संख्या आठ से चार कम हो गई और उच्चतम आयकर दर को 50 प्रतिशत (राव और राव, 2006) में लाया गया। अप्रत्यक्ष करों में, एक प्रमुख घटक केन्द्रीय उत्पाद शुल्क था। यह शुरू में कच्चे माल और मध्यवर्ती वस्तुओं के लिए इस्तेमाल नहीं किया गया था, न ही अंतिम

उपभोक्ता वस्तुओं पर। लेकिन 1975–76 तक सभी विनिर्मित वस्तुओं को शामिल करने के लिए विस्तारित किया गया था। इस समय एकसाइज ड्यूटी सरंचना जटिल थी और आर्थिक फैसलों को विकृत करने की प्रवृत्ति थी। टैक्स में भी एक प्रमुख ''कैस्केड़िंग प्रभाव'' था क्योंकि इसे अंतिम उपभोक्ता वस्तुओं पर ही नहीं बल्कि इनपुट और कैपिटल गुड्स पर लगाया गया था। असल में, इनपुट पर टैक्स का फिर से निर्माण के अगले बिंदु पर लगाया गया, जिसके परिणामस्वरूप इनपुट के दाहरे कराधान का परिणाम सामने आया। यह देखते हए कि राज्यों के बाद विनिर्माण थोक और खुदरा स्तर पर अलग–अलग बिक्री कर लगाया गया था, यह व्यापक प्रभाव काफी महत्वपूर्ण था। 1977 की अप्रत्यक्ष कर जांच रिर्पोट ने विनिर्माण कर को मैन्युफैक्चरिंग वैल्यू वर्धित कर (एमएएनवीएटी) में परिवर्तित करने के लिए इनपुट टैक्स क्रेडिट की सिफारिश की। इसके ब्जाय, 1986 से संशोधित मूल्य वर्धित कर (एमओडीवीएऐ) को चरणबद्ध तरीके से पेश किया गया था। जिसमें केवल चयनित वस्तुओं को शामिल किया गया था (राव और राव, 2006)।

अन्य मुख्य केन्द्रीय अप्रत्यक्ष कर सीमा शुल्क है। यह राजस्व का एक बहुत बड़ा स्त्रोत नहीं था। टैरिफ उच्च और विभेदित थे तैयार माल जैसे उत्पादन के बाद के चरणों में आइटम उच्च स्तर पर कच्चे माल की तरह, पहले के स्तर से अधिक पर लगाए गए थे। दरें भी कथित आय के लोकास्टिक्स के आधार पर भिन्न होती हैं, जो लक्जरी सामानों की तुलना में कम दरों पर लगाए गए हैं। 1985–86 में सरकार ने अपनी लंबी अवधि के राजकोषीय नीति को टैरिफ को कम करने के जरूरत पर बल दिया, कम दरों की और अंततः आयात पर मात्रात्मक सीमाएं निकालीं। कुछ सुधारों का प्रयास किया गया लेकिन राजस्व बढ़ाने के विचारों के कारण, भारित औसत दर के संदर्भ में टैरिफ 1989–91 में 1980–81 से 87 प्रतिशत तक 38 प्रतिशत से बढ़ी। 1990–91 तक टैरिफ सरंचना में 0 से 400 प्रतिशत की सीमा थी, जो कि 120 प्रतिशत या इससे अधिक के टैरिफ के आयात के 10 प्रतिशत से अधिक है बजटीय प्रक्रिया (राव और राव, 2006) के बाहर दी गई छूट से आगे बढ़ने वाली जटिलताएं सामने आईं।

1970–71 में, केन्द्रीय सरकार की राजस्व का लगभग 16 प्रतिशत निवेश करों, अप्रत्यक्ष करों में लगभग 58 प्रतिशत योगदान दिया गया और शेष 26 प्रतिशत नॉनटैक्स राजस्व (चित्र 1) से आया। 1990–91 तक, अप्रत्यक्ष करों का हिस्सा बढ़कर 65 प्रतिशत हो गया, प्रत्यक्ष करों की संख्या घटकर 13 प्रतिशत हो गई और गैर की आय 22 प्रतिशत थीं (चित्र 2)।

Figure 1: Composition of central government revenues (1970-71)

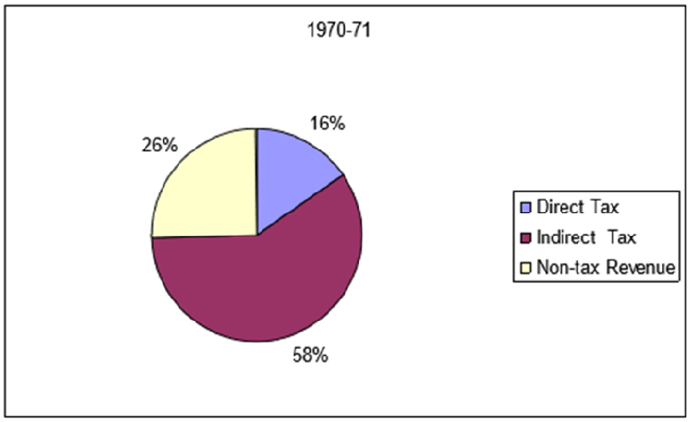

Data source: Database on the Indian Economy, http://dbie.rbi.org.in (Reserve Bank of India, 2011)

Figure 2: Composition of central government revenues (1990-91)

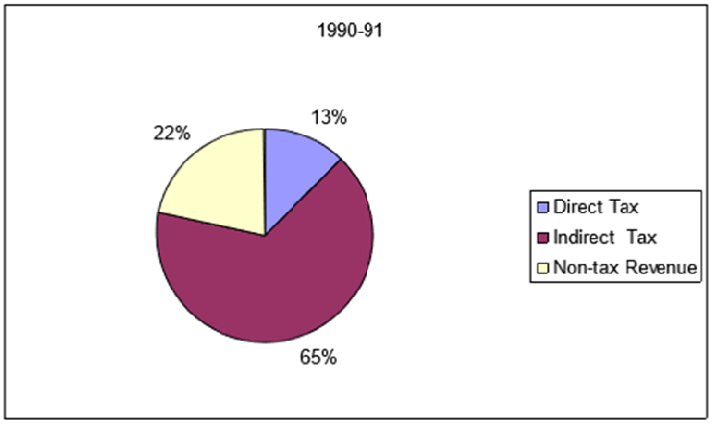

Data source: Database on the Indian Economy, http://dbie.rbi.org.in (Reserve Bank of India, 2011)

1980 तक भारतीय व्यय मानदण्ड रूढिवादी बने रहे। 1973–74 से 1978–79 तक केन्द्रीय सरकार लगातार राजस्व अधिशेषों में चलती रही। इसकी सकल राजकोषीय घाटे में निम्न गतियों के कुछ समय (चित्र 5) के बाद धीमी गति से वृद्धि हुई है। राज्य सरकारें 1984–85 (चित्र 6) को छोड़कर, 1974–75 से लेकर 1986–87 तक राजस्व अधिशेषों को भी दर्शाती हैं। इसके बाद, व्यापार उदारीकरण, निर्यात प्रोत्साहन और आधुनिक प्रौद्योगिकियों में निवेश सहित विशिष्ट क्षेत्रों में सीमित सुधारों के साथ घरेलू और विदेशी उधार (सिंह और श्रीनिवासन, 2004) द्वारा वित्तपोषण में वृद्धि हुई। 1980–91 के बीच केन्द्रीय राजस्व घाटे जीडीपी में 1.4 प्रतिशत से बढ़कर जीडीपी के 2.44 प्रतिशत तक बढ़ गया। इसी अवधि के दौरान केन्द्र का सकल राजकोषीय घाटा (जीएफडी) 5.71 प्रतिशत से बढ़कर जीडीपी के 7.31 प्रतिशत पर पहुंच गया। हालांकि केन्द्र की बाहरी देनदारियां 1982–83 में जीडीपी के 7.16 प्रतिशत से गिरकर 1990–91 तक 5.53 फीसदी जीडीपी से घटकर पूर्ण रूप से देनदारियों के बड़े थे। इसी अवधि के दौरान, केन्द्र और राज्यों की कुल देनदारियों को सकल घरेलू उत्पाद का 51.43 प्रतिशत से बढ़ाकर सकल घरेलू उत्पाद का 64.75 प्रतिशत हो गया।

यह सामाजिक और पूंजी व्यय की कीमत पर आया था। कुल केन्द्रीय और राज्य सरकार के अंशदान का ब्याज घटक यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है। 1998–91 के बीच 1980–81 से लगभग 30 प्रतिशत से लगभग 20 प्रतिशत पूंजीगत वितरण घट गया था। इसके विपरीत, इसी अवधि (चित्र 7) में बयाज घटक लगभग 8 प्रतिशत से लगभग 15 प्रतिशत तक बढ़ गया है। 1971–72 में राजस्व व्यय के भीतर, रक्षा व्यय का 34 प्रतिशत का उच्चतम हिस्सा था, ब्याज का हिस्सा 19 प्रतिशत था जबकि सब्सिडी केवल 3 प्रतिशत थी (चित्र 3)। हालांकि, 1990–91 तक, सबसे बड़ा हिस्सा 29 प्रतिशत का ब्याज शेयर था, जिसमें सब्सिडी 17 प्रतिशत थी और रक्षा केवल 15 प्रतिशत (चित्र 4)। इसलिए, सार्वजनिक ऋण की सेवा के बोझ के अलावा, सब्सिडी का बोझ भी काफी अच्छा था।

Figure 3: Composition of central government revenue expenditures (1970-71)

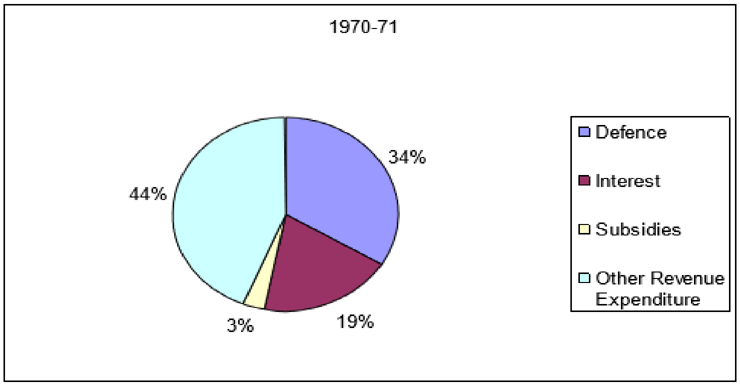

Data source: Database on the Indian Economy, http://dbie.rbi.org.in (Reserve Bank of India, 2011)

Figure 4: Composition of central government revenue expenditures (1990-91)

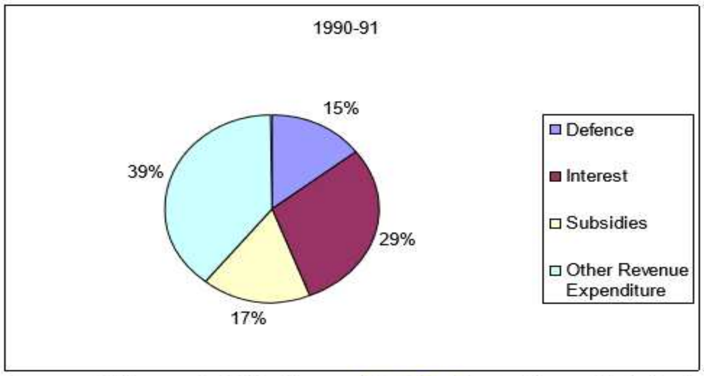

Data source: Database on the Indian Economy, http://dbie.rbi.org.in (Reserve Bank of India, 2011)

Figure 5: Deficits of the Central Government as percentage of GDP (1970-71 to 1989-90)

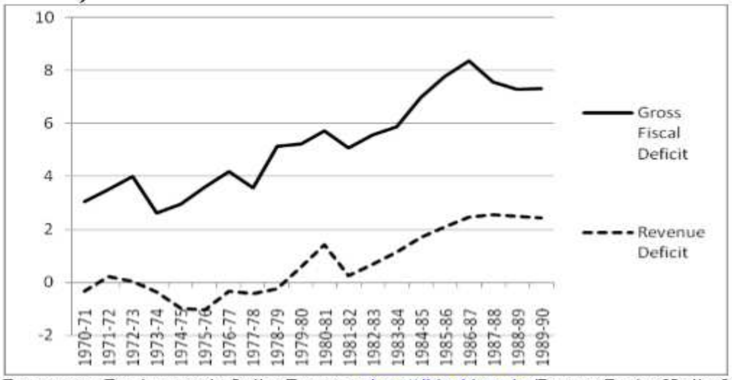

Data source: Database on the Indian Economy, http://dbie.rbi.org.in (Reserve Bank of India, 2011)

Figure 6: Deficits of the State Governments as percentage of GDP (1970-71 to 1989-90)

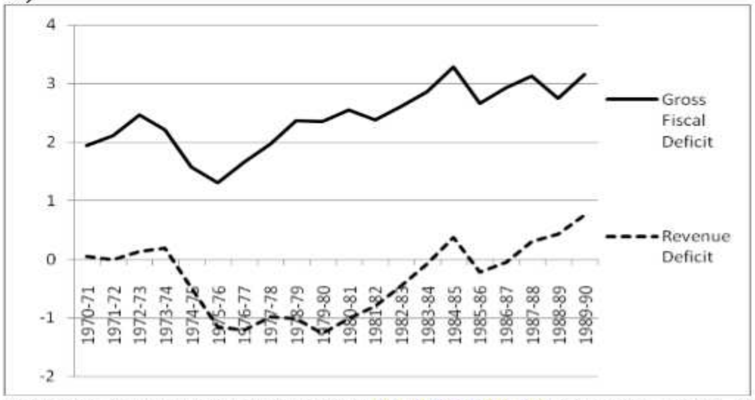

Data source: Database on the Indian Economy, http://dbie.rbi.org.in (Reserve Bank of India, 2011)

Figure 7: Composition of aggregate disbursements of Central and State Governments (as percentage of aggregate disbursements)

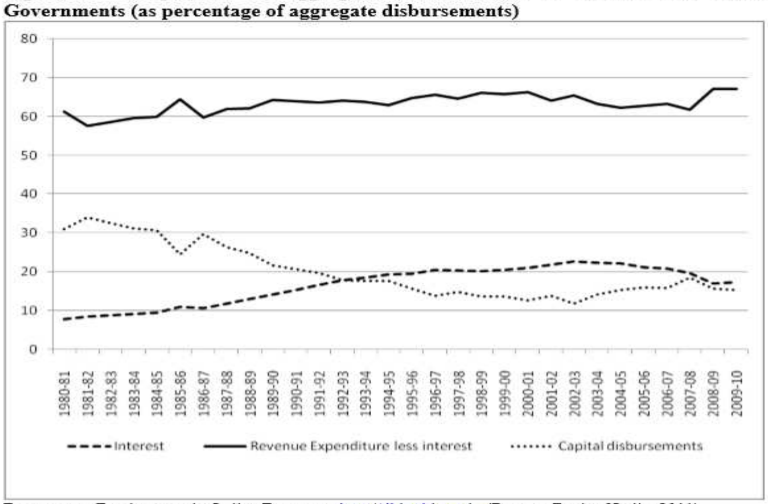

Data source: Database on the Indian Economy, http://dbie.rbi.org.in (Reserve Bank of India, 2011)

हालांकि भारत के बाह्रय ऋण और व्यय पैटर्न अनिश्चित स्तरों की ओर जा रहे थे, लेकिन भुगतान के संतुलन के नजदीकी कारण कुछ अप्रत्याशित बाहरी और घरेलू राजनीतिक घटनाओं से उत्पन्न हुए थे। प्रथम खाड़ी युद्ध ने तेल की कीमतों में बढ़ोतरी की जिससे सरकार की ईधन सब्सिडी का बोझ बढ़ गया। इसके अलावा, पूर्व प्रधान मंत्री राजीव गांधी की हत्या ने राजनीतिक अनिश्चितताओं को बढ़ाया, जिससे कुछ विदेशी अपनी निवेश की गई धनराशि निकाल ले गए। बाद के आर्थिक सुधारो ने भारतीय अर्थव्यवस्था को हमेशा के लिए बदल दिया।

15.5 उदारीकरण, विकास, समावेश और राजकोषीय समेकन [1991–2008] (Liberalization, Growth, Inclusion and Fiscal Consolidation [1991-2008])

1991 के भुगतान संकट के संतुलन के बाद, सरकार ने आर्थिक उदारीकरण के मार्ग पर शुरूआत की जिससे अर्थव्यवस्था को विदेशी निवेश और व्यापार के लिए खोल दिया गया, निजी क्षेत्र को प्रोत्साहित किया गया और कोटा और लाइसेंसो की व्यवस्था को खत्म कर दिया गया। इन परिवर्तनों के साथ राजकोषीय नीति फिर से उन्मुख हुई।

कर सुधार समिति ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों दोनों में सुधार के लिए एक प्रारूप तैयार किया। इसकी मुख्य रणनीति कुल कर राजस्व में व्यापार करों के अनुपात को कम करने, घरेलू उपभोग करों की हिस्सेदारी में वृद्धि को वैट में उत्पादित करके और कुल राजस्व के लिए प्रत्यक्ष करों के योगदान में वृद्धि करना था। इसमें सभी प्रमुख करों की दरों को कम करने, छूट और कटौती को कम करने, कानूनों और प्रक्रियाओं को आसान बनाने, कर प्रशासन में सुधान लाने और कम्प्यूटरीकरण में वृद्धि और सूचना प्रणाली आधुनिकीकरण करने (राव और राव, 2006) की सिफारिश की गई।

बाद के प्रत्यक्ष कर सुधारों के एक भाग के रूप में, 1993–99 में व्यक्गित आय कर 20, 30 और 40 प्रतिशत की दर से घटाकर तीन हो गए। 1997–98 में निजी आयकर दरों में फिर से 10, 20 और 30 प्रतिशत की कमी आई थी। छूट सीमा की वृद्धि के साथ और समय–समय पर स्लैब सरंचना बढ़ाए जाने के बाद

से दरें काफी हद तक बनी हुई हैं। बाद में शिक्षा के लिए 2 प्रतिशत अधिभार को सभी करों पर लागू किया गया। मूल कॉर्पोरेट कर की दर 50 प्रतिशत तक कम हो गई थी और विभिन्न करीबी रूप से आयोजित कम्पनियों के लिए मूल्य समान रूप से 55 प्रतिशत था। 1993–94 में, बारिकी से आयोजित और व्यापक रूप से आयोजित कम्पनियों के बीच अंतर हटा दिया गया था और वर्दी कर की दर को 40 प्रतिशत तक घटाया गया था। 1997–98 (राव और राव, 2006) में वितरित लाभांश पर 10 प्रतिशत कर के साथ दर को 35 प्रतिशत तक कम कर दिया गया था।

इन सुधारों के बावजूद, टैक्स सिस्टम में पिछड़े क्षेत्रों, निर्यात प्रोत्साहन और प्रौद्योगिकी विकास में उद्योगों के स्थान सहित विभिन्न सामाजिक–आर्थिक लक्ष्यों के लिए कर प्रोत्साहन के रूप में छूट और कटौती जारी रही। इससे ''शून्य कर कम्पनियों'' की घटना हो गई जिसके तहत कर देनदारियों को कम करने के इरादे से इन सभी कर प्रोत्साहनों का लाभ उठाने के लिए कल्पनाशील व्यवस्था का उपयोग किया गया। इस प्रवृत्ति का मुकाबला करने के लिए, न्यूनतम वैकल्पिक कर (मैट) 1996–97 में पेश किया गया था।

अप्रत्यक्ष करों में, आबकारी के लिए MODVAT क्रैडिट सिस्टम को सबसे अधिक वस्तुओं को शामिल करने और 1996–97 तक एक व्यापक ऋण प्रणाली प्रदान करने के लिए विस्तारित किया गया था। 1999–2000 में अतिरिक्त गैर–रिबटेबल कर के अधीन ग्यारह दरों को कुछ लक्जरी वस्तुओं के साथ में मिला दिया गया। 2000–2001 में, तीन दरों को एक ही दर में विलय कर दिया गया और इसे सेंट्रल वैट (सेनवैट) का नाम दिया गया। 8, 16 ओर 24 प्रतिशत के तीन अतिरिक्त बने रहे सीमा शुल्क के मामले में, 1991–92 में 150 प्रतिशत से अधिक गैर–कृषि वस्तुओं पर सभी कर को इस दर पर लाया गया। ''चरम दर'' को 1997–98 में 40 प्रतिशत, 2002–03 में 30 प्रतिशत, 2003–04 में 25 प्रतिशत और 2005–06 में 15 प्रतिशत तक लाया गया था। प्रमुख ड्यूटी दर की संख्या भी 1990–92 में 22 से 2003–04 में 4 के स्तर पर घट गई थी। इन चार दरों में लगभग 90 प्रतिशत आकृतियों से एकत्र किए गए कर शामिल है। इस अवधि में 1994–95 में सर्विस टैक्स की शुरूआत भी हुई, जिसे बाद में अधिक से अधिक सेवाओं को शामिल करने के लिए विस्तारित किया गया। यह देखते हुए कि भारतीय अर्थव्यवस्था में तेजी से बड़े सेवा घटक हैं, यह राजस्व का एक प्रमुख स्त्रोत बन गया है। आखिरकार, केन्द्रीय अप्रत्यक्ष कर स्तर (राव और राव, 2006) में माल और सेवाओं दोनों के लिए इनपुट कर क्रेडिट की अनुमति देने के लिए प्रावधान किए गए थे। केन्द्रीय करों में सुधार के बावजूद, 1991 के आर्थिक सुधारों के बाद भी, राज्य सरकार कर सुधार अपर्याप्त और छिटपुट थे। इस दिशा में एक प्रमुख कदम 1999 में राज्य बिक्री कर प्रणाली के समन्वित सरलीकरण था। अंततः इसने 2005 में 21 राज्यों में वैट की शुरूआत की। मूल्य वर्धित कर, निवेश पर भुगतान किए गए करों को क्रेडिट करता है और कैस्केडिंग से राहत प्रदान करता है। खुदरा स्तर पर कार्यान्वित किए जाने के कारण राज्य सरकार के राजस्व में वृद्धि करते हुए कैस्केडिग बिक्री करों की जगह उपभोक्ताओं और व्यापारियों को काफी राहत मिली। वेट के प्रशासनिक डिजाइन ने इनपुट और आउटपुट की रिपोर्टिंग सुनिश्चित कर दी है जिसके परिणामस्वरूप कर चोरी में पर्याप्त कमी

आई है। टैक्स की बुनियादी विशेषताएं आम उपभोग वस्तुओं और इनपुट के लिए 4 प्रतिशत और दूसरों के लिए 12.5 प्रतिशत के दो दरों में शामिल है। कुछ आवश्यक वस्तुओं को छूट दी गई है और 1 प्रतिशत पर कीमती धातुओं पर कर लगाया गया है। क्रेडिट सिस्टम निवेशकों और खरीददारों के लिए पूंजीगत सामान के साथ ही डीलरों को शामिल करता है। तीन साल की बिक्री में कैपिटल गुड्स टैक्स का फायदा उठाया जा सकता है टैक्स क्रेडिट इंट्रा–स्टेट की बिक्री (राव और राव, 2006) के लिए पूरी तरह से संचालित होता है। यह एक राष्ट्रव्यापी बाजार के निर्माण के लिए एक बड़ी बाधा है और प्रस्तावित सामान और सेवा कर (जीएसटी) द्वारा संबोधित किया जाना है।

कर सुधार योजनाओं के अनुरूप, केन्द्रीय सरकार के राजस्व का स्त्रोत अप्रत्यक्ष करों से प्रत्यक्ष करों के लिए स्थानांतरित हो गया। 1995–96 में अप्रत्यक्ष करों से लगभग 54 प्रतिशत राजस्व प्राप्त हुआ, जबकि लगभग 20 प्रतिशत प्रत्यक्ष करों से थें (चित्र 8)। 2000–01 में, अप्रत्यक्ष करों का हिस्सा नाटकीय रूप से लगभग 45 प्रतिशत नीचे चला गया, जबकि प्रत्यक्ष करों से योगदान 26 प्रतिशत तक बढ़ गया (चित्र 9)। 2005–06 तक, अप्रत्यक्ष करों का योगदान करीब 43 प्रतिशत था, जबकि प्रत्यक्ष कर का हिस्सा लगभग 35 प्रतिशत था (चित्र 10)।

Figure 8: Composition of central government revenues (1995-96)

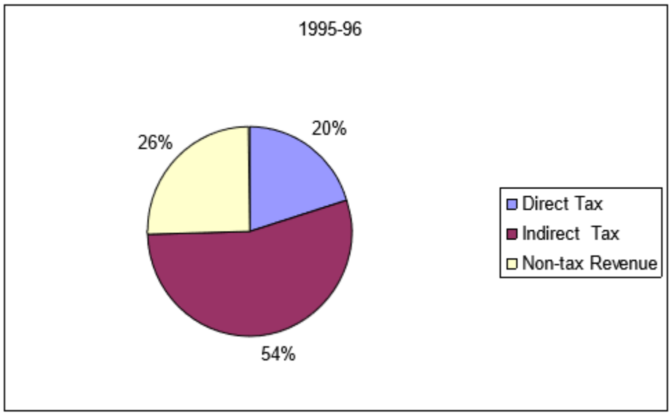

Data source: Database on the Indian Economy, http://dbie.rbi.org.in (Reserve Bank of India, 2011)

Figure 9: Composition of central government revenues (2000-01)

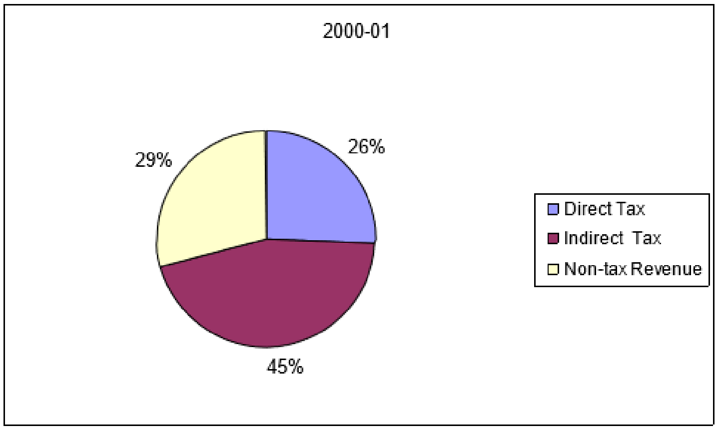

Data source: Database on the Indian Economy, http://dbie.rbi.org.in (Reserve Bank of India, 2011)

Figure 10: Composition of central government revenues (2005-06)

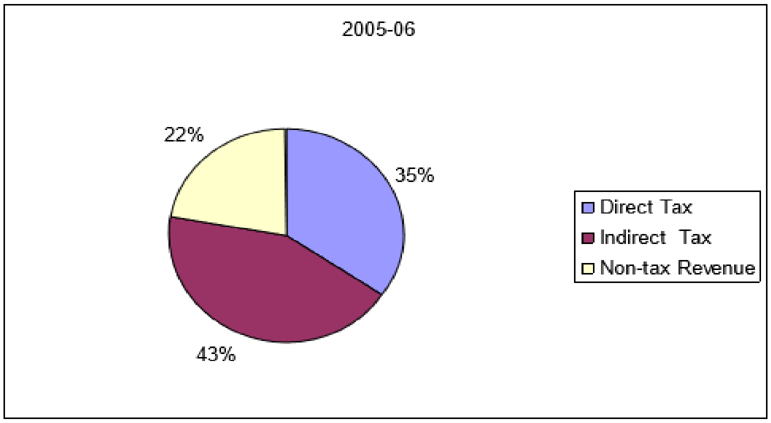

Data source: Database on the Indian Economy, http://dbie.rbi.org.in (Reserve Bank of India, 2011)

1991 के बाद व्यय की रणनीति ने सब्सिडी को कम करने और गैर–पूंजी व्यय पर कम करने पर ध्यान केन्द्रित किया। हालांकि, बड़े कर्ज के बोझ का मतलब था कि ब्याज के घटक के लिए एक लंबा समय लगेगा। 1995–96 में, केन्द्र सरकार के राजस्व व्यय में, 9 प्रतिशत सब्सिडी के लिए गए, बचाव के लिए 13 प्रतिशत और ब्याज के लिए 36 प्रतिशत था (चित्र 11)।

Figure 11: Composition of central government revenue expenditures (1995-96)

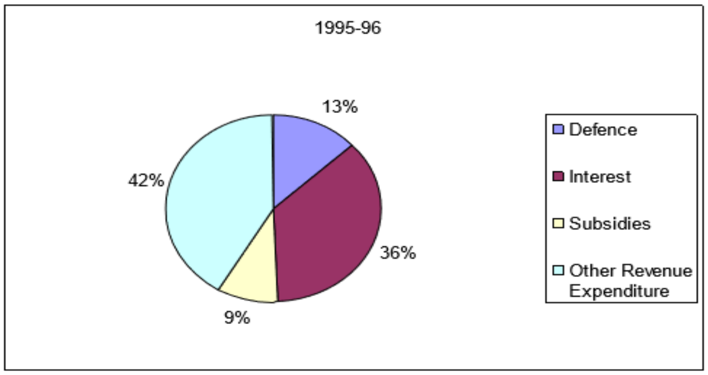

Data source: Database on the Indian Economy, http://dbie.rbi.org.in (Reserve Bank of India, 2011)

पांच साल बाद 2000–01 में, रक्षा और ब्याज क्रमशः 13 प्रतिशत और 36 प्रतिशत रहा, जबकि सब्सिडी में थोड़ा–अधिक 10 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई (चित्र 12)। इससे पता चलता है कि सरकारी व्यय की सरंचना आम तौर पर बहुत तेजी से बदलती नहीं है।

2005–06 में, ब्याज घटक, नीचे 30 प्रतिशत और बचाब और सब्सिडी में 11 प्रतिशत (चित्र 13) ऊपर आ गया था। केन्द्रीय और राज्य सरकारों के कुल वितरण के एक घटक के रूप में, 2002–03 तक ब्याज घटक बढ़ता रहा और फिर गिरावट शुरू हो गई पूंजीगत व्यय में 2002–03 के आसपास तक गिरावट का रूझान दिखा और फिर 2007–08 तक बढ़ गया (चित्र 7)।

Figure 12: Composition of central government revenue expenditures (2000-01)

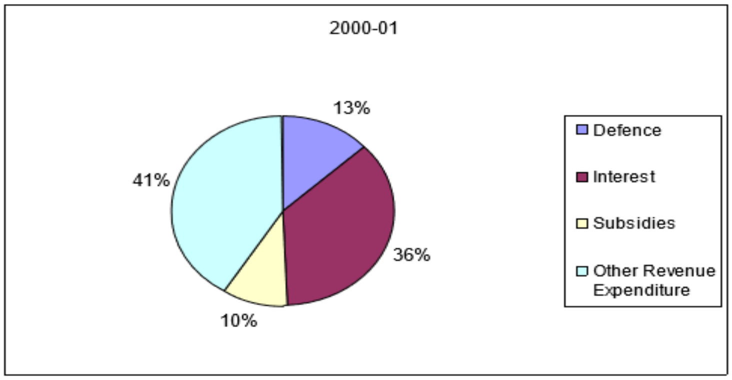

Data source: Database on the Indian Economy, http://dbie.rbi.org.in (Reserve Bank of India, 2011)

Figure 13: Composition of central government revenue expenditures (2005-06)

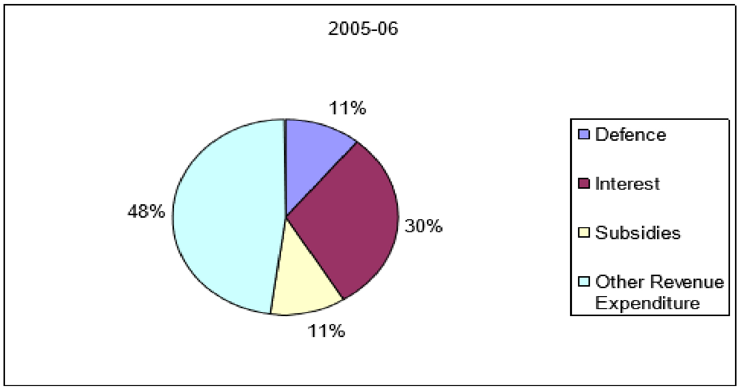

Data source: Database on the Indian Economy, http://dbie.rbi.org.in (Reserve Bank of India, 2011)

टैक्स सुधारों और व्यय नियंत्रण से बढ़ती राजस्व के परिणामस्वरूप घाटे को नियंत्रण में लाया जा रहा है। 1996–97 में केन्द्रीय सरकार का राजस्व घाटा सकल घरेलू उत्पाद का 2.37 प्रतिशत था जबकि जीएफडी 4.84 प्रतिशत (चित्र 14) था।

सरकार अपने बाह्रय ऋण के बारें में भी अधिक विवेकपूर्ण थीं। 1995–96 में जीडीपी अनुपात में जीडीपी का 4.3 प्रतिशत नीचे गया और 1999–2000 में 2.99 प्रतिशत के एक और निम्न बिंदु तक पहुंच गया। हालांकि, सरकार के कर्ज और राजकोषीय अनुशासन फिर से 2000 के दशक के शुरूआती दौर में रहे थे। केन्द्रीय सरकार का राजस्व घाटा 2002–03 में जीडीपी के 4.4 प्रतिशत तक बढ़ गया जबकि जीएफडी सकल घरेलू उत्पाद का 5.91 प्रतिशत था। 2003–04 तक केन्द्र और राज्यों की संयुक्त देनदारी 2000–01 में 70.59 प्रतिशत से सकल घरेलू उत्पाद का 81.09 प्रतिशत पर थी। 2003–04 में बाह्रय देनदारियों को जीडीपी का केवल 1.67 प्रतिशत ही नियंत्रण में रखा गया था।

यह स्पष्ट था कि एक नया राजकोषीय अनुशासन ढांचा तत्काल आवश्यक था। चर्चा के लगभग तीन वर्षो के बाद, एफआरबीएमए को 2003 में अपनाया गया था। इस अधिनियम ने मौजूदा राजस्व और व्यय को संतुलित करने के लिए एक मध्यम अवधि का लक्ष्य रखा गया था और राजकोषीय घाटे को सकल घरेलू उत्पाद का 3 प्रतिशत पर समग्र सीमा निर्धारित करने के लिए एक चरणबद्ध घाटे में कमी की गई। एफआरबीएमए ने बजट को अपनी आर्थिक आकलन, कराधान

और व्यय रणनीति से संबंधित रिर्पोटों ओर राजस्व और राजकोषीय संतुलन के लिए तीन साल के रोलिंग लक्ष्यों से संबंधित वार्षिक आधार पर संसद के समक्ष पेश करने के लिए बजट की पारदर्शिता बढ़ा दी है। इसे संसद में रखा जाने के लिए त्रैमासिक प्रगति के समीक्षा की भी आवश्यकता है।

ये राजकोषीय अनुशासन कानूनों को केन्द्रीय और राज्य दोनों स्तरों पर अच्छा माना गया है। वर्ष 2007–08 में वैश्विक वित्तीय संकट से पहले, केन्द्रीय सरकार का राजस्व घाटा सकल घरेलू उत्पाद का 1.06 प्रतिशत था। जबकि जीएफडी 3.33 प्रतिशत था (चित्र 14)। राज्य सरकारों ने

Figure 14: Deficits of the Central Government as percentage of GDP (1990-91 to 2009-10)

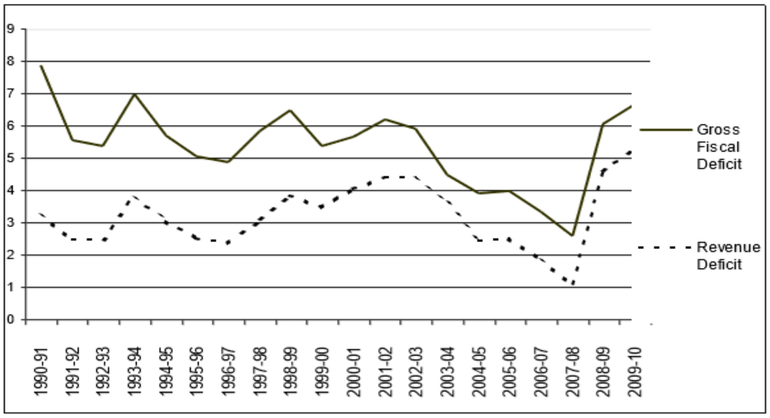

Data source: Database on the Indian Economy, http://dbie.rbi.org.in (Reserve Bank of India, 2011)

सकल घरेलू उत्पाद के 0.58 प्रतिशत और 2006–07 तक सकल घरेलू उत्पाद का 1.81 प्रतिशत जीएफडी का राजस्व अधिशेष प्राप्त किया। यहां तक कि संकट के वर्ष में, 2008–09 में उनके सकल घरेलू उत्पाद का 0.19 प्रतिशत और सकल घरेलू उत्पाद का 3.2 प्रतिशत (चित्र 15) का एक छोटा सा राजस्व अधिशेष था। इस वित्तीय अनुशासन को सकारात्मक तरीके से अन्य आर्थिक चर में लाया गया है। केन्द्रीय और राज्य सरकारों के सकल वितरण का अनुमान है कि पूंजी आउटलेट में 2002–03 में 11.87 प्रतिशत से बढ़कर 18.59 प्रतिशत, 2007–08 दर्ज किया गया। मुद्रास्फीति मध्यम था और 2006–07 में विकास दर 9.6 प्रतिशत पर बढ़ी थी। यह सौम्य व्यापक आर्थिक वातावरण वैश्विक वित्तीय संकट से परेशान था।

Figure 15: Deficits of the State Governments as percentage of GDP (1990-91 to 2009-10)

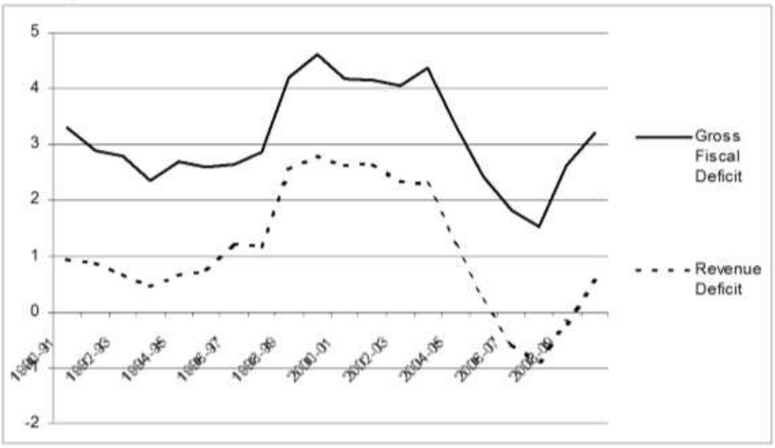

Data source: Database on the Indian Economy, http://dbie.rbi.org.in (Reserve Bank of India, 2011)

15.6 संकट और राजकोषीय समेकन में वापसी : भारतीय राजकोषीय नीति का परिपक्व होना (Crisis and Return to Fiscal Consolidation: The Maturing of Indian Fiscal Policy)

सितंबर 2008 के दौरान आया वैश्विक वित्तीय संकट ने भारतीय राजकोषीय नीति की अपनी सीमाओं पर परीक्षण किया। नीति निर्माताओं को संकट के प्रभाव से जूझना पड़ा जो कि भारतीय अर्थव्यवस्था को तीन चैनलों के माध्यम से प्रभावित कर रहा था। वित्तीय क्षेत्र के लिए संभावित जोखिम; निर्यात पर नकारात्मक प्रभाव; और विनिमय दर (कुमार और सौम्या, 2010)। कुछ हद तक अप्रशंसित, ग्रामीण कृषि ऋण माफी योजना, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (एनआरईएए) के तरत सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का विस्तार और केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों के लिए संशोधित वेतन और मुआवजे के कार्यान्वयन के चलते सरकार पहले से ही विस्तारित वित्तीय रूख रखती है छठी वेतन आयोग की सिफारिशों के मुताबिक इसके अलावा, 2008 की संसदीय चुनावों के परिणामस्वरूप भी अधिक सरकारी खर्च हुए थे (कुमार और सौम्या, 2010)।

जैसा कि संकट सामने आया, सरकार ने 7 दिसंबर 2008, 2 जनवरी 2009 और 24 फरवरी 2009 को प्रोत्साहन पैकेजों की एक श्रृंखला को सक्रिय कर दिया। कार्यो में 4 प्रतिशत की एक समग्र केन्द्रीय उत्पाद शुल्क कटौती शामिल थी, जो कि अतिरिक्त योजना व्यय के बारें में लगभग रु 200 बिलियन, और राज्य सरकार के लिए योजनाबद्ध व्यय के लिए लगभग रुपये की राशि 300 अरब, कुछ निर्यात उन्मुख उद्योगों को समर्थन देने के लिए निर्यात वित्त के लिए ब्याज सब्सिडी, निर्यात उद्योगों के लिए केन्द्रीय उत्पाद शुल्क और सेवा कर की दो प्रतिशत की कमी, (जो कि कुल 6 प्रतिशत केन्द्रीय उत्पाद शुल्क में कमी हैं।) 2008–09 में इन उपायों का प्रभाव जीडीपी के 1.8 प्रतिशत के आसपास होने का अनुमान है। यदि 2007–08 और 2008–09 के बजट में सार्वजनिक व्यय में वृद्धि हुई तो यह कुल सकल घरेलू उत्पाद (कुमार और सौम्य, 2010) के लगभग 3 प्रतिशत था।

एक मजबूत और विवेकानुसार विनियमित वित्तीय क्षेत्र, एक अच्छी तरह से प्रबंधित पूंजी खाता नीति, बड़े विदेशी मुद्रा भंडार, घरेलू खपत और प्रभावी राजकोषीय

नीति हस्तक्षेप जैसी अपनी अंतर्निहित शक्तियों को देखते हुए, भारतीय अर्थव्यवस्था ने वित्तीय संकट को अच्छी तरह से सोख लिया था। 2008–09 की दूसरी छमाही में जीडीपी विकास दर घटकर 5.8 फीसदी (सालाना आधार पर) हो गई, जबकि पहली छमाही में यह 7.8 फीसदी थी। 2009–10 तक भारत का सकल घरेलू उत्पाद 8 प्रतिशत (त्वरित अनुमान (क्यूई)) पर बढ़ रहा था। यह 2010–11 में 8.5 प्रतिशत तक बढ़ गया था (संशोधित अनुमान (आरई))।

यह महत्वपूर्ण था कि राजकोषीय समेकन की प्रक्रिया को दोबरा लागू किया गया। यह एक नाजुक प्रक्रिया थी, जहां से विकास की प्रक्रिया को समय–समय पर हासिल करना था। अपनी रिपोर्ट में तेरहवें वित्त आयोग (13वें एफसी) वित्तीय विवेक के रास्ते पर लौटने की आवश्यकता के प्रति सशक्त रूप से जागरूक था और वांछित राजकोषीय घाटे के लक्ष्यों के एक सेट को देखते हुए रोड मैप प्रदान किया गया। 2010–11 का बजट वर्ष 2010–11 में 6.5 प्रतिशत (प्रतिभूतियों के बदले बांडों के साथ) से वर्ष 2010–11 में 5.5 प्रतिशत जीडीपी के राजकोषीय घाटे को लक्ष्य रखने वाली एक कैलिब्रेटेड एक्जिट पॉलिसी को अपनाया था (वित्त मंत्रालय, 2011)।

2010–11 के दौरान, दूरसंचार स्पेक्ट्रम (3 जी और ब्रॉडबैंड) की नीलामी से गैर–कर राजस्व प्रत्याशित प्राप्तियों से अधिक हो गया। राजकोषीय घाटे के लक्ष्य का पालन करते हुए प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में आबंटन बढ़ाने के लिए एक सचेत निर्णय लिया गया था। आखिरकार 2010–11 के लिए राजकोषीय घाटे जीडीपी के लक्षित 5.1 प्रतिशत के मुकाबलें बेहतर रहे। यह 5.7 प्रतिशत के 13वीं एफसी रोडमैप लक्ष्य से भी बेहतर था। वार्षिक बजट 2011–12 के लिए एफआरबीएमए द्वारा अनिवार्य रूप से सरकार की मध्यम अवधि की राजकोषीय नीति का वक्तव्य, 13वें एफसी द्वारा निर्धारित गति से धीरे–धीरे समायोजन के रास्ते पर जारी रखा गया। 2011–12 के राजकोषीय घाटे का लक्ष्य जीडीपी के 4.6 प्रतिशत के मुकाबलें 4.8 प्रतिशत के 13वें एफसी लक्ष्य के मुकाबलें निर्धारित किया गया था। इसके लिए तर्क यह था कि त्वरित गति से जीडीपी अनुपात में कर्ज को कम करने से ऋण सेवा की ब्जाय (वित्त मंत्रालय, 2011) के विकास कार्यक्रमों में उपयोग के लिए अधिक संसाधनों को अनलॉक किया जाएगा।

2009–10 तक, प्रत्यक्ष करों में लगभग 48 प्रतिशत राजस्व का योगदान रहा जबकि अप्रत्यक्ष करों का हिस्सा लगभग 32 प्रतिशत था (चित्र 16)। 2011–12 के बजट में प्रत्यक्ष कर का हिस्सा केन्द्र सरकार के अनुमानित राजस्व का 47 प्रतिशत था, जबकि अप्रत्यक्ष करों का योगदान लगभग 37 प्रतिशत था (चित्र 17)। 1991 में परिकल्पना की गई प्रत्यक्ष करों की हिस्सेदारी बढ़ाने के कदम को प्राप्त किया गया था।

Figure 16: Composition of central government revenues (2009-10)

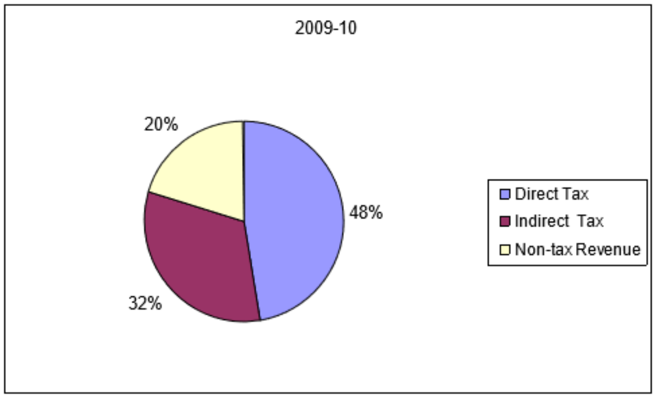

Data source: Database on the Indian Economy, http://dbie.rbi.org.in (Reserve Bank of India, 2011)

संकट के मद्देनजर जीडीपी अनुपात में कर के कम होने के बाद टैक्स पॉलिसी के संदर्भ में, इसे एक वांछनीय कदम माना जाता था। 2011–12 का बजट राजकोषीय समेकन के माध्यम अवधि के उद्धेश्यों के साथ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर नीति दोनों को लागू करने और प्रमुख नए कर कानूनों को प्रस्तावित करने का उद्धेश्य था; प्रत्यक्ष करों के लिए प्रत्यक्ष कर संहिता (डीटीसी)

Figure 17: Composition of central government revenues (2011-12 Budget Estimates)

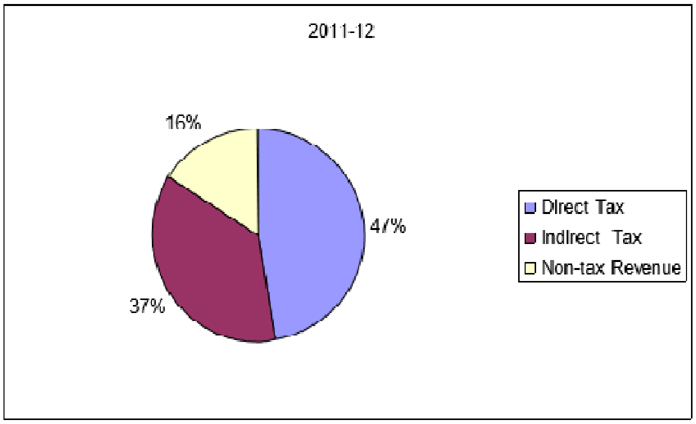

Data source: Database on the Indian Economy, http://dbie.rbi.org.in (Reserve Bank of India, 2011)

माल और सेवा कर (जीएसटी) अप्रत्यक्ष करों के मामलें में प्रस्तावित किया गया। अप्रत्यक्ष करों में, प्रमुख प्रस्तावों में, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क योग्यता की दर 4 प्रतिशत से बढ़ाकर 5 प्रतिशत हो गई, ब्रांडेड रेडीमेट कपड़ों को 10 प्रतिशत की एक्साइज ड्यूटी के अधीन किया गया और कुछ अतिरिक्त सेवाएं सेवा कर नेट के तहत लाई गई। प्रत्यक्ष करो के मामलें में, व्यक्तिगत आयकर में छूट की सीमा बढ़ा दिया गया था और घरेलू कम्पनियों के लिए कॉर्पोरेट आय कर पर अधिभार 32.4 प्रतिशत करने के लिए 7.5 प्रतिशत से कम हो गया था। राजस्व तटस्थता बनाए रखने और यथासंभव (वित्त मंत्रालय, 2011) क्षैतिज इक्विटी को बनाए रखने के लिए न्यूनतम वैकल्पिक कर (मेट) प्रावधानों में भी कुछ परिवर्तन किए गए थे।

सरकार के व्यय प्रबंधन पहल भी आबंटन के बजाय परिणामों पर फोकस के साथ गति में वद्धि हुई है। इस चयन वाले विभागों को अपने ''परिणाम फ्रेमवर्क

दस्तावेज''को विकसित करने के लिए अनिवार्य हैं, जिससे मापन योग्य परिणामों को ट्रैक करने पर जोर दिया जा सकता है। 2009–10 में, रक्षा व्यय में लगभग 10 प्रतिशत की वृद्धि हुई, सब्सिडी 16 प्रतिशत और ब्याज 23 प्रतिशत राजस्व व्यय (चित्र 18)। 2011–12 के बजट में स्थिति अधिक या कम रही, एक बार फिर सरकारी खर्चे की सरंचना की धीमी गति से बदलती प्रकृति का खुलासा करते हुए सरकार के अनुमानित राजस्व व्यय का 2011–12, रक्षा 9 प्रतिशत, सब्सिडी 13 प्रतिशत और ब्याज 24 प्रतिशत (चित्र 19) का है।

अब यह प्रतीत होता है कि राजकोषीय विवेक और बेहतर राजस्व और व्यय परिणामों के जरिये सार्वजनिक ऋण को सीमित करने की इच्छा भारतीय नीति मैट्रिक्स में काफी संस्थागत है । यह संभवतः एफआरबीएमए द्वारा निभाई गई एंकरिंग भूमिका और 13वें एफसी द्वारा आगे की गई घाटे में कमी रोडमैप के कारण आंशिक रूप से है। वैश्विक वित्तीय संकट से जरूरी कठोर राजकोषीय समेकन लक्ष्य से अस्थायी विचलन के बावजूद, भारतीय वित्तीय नीति को विवेक के रास्ते में तेजी से आगे बढ़ाया जा रहा है। नीति निर्माताओं द्वारा खुद को सख्त कमी घाटे में कमी के लक्ष्य निर्धारित करने के लिए दृढ़ संकल्प, जो 13वें एफसी द्वारा अनिवार्य रूप से अधिक है।

हाल के घटनाक्रमों से पता चलता है कि विकास गतिविधियो के लिए संसाधनों को अधिकतम करने के प्रयास में नीति निर्माताओं ने सख्त बजटीय बाधाओं को स्वीकार किया है। योजना आयोग ने 12वीं पंचवर्षीय योजना (2012–17) के लिए अपनी प्रारंभिक रिपोर्ट में प्रस्तुत किया है।

Figure 18: Composition of central government revenue expenditures (2009-10)

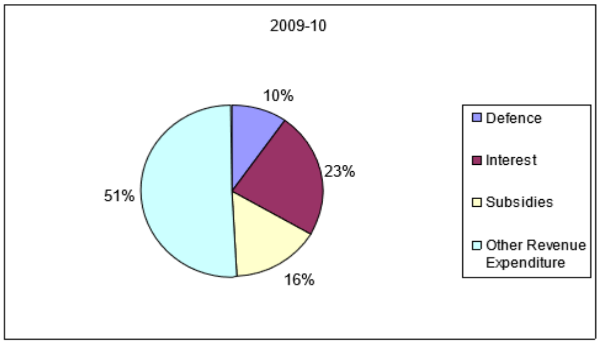

Data source: Database on the Indian Economy, http://dbie.rbi.org.in (Reserve Bank of India, 2011)

Figure 19: Composition of central government revenue expenditures (2011-12 Budget Estimates)

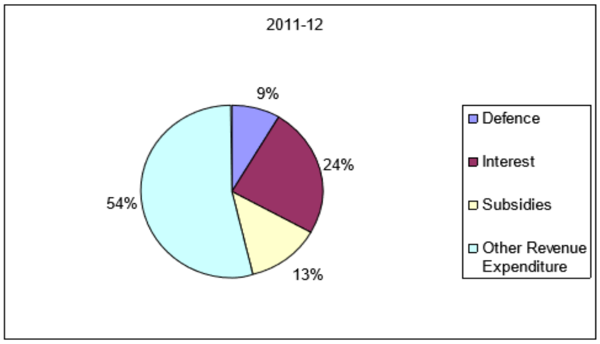

Data source: Database on the Indian Economy, http://dbie.rbi.org.in (Reserve Bank of India, 2011)

योजना के दृष्टिकोण में केन्द्र के राजकोषीय संसाधनों का अनुमान लगाते हुए पूरी योजना अवधि के लिए सकल घरेलू उत्पाद की 3.25 प्रतिशत की औसत राजकोषीय घाटे की परिकल्पना की जा रही है, जिसमें राजकोषीय घाटे के साथ 2012–13 में 4.1 प्रतिशत से नीचे आने का अनुमान है जो 2013 में 3.5 प्रतिशत थी। इसके बाद अगले तीन वित्तीय वर्षो के लिए सकल घरेलू उत्पाद का 3 प्रतिशत रहने की उम्मीद है। योजना के लिए सकल बजटीय समर्थन यथार्थवादी रखा जाता है। यह 12वीं योजना के अंत तक 2011–12 में 5.75 प्रतिशत के जीडीपी के 4.92 प्रतिशत से बढ़ने का अनुमान है। इसी तरह, राजस्व लक्ष्यों को रूढ़िवादी स्तरारें पर अनुमानित किया जाता है। केन्द्र के लिए शुद्ध कर राजस्व 2011–12 में जीडीपी का 7.4 प्रतिशत से बढ़कर 2016–17 में 8.91 प्रतिशत हो जाने की उम्मीद है। जीडीपी अनुपात के लिए सकल कर 2011–12 में सकल घरेलू उत्पाद का 10.36 प्रतिशत होने का अनुमान है 2016–17 तक बढ़कर 12.3 प्रतिशत हो जाएगा। यह कुछ हद तक आशावादी है कि यह अनुपात पहले 2007–08 में 11.9 प्रतिशत पर पहुंच गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि योजनाकारों ने महत्वपूर्ण कर सुधारों पर भरोसा किया है, खासकर जीएसटी से ज्यादा आवश्यक राजस्व बढ़ाने के लिए। चूंकि स्पेक्ट्रम की नीलामी जैसी बड़ी गैर–कर–राजस्व की संभावनाएं संभव नहीं हैं, इसलिए इस तरह की राजस्व 2016–17 में सकल घरेलू उत्पाद के 1.4 प्रतिशत से 2016–17 तक 0.88 प्रतिशत रहने का अनुमान है। इसी तरह, गैर–ऋण पूंजी प्राप्तियां (मुख्य रूप से विनिवेश से निकलती हैं) की उम्मीद है (योजना आयोग, 2011)।

अकेले राजस्व प्रदर्शन पर भरोसा करने के ब्जाय, सब्सिडी के प्रभावी लक्ष्यीकरण के साथ व्यय सुधार एक प्रमुख नीति रणनीति प्रतीत होता हैं। गैर–योजना व्यय के संबंध में 12वीं योजना के लिए, रक्षा व्यय का आधार वर्ष (2011–12) में जीडीपी का 1.83 प्रतिशत से घटकर अंतिम वर्ष (2016–17) में 1.56 प्रतिशत हो जाने का अनुमान है। 2011–12 में सकल घरेलू उत्पाद का 1.6 प्रतिशत से जीडीपी में घटकर 1.24 प्रतिशत जीडीपी में घटने का अनुमान है। वे 12वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान कुल अनुमानित गैर–योजना व्यय के 18.8 प्रतिशत के लिए अभी भी खाते होंगे। सब्सिडी को नियंत्रित करने की क्षमता वैश्विक तेल की कीमतों पर गंभीर रूप से छेड़छाड़ करेगी और बेहतर वितरण तंत्र के माध्यम से सब्सिडी को लक्षित करने के लिए योजनाबद्ध उपायों की सफलता होगी। जबकि पूर्व नीति निर्माताओं के नियंत्रण से परे है, बाद में एक महत्वपूर्ण फोकस क्षेत्र होगा (योजना आयोग, 2011)।

आगे देखकर, सरकार शायद कर और व्यय दोनों मसलों पर सुधारों पर ध्यान केन्द्रित करेगी। कर नीति के संबंध में, कार्यकुशलता में सुधार के लिए कानून के साथ–साथ प्रशासनिक सुधारों में भी बदलाव की उम्मीद की जा सकती है। मुख्य विधायी प्रस्ताव डीटीसी और जीएसटी हैं, जो दोनों विधायी परामर्श के विभिन्न चरणों में है। डीटीसी टैक्स कोड को सरल बनाने, कर कटौती की व्यवस्था में सुधार लाने और कानून की अस्पष्टता को दूर करने की कोशिश करता है। जीएसटी का लक्ष्य मूल्य श्रृंखला में और अंतरराज्यीय स्तर पर इनपुट टैक्स क्रेडिट की काफी एकीकृत प्रणाली लाने का है। वर्तमान में, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क और सेवा करों के पास विनिर्माण स्तरीय तक सीमित सुविधाएं है। राज्य वैट

अंतरराज्यीय इनपुट कर क्रेडिट प्रदान करने के लिए तैयार नहीं है। अलग केन्द्रीय और राज्य जीएसटी के साथ दोहरी जीएसटी ढांचा स्थापित करने का प्रस्ताव है। इसके लिए संवैधानिक संशोधन की आवश्यकता होगी ताकि केन्द्र और राज्य सरकारों को समूचे मूल्य श्रृंखला पर समवर्ती अधिकार क्षेत्र मिल सकें। अंतरराज्यीय जीएसटी क्रेडिट और केन्द्रीय जीएसटी के लिए पूर्ण क्रेडिट परिकल्पित है। इसके लिए उन्नत सूचना प्रौद्योगिकी (आइटी) अवसरंचना (अधिकार प्राप्त समिति, 2009) की भी आवश्यकता होगी। प्रत्यक्ष कर प्रशासन में सुधार के लिए आईटी को और अधिक लाभकारी होने की संभावना है। इस दिशा में आगे बढने के लिए केन्द्रीय प्रसंस्करण केन्द्रों (सीपीसी) की संख्या में वृद्धि शामिल है जो थोक प्रसंस्करण कार्यो को एक से चार तक ले जाती है। करदाता सहायता केन्द्रों की संख्या और वेब–आधारित करदाता अंतरफलक सुविधाएं भी बढ़ी हैं (वित्त मंत्रालय, 2011)।

ऐसा प्रतीत होता है कि सामाजिक व्यय परिणामों में सुधार लाने और बेहतर तरीके से सब्सिडी को लक्षित करने के लिए कदम हैं। विशेष रूप से ऊर्जा संबंधित सब्सिडी के संबंध में, 2009 की एकीकृत ऊर्जा नीति को देखते हुए, मूल सिद्धांत घरेलू ऊर्जा की कीमतों के साथ आयातित ऊर्जा के बराबर होगा, जबकि गरीबों ओर जरूरतमंद (योजना आयोग, 2011) की सब्सिडी को लक्षित करना होगा। इसमें से ज्यादातर नई तकनीक और प्रौद्योगिकियों को अपनाने पर निर्भर करेगा जो आईटी आधारित पहचान प्रणालियों सहित आधार अद्वित्तीय पहचान प्रणाली द्वारा प्रस्तावित है।

15.7 सारांश

भारत में 1991 के भुगतान संकट के कारणो का पता लगाया। इसके पश्चात् आर्थिक उदारीकरण और तेजी से विकास के लिए आवश्यक कदम उठाए गए। वैश्विक वित्तीय संकट 2008 और हालिया संकट के बाद राजकोषीय समेकन के रास्ते पर लौटने के लिए नियोजित विकास के चरण में भारत राजकोषीय नीति 1991 में आर्थिक उदारीकरण के लिए 1950 के दशक के शुरू बड़े पैमाने पर सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों में बड़े पैमाने पर निवेश को बढ़ावा दिया गया। निजी संसाधनों के हस्तांतरण के लिए और भी अधिक से अधिक आय समानता हासिल कर प्रणाली का उपयोग करना रणनीति की विशेषता थी। इसका परिणाम उच्चतम सीमांत आयकर दरों और कर चोरी की प्रवृत्ति कम हुई। सार्वजनिक क्षेत्र के निवेश और सामाजिक व्यय भी पर्याप्त नहीं थे। इन स्पष्ट अपर्याप्तता को देखते हुए, 1980 के दशक में इस प्रणाली को सुधारने के लिए सीमित प्रयास किए गए थे।

हालांकि, कर्ज–प्रेरित विकास का मार्ग जिसने आंशिक रूप से अपनाया था, 1991 के भुगतान संकट के संतुलन में योगदान दिया। 1991 के संकट के बाद, सरकार ने आर्थिक उदारीकरण का रास्ता चुना। कर सुधारों को कम करने और कर आधार को बढ़ाने के लिए ध्यान केन्द्रित किया गया। सब्सिडी को रोकने और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों में सरकारी होल्डिंग्स का विनिवेश करने के प्रयास किए गए थे। प्रारंभ में राजकोषीय घाटे और सार्वजनिक ऋण को नियंत्रण में लाया गया था, हालांकि फिर से 2000 के दशक की शुरूआत में स्थिति बिगड़ना शुरू हो गई थी। इसने केन्द्रीय और राज्य स्तरों पर राजकोषीय जिम्मेदारी कानूनों को अपनाने के लिए प्रेरित किया। वैट की शुरूआत के साथ राज्य स्तरीय कर

प्रणाली में भी सुधार हुए थे। नतीजतन, सार्वजनिक वित्त में बड़े सुधार हुए थे। यह शायद उच्च विकास, कम घाटे और मध्यम मुद्रास्फीति के सौम्य वृहद्ध वित्तीय वातावरण है। भारतीय अर्थव्यवस्था विकास 2008–09 की दूसरी छमाही में 5.8 प्रतिशत करने के लिए नीचे जा रहा है और फिर 2009–10 में वापस 8.5 प्रतिशत करने के लिए उछल साथ नहीं बल्कि अच्छी तरह से वैश्विक संकट सहा। वसूली को देखते हुए राजकोषीय प्रोत्साहन से एक धीमी गति से बाहर निकलने के तरीके से प्रयास किया गया था जिससे राजकोषीय समेकन वसूली प्रक्रिया को चोट पहुंचाए बिना हासिल की थी। हाल के नीतिगत दस्तावेजों जैसे कि 12वीं योजना दृष्टिकोण पत्र और सरकार की वित्तीय नीति रणनीति 2011–12 का वक्तव्य यह दर्शाती है कि राजकोषीय समेकन मानसिकता काफी हद तक देश की नीति निर्धारण (योजना आयोग, 2011) में संस्थागत है। यह आंशिक रूप से संस्थागत ढांचे द्वारा मजबूत किया जाता है जैसे कि वित्तीय जिम्मेदारी कानून और नियमित वित्त आयोग जो संघीय राजकोषीय हस्तांतरण शासन को जनादेश देते है। भविष्य में, ऐसा लगता है कि सरकार समावेशी विकास की प्रक्रिया को बनाए रखते हुए राजकोषीय समेकन हासिल करने के लिए करों में सुधारों और सामाजिक व्यय के बेहतर लक्ष्य पर ध्यान केन्द्रित करेगी।

15.8 शब्दावली

मौद्रिक नीतिः अर्थव्यवस्थ में धन की आपूर्ति और ब्याज की दर से संबंधित है।

राजकोषीय घाटाः सरकार के व्ययों का सरकार की आय पर आधिक्य है।

राजस्व अधिशेषः जब सरकार इसे खर्च से अधिक प्राप्त करती है, एक अधिशेष बचता है।

पूंजीगत प्राप्तियांः ये प्रायः बड़ी राशि की प्राप्तियां होती है जो लंबी अवधि के वित्तीय संकेतों से प्राप्त होती है।

आयगत प्राप्तियांः ये प्रायः एक वित्तीय वर्ष में बार–बार प्राप्त होती है।

15.9 बोध प्रश्न

रिक्त स्थान को भरिएः–

i) अधिकांश आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक .... से संबंधित होता है।

ii) .... मौद्रिक नीति के लिए जिम्मेदार है।

iii) दीर्घकालीन विकास और आर्थिक कल्याण पर एक बड़ी कमी का असर .... है।

iv) 1991 के भुगतान संकट के सन्तुलन ने .... का नेतृत्त्व किया।

v) भारत ने दीर्घकालिक आर्थिक उद्धेश्यों को सुनिश्चित करने के लिए .... वर्षो की योजनाओं की एक प्रणाली का पालन किया है।

vi) भारत ने .... में योजना आयोग की स्थापना के साथ योजनाबद्ध विकास किया।

15.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

i) वित्तीय नीति, ii) केन्द्रीय बैंक, iii) नकारात्मक

iv) आर्थिक उदारीकरण, v) पांच, vi) 1950

15.11 स्वपरख प्रश्न

1. राजकोषीय प्रवृत्ति की प्रकृति को समझाए। यह भारतीय अर्थव्यवस्था को कैसे प्रभावित करती है ?
2. राजकोषीय प्रवृत्ति के महत्व को समझाए। राजकोषीय प्रवृत्ति से सम्बन्धित मूल अवधारणाओं का वर्णन करें।
3. भारत की राजकोषीय नीति वास्तुकला का विस्तार से वर्णन करें।
4. नई आर्थिक नीति (1991) से पूर्व राजकोषीय नीति के विकास का वर्णन करें।
5. आर्थिक संकट और राजकोषीय समेकन में वापसी के समय भारतीय राजकोषीय नीति के परिपक्वता पर प्रकाश डालिए।

15.12 सन्दर्भ पुस्तकें

1. राजस्व : डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय
2. लोकवित्त : डॉ0 एस0 के0 सिंह
3. राजस्व : डॉ0 आर0 एस0 कौशिक
4. राजस्व सिद्धान्त एवं व्यवहार : के0 एल0 माहेश्वरी
5. Delton, H : Principles of public Finance
6. Public Finance Theory and Practice : Mehta and Agrawal
7. Shirras, Findley : The Science of Public Finance
8. Hicks, Ursula : Public Finance
9. A.C. Pigou : A Study of Public Finance
10. Taylor P.E. : Economics of Public Finance
11. Raja J Chhelliah : Fiscal Policy in under developed Countries.

इकाई 16 वृद्धि एवं आर्थिक स्थितरता (Growth and Economic Stability)

इकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना
16.2 आर्थिक वृद्धि की विशेषताएं
16.3 आर्थिक वृद्धि के कारक
- 16.3.1 आर्थिक कारक
- 16.3.2 गैर–आर्थिक कारक

16.4 आर्थिक स्थिरता
- 16.4.1 समष्टिपरक आर्थिक नीति के लक्ष्य

16.5 स्थिरीकरण के लिए विवेकाधीन नीति के लक्ष्य
16.6 मंदी दूर करने के लिए राजकोषीय नीति
- 16.6.1 मंदी दूर करने करने के लिए सरकारी व्यय
- 16.6.2 सरकारी व्यय में वृद्धि या बजट–घाटे की वित्त व्यवस्था करना
- 16.6.3 करों में कमी

16.7 गैर–विवेकाधीन राजकोषीय नीति : स्वतः स्थिरकारक
- 16.7.1 हस्तांतरण भुगतान : बेरोजगारी क्षतिपूर्ति तथा कल्याणगत लाभ

16.8 आर्थिक स्थिरीकरण : मौद्रिक नीति
- 16.8.1 प्रस्तावना
- 16.8.2 मौद्रिक नीति के उपकरण
- 16.8.3 मंदी दूर करने के लिए विस्तारवादी मौद्रिक नीति
- 16.8.4 मुद्रास्फीति को नियन्त्रित करने के लिए मौद्रिक नीति
- 16.8.5 मौद्रिक नीति : मुद्रावादी मत

16.9 सारांश
16.10 शब्दावली
16.11 बोध प्रश्न
16.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
16.13 स्वपरख प्रश्न
16.14 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्धेश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- वृद्धि एवं आर्थिक स्थिरता के अर्थ, और विशेषताओं को समझ सकें।
- आर्थिक वृद्धि के कारकों को जान सकें।
- समष्टिपरक आर्थिक–नीति के लक्ष्यों को समझ सकें।
- मंदी दूर करने के लिए राजकोषीय नीति के उपायों को समझ सकें।
- आर्थिक स्थिरीकरणः मौद्रिक नीति के अर्थ और महत्त्व को बता सकें।
- मंदी एवं मुद्रास्फीति को नियन्त्रित करने के लिए विस्तारवादी मौद्रिक नीति का वर्णन कर सकें।

16.1 प्रस्तावना

आर्थिक वृद्धि पश्चिमी यूरोप के विकसित देशों, संयुक्त राज्य, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया तथा जापान के विकास से सम्बन्ध रखती है। प्रोफेसर साइमन कुजनेट्स द्वारा 'नोबेल–स्मारक' भाषण में दी गई परिभाषा के अनुसार ''आर्थिक–वृद्धि से तात्पर्य क्षमता में होने वाली वह दीर्घावधि वृद्धि है, जो जनसंख्या की उत्तरोत्तर विविध वस्तुओं की माँग की पूर्ति करने के लिए होती है, यह बढ़ती क्षमता उन्नतिशील प्रौद्योगिकी तथा संस्थागत एवं वैचारिक समायोजनों पर आधारित है।'' इस परिभाषा के तीन भाग है। प्रथम, किसी राष्ट्र की आर्थिक वृद्धि की पहचान वस्तुओं की पूर्ति की निरन्तर वृद्धि से होती है। दूसरे, आर्थिक वृद्धि में उन्नतिशील प्रौद्योगिकी अनुज्ञात्मक (Permissive) साधन है – जो जनसंख्या के लिए विविध वस्तुएं जुटाने की क्षमता की व्रद्धि को निर्धारित करती है। तीसरे, प्रौद्योगिकी तथा उसके विकास के दक्ष एवं व्यापक प्रयोग के लिए आवश्यक है कि संस्थागत एवं वैचारिक समायोजन किए जाएं ताकि मानव के बढ़ते हुए ज्ञान–भंडार से उत्पन्न नव–प्रवर्तनों का सही प्रयोग किया जा सकें। उदाहरणार्थ, आधुनिक प्रौघिगिकी गांग के रहन–सहन, विशाल एवं विस्तृत परिवार के ढांचे, परिवार उद्यम तथा निरक्षरता से मेल नहीं खाती।

16.2 आर्थिक वृद्धि की विशेषताएं (Characteristics of Economic Growth)

आधुनिक आर्थिक वृद्धि स्पष्ट रूप से आर्थिक युगारम्भ को सूचित करती है। प्रो० साइमन कुजनेट्स ने आधुनिक आर्थिक वृद्धि की छः विशेषताएं बताई हैं। ये विशेषताएं राष्ट्रीय उत्पादन तथा उसके अवयवों, जनसंख्या, श्रम–शक्ति, आदि पर आधारित विश्लेषण से प्राप्त हुई है। उन छः विशेषताओं में से दो मात्रात्मक हैं जो राष्ट्रीय उत्पादन तथा जनसंख्या वृद्धि से सम्बन्ध रखती हैं, दो का सम्बन्ध सरंचनात्मक रूपान्तरण से है, और दो अन्तर्राष्ट्रीय विस्तार से सम्बन्ध रखती है। नीचे उन पर विचार किया जा रहा है :

1. प्रति व्यक्ति उत्पादन तथा जनसंख्या की वृद्धि की ऊँची दरें (High Rate of Growth of Per Capita Product and Population)

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त अथवा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से अब तक का विकसित देशों का अनुभव बताता है कि प्रति व्यक्ति उत्पादन की वृद्धि की ऊँची दरें तथा उसके साथ होने वाली जनसंख्या में वृद्धि की ठोस दरें, आधुनिक आर्थिक वृद्धि को निर्दिष्ट करती है। जैसा कि अतीत में अनुभव किया गया है, उत्पादन–वृद्धि की दरें पाँच गुना और जनसंख्या–वृद्धि की दरें दस गुना अधिक है।

प्रोफेसर कुजनेट्स ने बताया है कि पूर्व–आधुनिक युग की तुलना में आधुनिक युग में, फ्रांस को छोड़कर, तेरह देशों की जनसंख्या वृद्धि की दरें अधिक ऊँची है। फ्रांस की जनसंख्या वृद्धि की दर 2.5 प्रतिशत प्रति दशाब्दी रही है। फ्रांस को छोड़ दिया जाए तो यू. के. स्वीडन, इटली तथा रूस की दरें 6–7 प्रतिात स्विट्जरलैण्ड तथा नार्वे की दरें 8 प्रतिशत, जापान, नीदरलैण्ड, डेनमार्क तथा पश्चिमी जर्मनी की दरें 10–14 प्रतिशत, और कनाडा, संयुक्त राज्य तथा आस्ट्रेलिया की जनसंख्या वृद्धि की दरें 19–24 प्रतिशत प्रति दशाबदी रही हैं।

आस्ट्रेलिया को छोड़कर इन सभी विकसित देशों की प्रति व्यक्ति उत्पादन की वृद्धि की दशाब्दी दरें 13 प्रतिशत से अधिक है। आस्ट्रेलिया में ये दरें 8 प्रतिशत हैं जबकि नीदरलैण्ड़ तथा यू. के. में 13.5 से 14.1 प्रतिशत स्विट्जरलैण्ड़, संयुक्तराज्य, फ्रांस, पष्चिमी जर्मनी, कनाड़ा, इटली, नार्वे तथा डेनमार्क में 16 से 19 प्रतिषत और जापान में 26 प्रतिशत से अधिक तथा स्वीडन में 28.30 प्रतिशत और रूस में 43.9 प्रतिशत रही है। ''जब यह कहा जाता है कि आधुनिक आर्थिक वृद्धि का अर्थ न केवल प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि बल्कि जनसंख्या में भी चमत्कारी त्वरित वृद्धि होना है, तो इसका यह आशय नहीं कि प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि के लिए अनिवार्य है कि जनसंख्या में भी वृद्धि हो। प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि की दरों के बढ़ने पर कुछ देशों में जनसंख्या वृद्धि की दरें ऊँची रही हैं और कुछ देशों में नीची रही है।''

प्रति व्यक्ति उत्पादन तथा जनसंख्या की वृद्धि की ऊँची दरों का अर्थ है कुल उत्पादन में वृद्धि की ऊँची दरें। कुल उत्पादन में वृद्धि की प्रति दशाब्दी दर रूस में अधिकतम (53.8 प्रतिशत) थी और इसके बाद संयुक्त राज्य की यह दर 42.5 प्रतिशत जापान की 42 प्रतिशत और कनाडा की 40.7 प्रतिशत थी। फ्रांस (20.8 प्रतिशत) तथा यू. के. (21.1 प्रतिशत) में यह दर न्यूनतम रही। अन्य देशों की कुल उत्पादन की वृद्धि दरें 21 प्रतिशत से 40 प्रतिशत के बीच हैं। इन वृद्धि दरों में विभिन्नताओं के परिणामस्वरूप इनके ''निष्पादन के कुल परिणाम में बहुत अधिक बढ़ोत्तरी हो जाती है, वृद्धि की 20 प्रतिशत दशाब्दी दर का मतलब है कि एक दशाब्दी में प्रारंभिक स्तर की छः गुणा से भी अधिक वृद्धि हो जाएगी, और 50 प्रतिशत दर का अर्थ है कि एक शताब्दी में प्रारंभिक स्तर बढ़कर लगभग 58 गुना हो जाएगा।''

2. उत्पादकता में वृद्धि (The Rise in Productivity)

आधुनिक आर्थिक वृद्धि को प्रति व्यक्ति उत्पादन की दर में वृद्धि विशेषता प्रदान करती है। प्रति व्यक्ति उत्पादन की दर में वृद्धि प्रमुख रूप से आगतों की कोटि में सुधार के कारण होती है जोकि दक्षता बढ़ा देते हैं अथवा आगत (input) की प्रति इकाई उत्पादकता में वृद्धि कर देते हैं। ऐसा श्रम तथा पूंजी के साधनों के आगत में वृद्धि अथवा दक्षता में वृद्धि अथवा इन दोनों के कारण हो सकता है। दक्षता में वृद्धि का अर्थ है कि आगत की प्रति इकाई पर अधिक उत्पादन होगा। कुजनेट्स के अनुसार हम देखते है कि उत्पादकता में वृद्धि की दर काफी अधिक है जो विकसित देशों में प्रति व्यक्ति उत्पादन की लगभग समस्त वृद्धि के लिए उत्तरदायी है। छिपी हुई लागतों तथा आगतों का विचार रखते हुए समायोजन करने पर भी, प्रति व्यक्ति उत्पादन में आधे से भी अधिक वृद्धि के लिए उत्पादकता में वृद्धि उत्तरदायी है।

राष्ट्रीय उत्पादन वृद्धि का कारण जनसंख्या में होने वाली विशाल बढ़ोत्तरी रही है जिसने श्रम–शक्ति में बहुत वृद्धि की। राष्ट्रीय उत्पादन में हुई वृद्धि ने आगे पूंजी संचय में पर्याप्त वृद्धि की जिसके परिणामस्वरूप पुनरुत्पादनीय पूंजी में वृद्धि हुई। स्विट्जरलैण्ड, इटली तथा आस्ट्रेलिया को छोड़कर सभी विकसित देशों में कुल जनसंख्या में श्रम–शक्ति के अनुपात बढ़े है।

3. सरंचनात्मक रूपान्तरण की ऊँची दर (High Rate of Structural Transformation)

आधुनिक आर्थिक वृद्धि में सरंचनात्मक रूपान्तरण के अन्तर्गत ये सम्मिलित है : कृषि से अकृषि कार्यो में तथा उद्योग से सेवाओं में स्थान्तरण, उत्पादन इकाइयों के माप में परिवर्तन तथा वैयक्तिक उद्यम से आर्थिक फर्मो के निर्वेयक्तिक (impersonal) संगठनों में स्थानान्तरण जिनके साथ–साथ श्रम की व्यावसायिक स्थिति में तदनुरूप परिवर्तन।

आस्ट्रेलिया को छोड़कर सभी विकसित देशों में, कुल उत्पादन में कृषि–क्षेत्र का भाग कम हो गया। ग्रेट ब्रिटेन में यह 1841 में 22 प्रतिशत से 1955 में गिरकर 5 प्रतिशत रह गया : फ्रांस में यह 1872–82 के बीच 42 प्रतिशत था जबकि 1962 में 9 प्रतिशत रह गया : और जापान में 1872–82 के दौरान से 1962 में गिरकर 14 प्रतिशत पहुंच गया। इस प्रकार दीर्घावधियों के अन्त तक कुल उत्पादन में इस क्षेत्र का भाग यू. के., फ्रांस, जर्मनी, नीदरलैण्ड तथा संयुक्त राज्य में 10 प्रतिशत से कम था, जबकि डेनमार्क, नार्वे, स्वीडन, इटली, कनाडा, आस्ट्रेलिया, जापान तथा रूस में यह भाग 10 से 26 प्रतिशत के बीच था।

दूसरी ओर, उद्योग क्षेत्र का भाग दीर्घावधियों के अन्त तक बढ़कर 50 प्रतिशत से भी अधिक हो गया जैसे ग्रेट ब्रिटेन में 56 प्रतिशत, फ्रांस में 52 प्रतिशत, जर्मनी में 52 प्रतिशत, नीदरलैण्ड में 51 प्रतिशत, नार्वे में 53 प्रतिशत, स्वीडन में 55 प्रतिशत, और रूस में 58 प्रतिशत, जबकि अन्य देशों में यह भाग 22 से 49 प्रतिशत तक रहा, जैसे इटली में 22 प्रतिशत, आस्ट्रेलिया में 30 प्रतिशत, संयुक्त राज्य में 42 प्रतिशत, इटली में 48 प्रतिशत, कनाडा में 48 प्रतिशत और जापान में 49 प्रतिशत।

4. नागरीकरण (Urbanisation)

आधुनिक आर्थिक वृद्धि की एक विशेषता यह है कि विकसित देशों मे जनसंख्या का बढ़ता अनुपात ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में जा रहा है। इसे नागरीकरण कहते हैं। नागरीकरण प्रमुख रूप से औद्योगीकरण का परिणाम है। प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों के कारण अकृषि कार्यो से उत्पन्न होने वाली बड़े पैमाने की किफायतों का परिणाम यह हुआ कि श्रम तथा जनसंख्या का बड़ा अनुपात देहाती क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में चला गया। ज्यों–ज्यों परिवहन, संचार तथा संगठन के तकनीकी साधन अधिक प्रभावी होते गए, त्यों–त्यों बढ़ रही इष्टतम पैमाने की इकाइयों में प्रसार होता गया। इन सब प्रक्रियाओं ने सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति द्वारा जनसंख्या में वर्गीकरण को प्रभावित किया और रहन–सहन के मूल ढाँचे को रूपान्तरित कर दिया। विकसित राष्ट्रों की आधुनिक आर्थिक वृद्धि पर नागरीकरण के प्रभावो से जन्म–दर गिरी और छोटे परिवार की ओर झुकाव बढ़ा। इससे विभिन्न ग्रामीण क्षेत्रों के लोग एक दूसरे के करीब आए और उन्होंने एक दूसरे से और नगरों से पहले से रहने वाले लोगों से बहुत कुछ सीखा–सिखाया। इसने आधुनिक जीवन के निवैयक्तिक सम्बन्धों का विकास सहज बनाया और सहयोग की भावना उत्पन्न की। सबसे बढ़कर, इस आधुनिक सभ्यता से सम्बद्ध गहन बौद्धिक क्रियाकलापों के अनुकूल स्थितियाँ प्रस्तुत कीं, और इस प्रकार ज्ञान में वृद्धि करने के लिए अनुकूल स्थितियाँ उत्पन्न कर दी।

5. विकसित देशों का बाह्य विस्तार (The outward Expansion of Developed Countries)

विकसित देशों की वृद्धि बहुत असमान रही है। अन्य राष्ट्रों की तुलना में कुछ राष्ट्रों में आधुनिक आर्थिक वृद्धि पहले हुई। इसके प्रमुख कारण ऐतिहासिक

पृष्ठभूमि एवं प्राचीन इतिहास के अन्तर थे। अतः जब आधुनिक विज्ञान एवं ज्ञान का विकास हुआ, तो पहले अठाहरवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति हुई और बाद में यह दूसरे देशों में पहुंची। आधुनिक आर्थिक वृद्धि पहले युरोपीय देशों और उनकी समुद्र पार उपशाखाओं तक केन्द्रित रही और बाद में उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में जापान में और 1930 के बाद रूस में पहुंची।

यूरोपीय मूल के विकसित देशों का बाह्य विस्तार प्रमुख रूप से परिवहन तथा संचार में तकनीक–मूलक क्रान्ति के कारण हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि उपनिवेश पर पहले से अधिक सीधा राजनैतिक प्रभुत्व बढ़ा, जापान जैसे क्षेत्र जो पहले बन्द हो गए थे अब खुल गए और उपमरूस्थलीय अफ्रीका जैसे अविभक्त क्षेत्रों का विभाजन हो गया। विकसित राष्ट्रों की ओर से बल–प्रयोग की धकमी के परिणामस्वरूप ही जापान तथा रूस में वृद्धि का प्रसार हुआ। दूसरी ओर, साम्राज्यवाद के पुनरुत्थान के कारण अफ्रीका का विभाजन हुआ और उपनिवेशों में पहले की अपेक्षा राजनैतिक प्रभुत्व बढ़ा। साम्राजयवाद ही उन्नीसंवी शताब्दी के अन्तिम चरण में जर्मनी तथा संयुक्त राज्य जैसे विकसित देशों के बाह्य विस्तार के लिए उत्तरदायी था। इस प्रकार आधुनिक आर्थिक वृद्धि के प्रसार में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का राजनैतिक अथवा शक्ति–तत्त्व एक महत्त्वपूर्ण कारण है।

6. मनुष्यों, वस्तुओं तथा पूंजी के अन्तर्राष्ट्रीय प्रवाह (International Flow of Men, Goods and Capital)

मनुष्यों, वस्तुओं तथा पूंजी के अन्तर्राष्ट्रीय प्रवाह उन्नीसवीं शताब्दी के दूसरे चरण से लेकर प्रथम विश्व–युद्ध तक बढ़ते रहे। परन्तु प्रथम विश्व–युद्ध के समय से कम होने शुरू से हो गए और दूसरे विश्व–युद्ध तक घटते रहे। पर, 1950 के दशक के प्रारम्भ से इन प्रवाहों में कुछ वृद्धि हुई हैं। हम इन पर नीचे क्रमशः विचार कर रहे है :

(क) देशान्तरण (Migration):- 1840 के दशक के उत्तरार्द्ध में अन्तर्राष्ट्रीय देशान्तरण प्रारम्भ हुआ और प्रथम विश्व–युद्ध तक होता रहा। इस अन्तर्राष्ट्रीय देशान्तरण के संचयी एवं बढ़ रहे परिणाम का आधुनिक आर्थिक वृद्धि के ढांचो से गहरा सम्बन्ध है। 1846–50 में अन्तर्महीद्वीप देशान्तरण प्रति वर्ष ढाई लाख से अधिक था, जो 1906–15 के बीच बढ़कर अपनी चरम सीमा को पहुँचा और लगभग दस लाख प्रति वर्ष हो गया। कुजनेट्स के अनुमानों के अनुसार, अन्तर्महाद्वीप देशान्तरण के योग से प्रथम विश्व–युद्ध के पूर्ववर्ती दशक में अन्तर्राष्ट्रीय देशान्तरण के योग से प्रथम विश्व–युद्व के पूर्ववर्ती दशक में अन्तर्राष्ट्रीय देशान्तरण का वार्षिक परिमाण 20 लाख के आसपास पहुंच गया होता। 1846 से 1932 की अवधि में कुल अन्तर्महीद्वीप उत्प्रवासन (emigration) का 95 प्रतिशत युरोप से हुआ और 1821 से 1932 की अवधि में कुल अन्तर्महीद्वीप आप्रवासन (immigration) का लगभग 58 प्रतिशत संयुक्त राज्य में हुआ।

(ख) वस्तुओं का प्रवाह (Flows of Goods):- विदेशी वस्तुओं का व्यापार निश्चय ही विकसित देशों के बाह्य विस्तार का सर्व प्रमुख अंग रहा है। इस सम्बन्ध में दो प्रवृत्तियां दिखाई पड़ती हैं। प्रथम, 1820 तथा 1913 के बीच विश्व व्यापार की वृद्धि की दर काफी ऊँची थी। 1820–30 और 1850–60 के बीच तथा 1850–60 और 1880–89 के बीच वृद्धि की दर 50 प्रतिशत प्रति दशक थी और

1881–85 तथा 1911–13 के बीच लगभग 37 प्रतिशत थी। दूसरे, 1820 और 1913 के बीच विश्व विदेशी व्यापार के कुछ गिने–चुने विकसित देशों का भाग बहुत अधिक रहा। उसमें उत्तर–पश्चिमी यूरोप तथा संयुक्त राज्य का भाग 1820–30 में 60 प्रतिशत और 1880–89 में दो तिहाई रहा। यदि इन देशों के साथ कनाडा तथा आस्ट्रेलिया का भाग भी जोड़ दिया जाए, तो वह 1881–85 और 1913 के बीच दो तिहाई बन जाता है, परन्तु प्रथम विश्व–युद्ध के बाद इन का भाग बहुत हीकम रह गया। 1850 के दशक तथा प्रथम विश्व–युद्ध के बीच कुल उत्पादन से विदेशी वस्तु व्यापार का अनुपात महत्त्वपूर्ण रूप से बढ़ा परन्तु गिने–चुने बड़े देशों के लिए उसकी दर नीची रही।

आधुनिक आर्थिक वृद्धि की ये छः विशेषताएं परस्पर सम्बद्ध है। ये कार्य–करण श्रृंखला में बंधी हुई है। कुल जनसंख्या से श्रम–शक्ति का स्थिर अनुपात दिया हुआ होने पर प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि की दर ऊँची होती है जिसका अभिप्राय है अपेक्षाकृत ऊँची श्रम–उत्पादकता। इसके परिणामस्वरूप, आगे प्रति व्यक्ति उत्पादन तथा प्रति व्यक्ति उपभोग में अधिक वृद्धि होती है। प्रति व्यक्ति उपभोग पुनः उन्नत प्रौद्यगिकी तथा उत्पादन संयंत्रों के पैमाने में परिवर्तनों का परिणाम है। परिणाम यह होता है कि उद्यमों की मूल प्रकृति की परिवर्तित हो जाती है। ये आगे घरेलू बाजार के लिए ही नहीं बल्कि विदेशी बाजारों के लिए भी उत्पान करते हैं। आधुनिक आर्थिक वृद्धि का यही क्रम है जिससे प्रथम विश्व–युद्ध से पहले, दों विश्व–युद्धों के बीच तथा 1950 के दशक में इस वृद्धि का विकसित देशों में बाह्य प्रसार तथा विस्तार हुआ।

16.3 आर्थिक वृद्धि के कारकः आर्थिक तथा गैर–आर्थिक (Factors of Economic Growth: Economic and Non-Economic)

विश्व के समस्त देशों में आर्थिक वृद्धि हुई है परन्तु उनकी वृद्धि दरें एक दूसरे से भिन्न रहती है। वृद्धि दरों में असमानता। उनकी विभिन्न आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, तकनीकी एवं अन्य स्थितियों के कारण पाई जाती है। यही स्थितियां आर्थिक वृद्धि के कारक है।

परन्तु इन कारकों का निश्चित रूप से उल्लेख करना भी एक समस्या है क्योंकि विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अपने–अपने ढंग से इनको बताया है। किंडलबर्जर और हैरिक ने भूमि और प्राकृतिक साधन, भौतिक पूंजी, श्रम और मानव पूंजी, संगठन, प्रौद्योगिकी, पैमाने की बचतें और मण्डी का विस्तार तथा सरंचनात्मक परिवर्तन आर्थिक वृद्धि के कारक माने हैं। रिचर्ड गिल ने जनसंख्या वृद्धि, प्राकृतिक साधन, पूंजी संचय, उत्पादन के पैमाने में वृद्धि एवं विशिष्टीकरण और तकनीकी प्रगति आर्थिक वृद्धि के आधाभूत कारक बतलाए है। दूसरी ओर लुइस ने आर्थिक वृद्धि के केवल तीन कारक ही महत्वपूर्ण कहे हैं। ये हैं : बचत करने का प्रयत्न, ज्ञान की वृद्धि या उसका उत्पादन में प्रयोग, और प्रति व्यक्ति पूंजी अथवा अन्य साधनों की मात्रा में वृद्धि करना। परन्तु नर्क्से इन कारकों को आर्थिक वृद्धि के लिए पर्याप्त नहीं समझता। उसके अनुसार, ''आर्थिक वृद्धि बहुत हद तक मानवीय गुणों, सामाजिक प्रवृत्तियों, राजनैतिक परिस्थितियों और ऐतिहासिक संयोगों से संबंध रखती है। वृद्धि के लिए पूंजी आवश्यक तो है परन्तु उसके लिए केवल पूंजी का होना ही पर्याप्त नहीं है।'' अतः राजनैतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक आवश्यकताएं आर्थिक वृद्धि के लिए उतनी ही महत्वपूर्ण हैं जितनी कि आर्थिक

आवश्यकताएं। इसीलिए अर्थशास्त्री आर्थिक वृद्धि को प्रभावित करने वाले कारकों को दो भागों में बांटते है। ये हैं आर्थिक एवं गैर–आर्थिक कारक जिनका विवेचन इस प्रकार है :

16.3.1 आर्थिक कारक (Economic Factors)

I प्राकृतिक साधन (Natural Resources)

किसी देश की आर्थिक प्रगति को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारक प्राकृतिक साधन (या अर्थषास्त्र के अर्थ में भूमि) हैं। इनमें भूमि की उपजाऊ शक्ति, स्थिति, क्षेत्र, बनावट, वन–सम्पदा, खनिज पदार्थ, जलवायु, जल–साधन, समुद्री साधन आदि शामिल होते हैं। आर्थिक विकास के लिए प्राकृतिक साधनों का माया जाना आवश्यक समझा जाता है। लुइस के अनुसार, ''अन्य बातें समान होने पर, लोग अल्प–साधनों की अपेक्षा समृद्ध साधनों का श्रेष्ठतर उपयोग कर सकते है।'' अल्पविकसित देशों में या तो प्राकृतिक साधनों का उपयोग नहीं हुआ होता या अल्प–उपयोग का दुरूपयोग होता है, इसलिए ये देश उन्नत नहीं होते। फिशर के अनुसार, ''प्राकृतिक साधनों के विकास की आशा करने का कोई कारण नहीं यदि ये साधन, जो वस्तुएं या सेवाएं प्रदान कर सकते हैं, उनके प्रति लोग उदासीन हो।'' ऐसा आर्थिक पिछड़ेपन या तकनीकी साधनों की कमी के कारण होता है। अतः प्राकृतिक साधनों का विकास तकनीकी ज्ञान में वृद्धि से होता है। इसलिए यह कहा जाता है कि प्राकृतिक साधनों का अभाव होन पर भी आर्थिक विकास संभव हो सकता है।

प्राकृतिक साधन किसी भी देश की आर्थिक वृद्धि को किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभावित करते हैं जिनका वर्णन नीचे किया जाता है।

1. **भूमि (Land):-** कुछ अल्पविकसित देशों में भूमि के उपजाऊपन के अनुकूल साधनों को अपनाने के कारण उत्पादन में आवश्यक ही वृद्धि हुई है। लेकिन दूसरी तरफ, एशिया व अफ्रीका के विकासशील देशों में पर्यापत भूमि होत हए भी वे कृषि समृद्ध नहीं है क्योंकि खेती योग्य भूमि पर नए तरीकों का उपयोग नहीं कर पाए।

2. **जलवायु (Climate):-** प्राकृतिक वनस्पति जलवायु द्वारा नियन्त्रित तत्व है। उदाहरण के लिए, कृषि भी वनस्पति की ही देन है। जहां वनस्पति अत्यन्त सघन और नियन्त्रित है वहां कृषि का विकास तीव्रता से हुआ है। यूरोप के कई देशों में पशुपालन उद्योग का विकास वहां की वनस्पति के कारण ही संभव हुआ है।

3. **खनिज पदार्थ (Minerals):-** प्राकृतिक साधनों में खनिज पदार्थो का अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास पर अधिक प्रभाव पड़ता है। प्रोफेसर लुइस के अनुसार, ''एक देश, जो आज साधनों में निर्धन माना जाता है कुछ समय के पश्चात समृद्ध माना जा सकता है, जिसका कारण यह नहीं कि अज्ञात साधनों की खोज हुई, बल्कि ज्ञात साधनों की नए उपयोग में खोज हुई हैं।'' भारत, ब्राजील, वर्मा आदि अनेक देश खनिज पदार्थो से भरे हुए है लेकिन फिर भी निर्धन हैं। इसका कारण खनिज पदार्थो का सही उपयोग नहीं होता है। अतः आर्थिक वृद्धि के लिए खनिज पदार्थो का देश में पाया जाना ही आवश्यक नहीं जैसे जापान अपर्याप्त कोयले तथा न्यूजीलैंड बिना औद्योगिक कच्चे माल के, भी समृद्ध देश है।

4. **औद्योगिक विकास (Industrial Development):-** अल्पविकसित देशों में औद्योगिक विकास का आधार प्राकृतिक साधन ही है। जैसे कि भारत में कच्चा लोहा, अभ्रक प्रचुरमात्रा में होने के कारण औद्योगिक विकास संभव हुआ है। इसके साथ–साथ संचार एवं परिवहन के साधनों का भी विकास हुआ है। अतः यह कहा जा सकता है कि आर्थिक वृद्धि के लिए केवल प्राकृतिक तकनीकों से उनका उपयोग भी आवश्यक है।

5. **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार (Basis of International Trade):-** अल्पविकसित देशों में प्राकृतिक साधन ही इन देशों के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार है। उदाहरण के लिए खाड़ी के देशों में पैट्रोल, अफ्रीका में सोना, टिन तांबा तथा पैट्रोल ही इन देशों के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधार है।

6. **रोजगार का आधार (Basis of Employment):-** अल्पविकसित देशों में लोागें की आजीविका का आधार प्राकृतिक साधनों पर निर्भर उद्योग धंधे है। इन देशों में ज्यादातर लोग कृषि क्षेत्र में कार्यरत है। कई उद्योग विशेषरूप से कृषि क्षेत्र पर आधारित है जैसे – पशुपालन उद्योग, साथ–साथ ऊन से बने कपड़ो का उद्योग, जूट उद्योग, चीनी उद्योग, चाय उद्योग, कागज उद्योग इत्यादि। अतः अल्पविकसित देशों में रोजगार का आधार प्राकृतिक साधनों पर आधारित उद्योग है।

7. **आर्थिक सम्पन्नता का आधार (Basis of Economic Dependence):-** अल्पविकसित देशों की आर्थिक सम्पन्नता का आधार इन देशों के प्राकृतिक साधनों पर अधिक निर्भर करता है। प्राकृतिक साधनों का सही विदोहन आधुनिक तरीकों पर भी निर्भर करता है। उदाहरण के लिए आज विश्व के कुल अल्पविकसित देश प्राकृतिक साधनों के सही विदोहन के कारण विकसित देशों की श्रेणी में माने जाते हैं। पश्चिमी एशिया के रेगिस्तान में पैट्रोल प्राप्त हो जाने के कारण कुवैत, सऊदी अरब, ईरान व ईराक इत्यादि देश विकासशील देशों में से गिने जाते हैं। अतः निर्धनता के दुश्चक्र को तोड़ने के लिए प्राकृतिक साधनों का विकास करना आवश्यक है।

II पूंजी निर्माण (Capital Formation)

आर्थिक वृद्धि का दूसरा महत्त्वपूर्ण कारक पूंजी–निर्माण से अभिप्राय भैतिक उत्पादन साधनों का निर्माण है। नर्क्से के शब्दों में, ''पूंजी–निर्माण का अर्थ है कि समाज अपनी समस्त चालू क्रिया को आवश्यकताओं एवं इच्छाओं के अनुरूप तात्कालिक उपभोग पर लागू नहीं करता बल्कि उसके एक भाग को पूंजीगत वस्तुओं, संयन्त्रो व उपकरणों, मशीनों एवं परिवहन सुविधाओं, प्लान्टों तथा यन्त्रों के निर्माण में लगा देता है।'' इस प्रकार पूंजी–निर्माण, पूंजीगत पदार्थो में निवेश है जिससे पूंजी में वृद्धि होती है तथा राष्ट्रीय उत्पादन एवं आय बढ़ते है।

1. **पूंजी निर्माण की अवस्थाएं (Stages of Capital Formation):-** पूंजी–निर्माण में तीन परस्पर–निर्भर अवस्थाएं पाई जाती है : (क) वास्तविक बचतों का होना और उनमें वृद्धि। (ख) बचतों को एकत्र करने तथा इच्छित दिशा में मोड़ देने के लिए ऋण तथा वित्तीय संस्थाओं का पाया जाना। (ग) इन बचतों का पूंजीगत वस्तुओं के उपयोग के लिए निवेश करना।

(क) **वास्तविक बचतों में वृद्धि (Increase in Real Saving):-** अल्पविकसित देशों में बचतों के निर्माण में वृद्धि एक गम्भीर समस्या है। बचत वास्तव में उपभोग पर निर्भर करती है, साथ–साथ उत्पादन के स्तर में वृद्धि पर भी। किसी भी अर्थव्यवस्था में उपभोग अवश्यकताएं लोगों के रीति–रिवाजों, जनसंख्या के आकार और रहन–सहन पर निर्भर करती हैं, लेकिन इन अल्पविकसित देशों मे लोगों का उपभोग स्तर निम्न होता है और उत्पादन में वृद्धि उतनी नहीं हो पाती जितनी तीव्रता से जनसंख्या में वृद्धि होती है और लोागें की क्रय–शक्ति बढ़ने से उपभोग में भी वृद्धि होती है। ऐसी स्थिति में बचत बढ़ाने के लिए उपभोग की मात्रा को कम किया जाता है लेकिन उत्पादन को बढ़ाने के प्रयत्न भी जारी रखे जाते हैं।

बचतों की शहरी और ग्रामीण क्षेत्र में विभिन्नता पाई जाती है। ग्रामीण क्षेत्र में बचत का स्तर शहरी क्षेत्र की तुलना में अपेक्षाकृत कम रहता है। ग्रामीण क्षेत्र में आय की असमानता, लाभ–हानि की संभावना, शहरी क्षेत्र की अपेक्षा कम होती है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में संयुक्त परिवार प्रणाली अत्यन्त सुदृढ़ पाई जाती है जिससे ग्रामीण नागरिकों की बीमारी, बेकारी और वृद्धावस्था आदि के लिए बचत करने की जरूरत महसूस ही नहीं होती। इसी कारण बचत करने की भावना कम होती है। दूसरी तरफ, सरकार की कर नीति भी बचतों को प्रभावित करती हैं। करों की अधिक दरें निवेश प्रक्रिया को निरुत्साहित करती हैं। अतः कर नीति लचीली होनी चाहिए जिससे कर का बोझ कम पड़े और लोग अपनी आय में से कुछ बचत करें। आर्थिक विकास होने के साथ–साथ देश के लोगों की आय भी बढ़ती है और बचतों में वृद्धि होती है।

(ख) **बचतों को एकत्रित करना (To Mobilise Saving):-** पूंजी–निर्माण की अवस्थाओं में बचतों को एकत्र करने तथा इच्छित दिशा में मोड़ देने के लिए ऋण तथा वित्तीय संस्थाओं का होना आवश्यक है, लेकिन अल्पविकसित देशों में कुशल वित्तीय संस्थाओं की कमी रहती है जिससे बचत एकत्रित करना कठिन हो जाता है। साधारण तौर से बचत करने वाला बचत पर अधिक ब्याज की दर चाहता है और अपनी पूंजी को भी सुरक्षित रखना चाहता है। यह सभी सुविधाएं वित्तीय संस्थाओं के विस्तार से संभव है।

(ग) **बचतों का निवेश करना (To Invest in Savings):-** इन बचतों का पूंजीगत वस्तुओं के उपयोग के लिए निवेश करने का कार्य वित्तीय संस्थाएं करती हैं और बचत करने वाले वर्ग के साधनों को प्राप्त करके निवेश करने वाले वर्ग तक पहुंचती है। मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था में वित्तीय संस्थाओं में प्रमुख बैंक, बीमा कम्पनियां, सहकारी संस्थाएं है। आर्थिक विकास के साथ–साथ वित्तीय संस्थाओं का भी प्रभाव बढ़ता है। दीर्घकालीन परियोजनाओं के लिए वित्त की व्यवस्था करना इनका प्रमुख उद्देश्य होता है।

1. **पूंजी–निर्माण के कार्य (Functions of Capital Formation):-** पूंजी–निर्माण आर्थिक वृद्धि की प्रमुख कुंजी है। एक ओर तो यह अर्थव्यवस्था में प्रभावी मांग को व्यक्त करता है और दूसरी ओर यह भावी उत्पादन के लिए उत्पादकीय क्षमता का निर्माण करता है। अल्पविकसित देशों के लिए तो इसका विशेष महत्त्व है। यह ऐसे देशों में बढ़ती हुई जनसंख्या की हर प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायक होता है। पूंजीगत पदार्थो में निवेश से केवल उत्पादन ही नहीं बढ़ता बल्कि रोजगार के साधन भी बढ़ते हैं। पूंजी–निर्माण द्वारा ही तकनीकी उन्नति

होती है जिससे विशिष्टीकरण एवं बड़े पैमाने के लाभ प्राप्त होते है। यह बढ़ती हुई श्रम–शक्ति के लिए मशीनें, संयन्त्र, साज–समान प्रदान करने में सहायक होता है। इसके द्वारा ही देश में सामाजिक एवं आर्थिक उपरिसुविधाएं जैसे बिजली, यातायात, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि सम्भव होते हैं। इससे प्राकृतिक साधनों का उपयोग, औद्योगीकरण, कृषि विकास एवं मार्किट का विस्तार होता है जिससे आर्थिक विकास होता है। अतः अल्पविकसित देश, जो निर्धनता के दुष्चक्र में फंसे हुए हैं, उनके लिए पूंजी–निर्माण करना आवश्यक है।

2. **पूंजी–श्रम अनुपात (Capital-Labour Ratio):-** अल्पविकसित देशों में पूंजी की कम होने के कारण एवं उत्पादन क्षमता कम होने के कारण पूंजी–उत्पादन अनुपात कम होता है। इनमें पूंजी–श्रम अनुपात में वृद्धि होनी चाहिए। अति जनसंख्या वाले अल्पविकसित देशों में प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि का संबंध पूंजी–श्रम अनुपात की वृद्धि से होता है। जो देश पूंजी–श्रम अनुपात को बढ़ाना चाहते हैं, उन्हें दा समस्याओं का सामना करना पड़ता है। प्रथम, जनसंख्या बढ़ने से पूंजी–श्रम अनुपात कम हो जाता है। इसलिए पूंजी–श्रम अनुपात की कमी को दूर करने के लिए शुद्ध निवेश की अधिक मात्रा चाहिए जो अल्पविकसित देशों में सम्भव नहीं। द्वित्तीय, जब जनसंख्या तेजी के साथ बढ़ रही हो तो इच्छित निवेश की मात्रा के लिए पर्याप्त बचतों का होना आवश्यक है, परन्तु प्रति व्यक्ति आय बहुत कम होने के कारण ऐसी अर्थव्यवस्थाा में बचत प्रवृत्ति बहत नीची होती है। फिर भी, बचतों को प्रोत्साहित करके पूंजी–निर्माण की दर बढ़ाई जा सकती है।

III संगठन (Organisation)

उत्पादन के साधनों को इष्टतम ढंग से आर्थिक क्रियाओं में लगाना, विकास प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है जिससे उत्पादन बढ़ता है। संगठन, पूंजी और श्रम का पूरक है जो उनकी उत्पादकता बढ़ाने में सहायक होता है। आधुनिक वृद्धि में उद्यमी ही संगठनकर्त्ता का कार्य करते हुए जोखिम तथा अनिश्चितता उठाता रहा है। उद्यमी साधारण योग्यता का व्यक्ति नहीं होता। उसमें दूसरों से कार्य कराने की विशेष योग्यता पाई जाती है। शूम्पीटर के अनुसार, उद्यमी का पूंजीपति होना आवश्यक नहीं बल्कि उसका मुख्य कार्य नवप्रवर्तन करना हैं। इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति का श्रेय उद्यमियों को है और यू० एस० ए० की 19वीं शताब्दी के मध्य तक आर्थिक देशों में उद्यमीय योग्यता का अभाव पाया जाता है।

1. **प्रबन्धकीय गुण (Managerial Qualities):-** अल्पविकसित देशों में उद्यमीय योग्यता का अभाव पाया जाता है जिस कारण उद्यमी बहुत कम होते हैं। मार्किट का छोटा आकार, पूंजी की कमी, निजी सम्पत्ति का अभाव, प्रशिक्षित श्रम एवं प्रबंधन की कमी, कच्चे माल एवं आर्थिक उपरिसुविधाएं पर्याप्त मात्रा में न मिलने के कारण उद्यमी पनप नहीं पाते। परन्तु मिर्डल के अनुसार, एशिया के देशों में उद्यमता की कमी इसलिए नहीं कि उनमें पूंजी या कच्चे माल की कमी है बल्कि इसलिए कि उनमें सही प्रवृत्ति वाले बहुत कम व्यक्ति है। जापानियों में यह प्रवृत्ति मात्रा में पाई जाती है, यही कारण है कि वे विकसित देशों की श्रेणी में आते है। विकसित देशों में संगठन का कार्य निजी उद्यम ही करता रहा है जिसने विशेषकर द्वित्तीय महायुद्ध के बाद बहुराष्ट्रीय निगमों का रूप ग्रहण करके विकसित एवं विकासशील देशों की आर्थिक उन्नति में योगदान दिया।

2. **आर्थिक और सामाजिक उपरिसुविधाएं (Economic and Social Overheads):-**विभिन्न देशों की सरकारों ने किसी न किसी रूप में 1928–29 की महान मंदी से संगठनकर्ता के रूप में कार्य प्रारंभ किया। यह द्वित्तीय महायुद्ध से पहले सामाजिक उपरिव्यय पूंजी के रूप में आया और युद्ध के पश्चात लोक उद्योगों के रूप में फैल गया। उदाहरणार्थ, यूरोप, इंग्लैण्ड और अमेरिका में सरकारों ने सार्वजनिक कल्याण के कार्य प्रारम्भ किए जैसे लोक स्वास्थ्य, सड़कें, पुल, पार्क, शिक्षा, आग से रक्षा, बाढ़ नियन्त्रण आदि। कई सरकारों ने रेल, डाक, तार, विद्युत एवं गैस आदि का संचालन करना शुरू कर दिया है। ब्रिटेन के कोयला, इस्पात और सड़क परिवहन का राष्ट्रीयकरण किया, जबकि फ्रांस ने हवाई सेवाओं, कोयले और रेनॉल्ट मोटर गाड़ियों के निर्माण का राष्ट्रीयकरण किया। अल्पविकसित देशों में तो आर्थिक और सामाजिक उपरिसुविधाएं अधिकतर सरकारी क्षेत्रों में ही पाई जाती है और सार्वजनिक उद्यमों का हर ओर प्रसार हो रहा है।

3. **वित्तीय संस्थाएं (Financial Institutions):-** संगठन में प्रायः बैंकों के कार्य भाग को नहीं लिया जाता। वास्तव में ये ऐसी महत्वपूर्ण संस्थाएं हैं जिन्होंने विकसित देशों की आर्थिक वृद्धि में बहुत योगदान दिया है। ब्रिटेन, यूरोप और अमेरिका में बैंको ने वित्तीय सहायता प्रदान करके औद्योगिकरण में बहुत सहायता की। उन्होंने केवल वित्त ही नहीं दिया बल्कि निजी उद्यमों का निवेश सम्बन्धी परामर्श दिया, प्रशिक्षित श्रम और मैनेजर विदेशों से भर्ती करने में सहायता दी, बढ़िया कच्चा माल मंगवा कर दिया और प्रारंभ में तो निर्मित माल को बेचने में भी सहायता प्रदान की। अमेरिका, यूरोप, ब्रिटेन तथा उसके उपनिवेश देशों में यातायात, खनिज विकास एवं वस्तुओं के निर्माण में बैंकों का बहुत योगदान रहा है। अल्पविकसित देशों में भी वाणिज्य बैंक, राष्ट्रीयकृत बैंक, सहकारी बैंक तथा औद्योगिक बैंक एवं निवेश ट्रस्ट विकास के लिए विभिन्न प्रकार से सहायता कर रहे हैं। 1950 के बाद से विश्व बैंक और उसकी कई सहायक संस्थाएं इन देशों के विभिन्न क्षेत्रों के विकास सेविवर्ग, परामर्श एवं वित्तीय सहायता प्रदान कर रही है।

इस प्रकार संगठन में केवल निजी उद्यम ही नहीं बल्कि सरकार, बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का महत्वपूर्ण योगदान विकसित एवं अविकसित देशों की अधिक उन्नति में पाया जाता है।

4. **यातायात एवं संचार के साधन (Means of Transportation and Communications):-** आधुनिक काल में उद्यमी के लिए अपनी वस्तुओं की उत्पादन लागतों का विशेष महत्व है। यातायात एवं संचार के साधनों के विकास से उत्पादन लागत अपेक्षाकृत कम रहती है। विश्व के जिन देशों में सड़क, रेल, नदियों द्वारा विभिन्न भाग आपस में जुड़े हुए हैं वहां उद्यम ने विशेष उन्नति की है। जापान, ब्रिटेन जर्मनी एवं फ्रांस मे इन साधनों के विकास से उद्यम काफी पनपा है जिसका इन देशो के आर्थिक विकास में विशेष्ज्ञ योगदान रहा है।

IV प्रौद्योगिकी उन्नति (Technological Progress)

प्रौद्योगिकीय उन्नति अथवा परिवर्तन आर्थिक वृद्धि के महत्वपूर्ण तत्व माने जाते हैं। प्रौद्योगिकीय उन्नति से नई उत्पादन तकनीकों के विकास अथवा अन्वेषण अथवा नवप्रवर्तन होते हैं जिससे श्रम एवं पूंजी की उत्पादकता में वृद्धि होती है।

न्यूनतम लागत पर अधिक उत्पादन होता है और कम समय में बढ़िया वस्तुओं का निर्माण जिससे वस्तुओं की मांग बनी रहती है।

अल्पविकसित देश, प्रौद्योगिकी ज्ञान को दूसरे अन्य विकसित देशों से प्राप्त कर आर्थिक प्रगति कर सकते हैं। विशेषज्ञों को विशेष प्रशिक्षण देकर तथा मशीनें लगाकर उत्पादन में वृद्धि कर सकते है। जो इन देशों को निर्धनता के दुष्चक्रों से निकालने में सहायक होगी।

V श्रम विभाजन एवं उत्पादन का पैमाना (Division of Labour and Scale of Production)

विशष्टीकरण तथा श्रम–विभाजन से उत्पादकता में वृद्धि होती है। इससे बड़े पैमाने की मित्तव्ययिताएं भी उपलब्ध होती है जो औद्योगिक विकास में सहायक सिद्ध होती है। एडम स्मिथ ने आर्थिक विकास में श्रम–विभाजन को बहुत महत्व दिया। श्रम–विभाजन से श्रम की उत्पादकीय शक्तियों में सुधार होता है। हर श्रमिक पहले से अधिक कुशल हो जाता है : वह समय की बचत करता है : वह नई मशीनों की खोज करने में भी समर्थ होता है और अन्त में उत्पादन में कई गुणा वृद्धि होती है। परन्तु श्रम–विभाजन मार्किट के आकार पर निर्भर करता है। मार्किट का आकार आर्थिक प्रगति पर निर्भर करता है अर्थात देश में मांग का आकार क्या है तथा उत्पादन का साधारण स्तर, यातायात के साधन आदि कितने विकसित है। उत्पादन का पैमान बड़ा होने से अधिक विशष्टीकरण तथा श्रम–विभाजन संभव होता है जिससे उत्पादन बढ़ता है और आर्थिक प्रगति की दर में वृद्धि होती है। ऐसा होने से मौद्रिक बाह्य मित्तव्ययिताएं उपलब्ध होती है और अविभाज्यताओं (indivisibilities) से लाभ प्राप्त होते हैं। ये अविभाज्यताएं शक्ति, यातायात आदि होती हैं जिनके प्रयोगों से उद्योगों का विकास होता है। इस प्रकार उत्पादन बढ़ता है तथा आर्थिक विकासमें तीव्रता आती है। विशाल विकसित देशों जैसे अमेरिका, कनाडा एवं आस्ट्रेलिया की आर्थिक वृद्धि का एक महत्वपूर्ण कारण उनमें परिवहन एवं संचार के साधनों में अभूतपूर्व उन्नति है जिससे उनकी वस्तुओं की मार्किट के आकार में विस्तार हुआ है एवं लागतें कम हुई है और उत्पादन का पैमाना बढ़ा है। विकसित राष्ट्रों द्वारा स्वेज एवं पनामा नहरों के निर्माण में दिलचस्पी लेना और उनका निमा।ण करना, मार्किट के विस्तार के लाभों को प्राप्त करने के लिए ही था। अल्पविकसित देशों में मार्किट अपूर्णताएं मार्किट के वितार में बाधक होती है जिस कारण वे श्रम–विभाजन और उत्पादन के पैमाने के लाभ प्राप्त करने में असमर्थ होते हैं। अतः निर्धनता के दुश्चक्रों से निकलने के लिए अल्पविकसित देशों को बाजर का विस्तार करना चाहिए।

VI सरंचनात्मक परिवर्तन (Structural Changes)

सरंचनात्मक परिवर्तन से अभिप्राय एक परम्परागत कृषक समाज से आधुनिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था में परिवर्तन है, जिसमें वर्तमान संस्थाओं, सामाजिक प्रवृत्तियों और प्रेरणाओं में महत्वपूर्ण रूपान्तरण पाया जाता है। 'ऐसे सरंचनात्मक परिवर्तन से रोजगार के अवसरों, श्रम–उत्पादकता तथा पूंजी स्टॉक में वृद्धि होती है और नये साधनों के प्रयोग एवं तकनीक में सुधार होते है।

एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में एक विस्तृत प्राथमिक क्षेत्र और एक बहुत छोटे द्वित्तीयक क्षेत्र के साथ एक और छोटा–सा तृतीयक क्षेत्र होता है। उदाहरणार्थ, भारत में 1940–50 में राष्ट्रीय उत्पादन में प्राथमिक क्षेत्र का योगदान 49.4 प्रतिशत

द्वित्तीयक क्षेत्र 16.6 प्रतिशत और तृतीयक रोजगार का 18.6 प्रतिशत था। सरंचनात्मक परिवर्तन का प्रारंभ जनसंख्या के प्राथमिक से द्वित्तीयक और फिर तृतीयक रोजगार में स्थानान्तरण से हो सकता है। एक अति–जनसंख्या वाली कृषि–अनुस्थापित अर्थव्यवस्था में 70 से 80 प्रतिशत जनसंख्या कृषि में सलंग्न होती है। सरंचनात्मक परिवर्तन में अकृषि क्षेत्र फैलता है ताकि कृषि क्षेत्र में जनसंख्या का अनुपात अधिकाधिक कम हो जाए। इसका अभिप्राय कृषि क्षेत्र का राष्ट्रीय आय में योगदान कम करना हैं परन्तु शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद में कृषि क्षेत्र के भाग की कमी का अर्थ कृषि उत्पादन में कमी से नहीं है बल्कि कृषि उपज निरपेक्ष रूप से अवश्य बढ़नी चाहिए। कृषि उत्पादन में वृद्धि करने के लिए मूलभूत परिवर्तन–जैसे भूमि सुधार, सधरी हुई कृषि तकनीकें और आगतें, मार्किट का अच्छा संगठन, नई साख संस्थाएं आदि के रूप में करने होते हैं।

जब कृषि उत्पादन में वृद्धि होती है तो उससे कृषि क्षेत्र में मौद्रिक आय बढ़ती है। यह आगे कृषि आगतों और उपभोक्ता वस्तुओं की ग्रामीण मांग को बढ़ाती है, जो औद्योगिक क्षेत्र के प्रसार को प्रोत्साहित करती है। औद्योगिक क्षेत्र स्वयं भी कृषि क्षेत्र को प्रभावित करता है। प्रथम, फर्म उत्पादन की वृद्धि के लिए औद्योगिक क्षेत्र द्वारा निर्मित सुधरी हुई फार्म मशीनरी और अन्य आगत चाहिए। दूसरे, बढ़ रही कृषि उत्पादकता और आय औद्योगिक क्षेत्र की उपभोकता वस्तुओं और सेवाओं की मांग को बढ़ाती है। दूसरे शब्दों में, कृषि उत्पादकता और आय बढ़ाने का अवसर बहुत अधिक अर्थव्यवस्था के सरंचनात्मक रूपान्तरण पर निर्भर करता है क्योंकि यह खाद्य पदार्थो की व्यापारिक मांग में वृद्धि, वैकल्पिक रोजगार के अवसरों में वृद्धि और कृषि क्षेत्र को उपलब्ध खरीदी गई आगतों की अधिक मात्रा और किस्म को प्रभावित करता है। सरंचनात्मक परिवर्तन को एक अन्य पहलू जनसंख्या का प्राथमिक और द्वित्तीयक से तृतीयक रोजगार में स्थानान्तरण है। तृतीयक उत्पादन में बहुत–सी असमान सेवाएं सम्मिलित होती है जो अभौतिक वस्तुओं को उत्पादित करती हैं, जैसे परिवहन, शिक्षा, परचून और थोक वितरण, सरकारी और घरेलू सेवाएं आदि। आर्थिक विकास के साथ तृतीयक वस्तुओं की मांग बहुत शीघ्रता से बढ़ती है क्योंकि कृषि और औद्योगिक क्षेत्र का प्रसार अधिकतर परिवहन, परचून एवं थोक वितरण, तकनीकी सेविवर्ग आदि पर निर्भर करता है। अतः आर्थिक विकास के साथ–साथ तृतीयक धन्धों में कार्यकारी श्रम का अनुपात बढ़ जाता है। परन्तु बहुत से तृतीयक धन्धे जैसे रेलें और मोटर परिवहन आदि अधिक पूंजी गहन होते हैं ओर उनमें बड़े पैमाने पर श्रम के स्थान पर पूंजी स्थानापन्न होती है। इस प्रकार आथ्रिक विकास की प्रारंभिक अवस्था में तृतीयक धन्धे अधिक लोगो को खपाने मे असफल होते हैं और अधिक मात्रा में श्रमिक सभी प्रकार की वस्तुएं और सेवाएं बेचने वाले बन जाते है जिनमें बहुत थोड़ी या बिल्कुल पूंजी की आवयकता नहीं पड़ती जैसे 'फल, अखबार आदि बेचने वाले या फिर कारें साफ करने वाले, कुली, बेयरा तथा दुकान–सहायक आदि।' इस प्रकार का अल्परोजगार कृषि में अदृश्य बेरोजगारी द्वारा बढ़ता है।

16.3.2 गैर–आर्थिक कारक (Non-Economic Factors)

आर्थिक कारकों के साथ–साथ गैर–आर्थिक कारक भी आर्थिक प्रगति को प्रभावित करते हैं। वास्तव में किसी भी देश में प्रचलित गैर–आर्थिक कारक, जैसे सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक संगठन, ऊपर वर्णित आर्थिक कारकों

को प्रभावित करते हैं। इसलिए गैर–आर्थिक कारकों का आर्थिक विकास में बहुत महत्व है। नर्क्से के अनुसार आर्थिक विकास ''मानवीय गुणों, सामाजिक वृत्तियों, राजनैतिक परिस्थितियों एवं ऐतिहासिक संयोगो'' से बहुत निकटता का संबंध रखता है। अतः आर्थिक विकास के लिए केवल आर्थिक कारक ही पर्याप्त नहीं, राजनैतिक, मनावैज्ञानिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारक भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने कि आर्थिक कारक। अतः आर्थिक विकास के लिए आवश्यक गैर–आर्थिक कारकों, सामाजिक मूल्यों एवं संस्थाओं, सांस्कृतिक प्रवृत्तियों तथा प्रशासनिक विधियों में परिवर्तन आते हैं।

1. धार्मिक–सांस्कृतिक वृत्तियां (Religious-Cultural Atitudes)

अल्पविकसित देशों के समाजों में ऐसी धार्मिक एवं सांस्कृतिक परमपराएं होती हैं, जो आर्थिक विकास की प्रेरक नहीं होती। धर्म मितव्ययिता तथा परिश्रम के गुणों को कम प्रोत्साहन देता है। लोग भाग्यवादी होते हैं, इसलिए काम करना पसन्द नहीं करते। वे परम्पराग रीति–रिवाजों से अधिक प्रभावित होते हैं तथा अवकाश, संतुष्टि और उत्सवों एवं समारोहों में भाग लेने को अधिक मूल्य प्रदान करते हैं। इस प्रकार मुद्रा लाभदायक ढंग से निवेश न करके व्यर्थ कार्यो पर व्यय कर दी जाती है। सांस्कृतिक वृत्तियां प्रगति में बाधक होते हैं, जिससे सामाजिक, आर्थिक व राजनेतिक संस्थाएं पिछड़ी हुई रहती हैं और आर्थिक विकास में सहायक नहीं होतीं।

2. सामाजिक कारक–सामाजिक मूल्य, वृत्तियां एवं संस्थाएं (Social Factors-Values, Attitudes and Institutions)

समाजिक वृत्तियां, मूल्य तथा संस्थाएं भी आर्थिक विकास को प्रभावित करते हैं। 'वृत्ति' शब्द से अभिप्राय से समस्त विश्वास और मूल्य हैं जो मानव व्यवहार को जैसा वह है उसे वैसा होने का कारण होते हैं। 'मूल्य' शब्द विशेष उद्देश्यों की ओर मानव व्यवहार की प्रवृत्तियों से संबद्ध है।

आधुनिक आर्थिक वृद्धि सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कारकों द्वारा प्रभावित हुई हैं। पश्चिमी संस्कृति और शिक्षा से तर्क और संदेहवाद प्रारंभ हुए। इससे साहसिकता की भावना उत्पन्न हुई जिससे नई खोजों और नए अविष्कार हए, तथा परिणामस्वरूप नए व्यापारी वर्ग का उद्य हुआ। ये शक्तियां सामाजिक वृत्तियों, आशाओं और मूल्यों में परिवर्तन लाई। लोगों ने बचत और निवेश करने की आदतें अपनाई तथा लाभ कमाने के लिए जोखित उठाया। उन्होंने एक दी हुई आगत से अधिकतम उत्पादन करने को विकसित किया जिसे लुइस 'बचत करने की क्षमता' कहता है। परिणामस्वरूप, यूरोपीय देशों ने 18वीं तथा 19वीं शताब्दियों में औद्योगिक क्रान्ति का अनुभव किया। आर्थिक और धार्मिक स्वतंत्रता ने सामाजिक वृत्तियों और मूल्यों में और परिवर्तन लाए। एकल परिवारिक इकाई ने संयुक्त परिवार प्रणाली का स्थान लिया जिसने आधुनिक आर्थिक वृद्धि की और सहायता की।

अल्पविकसित देशों में ऐसी सामाजिक वृत्तियां, मूल्य और संस्थाएं पाई जाती हैं जो आर्थिक विकास में सहायक नहीं होती हैं। बचत और मेहनत की इच्छाइयों को धर्म कम प्रेरणाएं प्रदान करता है। लोग भाग्यवादी है, तथा इसलिए मेहनती नहीं होते हैं। वे परम्परावादी रिवाजों द्वारा अधिक प्रभावित होते हैं तथा त्योंहारों और रीति–रिवाजों में भाग लेने एवं आराम और संतोष पर अधिक बल देते हैं।

अतः सामाजिक वृत्तियां विकास के मार्ग में बाधा होती है जब गैर–आर्थिक क्रियाओं पर मुद्रा फिजूल खर्च की जाती है।

3. **मानवीय कारक (Human Factors)**

आधुनिक आर्थिक वृद्धि, जिसका संबंध विकसित देशों से हैं, का महत्वपूर्ण कारण मानवीय साधनों में अभूतपूर्व वृद्धि है। यह जनसंख्या में वृद्धि और श्रम–शक्ति की कुशलता का परिणाम है। कुजनेट्स के अनुसार यूरोपीय लोगों में 1750 से 1950 के बीच 433 प्रतिशत की वृद्धि हुई जब कि शेष विश्व की जनसंख्या में 200 प्रतिशत की वृद्धि हुई। जहां जनसंख्या लगभग पांच गुना बढ़ी, वहां इन यूरोपीय देशों और इनके द्वारा बसाये गए नए देशों में प्रति व्यक्ति आय दस गुना बढ़ी।

प्रति व्यक्ति आय में इतनी वृद्धि का मुख्य कारण मानवीय साधनों का विकास माना जाता है जो श्रम–शक्ति की कुशलता में निहित है। इसे आधुनिक अर्थशास्त्री मानव–पूंजी निर्माण कहते हैं जो ''देश के सब लोगों का ज्ञान, कुशलता तथा क्षमताएं बढ़ाने की प्रक्रिया है,'' जिसमें स्वास्थ्य, शिक्षा तथा सामान्य रूप से सामाजिक सेवाओं पर व्यय शामिल है। डेनिसन के अनुसंधान के अनुसार 1929–57 के बीच अमेरिका में शिक्षा पर किए गए व्यय से सकल वास्तविक राष्ट्रीय आय में 23 प्रतिशत योगदान था। परन्तु एक अल्पविकसित देश में तेजी से बढ़ती जनसंख्या आर्थिक उन्नति के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा होती है क्योंकि मानव–पूंजी में निवेश की कमी के कारण शिक्षा, तकनीकी ज्ञान, कुशलता तथा शारीरिक स्वास्थ्य का स्तर बहुत निम्न होता है। यही कारण है कि ऐसे देशों में श्रम की उत्पादकता बहुत कम होती है जिससे प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि नहीं हो पाती। जबकि सोलोमन फ्रैब्रीकैंट के अनुसार 1889–1957 के बीच अमेरिका के कुल राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि जितनी श्रम और भौतिक पूंजी की वृद्धि द्वारा हुई उन्नति ही श्रम की उत्पादकता में वृद्धि से हुई। इस प्रकार देश में स्वस्थ, शिक्षित एवं प्रशिक्षित श्रम–शक्ति होने पर ही आर्थिक वृद्धि संभव हो सकती है।

अल्पविकसित देश में प्रति व्यक्ति निम्न आय तथा पूंजी–निर्माण की निम्न दरों के कारण अतिरिक्त जनसंख्या का भरण–पोषण करना कठिन हो जाता है। जब उत्पादन को बढ़ाया जाता है तो उसे बढ़ी हुई जनसंख्या हड़प कर जाती है। परिणाम यह होता है कि वास्तविक आर्थिक प्रगति दर में कोई वृद्धि नहीं होती। उदाहरण के तौर पर भारत में जनसंख्या की वृद्धि दर इतनी अधिक है कि कुल उत्पादन में जितनी वृद्धि प्रति वर्ष होती है, बढ़ती हुई जनसंख्या उसकों विष्फल बना देती है जिस कारण अर्थव्यवस्था की वार्षिक वृद्धि दर 3 प्रतिशत से अधिक नहीं बढ़ पाती।

जनसंख्या में तीव्र वृद्धि का एक और प्रभाव यह होता है कि बढ़ती हुई श्रम शक्ति के लिए पुराने ढंग के उपकरण जुटाने मे भी बहुत अधिक पूंजी लगानी पड़ती है। अनुमानतः यदि जनसंख्या की वृद्धि पर 2.5 प्रतिशत हो तो राष्ट्रीय आय का 5 प्रतिशत से 12.5 प्रतिशत भाग पूंजी में निवेश करना पड़ेगा।

4. **राजनैतिक एवं प्रशासनिक परिवर्तन (Political and Administrative Changes)**

अल्पविकसित देशों में राजनैतिक एवं प्रशासनिक ढांचा बहुत ढ़ीला होने के कारण आर्थिक विकास के मार्ग में बाधक होता है। एक सशक्त, कुशल तथा

निष्कलंक शासन आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है। प्रोफेसर लुइस ने ठीक ही कहा हैं, ''सरकार का व्यवहार आर्थिक क्रिया को प्रोत्साहित या हतोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।'' राजनीतिक नीतियाँ एवं प्रशासनिक ढांचा आधुनिक वृद्धि में बहुत सहायक हुई है। बर्तानियाँ, जर्मनी, अमेरिका, जापान और फ्रांस की आर्थिक वृद्धि उनके सुदृढ़ प्रशासनिक ढांचों का ही परिणाम हैं जबकि अमेरिका को छोड़कर इन सभी देशों ने दोनों विश्व युद्धों में बहुत क्षति उठाई। दूसरी ओर, इटली जैसे यूरोप के अन्य देश राजनीतिक अस्थिरता एवं कुप्रशासन के कारण इतनी प्रगति नहीं कर पाए। शांति, स्थिरता तथा कानूनी सुरक्षा से उद्यम को प्रोत्साहन मिलता है। जितनी स्वतंत्रता अधिक होगी, उतना ही उद्यम पनपेगा। तकनीकी उन्नति, साधनों की गतिशीलता और विस्तृत मार्किट उद्यम को बढ़ाने में सहायक होते हैं जिनको स्वच्छ प्रशासन एवं स्थिर राजनैतिक अवस्था ही प्रदान कर सकती है। इसी प्रकार आर्थिक उपरिव्यय पूंजी तथा मौद्रिक एवं राजकोषी नीतियां अपनाकर सरकार पूंजी–निर्माण में सहायक हो सकती है। यदि वह आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देना चाहती है तो सरकार को चाहिए कि समाज को ये सेवाएं प्रदान करें : व्यवस्था, न्याय, पुलिस तथा रक्षा, उत्पादन में योग्यता तथा निवेश के अनुकूल पुरस्कार, सम्पत्ति–जो विविध प्रकार की हो सकती हैं के उपभोग में सुरक्षा, वसीयती अधिकार, व्यापार प्रसंविदाओं (covenants) तथा इकरारनामों को पूरा करने को आश्वासन; बाट, प्रमाण तथा करेंसी के स्टैण्डर्ड और स्वयं राजकीय प्रणाली की स्थिरता प्रदान करना, प्रत्याशाओं तथा कर्त्तव्यों की व्यवस्था, विवेक की भावन तथा भावी गण्यता (future calculability) कायम रखना। इस प्रकार स्वच्छ, शक्तिशाली एवं न्यायपूर्ण शासन आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करता है। जैसाकि प्रो० लुइस ने कहा है, ''किसी भी देश ने योग्य सरकारों के सुनिश्चित प्रोत्साहन के बिना आर्थिक प्रगति नहीं की है।''

इस प्रकार आर्थिक एवं आर्थिकेतर तत्त्व वृद्धि की प्रक्रिया करते हैं। वे एक दूसरे पर भी निर्भर करते हैं। आर्थिक तत्त्व आर्थिकेतर तत्त्वों द्वारा प्रभावित होते है और उनको प्रभावित भी करते हैं। परन्तु कुछ अर्थशास्त्रियों जैसे वाइनर तथा मिर्डल के अनुसार आर्थिक एवं गैर–आर्थिक तत्त्वों में भेद निरर्थक, भ्रमपूर्ण तथ असंगत है। इसलिए इसकों त्याग देना चाहिए। परन्तु हम इन अर्थशास्त्रियों के विचार से सहमत नहीं क्योंकि यह सर्वमान्य है कि आर्थिक तथा आर्थिकेतर तत्त्वों का आधुनिक आर्थिक वृद्धि पर बहुत महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है।

16.4 आर्थिक स्थिरता (Economic Stability)

अर्थव्यवस्था सदैव निर्बाध रूप में कार्य नहीं करती है। आर्थिक गतिविधियों के स्तर में प्रायः उच्चावचन होते हैं। कभी–कभी जब अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय, उत्पादन तथा रोजगार के स्तर अपने पूर्ण सम्भावी स्तरों से बहुत कम होते हैं तो वह स्वयं मन्दी की जकड़न में होती है। मन्दी की अवधि में अत्यधिक शिथिल अथवा अप्रयुक्त उत्पादन क्षमता (unutilised productive capacity) होती है अर्थात् उपलब्ध मशीनें तथा कारखाने अपनी पूर्ण क्षमता पर कार्य नहीं करते हैं। परिणामस्वरूप आधिक्य पूंजी की मात्रा के साथ–साथ श्रम की बेरोजगारी में वृद्धि होती है। इसके विपरीत कभी–कभी अर्थव्यवस्था में आवश्यकता से अधिक तेजी (overheated) होती है जिसका अर्थ यह होता है कि अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति (बढ़ती हुई कीमतें) पायी जाती है। इस प्रकार एक स्वतंत्र बाजार अर्थव्यवस्था के

अन्तर्गत अत्यधिक आर्थिक अस्थिरता होती है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का विश्वास था कि अर्थव्यवस्था में स्थिरता को पुनः स्थापित करने के लिए एक स्वचालित तंत्र कार्य करता रहता है। मंदी स्वतः ठीक हो जाती है तथा मुद्रास्फीति स्वतः नियन्त्रित हो जायेगी। तथापि पश्चिमी पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में 1930 के दशक में होने वाली गम्भीर महामन्दी का आनुभाविक प्रमाण तथा द्वित्तीय विश्व युद्ध के बाद की अवधि के प्रमाण पर्याप्त रूप से इस बात को प्रदर्शित करते हैं कि अर्थव्यवस्था में स्थिरता उत्पन्न करने वाला इस प्रकार का कोई भी स्वचालित तंत्र नहीं है। यही कारण है कि महामन्दी तथा मुद्रास्फीति को दूर करने के लिए केन्ज ने सरकार द्वारा समष्टिपरक आर्थिक नीति के समुचित उपायों को अपनाकर हस्तक्षेप करने का तर्क दिया। समष्टिपरक आर्थिक नीति के दो महत्वपूर्ण उपाय राजकोषीय तथा मौद्रिक नीति हैं। (The two important tools of macroecomomic policy are fiscal policy and monetary policy) केन्ज के अनुसार अर्थव्यवस्था को महामन्दी से बाहर निकालनें में मौद्रिक नीति अप्रभावी थी। उन्होंने अर्थव्यवस्था को स्थिर करने के लिए एक प्रभावशाली उपााय के रूप में राजकोषीय नीति की भूमिका पर बल दिया। इस अध्याय में हम अर्थव्यवस्था में स्थिरता लाने के लिए राजकोषीय नीति की भूमिका पर विचार करेंगे तथा स्थिरीकरण उत्पन्न करने में मौद्रिक नीति की भूमिका पर बाद के अध्याय में विवेचन करेंगें।

16.4.1 समष्टिपरक आर्थिक नीति के लक्ष्य (Goals of Macroecomonic Policy)

अर्थव्यवस्था को रोजगार तथा राष्ट्रीय उत्पादन के अपेक्षाकृत ऊँचे स्तर पर स्थिर करना ही समष्टिपरक आर्थिक नीति का एकमात्र लक्ष्य नहीं होता है। कीमत स्थिरता को सुनिश्चित करना इसका अन्य लक्ष्य होता है। मुद्रा स्फीति (बढ़ती हुई कीमतें) तथा मुद्रा विस्फीति (घटती हुई कीमतें) दोनों के ही बुरे आर्थिक परिणाम होते हैं। अतः कीमत स्थिरता प्राप्त करना वांछनीय होता है। इसी प्रकार प्रत्येक राष्ट्र अपना जीवन स्तर ऊँचा उठाना चाहता है जो आर्थिक वृद्धि उत्पन्न करके प्राप्त किया जा सकता है और यह क्रमशः बचत तथा विनियोग एवं पूंजी संचय की दरों की वृद्धि पर निर्भर करता है। समष्टिपरक आर्थिक नीतियां बचत तथा विनियोग की दरों को ऊपर उठाने में लाभदायक भूमिका निभा सकती है तथा इसलिए तीव्र आर्थिक विकास सुनिश्चित कर सकती है। इस प्रकार समष्टिपरक आर्थिक नीति (राजकोषीय तथा मौद्रिक दोनों) के तीन महत्त्वपूर्ण लक्ष्य या उद्देश्य निम्न हैं।

1. उत्पादन तथा रोजगार के ऊँचे स्तर पर आर्थिक स्थिरता
2. कीमत स्थिरता
3. आर्थिक वृद्धि

इस इकाई में हम स्वयं को पूर्ण रोजगार के स्तर पर आर्थिक स्थिरता प्राप्त करने तथा मुद्रास्फीति (deflation) को नियन्त्रित करने एवं इस प्रकार कीमत स्थिरता प्राप्त करने में राजकोषीय नीति की भूमिका की विवेचना तक सीमित रखेंगे।

16.5 स्थिरीकरण के लिए विवेकाधीन राजकोषीय नीति (Discretionary Fiscal Policy for Stablisation)

अर्थव्यवस्था को स्थिर बनाने अर्थात् मन्दी को दूर करने एवं मुद्रास्फीति को नियन्त्रित करने के लिए राजकोषीय नीति महत्वपूर्ण यंत्र होती है। राजकोषीय नीति दो प्रकार की होती है। विवेकाधीन राजकोषीय नीति तथा स्वतः स्थिरकारी गैर विवेकाधीन राजकोषीय नीति (Discovery Fiscal Policy and Non-discretionary Fiscal Policy of Automatic-stabliser) विवेकाधीन राजकोषीय नीति से हमारा अभिप्राय राष्ट्रीय उत्पादन तथा कीमतों के स्तर को प्रभावित करने के उद्देश्य से सरकारी व्यय तथा करों में जान–बूझकर परिवर्तन से होता है। राजकोषीय नीति का उद्देश्य सामान्यतः वस्तुओं तथा सेवाओं की समग्र माँग को व्यवस्थित करना होता है। दूसरी ओर स्वतः गैर स्थिरकारी विवेकाधीन राजकोषीय नीति वह आत्मपोषित कर या व्यय प्रक्रिया है जो सरकार द्वारा किसी विशेष कार्यवाही के बिना ही, होने पर समग्र मांग में वृद्धि करती है तथा अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति होने पर समग्र मांग में कमी करती है।

मन्दी के समय सरकार अपने व्यय में वृद्धि करती है अथवा करों में कटौती करती है अथवा दोनों उपायों को अपनाती है। इसके विपरीत मुद्रास्फीति को नियन्त्रित करने के लिए सरकार अपना व्यय कम करती है। या करों मे वृद्धि करती है। अन्य शब्दों में, मन्दी दूसर करने के लिए विस्तारवादी राजकोषीय नीति (expansionary fiscal policy) तथ मुद्रास्फीति को नियन्त्रित करने के लिए संकुचवादी राजकोषीय नीति (contractionary fiscal policy) अपनाती है। यह उल्लेखनीय है कि राजकोषीय नीति का उद्देश्य सरकारी व्यय तथा करों मं उपयुक्त परिवर्तनों द्वारा समग्र माँग में परिवर्तन करना होता है। इस प्रकार राजकोषीय नीति प्रमुख रूप से माँग–प्रबन्ध की नीति होती है। (fiscal policy is mainly a policy of demand management) इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान देने योग्य है कि जब सरकार मन्दी दूर करने के लिए विस्तारवादी राजकोषीय नीति अपनाती है तो वह करों में कोई वृद्धि किये बिना व्यय में वृद्धि करती है या व्यय में परिवर्तन किये बिना करों में कटौती करती हैं या व्यय में वृद्धि करती है तथा करों में भी बटौती करती है। विस्तारवादी राजकोषीय नीति के इन विभिन्न प्रकारों में से किसी एक के अपनाने से सरकार के बजट में घाटा हो जायेगा। इस प्रकार मन्दी तथा बेराजगारी दूर करने के लिए विस्तारवादी राजकोषीय नीति घाटे की बजट नीति होती है। इसके विपरीत यदि मुद्रास्फीति नियन्त्रित करने के लिए सरकार अपने व्यय में कमी करती हैं या करों में वृद्धि करती है या दोनों उपायों को अपनाती है तो वह बजट में अतिरेक की योजना बनाती है। इस प्रकार मुद्रास्फीति दूर करने के लिए बजट अतिरेक या कम से कम बजट में घाटे को कम करने की नीति अपनायी जाती है। (Thus policy of budget surplus or at least reducing budget deficit is adopted to remendy inflation) इसके बाद अब हम पहले मन्दी दूर करने के लिए तथा इसके बाद मुद्रास्फीति नियन्त्रित करने के लिए राजकोषीय नीति की विवेचना करेंगे।

16.6 मन्दी दूर करने के लिए राजकोषीय नीति (Fiscal Policy to Cure Recession)

जैसा कि हम जानते हैं कि एक अर्थव्यवस्था में मन्दी तब होती है जब निजी विनियोग में कमी के कारण समग्र मांग में कमी होती है। निजी विनियोग तब कम होता है जब व्यवसायी लोग भविष्य में लाभ अर्जित करने के विषय में अत्यधिक

निराशावादी हो जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप निवेश की सीमान्त उत्पादकता में कमी हो जाती है। निजी विनियोग व्यय में कमी के परिणामस्वरूप समग्र मांग वक्र नीचे की ओर खिसक जाता है तथा एक विस्फीतिकारी अन्तराल या मन्दी अन्तराल (deflationary gap or recessionary gap) का सृजन करता है। सरकारी व्यय में वृद्धि करके या करों को कम करके इस अन्तराल को कम करना राजकोषीय नीति का कार्य होता है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था को मन्दी से बाहर निकालनें की दो राजकोषीय विधियाँ होती है।

(क) सरकारी व्यय में वृद्धि

(ख) करों में कमी

हम नीचे इन दोनों विधियों की विवेचना करते हैं।

16.6.1 मन्दी दूर करने के लिए सरकारी व्यय में वृद्धि (Increase in Government Expenditure to Cure Recession)

विवेकाधीन राजकोषीय नीति द्वारा महामन्दी दूर करने के लिए सरकारी व्यय में वृद्धि एक महत्वपूर्ण उपाय होता है। सरकार सार्वजनिक कार्य जैसे – सड़क, बांध, बन्दरगाह, दूरसंचार सम्पर्क, सिंचाई कार्य, नये क्षेत्रों का विद्युतीकरण इत्यादि प्रारम्भ करके व्यय में वृद्धि कर सकती है। इन सब सार्वजनिक कार्यो को करने के लिए सरकार विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ तथा पदार्थ खरीदती है तथा श्रमिकों को रोजगार प्रदान करती है। व्यय में इस वृद्धि का प्रभाव प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों रूप से होता है। प्रत्यक्ष प्रभाव उन लोगों की आय में वृद्धि के रूप में होता है जो इन परियोजनाओं के लिए पदार्थों की बिक्री करते हैं तथा श्रम की पूर्ति करते हैं। आय में वृद्धि के रूप में होता है जो इन परियोजनाओं के लिए पदार्थ की बिक्री करते हैं तथा श्रम की पूर्ति करते हैं। आय में वृद्धि के साथ इन सार्वजनिक कार्यो के उत्पादन में भी वृद्धि होती है। यही नहीं, केन्ज ने यह प्रदर्शित किया कि सरकारी व्यय में वृद्धि का गुणक की क्रियाशीलता के रूप में अप्रत्यक्ष प्रभाव (indirect effect) भी होता हैं। जिन्हें अपेक्षाकृत अधिक आय प्राप्त होती हैं वे पुनः उसे अपनी सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति के अनुसार उपभोक्ता वस्तुओं पर व्यय करते हैं। चूँकि मन्दी की अवधि में उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योगों में आधिक्य क्षमता (excess capacity) विद्यमान होती है अतः उनकी माँग में वृद्धि उनके उत्पादन में वितार करती है जो बेरोजगार श्रमिकों के रोजगार तथा आय का सृजन करती है और इस प्रकार नवीन आय बार–बार व्यय की जाती है तथा गुणक की प्रक्रिया तब तक कार्य करती रहती है जब तक कि वह स्वयं अपना कार्य पूर्णरूप से सम्पन्न नहीं कर लेती।

व्यय में वृद्धि कितनी अधिक हो कि पूर्ण रोजगार अथवा उत्पादन के सम्भावी स्तर पर साम्य स्थापित हो जाये। यह एक ओर मुद्रा विस्फीति द्वारा उत्पादन सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) में कमी की मात्रा तथा दूसरी ओर गुणक के आकार (size of multiplier) पर निर्भर करता है।

16.6.2 सरकारी व्यय में वृद्धि या बजट–घाटे की वित्त व्यवस्था करना (Financing Increase in Government Expenditure of Budget Deficit)

एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि मन्दी दूर करने के लिए की जाने वाली सरकारी व्यय की वित्त व्यवस्था किस प्रकार की जाये। सरकारी व्यय में इस वृद्धि की वित्त अवस्था करों में वृद्धि करके नहीं की जानी चाहिए क्योंकि करों में वृद्धि

व्यय–योग्य आय तथा पदार्थो के लिए उपभोक्ताओं की मांग में कमी कर देगी। वस्तुतः करों में वृद्धि सरकारी व्यय में वृद्धि के विस्तारवादी प्रभाव को व्यर्थ कर देगी। अतः मन्दी के समय यदि विस्तारवादी प्रभाव को प्राप्त करना हैं तो एक उचित विवेकाधीन राजकोषीय नीति को घाटे का बजट बनाना पड़ता है।

1. उधार लेना (Borrowing):- घाटे के बजट की वित्त व्यवस्था का एक तरीका जनता को ब्याज वाले ऋण पत्र बेचकर उनसे उधार लेना होता है। किन्तु बजट के घाटे की वित्त व्यवस्था की विधि के रूप में उधार लेने में समस्याएँ होती है। जब सरकार मुद्रा बाजार में जनता से उधार लेती है तो वह उन व्यवसायियों से भी प्रतिस्पर्धा करेगी जो निजी निवेश के लिए उधार लेते हैं। सरकार द्वारा उधार लेने की नीति उधार लेने की नीति उधार–देय कोषो (loanable funds) की मांग में वृद्धि कर देगी जो, यदि ब्याज दर केन्द्रीय बैंक द्वारा प्रशासित नहीं है तो एक स्वतंत्र बाजार अर्थव्यवस्था में ब्याज दर में वृद्धि कर देगी। हम जानते हैं कि ब्याज दर में वृद्धि निजी निवेश व्यय तथा ब्याज–संवेदनशील (interest-sensitive) टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं पर व्यय में कमी कर देगी।

2. नवीन मुद्रा का सृजन (Creation of New Money):- घाटे के बजट की वित्त व्यवस्था का अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली तरीका नवीन मुद्रा का सृजन होता है। घाटे की वित्त व्यवस्था के लिए नवीन मुद्रा के सृजन द्वारा निजी विनियोग में कमी होने को रोका जा सकता है तथा सरकारी व्यय में वृद्धि के पूर्ण विस्तारवादी प्रभाव को प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार घाटे के बजट की वित्त व्यवस्था के लिए नवीन मुद्रा का सृजन, अन्य शब्दों में, घाटे के बजट के मौद्रीकरण (monetisation of budget deficit) का सरकार द्वारा उधार लेने की अपेक्षा अधिक विस्तारवादी प्रभाव होता है।

16.6.3 सरकारी व्यय में वृद्धि या करों में कमी (Policy Options: Increase in Government Expenditure of Reduction in Taxes)

अर्थव्यवस्था को पूर्ण रोजगार या उत्पादन के सम्भावी स्तर (full employment or level of potential output) पर स्थिर बनाने के लिए सरकारी व्यय का उपयोग करना बेहतर है या करों में परिवर्तन करना? इसका उत्तर बहुत अधिक सीमा तक सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका के बारें में किसी व्यक्ति विशेष के विचार पर निर्भर करता है। जो लोग सोचते हैं कि स्वतंत्र बाजार प्रणाली की विभिन्न असफलताओं का सामना करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र को अर्थव्यवस्थाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए, वे मन्दी की अवधि में उत्पादन तथा रोजगार में विस्तार के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए सार्वजनिक कार्यो पर सरकारी व्यय में वृद्धि की सिफारिश करेंगे। इसके विपरीत जो अर्थशास्त्री यह सोचते हैं कि सार्वजनिक क्षेत्र अकुशल होता हैं तथा इसमें दुर्लभ संसाधनों की बर्बादी होती है, वे अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहित करने के लिए करों में कटौती का तर्क देते हैं।

16.7 गैर–विवेकाधीन राजकोषीय नीति : स्वतः स्थिरकारक (Non-discretionary Fiscal Policy: Automatic Stablisers)

विवेकाधीन राजकोषीय नीति के उपयोग का ऐ ऐसा विकल्प है जिसमें मन्दी या मुद्रास्फीति की समस्या की पहचान करने तथा समस्या का समाधान करने के लिए उचित कार्यवाही करने में विल्म्ब की समस्या होती हैं। इस गैर–विवेकाधीन

राजकोषीय नीति के अन्तर्गत कर सरंचना (tax structure) तथा व्यय ढांचे (expenditure pattern) को इस प्रकार बनाया जाता है कि राष्ट्रीय आय में परिवर्तन के साथ कर तथा सरकारी व्यय स्वतः उचित दिशा में परिवर्तित होते रहते हैं। (The tax structure and expenditure pattern are so designed that taxes and Government spending vary automatically in appropriate direction with the changes in national income) के ये कर नया व्यय स्वतः मन्दी के समय समग्र मांग में वृद्धि तथा आर्थिक तेजी तथा मुद्रास्फीति के समय समग्र मांग में कमी कर देते हैं तथा उसके द्वारा आर्थिक स्थिरता को सुनिश्चित करने में सहायता करते हैं। अतः इन राजकोषीय उपायों को स्वतः स्थिर कारक या आत्मगत स्थिरकारक (Automatic Stablisers) कहा जाता है। चूँकि इन स्वतः स्थिर कारकों को सरकार द्वारा किसी कानून या सोच समझकर नीतिगत कार्यवाही की आवश्यकता नहीं होती है अतः वे गैर विवेकाधीन राजकोषीय नीति का प्रतिनिधित्व करते हैं। कर आय तथा हस्तान्तरण आय तथा आर्थिक अनुदान के रूप में सरकारी व्यय की आत्मगत स्थिरता इस कारण उत्पन्न होती है कि वे राष्ट्रीय आय के साथ परिवर्तित होते रहते हैं। ये कर तथा व्यय स्वतः समग्र माँग में उचित परिवर्तन उत्पन्न करते हैं तथा उस मन्दी तथा मुद्रास्फीति के प्रभाव को कम करते हैं जो किसी समय विशेष पर अर्थव्यवस्था में उत्पन्न हो सकते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि इन स्वतः या आत्मगत स्थिरकारों के होने के कारण मन्दी तथा मुद्रास्फीति उस स्थिति की अपेक्षा कम अवधि तथा कम तीव्रता की होगी जो कि अन्य स्थिति में हो सकती है। व्यक्तिगत आय–कर, निगत आय कर, बेरोजगारी क्षतिपूर्ति (unemployment compensation) कल्याण से संबंधित लाभ जैसे हस्तान्तरण भुगतान (transfer payments) एवं निगम लाभांश महत्त्वपूर्ण स्वतः राजकोषीय स्थिरकारक होते हैं। हम नीचे इन करों की विवेचनना करते है जिनसे होने वाली आय राष्ट्रीय आय में परिवर्तन के साथ उसी दिशा में परिवर्तित होती रहती है।

1. **व्यक्तिगत आयकर (Personal Income Taxes):-** कर की दर की सरंचना इस प्रकार की जाती है कि इन करों से होने वाली राजस्व की प्राप्ति (revenue) प्रत्यक्ष रूप से आय के साथ परिवर्तित होती है। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत आय कर की प्रगतिशील दरें (progressive rates) बनाई जाती हैं : उच्च आय वर्ग से अपेक्षाकृत अधिक दरें वसूल की जाती हैं। परिणामस्वरूप जब विस्तार तथा मुद्रास्फीति की अवधि में राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है तो लोगों की आय का बढ़ता हुआ प्रतिशत सरकार को भुगतान किया जाता है। अतः उनकी व्यय–योग्य आय में कमी करने के माध्यम से ये कर स्वतः लोगों के उपभोग तथा समग्र मांग में कमी करते रहते हैं। प्रगतिशील व्यक्तिगत आय करों के कारण समग्र मांग में यह कमी मुद्रास्फीति को अपेक्षाकृत अधिक गम्भीर होने से रोकने की प्रवृति रखती है। इसके विपरीत जब मन्दी के समय राष्ट्रीय आय कम होती है तो कर–आय भी कम होती है जो समग्र मांग को उसी अनुपात से गिरने से रोकती है जिससे आय में कमी होती है।

2. **निगमित आयकर (Corporate Income Taxes):-** कम्पनियाँ या जिन्हें अब निगम कहते हैं भी अपने लाभ का एक निश्चित प्रतिशत सरकार को कर के रूप में भुगतान करते हैं। व्यक्तिगत आय कर के समान निगमित आय कर की दर

भी सामान्यतः निगमित लाभों के अधिक स्तर पर अपेक्षाकृत अधिक होती है। चूँकि मन्दी तथा मुद्रास्फीति निगमित करों को अत्यधिक प्रभावित करते हैं, अतः समग्र माँग पर उनका शक्तिशाली स्थिरकारक प्रभाव होता है। मुद्रास्फीति तथा आर्थिक तेजी की अवधि में उनसे प्राप्त आय तेजी से बढ़ती है जो समग्र माँग को कम करने की प्रवृत्ति रखती है तथा मन्दी की अवधि उनसे प्राप्त आय अत्यधिक कम हो जाती है जो समग्र माँग में कमी की क्षतिपूर्ति कर देता है।

16.7.1 हस्तान्तरण भुगतान : बेरोजगारी क्षतिपूर्ति तथा कल्याणगत लाभ (Transfer Payments: Unemployment Compensation & Welfare Benefits)

जब मन्दी होती है तथा उसके परिणामस्वरूप बेरोजगारी में वृद्धि होती है तो सरकार को बेरोजगारी के लिए क्षतिपूर्ति भोजन, किराया अनुदान, किसानो को अनुदान जैसे अन्य कल्याण कार्यक्रमों पर अपेक्षाकृत अधिक व्यय करना होता है। सरकारी व्यय में यह वृद्धि मन्दी को अति अल्पकालीन तथा कम तीव्र बनाने की प्रवृत्ति रखती है। इसके विपरीत, जब आर्थिक तेजी तथा मुद्रास्फीति के समय राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती हैं और इसलिए बेरोजगारी कम होती है तो सरकार अपने सामाजिक लाभ के कार्यक्रमों में कटौती करती है जिसके परिणामस्वरूप सरकारी व्यय में कमी हो जाती है। सरकार द्वारा अपेक्षाकृत कम व्यय मुद्रास्फीति को नियन्त्रित करने में सहायता करता है।

1. निगमित लाभांश नीति (Corporate Dividend Policy):- आर्थिक उच्चावचन के साथ निगमित लाभों में भी कमी तथा वृद्धि होती है। तथापि, निगमों के प्रबन्धक लाभों में उच्चावचन के साथ लाभांश में इतनी शीघ्रता से वृद्धि या कमी नहीं करते हैं तथा समुचित स्थिर लाभांश नीति का अनुसरण करते हैं। इससे व्यक्ति मन्दी की अवधि में उस स्थिति की अपेक्षा अधिक व्यय कर सकते हैं जो कि मन्दी की स्थिति में लाभांश के कम हो जाने पर कर सकते तथा इसी प्रकार उस स्थिति की अपेक्षा कम व्यय कर सकते हैं जो कि आर्थिक तेजी तथा मुद्रास्फीति की स्थिति में कर सकते। पर्याप्त स्थिर लाभांश उपभोग व्यय को स्थायित्व प्रदान करके मन्दी का अवरोध तथा मुद्रास्फीति को नियन्त्रित को नियन्त्रित करने की प्रवृत्ति रखता है।

उपरोक्त से यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वतः स्थिरकारक व्यावसायिक उच्चावचनों अर्थात मन्दी तथा मुद्रास्फीति दोनों की तीव्रता को कम करते हैं। तथापि, स्वतः तथा आत्मगत स्थिरकारक अकेले की मन्दी तथा मुद्रास्फीति को महत्वपूर्ण रूप में ठीक नहीं कर सकते। जैसा कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में किये गये अनुमान व्यक्त करते हैं कि स्वतः स्थिरकारक राष्ट्रीय आय में उच्चावचनों को केवल एक तिहाई की कम कर सकें। अतः मन्दी दूर करने तथा मुद्रास्फीति पर नियन्त्रण करने के लिए विवेकाधीन राजकोषीय नीति की भूमिका अर्थात् कर की दरों तथा सरकारी व्यय की धनराशि में सुनियोजित एवं सुस्पष्ट परिवर्तनों की आवश्यकता होती है।

16.8 आर्थिक स्थिरीकरण : मौद्रिक नीति (Economic Stabilisation: Monetary Policy)

16.8.1 प्रस्तावना

मौद्रिक नीति एक अन्य महत्वपूर्ण साधन है जिसकी सहायता से समष्टिपरक आर्थिक नीति के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। यह उल्लेखनीय है कि किसी देश में मौद्रिक नीति का निर्माण तथा कार्यान्वयन देश का केन्द्रीय बैंक करता है। भारत जैसे कुछ देशों में केन्द्रीय बैंक (भारत का केन्द्रीय बैंक रिजर्व बैंक है) सरकार की ओर से कार्य करता है तथा उसके निर्देशों तथा वृह्त दिशा निदेर्शो के अनुसार कार्य करता है। तथापि, कुछ देशों में जैसे संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में केन्द्रीय बैंक (फेडरल रिजर्व बैंक प्रणाली) को स्वतंत्र स्थिति प्राप्त है तथा वह अपनी स्वतंत्र नीति अपनाती है। राजकोषीय नीति के समान ही मौद्रिक नीति का भी वृह्त उद्देश्य उत्पादन के पूर्ण रोजगार स्तर पर साम्य को प्रभावित करके पूर्ण–रोजगार (full employment) अथवा सम्भावी उत्पादन स्तर (potential level of output) पर अर्थव्यवस्था को स्थिर बनाने के उद्देश्य से मुद्रा की पूर्ति तथा ब्याज दर में परिवर्तन करने से सम्बन्धित होती हैं। अधिक स्पष्ट रूप से, मन्दी के समय मौद्रिक नीति के अन्तर्गत कुछ ऐसे मौद्रिक उपायों को अपनाया जाता है जो मुद्रा की पूर्ति के वृद्धि तथा ब्याज दर में कमी करते हैं ताकि अर्थव्यवस्था में समग्र माँग प्रोत्साहित हो। इसके विपरीत मुद्रास्फीति के समय मौद्रिक नीति मुद्रा की पूर्ति को कठोरता से नियन्त्रित करके तथा ब्याज दरों में वृद्धि करके समग्र व्यय को कम करने का प्रयास करती है।

तथापि यह उल्लेखनीय है कि भारत जैसे विकासशील देश में पूर्ण रोजगार अथवा संभावी उत्पादन स्तर पर सन्तुलन प्राप्त करने के अतिरिक्त मौद्रिक नीति को अर्थव्यवसाि के उद्योग तथा कृषि दोनों क्षेत्रों में आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करना भी होता है। इस प्रकार विकासशील देशों के लिए मौद्रिक नीति के निम्नलिखित तीन महत्वपूर्ण उद्देश्य होते हैं।

1. पूर्ण रोजगार या उत्पादन के सम्भावी स्तर पर आर्थिक स्थिरता को सुनिश्चित करना।
2. मुद्रास्फीति तथा मुद्रा विस्फीति को नियन्त्रित करके कीमत स्थिरता प्राप्त करना।
3. अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करना।

मौद्रिक नीति के उपरोक्त लक्ष्यों का समर्थन करते हुए भारतीय रिर्जव बैंक के गर्वनर द्वारा प्रायः इस बात पर जोर दिया जाता है कि भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक नीति का लक्ष्य कीमत स्थिरता के साथ विकास होता है। (Growth with Price Stability is the Goal of Monetary Policy of Reserve Bank of India) उत्पादन तथा रोजगार के अपेक्षाकृत ऊँचे स्तर पर आर्थिक स्थिरता प्राप्त करने में मौद्रिक नीति की भूमिका की विवेचना नीचे की जायेगी तथा भारत के विशेष सन्दर्भ में, विकासशील देश में आर्थिक विकास प्रोत्साहित करने में उसकी भूमिका की व्याख्य तथा आलोचनात्मक परीक्षण विस्तार से एक बाद के अध्याय में विस्तार किया जायेगा।

16.8.2 मौद्रिक नीति के उपकरण (Tools of Monetary Policy)

मौद्रिक नीति के चार बड़े उपकरण है जिनका उपयोग अर्थव्यवस्था में समग्र माँग या व्यय को प्रभावित करके आर्थिक तथा कीमत स्थिरता प्राप्त करने के लिए किया जा सकता है। वे निम्न हैं।

1. खुले बाजार की क्रियाएँ (open market operation)

2. बैंक दर में परिवर्तन करना (changes in bank rate)
3. नकद–कोष अनुपात को परिवर्तित करना (changes in cash reseve ration)
4. चयनात्मक साख नियन्त्रण करना (selective credit controls)

मौद्रिक नीति के ये तीन उपकरण समग्र व्यय तथा आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित करने का कार्य करते है। अब हम इस बात की व्याख्या करेंगे कि अर्थव्यवस्था में समग्र उत्पादन, रोजगार तथा कीमत स्तर को प्रभावित करने के लिए एक उचित मौद्रिक नीति का निर्माण करने में इन विभिन्न यंत्रों का उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है। अवसाद या महामन्दी के समय विस्तारवादी मौद्रिक नीति (expansionary monetary policy) सरल मौद्रिक नीति (easy money policy) अपनायी जाती है जो समग्र माँग में वृद्धि करती है तथा इस प्रकार अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहित करती है। इसके विपरीत मुद्रा स्फीति के समय अर्थव्यवस्था में समग्र माँग को कम करने के माध्यम से कीमत स्थिरता प्राप्त करने एवं मुद्रास्फीति को नियन्त्रित करने के लिए संकुचवादी (contractionary) मौद्रिक नीति या कठोर मुद्रा नीति अपनायी जाती है। हम नीचे इन दोनों नीतियों की विवेचना करते हैं।

16.8.3 मन्दी दूर करने के लिए विस्तारवादी मौद्रिक नीति (Expansionary Monetary Policy to Cure Recession)

जब अर्थव्यवस्था मन्दी या अनैच्छिक चक्रीय बेरोजगारी का सामना कर रही होती है जो समग्र मांग में कमी के कारण उत्पन्न होती हैं, तो केन्द्रीय बैंक इस प्रकार की स्थिति दूर करने के लिए हस्तक्षेप करता है। केन्द्रीय बैंक अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति में विस्तार करने का उपाय करता है या समग्र माँग में वृद्धि करने के उद्देश्य से ब्याज दर में कमी करता है या दोनों विधियाँ अपनाता हैं, जो अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहित करने में सहायता करेंगी। मन्दी दूर करने तथा उत्पादन के पूर्ण रोजगार स्तर पर राष्ट्रीय आय के सन्तुलन को स्थापित करने के लिए निम्नलिखित तीन मौद्रिक नीतिगत उपाय विस्तारवादी मौद्रिक नीति के अन्तर्गत अपनाये जाते हैं।

1. केन्द्रीय बैंक खुले बाजार की क्रियाएँ करता है तथा प्रतिभूतियों को खुले बाजार में खरीदता है (buys securities in the open market) केन्द्रीय बैंक द्वारा जनता, प्रमुख रूप से व्यापारिक बैंकों से प्रतिभूतियों की खरीद बैंकों की आरक्षण निधि या सामान्य जनता के पास करेंसी की धनराशि में वृद्धि कर देगी। अपेक्षाकृत अधिक आरक्षण निधि होने पर व्यापारिक बैंक व्यवसायियों को निवेश करने के लिए अपेक्षाकृत अधिक साख निर्मित कर सकते हैं। अधिक निजी निवेश में वृद्धि समग्र माँग वक्र की ओर विवर्तन कर देगी। इस प्रकार प्रतिभूतियों के क्रय का विस्तारवादी प्रभाव होगा।

2. केन्द्रीय बैंक, बैंक दर या बट्टा दर (discount rate) में भी कमी कर सकता है (The central bank may lower the bank rate or what is also called discount rate) बैंक दर वह ब्याज दर होती है जो एक देश को केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंक को दिये गए ऋणों पर वसूल करता है। अपेक्षाकृत कम ब्याज दर पर व्यापारिक बैंक केन्द्रीय बैंक से अधिक ऋण प्राप्त करने के लिए प्रेरित होंगे तथा व्यावसायिक एवं विनियोक्ताओं को अपेक्षाकृत कम ब्याज दर पर अधिक साख निर्गमित करने में सक्षम हो सकेंगें। इससे साख पहले की अपेक्षा केवल सस्ता ही नहीं होगा बल्कि

इससे अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति या साख की उपलब्धि में भी वृद्धि होगी। साख की पूर्ति में विस्तार से निवेश में वृद्धि होगी। भारत का रिजर्व बैंक प्रायः रीपो दर (Repo rate) में परिवर्तन करके बैंकों द्वारा दिए जाने वाले ऋणों पर ब्याज दर को प्रभावित करता है। रीपो दर रिजर्व बैंक द्वारा अन्य बैंकों को अल्पकालीन ऋण देने की ब्याज दर है। जब रिजर्व बैंक (Repo) दर बढ़ा देता है तो अन्य बैंक भी प्रायः अपने ऋणों पर ब्याज दरें बढ़ा देते हैं।

3. केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों द्वारा रखे जाने वाले नकद कोष अनुपात (CRR) को भी कम कर सकता है। (The central bank may reduce the cash reserve ratio to be kept by the commercial banks) भारत जैसे राष्ट्र में यह केन्द्रीय बैंक द्वारा अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि तथा साख में विस्तार करने का अधिक प्रभावशाली एवं प्रत्यक्ष तरीका है। कोषों की अपेक्षाकृत कम आवश्यकता होने पर व्यवसायियों तथा विनियोक्ताओं का ऋण देने के लिए कोषों की बहुत बड़ी धनराशि मुक्त हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप साख का विस्तार होता है तथा अर्थव्यवस्था में निवेश में वृद्धि होती है जिसका उत्पादन तथा रोजगार पर विस्तारवादी प्रभाव पड़ता है। अप्रैल 1996 में, जब रिजर्व बैंक ने नकद कोष अनुपात (CRR) 14 प्रतिशत से कम करके 13 प्रतिशत किया जो अनुमान लगाया गया कि इससे भारतीय बैंकों के 4,000 करोड़ रु के समान कोष मुक्त हुए तथा उनसे उनकी उधार देने की क्षमता में पर्याप्त वृद्धि हो गई।

4. नकद कोष अनुपात (CRR) के समान भारत में वैधानिक तरलता अनुपात (SLR) नामक अन्य मौद्रिक यन्त्र भी है जिसका रिजर्व बैंक द्वारा ऋण देने की क्षमता तथा अर्थव्यवस्था में साख की उपलब्धि में परिवर्तन करने के लिए उपयोग किया जाता है। वैधानिक तरलता अनुपात के अन्तर्गत नकद कोष अनुपात के अतिरिक्त बैंकों को अपनी जमा का एक निश्चित न्यूनतम अनुपात सरकारी प्रतिभूतियों जैसे कुछ विशिष्ट तरल परिसम्पत्तियों के रूप में रखना होता है। बैंकों के उधार–देय राशियों में वृद्धि करने के लिए रिजर्व बैंक इस वैधानिक तरलता अनुपात (SLR) को कम कर सकता है। परिणामस्वरूप व्यवसायियों को साख की उपलब्धि में वृद्धि होगी।

यह उल्लेखनीय है कि मौद्रिक नीति के उपरोक्त सभी उपकरणों के उपयोग से बैंको के आरक्षण–नीधि या तरल संसाधनों में वृद्धि होगी चूँकि आरक्षण निधि वह आधार है जिस पर बैंक उधार देकर साख का विस्तार करते हैं। आरक्षण नीधि में वृद्धि अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि कर देती है। इस प्रकार मन्दी या महामन्दी के समय उपयुक्त मौद्रिक नीति साख की उपलब्धि में वृद्धि तथा साख की लागत को भी कम करने की चेष्टा है (Thus appropriate monetary policy at times of recession or depression can increase the availability of credit and also lower the cost of credit) इसके कारण अधिक निजी विनियोग व्यय होता है जिसका अर्थव्यवस्था पर विस्तारवादी प्रभाव होता है।

16.8.4 मुद्रास्फीति को नियन्त्रित करने के लिए मौद्रिक नीति (Monetary Policy to Control Inflation)

जब अत्यधिक उपभोग तथा निवेश व्यय के कारण समग्र मांग में तेजी से वृद्धि होती है या जो अधिक महत्वपूर्ण है आय की तुलना में सरकारी व्यय में अधिक वृद्धि के कारण विशाल बजट घाटा उत्पन्न हो जाता हैं, तो अर्थव्यवस्था में

माँग–प्रेरित स्फीति उत्पन्न हो जाती है। इसके अतिरिक्त जब किसी न किसी कारण मुद्रा का सृजन बहुत अधिक होता है तो वह अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति दबाव (inflationary pressures) उत्पन्न करता है। भारत तथा अन्य अनेक देशों में गत वर्षो में माँग–प्रेरित मुद्रास्फीति (demand-pull inflation) की बहुत बड़ी समस्या को रोकने के लिए संकुचवादी मौद्रिक नीति (countractionary monetary policy) की आवश्यकता होती है जिसे प्रायः कठोर मौद्रिक नीति (tight monetary policy) कहा जाता है। ध्यान रहे कि कठोर या संकुचनात्मक मुद्रा नीति वह होती है जो साख की उपलब्धि को कम कर देती है तथा उसकी लागत में भी वृद्धि करती है। सामान्यतः मुद्रास्फीति को नियन्त्रित करने के लिए कठोर मुद्रा नीति के अन्तर्गत निम्नलिखित मौद्रिक उपाय अपनाये जाते हैं।

1. केन्द्रीय बैंक खुले बाजार की क्रियाओं के माध्यम से बैंको, अन्य संग्रहकर्ता संस्थाओं (depository institutions) को सरकारी प्रतिभूतियाँ बेचता है। (The Central Bank sells the Government Securities to the banks, other depository institutions and the general public through open market operations) यह क्रिया बैंको की आरक्षण निधि तथा सामान्य जनता के पास तरल कोषों को कम कर देता है। बैंकों के पास कम आरक्षण निधि होने पर उनकी उधार देने की क्षमता कम हो जायेगी। अतः पुराने ऋणों की वापसी के साथ उन्हें नवीन ऋण देने को मना करने से उन्हें अपनी मांग–जमाओं (demand deposits) को कम करना पड़ता है। परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति में संकुचन हो जायेगा।

2. बैंक दर अथवा रीपो दर (Repo rate) में भी वृद्धि की जा सकती है जो बैंकों को केन्द्रीय बैंक से ऋण लेने के लिए हतोत्साहित करेगी (The bank rate may also be raised which will discourage the banks to take loans from the central bank) यह बैंकों की तरलता को कम करने की प्रवृत्ति रखेगा तथा उन्हें अपनी उधार देने की दरों में भी वृद्धि करने के लिए प्रेरित करेगी। इस प्रकार यह साख की उपलब्धि को कम करेगी तथा उसकी लागत में भी वृद्धि करेगी। यह निवेश व्यय में कम करेगा तथा मुद्रास्फीतिकारी दबावों को कम करने में सहायता करेगा।

3. सबसे महत्वपूर्ण मुद्रास्फीति विरोधी उपाय वैधानिक नकद कोष अनुपात (CRR) में वृद्धि करना (raising of statutory cash reserve ratio) है। अपेक्षाकृत अधिक आरक्षण निधि की आवश्यकता को पूरा करने के लिए बैंक अपने ऋणों में कमी करेंगे। इसका अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति पर संकुचनकारी प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ेगा तथा यह मांग प्रेरित मुद्रास्फीति को नियन्त्रित करने में सहायता करेगा। नकद कोष अनुपात (CRR) के अतिरिक्त वैधानिक तरलता अनुपात (SLR) में भी वृद्धि की जाती है जिसके माध्यम से बैंकों की अतिरिक्त आरक्षण निधियों को कम किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप साख में संकुचन होता है।

4. एक महत्वपूर्ण मुद्रास्फीति विरोधी उपाय गुणात्मक साख नियन्त्रण (Qualitative Credit Controls) होता है जिसके अन्तर्गत खाद्यान्न, तिलहन, कपास, चीनी तथा वनस्पति तेल जैसी संवेदनशील वस्तुओं के भण्डार के आधार पर बैंकों से ऋण प्राप्त करने के लिए न्यूनतम सीमाओं (minimum margins) में वृद्धि की जाती है। (raising of minimum margins for obtaining loans from

banks against the stock of sensitive commodities such as foodgrains, oilseeds, cotton, sugar, vegetable oils) इस उपाय के परिणामस्वरूप व्यवसायियों को स्वयं अपने वस्तु भण्डारों की अपेक्षाकृत अधिक सीमा तक वित्त व्यवस्था करनी होगी क्योंकि वे बैंकों से अपेक्षाकृत कम ऋण प्राप्त कर सकेंगे। भारत में मुद्रा स्फीतिकारी दबावों को नियन्त्रित करने के लिए इस चयनात्मक साख नियन्त्रण (selective credit controls) का विस्तृत उपयोग किया जाता है।

16.8.5 मौद्रिक नीति : मुद्रावादी मत (Monetary Policy: Monetarist View)

यद्यपि अधिकांश आधुनिक अर्थशास्त्री अर्थव्यवस्था को स्थिर बनाने के लिए राजकोषीय तथा मौद्रिक दोनों नीतियों को महत्वपूर्ण यंत्र मानते हैं, किन्तु फ्रीडमैन के नेतृत्व में अर्थशास्त्रियों का एक समूह मानता है कि मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन आर्थिक गतिविधियों तथा कीमत स्तर के महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व होते हैं। उनका तर्क है कि मुद्रा का मांग वक्र अत्यधिक तेज ढाल वाला तथा विनियोग मांग वक्र अत्यधिक लोचदार होता है। अतः जब मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन होता है तो वह विनियोग मांग तथा राष्ट्रीय आय के साम्य स्तर को अत्यधिक प्रभावित करता है।

तथापि, अत्यधिक आश्चर्य की बात है, कि अधिकांश मुद्रावादी विवेकाधीन मौद्रिक नीति अर्थात् को मन्दी की दशा से निकलनें के लिए विस्तारवादी मुद्रा नीति तथा मुद्रा स्फीतिकारी आर्थिक तेजी को रोकने के लिए कठोर मुद्रा नीति के उपयोग तथा उसके माध्यम से व्यापार चक्रों के उच्चावयन को ठीक करने के पक्ष में तर्क नहीं देते है। वस्तुतः मुद्रावाद के प्रमुख प्रतिपादक फ्रीडमैन का तर्क है कि ऐतिहासिक रूप से मुद्रा की पूर्ति या ब्याज दरों में विवेकाधीन परिवर्तनों का अर्थव्यवस्था पर स्थिरकारक के विपरीत अस्थिरकारक प्रभाव होता है। (In fact, Friedman, the chief exponent of monetarism, contends that historically, far from stablising the economy, discretionary changes in money supply or rates of interest have a destablising effect on the economy) संयुक्त राष्ट्र के मौद्रिक इतिहास के अपने अध्ययन के आधार पर उन्होंने तर्क दिया कि मौद्रिक अधिकारियों द्वारा मुद्रा की पूर्ति में किये गये परिवर्तनों से सम्बन्धित दोषपूर्ण निर्णय उस अत्यधिक अस्थिरता के लिए उत्तरदायी होते हैं जो उनके अध्ययन की समयावधि में किये गये थे। इस प्रकार मुद्रावादियों के अनुसार एक स्वतंत्र बाजार अर्थव्यवस्था में स्थिरता को भंग करने वाले कुछ निश्चित अन्तर्निहित तत्वों की विद्यमानता नहीं बल्कि यह विवेकाधीन मौद्रिक नीतियों द्वारा मौद्रिक कुप्रबन्ध होता है। (It is not the presence of certain inherent destablishing factors in a free market economy but the monetary mismanagement by the discretiionary monetary policies) जो उस आर्थिक अस्थिरता की मूल कारण होती है जो स्वतंत्र बाजार अर्थव्यवस्थाओं में पायी जाती रही हैं।

मौद्रिक दुर्व्यवस्था के स्त्रोत (Sources of Monetary Mismanagement) मुद्रावादियों के अनुसार मौद्रिक दुर्व्यवस्था के दो महत्वपूर्ण स्त्रोत होते हैं (1) मुद्रा की पूर्ति का नकद राष्ट्रीय आय पर प्रभाव से सम्बन्धित परिवर्तनशील समय अन्तराल तथा (2) अर्थव्यवस्था को स्थिर बनाने के लिए निवेश मांग को प्रभावित करने के उद्धेश्य से ब्याज दर को मौद्रिक नीति लक्ष्य के रूप में मानना। हम मौद्रिक दुर्व्यवस्था के इन दोनों स्त्रोतों का नीचे परीक्षण करते हैं।

1. **परिवर्तनशील समय अन्तराल (Variable Time Lag):-** सर्वप्रथम, उस परिवर्तनशील अधिक समय अन्तराल की समस्या होती है जो मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तनों द्वारा नकद राष्ट्रीय आय पर वांछनीय प्रभाव उत्पन्न करने में होती है। अपने आनुभाविक अध्ययनों के आधार पर फ्रीडमैन (Friedman) निष्कर्ष निकालते हैं कि मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तनों द्वारा नकद आय पर पर्याप्त प्रभाव उत्पन्न किये जाने में छः माह से 2 वर्ष तक लगते हैं। मुद्रावादियों का तर्क है कि चूँकि समस्या का समाधान करने के लिए अपनायी गयी विशिष्ट मौद्रिक नीतिगत उपाय में निहित समय अन्तराल को जानना अत्यधिक कठिन होता हैं, अतः यह निर्धारित करना असम्भव होता है कि एक नीतिगत उपाय कब किया जाये तथा दी हुई परिस्थितियों में विस्तारवादी अथवा कठोर कौन सा नीतिगत उपाय उपयुक्त है। वस्तुतः मुद्रावादियों के अनुसार अन्तनिर्हित समय अन्तरालों की ठीक समयावधि के विषय में अनिश्चितता के कारण अर्थव्यवस्था को स्थि बनाने के लिए विवेकाधीन मौद्रिक नीति का उपयोग समस्या को प्रज्जवलित कर सकता है तथा चक्रीय अस्थिरता को और अधिक गम्भीर बना सकती है। उदाहरणार्थ, यदि विभिन्न आर्थिक सूचकों द्वारा हल्की मन्दी की स्थिति प्रदर्शित की जाती है जो नीति के परिणाम उत्पन्न करने में छः से आठ माह के निहित समय अन्तराल के कारण उस समयावधि में आर्थिक स्थिति विपरीत हो सकती है तथा वह हल्की मुद्रास्फीतिकारी स्थिति हो सकती है। अतः वह विस्तारवादी मौद्रिक नीति, जो 6 से 8 महीनों बाद प्रभाव उत्पन्न करती हैं, वस्तुतः मुद्रास्फीति स्थिति को और अधिक गम्भीर कर सकती है।

2. **त्रुटिपूर्ण लक्ष्य–चर के रूप में ब्याज दर (Interest Rate as a Wrong Target Variable):-** मौद्रिक अव्यवस्था का दूसरा स्त्रोत मौद्रिक अधिकारियों द्वारा चुना गया त्रुटिपूर्ण लक्ष्य होता है। मुद्रावादियों ने मत व्यक्त किया है कि अर्थव्यवस्था को स्थिर बनाने के लिए मौद्रिक अधिकारियों ने ब्याज दरों को नियन्त्रित करने का प्रयास किया है। यह तर्क दिया गया है कि केन्द्रीय बैंक ब्याज दर तथा मुद्रा की पूर्ति दोनों को एक साथ स्थिर नहीं बना सकता। ब्याज दर को नियन्त्रित करके इसने वास्तव में अर्थव्यवस्था की स्थिरता भंग की है। उदाहरणार्थ यदि अर्थव्यवस्था मन्दी से पुनर्जीवन प्राप्त कर रही होती है तथा अब समग्र माँग, उत्पादन, रोजगार तथा कीमत सभी वृद्धि के साथ पूर्ण रोजगार की स्थिति की ओर बढ़ रहे होते हैं तो क्रय–विक्रय अथवा लेन देन के उद्देश्य (transaction motive) से मुद्रा की मांग की वृद्धि होगी। लेन–देन के उद्देश्य से मुद्रा की मांग में यह वृद्धि ब्याज दर में वृद्धि कर देगी किन्तु यदि मौद्रिक अधिकारियों ने ब्याज की दरों को स्थिर करने की नीति का चुनाव किया है तो वे ब्याज दर में वृद्धि को रोकने के लिए कठोर मुद्रा नीति अपनायेंगे। किन्तु जब अर्थव्यवस्था मन्दी से पुनर्जीवन प्राप्त कर रही होती है तो ब्याज दर में वृद्धि को रोकने के लिए कठोर मुद्रा नीति समग्र मांग को कम कर देगी तथा मन्दी की स्थिति उत्पन्न कर देगी। इस प्रकार ब्याज दर को स्थिर करने का केन्द्रीय बैंक का प्रयास अर्थव्यवस्था को स्थिर बना देगा। इसी प्रकार जब अर्थव्यवस्था मन्दी की स्थिति में जा रही होती है तो इससे समग्र उत्पादन तथा कीमतों में कमी होगी। समग्र उत्पादन तथा कीमत में यह कमी लेन–देन के उद्देश्य से मुद्रा की मांग में कमी उत्पन्न करेगी। लेन–देन के उद्देश्य से मुदग्रा की मांग में कमी ब्याज दर में कमी कर देगी। ब्याज

दर में इस कमी को रोकने के लिए यदि मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि की जाती है तो इससे अर्थव्यवस्था में मुद्रा–स्फीतिकारी दबावों का सृजन होगा। इस प्रकार ब्याज दर को स्थिर बनाने के उपाय अर्थव्यवस्था में अस्थिरता दूर करने के ब्जाय उसका सृजन करते हैं।

16.9 सारांश

उपरोक्त विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि मुद्रावादी ब्याज दर को स्थिर करने के पक्ष में नहीं हैं। वे अर्थव्यवस्था में स्थिरता लाने के लिए विवेकाधीन राजकोषीय नीति का पालन करने के ब्जाय एक नियम अपनाने के पक्ष में तर्क देते हैं। (They advocate for the adoption of a rule rather than pursuing discretionary fiscal policy to stablise the economy) वे स्थिरता के साथ आर्थिक विकास प्राप्त करने के लिए मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि का नियम (rule for the growth of money supply) निर्धारित करते हैं। फ्रीडमैन द्वारा बताये गये मौद्रिक नियम के अनुसार मुद्रा की पूर्ति में उत्पादन के वृद्धि दर के समान दर से वृद्धि की जानी चाहिए (Money supply should be allowed to grow at the rate equal to the rate of growth of output) यदि अर्थव्यवस्था में 3, 4 या 5 प्रतिशत वार्षिक की दर से वृद्धि होने की आशा है तो मुद्रा की पूर्ति में उसी दर से वृद्धि होनी चाहिए। इस नियम के अनुसार अर्थव्यवस्था में उत्पादन की वृद्धि के बिना कोई मुद्रास्फीति या अवसादकारी दशाएं उत्पन्न किये सृजित अतिरिक्त मुद्रा की पूर्ति को आत्मसात् कर लेगा तथा इस प्रकार अर्थव्यवसाा में स्थिरता को सुनिश्चित करेगा। रिटर तथ सिलबर के अनुसार ''इस प्रकार का नियम अर्थव्यवस्था में अस्थिरता की महत्वपूर्ण कारण–चक्रीय विरोधी मौद्रिक नीति के मनमाने तथा पूर्वानुमान न किये जाने योग्य प्रभाव को समाप्त कर देगा। जब तक मुद्रा की पूर्ति में प्रति वर्ष स्थिर दर से वृद्धि होती है, चाहे वह 3, 4 या 5 प्रतिशत वार्षिक हो मन्दी में कोई भी कमी अस्थायी होगी। निरन्तर बढ़ती हुई मुद्रा की पूर्ति द्वारा प्रदान की गयी तरलता समग्र मांग में विस्तार करेगीं इसी प्रकार यदि मुद्रा की पूर्ति एक आसत दर से अधिक नहीं बढ़ती है, तो व्यय में कोई भी मुद्रास्फीति वृद्धि ईंधान की कमी के कारण स्वयं को ही जला डालेगी।''

उपयुक्त मौद्रिक नियम की केन्जवादी अर्थशास्त्रियों द्वारा आलोचन की गयी है। उन्होंने तर्क दिया है कि मौद्रिक नियम का स्थिरता भंग करने का प्रभाव होगा। मुद्रा के प्रचलन वेग (v) के अस्थिर या परिवर्तनशील होने के कारण मुद्रा की पूर्ति (M) में वृद्धि किसी वर्ष विशेष में उत्पादन की वृद्धि की दर के समान समग्र मांग में वृद्धि (जो मुद्रावादी सिद्धान्त के अनुसार MV के समान होती है) को सुनिश्चित नहीं करेगी, जिसका पूर्वानुमान करना कठिन होता है जैसा कि इस नियम में कहा गया है। इस प्रकार मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि कभी उत्पादन में वृद्धि की अपेक्षा अधिक हो सकती है तथा कभी उसकी अपेक्षा कम हो सकती है तथा उसके परिणामस्वरूप कभी मांग–प्रेरित मुद्रास्फीति तथा कभी अवसादकारी दशाएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इस प्रकार मौद्रिक नियम की नीति आर्थिक स्थिरता की गारण्टी प्रदान नहीं करती तथा यह स्वयं अस्थिरता का सृजन कर सकता है।

16.10 शब्दावली

आर्थिक वृद्धिः क्षमता में होने वाली वह दीर्घावधि वृद्धि है, जो जनसंख्या की उत्तरोतर विविध वस्तुओं की मांग की पूर्ति करने की होती है।
नगरीकरणः जनसंख्या का ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में जाकर बसना।
वित्तीय संस्थाएंः ये निवेशक तथा उधार लेने वाले के बीच एक माध्यम है।
सरंचनात्मक परिवर्तनः एक परम्परागत समाज से आधुनिक अर्थव्यवस्था में परिवर्तन है।
निगमित आयकरः कम्पनियाँ अपने लाभ का एक निश्चित प्रतिशत सरकार को कर के रूप में भुगतान करती है।
लाभांश नीतिः लाभांश के रूप में वितरित की जाने वाली आय तथा व्यवसाय में रखी जाने वाली आय का निर्धारण करना।

16.11 बोध प्रश्न

रिक्त स्थान को भरिएः–

i) यूरोपीय मूल के विकसित देशों का बाहृय विस्तार प्रमुख रूप से .... में तकनीक–मूलक क्रान्ति के कारण हुआ।
ii) .... के पुनरुत्थान के कारण अफ्रीका का विभाजन हुआ।
iii) अन्तर्राष्ट्रीय देशान्तरण के संचयी एवं बढ़ रहे परिणाम का आधुनिक .... के ढांचे से गहरा सम्बन्ध है।
iv) .... तथा .... से उत्पादकता में वृद्धि होती है।
v) आर्थिक कारकों के साथ–साथ .... भी आर्थिक प्रगति को प्रभावित करते है।
vi) अल्पविकसित देशों में .... ढांचा बहुत ढ़ीला बहुत ढीला होने के कारण आर्थिक विकास के मार्ग में बाधक होता है।
vii) मौद्रिक नीति के उपकरण समग्र व्यय तथा .... को प्रभावित करने का कार्य करते है।

16.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

i)	परिवहन एवं संचार,	ii)	साम्राज्यवाद,	iii)	आर्थिक वृद्धि
iv)	विशिष्टीकरण, श्रम विभाजन,			v)	गैर–आर्थिक कारक
vi)	राजनैतिक एवं प्रशासनिक,			vii)	आर्थिक गतिविधियों

16.13 स्वपरख प्रश्न

1. आर्थिक वृद्धि की प्रमुख विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
2. आर्थिक वृद्धि क्या है? इसको प्रभावित करने वाले मुख्य तत्वों की विवेचना कीजिए।
3. आर्थिक विकास में गैर–आर्थिक तत्व क्या हैं? आर्थिक विकास की प्रक्रिया को वे किस प्रकार सहायता पहुंचाते हैं?
4. आर्थिक स्थिरीकरण से क्या अभिप्राय हैं? मौद्रिक नीति के उपकरण बताओं।
5. आर्थिक मन्दी दूर करने के लिए विस्तारवादी मौद्रिक नीति की व्याख्या कीजिए?

6. मुद्रास्फीति को नियन्त्रित करने के लिए मौद्रिक नीति किस प्रकार सहायक हैं?

16.14 सन्दर्भ पुस्तकें

1. राजस्व : डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय
2. लोकवित्त : डॉ0 एस0 के0 सिंह
3. राजस्व : डॉ0 आर0 एस0 कौशिक
4. राजस्व सिद्धान्त एवं व्यवहार : के0 एल0 माहेश्वरी
5. Delton, H : Principles of public Finance
6. Public Finance Theory and Practice : Mehta and Agrawal
7. Shirras, Findley : The Science of Public Finance
8. Hicks, Ursula : Public Finance
9. A.C. Pigou : A Study of Public Finance
10. Taylor P.E. : Economics of Public Finance
11. Raja J Chhelliah : Fiscal Policy in under developed Countries.